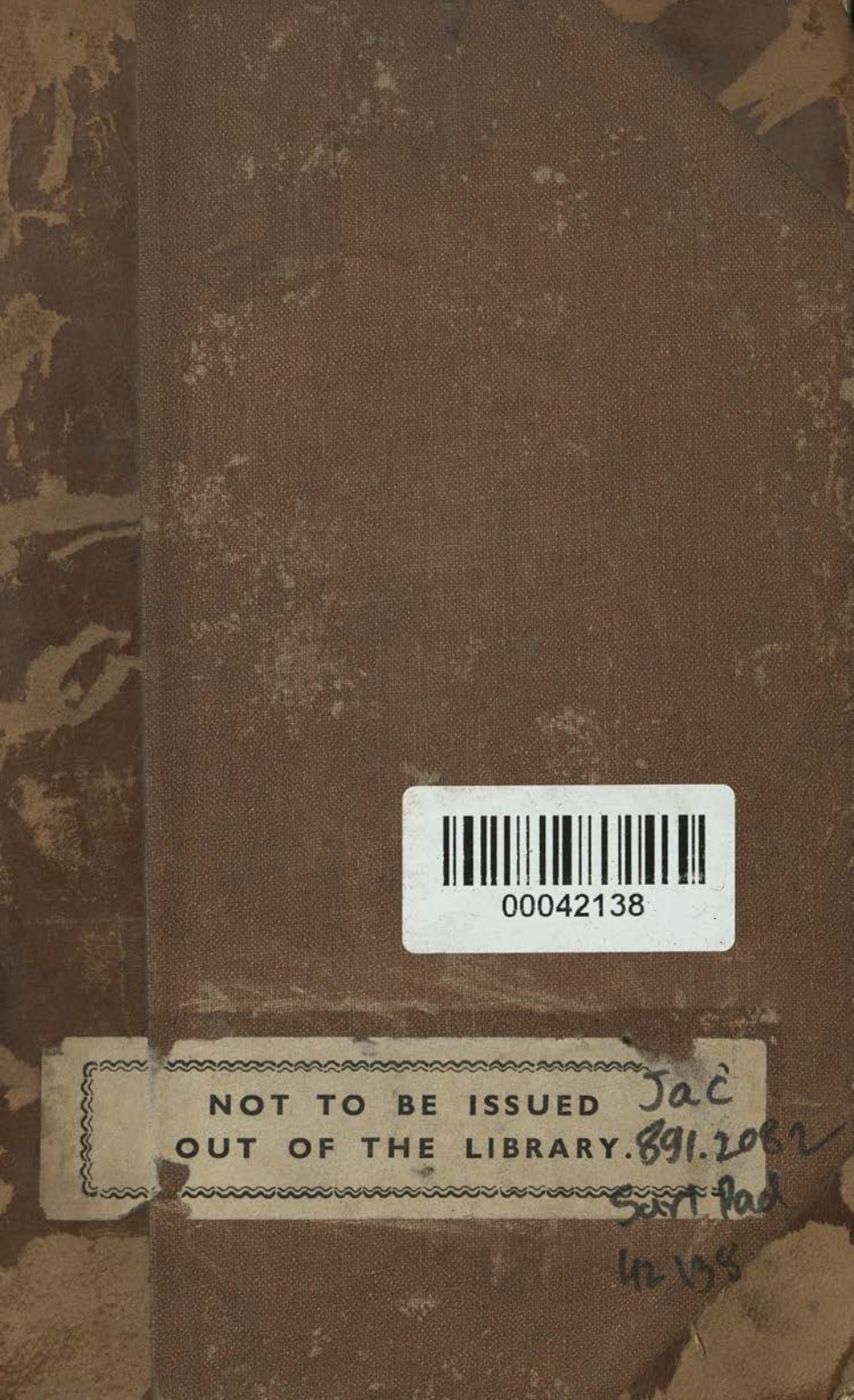

00042138

NOT TO BE ISSUED
OUT OF THE LIBRARY.

Jac
891.2082
Sest Pad
42 V58

BOMBAY BRANCH

OF THE

Royal Asiatic Society.

Digitized with financial assistance from the
Government of Maharashtra
on 05 October, 2018

The Department of Public Instruction, Bombay.

# THE PADDHATI

OF

# SARNGADHARA.

A SANSKRIT ANTHOLOGY.

42138

EDITED BY

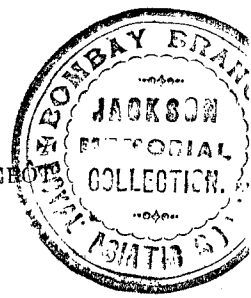
PETER PETERSON, M. A.,

*Professor of Sanskrit and Acting Principal, Elphinstone College, Bombay.*

## Vol. I.

## THE TEXT.

*Registered for Copyright under Act XXV. of 1867.*




Bombay:
GOVERNMENT CENTRAL BOOK DEPOT.

1888.

[All rights reserved.]

*Price Rupees 5 as. 6.*

BOMBAY SANSKRIT SERIES No. XXXVII.

JAC
891.20
Sar/Pan-d
42138

BOMBAY:

PRINTED AT THE EDUCATION SOCIETY'S PRESS, BYCULLA.



*IN PREPARATION.*

---

## VOLUME II.

*CONTAINING AN INTRODUCTION, VARIOUS READINGS, AND NOTES.*

TO

HIS HIGHNESS

MAHARAO RAJA RAM SING, G.C.S.I., C.I.E.,

RAO OF BOONDI,*

WHO BY A FORTUNE RARE IN INDIA POSSESSES BOTH THE LANDS AND THE LEARNING OF HIS ANCESTORS, THIS EDITION OF A WORK WRITTEN BY A GRANDSON OF THE CHIEF MINISTER OF THE RENOWNED HAMMIRA IS MOST RESPECTFULLY DEDICATED BY HIS HIGHNESS'

OBEDIENT SERVANT,

*PETER PETERSON.*

*Bombay, 29th October 1888.*

---

*Installed August* 1821; *See* TOD'S ANNALS OF RAJASTHAN, Vol. II. p. 504.

श्रीमद्बुन्दीश्वरस्य मानवादिशास्त्रोक्तप्रजापालनादिक्षात्रधर्मधारणधुरंधरस्य विविधानवद्यविद्याविवर्धनविधाविधानोत्सुकस्य जी. सी. एस. आय्. सी. आय्. इ. इत्युपाधिधारिणो महारावराजोपपदस्य श्रीरामसिंहवर्मणः समीपमुपढौकयति स्वसंस्कृतां प्रेक्षावदुपकारकविषयकपरिच्छेदपरिष्कृतां शार्ङ्गधरपद्धतिमिमां चाहुवाणान्वयपयोधिकलानिधिश्रीहम्मीरदेवसभारत्नराघवदेवपौत्रेण दामोदरपुत्रेण शार्ङ्गधरेण संकलितां महाराजनिरुपधिमैत्रीगुणसंदानितान्तःकरणः

डा. पी. पीटर्सनः

# PREFATORY NOTE TO THE TEXT.

This Edition of the Anthology of Sarngadhara is based upon the following manuscripts:

A. An incomplete manuscript procured by me for the Government of Bombay in the year 1886-7. Leaves 1 to 253, stopping in the middle of our No. 4153. There is therefore no date: and it can only be conjectured from the appearance of the manuscript that it belongs to the 16th century. It is, so far as I can judge, very correct.

B. A complete copy also procured by me in 1886-7 for the Government of Bombay. Leaves 1 to 295, containing the book up to our No. 4620, the proper end. Very beautifully written by a Jain scribe: but neither so old nor so correct as A.

C. A manuscript belonging to my friend Pandit Durgaprasad. Samvat 1776. Complete, and containing the Khadgapariksha chapter (placed by me at the end of the book as an appendix) after the Turangaprasansa chapter, as in Aufrecht's MS. C.

D. An incomplete copy lent to me by Mr. Jyeshtaram Mukundji. Leaves 1 to 144, stopping in the middle of our No. 1558.

E. A manuscript lent to me, through Mr. Jyeshtaram Mukundji, our enterprising Sanskrit bookseller, by Seth Dhanaji Mahavaji. Samvat 1819. Complete.

F. A copy kindly lent to me from the Palace Library at Jodhpore, by H. H. the Maharaja, through His Excellency Col. Sir Pertab Singh. Samvat 1877. This manuscript was used for the last part of the book, where A was wanting.

A full critical apparatus, with notes to the book, and an Introductory Sketch of the Literature embraced in it, will appear in a second volume, which I hope to put out next year.

PETER PETERSON.

*Bombay, 27th September* 1888.

# शार्ङ्गधरपद्धतिपरिच्छेदसूचीपत्रम्


| परिच्छेद-संख्या | परिच्छेदनामानि | आरम्भ-श्लोकाङ्कः | पृष्ठाङ्कः |
|---|---|---|---|
| १ | कविवंशवर्णनम् ..... | १ | १ |
| २ | अनुक्रमणिका ..... | १३ | ३ |
| ३ | नमस्कृतिः ..... | ५७ | ७ |
| ४ | आशिषः ..... | ८७ | १३ |
| ५ | सुभाषितप्रशंसा ..... | १३९ | २३ |
| ६ | काव्यप्रशंसा ..... | १४५ | २४ |
| ७ | सामान्यकविप्रशंसा ..... | १५५ | २५ |
| ८ | विशिष्टकविप्रशंसा ..... | १७२ | २८ |
| ९ | कुकविनिन्दा ..... | १९१ | ३१ |
| १० | पण्डितप्रशंसा ..... | १९७ | ३२ |
| ११ | कुपण्डितनिन्दा ..... | २०५ | ३३ |
| १२ | महतां प्रशंसा ..... | २०९ | ३४ |
| १३ | धीरप्रशंसा ..... | २२४ | ३६ |
| १४ | सज्जनप्रशंसा ..... | २३१ | ३७ |
| १५ | मनस्विप्रशंसा ..... | २५२ | ४० |
| १६ | उदारप्रशंसा ..... | २६८ | ४२ |
| १७ | तेजस्विप्रशंसा ..... | २८२ | ४४ |
| १८ | गुणप्रशंसा ..... | २९० | ४५ |
| १९ | संतोषप्रशंसा ..... | ३०७ | ४७ |
| २० | संसर्गप्रशंसा ..... | ३२१ | ४९ |
| २१ | धनप्रशंसा ..... | ३३२ | ५१ |
| २२ | दुर्जननिन्दा ..... | ३४५ | ५२ |
| २३ | कृपणनिन्दा ..... | ३७८ | ५६ |
| २४ | याचकनिन्दा ..... | ३९२ | ५८ |
| २५ | दरिद्रनिन्दा ..... | ४०१ | ६० |
| २६ | मूर्खनिन्दा ..... | ४१३ | ६१ |
| २७ | तृष्णानिन्दा ..... | ४१९ | ६२ |
| २८ | लोभनिन्दा ..... | ४२८ | ६३ |
| २९ | दैवाख्यानम् ..... | ४३५ | ६४ |
| ३० | उद्यमाख्यानम् ..... | ४५४ | ६७ |
| ३१ | प्रकीर्णकाख्यानम् ..... | ४६३ | ६९ |
| ३२ | समस्याख्यानम् ..... | ४९४ | ७२ |
| ३३ | प्रहेलिकापद्धतिकूटाख्यानम् ..... | ५१४ | ७६ |

| परिच्छेद-संख्या | परिच्छेदनामानि | आरम्भ-श्लोकाङ्कः | पृष्ठाङ्कः |
|---|---|---|---|
| ३४ | क्रियागुप्त—कर्तृगुप्त—कर्मगुप्त—संधि-गुप्त—बिन्दुमती—चित्र—भाषाचि-त्राख्यानम्..... | ५३४ | ८२ |
| ३५ | प्रश्नोत्तराख्यानम् ..... | ५५१ | ८७ |
| ३६ | जातिः..... ..... | ५६९ | ९१ |
| ३७ | सदाचारः..... | ५९८ | ९७ |
| ३८ | धर्मविवृतिः ..... | ६६५ | १०५ |
| ३९ | पातकविवृतिः ..... | ६९६ | १०९ |
| ४० | खेचरभूचरेषु पूर्वं सूर्यान्योक्तयः ..... | ७३७ | ११४ |
| ४१ | चन्द्रान्योक्तयः..... | ७४८ | ११६ |
| ४२ | मेघान्योक्तयः ..... | ७६५ | ११८ |
| ४३ | वायोरन्योक्तयः ..... | ७९० | १२२ |
| ४४ | हंसान्योक्तयः ..... | ७९६ | १२३ |
| ४५ | मधुकरान्योक्तयः ..... | ८१५ | १२७ |
| ४६ | कोकिलान्योक्तयः ..... | ८३८ | १३१ |
| ४७ | चातकान्योक्तयः ..... | ८५२ | १३३ |
| ४८ | मयूरान्योक्तयः ..... | ८६७ | १३५ |
| ४९ | शुकान्योक्तयः ..... | ८७४ | १३७ |
| ५० | काकान्योक्तयः ..... | ८८० | १३८ |
| ५१ | बकान्योक्तयः ..... | ८८९ | १४० |
| ५२ | खद्योतान्योक्तयः ..... | ८९६ | १४१ |
| ५३ | सिंहान्योक्तयः ..... | ९०० | १४२ |
| ५४ | गजान्योक्तयः ..... | ९१८ | १४५ |
| ५५ | हरिणान्योक्तयः..... | ९३७ | १४८ |
| ५६ | करभान्योक्तयः..... ..... | ९५० | १५१ |
| ५७ | वृषभान्योक्तयः..... | ९६१ | १५३ |
| ५८ | सामान्यवृक्षान्योक्तयः ..... | ९७१ | १५४ |
| ५९ | वृक्षविशेषान्योक्तयः ..... | ९८७ | १५७ |
| ६० | पर्वतान्योक्तयः... ..... | १०६४ | १७२ |
| ६१ | अगस्त्यान्योक्तयः..... | १०७४ | १७४ |
| ६२ | समुद्रान्योक्तयः..... | १०७७ | १७५ |
| ६३ | रत्नान्योक्तयः ..... | १०९८ | १७९ |
| ६४ | शङ्खान्योक्तयः ..... | १११४ | १८१ |

| परिच्छेद-संख्या | परिच्छेदनामानि | आरम्भ-श्लोकाङ्कः | पृष्ठाङ्कः |
|---|---|---|---|
| ६५ | नद्यन्योक्तयः | ११२१ | १८२ |
| ६६ | तटाकान्योक्तयः | ११२६ | १८३ |
| ६७ | कमलान्योक्तयः | ११३३ | १८५ |
| ६८ | कूपान्योक्तयः | ११४५ | १८६ |
| ६९ | मरुस्थलान्योक्तयः | ११५० | १८७ |
| ७० | दावानलान्योक्तयः | ११५५ | १८८ |
| ७१ | संकीर्णान्योक्तयः | ११६० | १८९ |
| ७२ | सामान्यराजप्रशंसा | १२१८ | १९९ |
| ७३ | विशिष्टराजवर्णनम् | १२४७ | २०४ |
| ७४ | अरिपलायनम् | १२६७ | २०८ |
| ७५ | राजनीतिः | १२८१ | २१० |
| ७६ | नीतिः | १४२० | २२७ |
| ७७ | मिश्रकनीतिः | १५२९ | २३९ |
| ७८ | गजप्रशंसा | १५६० | २४४ |
| ७९ | तुरगप्रशंसा | १५९८ | २४९ |
| ८० | धनुर्वेदः | १७१४ | २६३ |
| ८१ | गान्धर्वशास्त्रम् | १९४२ | २९० |
| ८२ | वृक्षायुर्वेदः-उपवनविनोदः | २०८२ | ३०९ |
| ८३ | शकुनज्ञानम् | २३१९ | ३४० |
| ८४ | पशूनां लक्षणानि चिकित्सा च | २८१७ | ४०९ |
| ८५ | विषापहरणम् | २८५९ | ४१४ |
| ८६ | भूतविद्या | २९६६ | ४२८ |
| ८७ | बालग्रहोपशमनम् | २९७४ | ४३० |
| ८८ | कौतुकानि | २९७८ | ४३१ |
| ८९ | कल्पस्थानम् | ३०२७ | ४३७ |
| ९० | केशरञ्जनम् | ३०५५ | ४४१ |
| ९१ | सामान्यभृङ्गाररसनिर्देशः | ३०७३ | ४४३ |
| ९२ | स्त्रीपुरुषजातिभेदः | ३०९१ | ४४६ |
| ९३ | स्त्रीपुरुषसंयोगविवृतिः | ३१२२ | ४५० |
| ९४ | स्त्रीसेवाप्रकारः | ३१३४ | ४५१ |
| ९५ | संकेताख्यानभाव-हाव-विवृतिः | ३१४४ | ४५२ |
| ९६ | बालावर्णनम् | ३२६४ | ४६९ |
| ९७ | वयःसंधिवर्णनम् | ३२७० | ४७० |

| परिच्छेद-संख्या | परिच्छेदनामानि | आरम्भ-श्लोकाङ्कः | पृष्ठाङ्कः |
|---|---|---|---|
| ९८ | तरुणीपृथगवयववर्णनम् ..... | ३२८६ | ४७३ |
| ९९ | समग्रस्त्रीस्वरूपवर्णनम् ..... | ३३६८ | ४८९ |
| १०० | विप्रलम्भशृङ्गारे प्रियप्रस्थानवर्णनम् ... | ३३८१ | ४९१ |
| १०१ | नायकं प्रति नायिकोक्तिः ..... | ३३९३ | ४९३ |
| १०२ | विरहिण्यवस्थावर्णनम् ..... | ३३९८ | ४९४ |
| १०३ | नायिकां प्रति सखीवचनम् ..... | ३४१४ | ४९७ |
| १०४ | वियोगिनीप्रलापाः ..... ..... | ३४२४ | ४९९ |
| १०५ | नायकं प्रति दूतीप्रेषणम् ..... | ३४३८ | ५०२ |
| १०६ | वियोग्यवस्थाप्रलापवर्णनम् ..... | ३४४५ | ५०३ |
| १०७ | नायकस्थाने दूत्युक्तिः ..... | ३४७३ | ५०९ |
| १०८ | नायिकां प्रति नायकावस्थावर्णनम् ... | ३४९७ | ५१३ |
| १०९ | दूत्युपहासप्रश्नौ ..... | ३५०५ | ५१५ |
| ११० | संभोगशृङ्गारे परस्परावलोकनम् ..... | ३५१४ | ५१७ |
| १११ | प्रियातिथ्यादिकम् ..... | ३५२६ | ५१९ |
| ११२ | मानिनीमानाख्यानम् ..... | ३५३३ | ५२० |
| ११३ | कलहान्तरिताप्रलापादिकम् ..... | ३५४१ | ५२२ |
| ११४ | नायकस्योक्तिप्रत्युक्ती ..... | ३५५४ | ५२४ |
| ११५ | नायकशिक्षानायकानुनयौ ..... | ३५६६ | ५२७ |
| ११६ | परस्परप्रसादः ..... | ३५७५ | ५२९ |
| ११७ | सूर्यास्तवर्णनचक्रवाकावस्थाने ..... | ३५८३ | ५३० |
| ११८ | तमोवर्णनम् ..... ..... | ३६०१ | ५३४ |
| ११९ | अभिसारिकासंचारः ..... | ३६१० | ५३६ |
| १२० | चन्द्रोदयवर्णनम् ..... | ३६२१ | ५३८ |
| १२१ | पानगोष्ठीवर्णनम् ..... | ३६४७ | ५४३ |
| १२२ | चाटुद्यूतक्रीडासुरतप्रशंसाः ..... | ३६५४ | ५४४ |
| १२३ | नववधूसंगमः ..... | ३६६९ | ५४७ |
| १२४ | सुरतकेलिकथनम् ..... | ३६७९ | ५४९ |
| १२५ | विपरीतरतम् ..... | ३६९४ | ५५२ |
| १२६ | सुरतनिवृत्तिः ..... | ३७०३ | ५५३ |
| १२७ | निशीथक्रीडनादिकम् ..... ..... | ३७१० | ५५५ |
| १२८ | प्रभातवर्णनम् ..... .. ... | ३७१७ | ५५६ |
| १२९ | प्रभातवायुसूर्योदयवर्णनम् ..... | ३७२९ | ५५९ |
| १३० | संभोगाविष्करणम् ..... | ३७३९ | ५६१ |
| १३१ | सतीवर्णनकुलवधूवृत्ते ..... | ३७५० | ५६३ |

| परिच्छेद-संख्या | परिच्छेदनामानि | आरम्भ-श्लोकाङ्कः | पृष्ठाङ्कः |
|---|---|---|---|
| १३२ | असतीचरितम् ..... | ३७६१ | ५६९ |
| १३३ | ऋतुवर्णने वसन्तस्वभावाख्यानम् ..... | ३७८३ | ५६९ |
| १३४ | ग्रीष्मस्वभावाख्यानम् ..... | ३८२४ | ५७७ |
| १३५ | वर्षास्वभावाख्यानम् ..... | ३८६२ | ५८५ |
| १३६ | शरत्स्वभावाख्यानम् ..... | ३९०२ | ५९२ |
| १३७ | हेमन्तस्वभावा०..... | ३९१९ | ५९६ |
| १३८ | शिशिरस्वभावा० ..... | ३९३५ | ५९९ |
| १३९ | संमिश्राख्यानम् ..... | ३९४९ | ६०२ |
| १४० | वीररसनिर्देशः ..... | ३९६१ | ६०४ |
| १४१ | करुणरसनिर्देशः..... | ३९९७ | ६१० |
| १४२ | अद्भुतरसनि० ..... | ४०१६ | ६१३ |
| १४३ | हास्यरसनिर्देशः..... | ४०२६ | ६१५ |
| १४४ | भयानकरसनिर्देशः ..... | ४०६९ | ६२० |
| १४५ | बीभत्सरसनिर्देशः ..... | ४०७५ | ६२२ |
| १४६ | रौद्ररसनिर्देशः ..... | ४०८० | ६२३ |
| १४७ | शान्तरसनिर्देशः..... | ४०८९ | ६२५ |
| १४८ | अनित्यतानिरूपणम् ..... | ४११९ | ६२९ |
| १४९ | विषयोपहासः ..... | ४१३८ | ६३३ |
| १५० | पश्चात्तापः ..... | ४१५० | ६३६ |
| १५१ | कालचरितम्..... | ४१६३ | ६३७ |
| १५२ | विवेकः ..... | ४१७१ | ६३९ |
| १५३ | उपदेशः ..... | ४१७९ | ६४० |
| १५४ | कालसंख्यानम् ..... | ४२५८ | ६४९ |
| १५५ | शारीरम् ..... | ४२७१ | ६५१ |
| १५६ | योगः ..... | ४३४७ | ६५९ |
| १५७ | हठयोगः ..... | ४३७२ | ६६२ |
| १५८ | मार्कण्डेयादिसाधितो द्वितीयो हठयोगः | ४४२० | ६६९ |
| १५९ | मनःस्थिरीकरणप्रभावः ..... | ४४९७ | ६७८ |
| १६० | योगिमहिमा ..... | ४५०५ | ६७९ |
| १६१ | योगिचर्या ..... | ४५४७ | ६८४ |
| १६२ | अरिष्टज्ञानम् ..... | ४५६४ | ६८६ |
| १६३ | विदेहमुक्तिकथनम् ..... | ४५९१ | ६८९ |
| | ग्रन्थप्रशंसा ..... | ४६१७ | ६९३ |
| | खड्गपरीक्षा ..... | ४६२१<br>४६८९ | ६९५<br>७०३ |

# शार्ङ्गधरपद्धतिः

## अथ कविवंशवर्णनम् ॥ १ ॥

1

यस्मिन्बुद्बुदसंकरा इव बहुब्रह्माण्डखण्डाः क्वचि-
द्भ्रान्ति क्वापि च सीकरा इव विरिञ्च्याद्याः स्फुरन्ति भ्रमात् ।
चिद्रूपा लहरीव विश्वजननी शक्तिः क्वचिद्द्योतते
स्वानन्दामृतनिर्भरं शिवमहापाथोनिधिं तं नुमः ॥ १ ॥

2

पुरा शाकंभरीदेशे श्रीमान्हम्मीरभूपतिः ।
चाहुवाणान्वये जातः ख्यातः शौर्य इवार्जुनः ॥ २ ॥

3

तस्याभवत्सभ्यजनेषु मुख्यः
परोपकारव्यसनैकनिष्ठः ।
पुरंदरस्येव गुरुर्गरीया-
न्द्विजाग्रणी राघवदेवनामा ॥ ३ ॥

4

गोपालदामोदरदेवदास-
संज्ञा बभूवुस्तनयास्तदीयाः ।
नेत्रावतारा इव चन्द्रमौलेः
कृपाकृतध्वान्तगणास्त्रयोपि ॥ ४ ॥

5

तेषां मध्ये यस्तु दामोदरोभू-
दुत्पाद्य त्रीनात्मजान्वीतरागः ।

भागीरथ्यां शुद्धदेहं विधाय
ज्ञानादात्मन्येव निष्ठां जगाम ॥ ५ ॥

6

ज्येष्ठः शार्ङ्गधरस्तेषां लघुर्लक्ष्मीधरस्ततः ।
कृष्णोनुजस्ततस्तेषां त्रयस्त्रेताग्नितेजसः ॥ ६ ॥

7

जयति शार्ङ्गधरस्त्रिपुरापद-
ब्धयकुशेशयकोशमधुव्रतः ।
सरससूक्तिसुधौघकलानिधिः
कविकरीन्द्रकदम्बमृगाधिपः ॥ ७ ॥

8

यद्यपि गुणौघनिलयः खलशैलध्वंसने जिष्णुः ।
तदपि विमलहृदयान्तरसज्जनलोकस्य दासोसौ ॥ ८ ॥

9

ते सज्जनाः सुकविशाखिकवित्वपुष्पा-
ण्यादाय गुम्फितवतः सुगुणैर्ममैतत् ।
संधारयन्तु कुसुमोज्ज्वलहाररूपं
कण्ठे सुभाषितमपास्तसमस्तदोषम् ॥ ९ ॥

10

न शार्ङ्गधरपद्धतिः खलजनस्य योग्या भवे-
त्सुभाषितरसोर्मयः सुकृतिलोकपेया यतः ।
सुधामदितिनन्दना दिवि पिबन्ति हृष्टान्तरा-
स्तयैव तमसः शिरो झटिति खण्डितं भूयते ॥ १० ॥

11

आनन्दाय सतां भूयात्सुभाषितमिदं मम ।
पृथक्पद्धतिसंमिश्रपरिच्छेदैर्मनोरमम् ॥ ११ ॥

12

आद्यैर्मद्विहितैः पद्यैः कियद्भिरपरैरपि ।
युता पद्धतिरेषास्तु सज्जनानन्ददायिनी ॥ १२ ॥

---

# अथानुक्रमणिका ॥ २ ॥

13

क्रियतेनुक्रमः स्पष्टः सुबोधार्थं सुभाषिते ।
अत्र तु प्रथमं ज्ञेयं कविवंशस्य वर्णनम् ॥ १ ॥

14

ततोप्यनुक्रमो ज्ञेयो नमस्कृत्याशिषौ तथा ।
सुभाषिते च काव्ये च शंसा सामान्यवर्णके ॥ २ ॥

15

विशिष्टकविशंसा च निन्दा च कुकवेस्ततः ।
प्रशंसा पण्डितस्यापि निन्दा स्याच्च कुपण्डिते ॥ ३ ॥

16

प्रशंसा महतां ज्ञेया धीराणां च प्रशंसनम् ।
प्रशंसा सज्जनस्यापि प्रशंसा च मनस्विनः ॥ ४ ॥

17

अथोदारप्रशंसा स्याच्छंसा तेजस्विनस्ततः ।
गुणप्रशंसा संतोषे प्रशंसा संगतौ तथा ॥ ५ ॥

18

धनप्रशंसा विज्ञेया निन्दा दुर्जनजा तथा ।
ततः कृपणनिन्दा स्यान्निन्दा याचकजा तथा ॥ ६ ॥

19

दरिद्रनिन्दा विज्ञेया मूर्खनिन्दा ततः परम् ।
तृष्णानिन्दा लोभनिन्दा दैवाख्यानं ततः परम् ॥ ७ ॥

20

उद्यमाख्यानमपरं प्रकीर्णाख्यानकं तथा ।
समस्याख्यानपमरं प्रहेल्यादिप्रशंसनम् ॥ ८ ॥

21

क्रियागुप्तादिकं तद्वत्प्रश्नोत्तरमतः परम् ।
अथ जातिः समाख्याता सदाचारस्ततः परम् ॥ ९ ॥

22

धर्मस्य विवृतिर्ज्ञेया पापस्य विवृतिस्तथा ।
अथान्योक्तिषु विज्ञेयं रवेः पूर्वं प्रशंसनम् ॥ १० ॥

23

चन्द्रस्यान्योक्तयो ज्ञेया मेघस्यान्योक्तयस्तथा ।
वायोरन्योक्तिरपरा हंसान्योक्तिस्ततः परा ॥ ११ ॥

24

भ्रमरान्योक्तयस्तद्वत्कोकिलान्योक्तयस्ततः ।
चातकान्योक्तयस्तद्वन्मयूरान्योक्तयस्ततः ॥ १२ ॥

25

शुकान्योक्तिस्ततो ज्ञेया काकान्योक्तिस्ततः स्मृता ।
बकान्योक्तिः स्मृता तद्वल्लेखद्योतान्योक्तयस्ततः ॥ १३ ॥

26

सिंहान्योक्तिर्गजान्योक्तिर्मृगान्योक्तिस्ततः परम् ।
करभान्योक्तयो ज्ञेया वृषभान्योक्तयस्ततः ॥ १४ ॥

27

तथा सामान्यवृक्षोक्तिर्विशिष्टतरुपद्धतिः ।
पर्वतान्योक्तयः ख्याता अगस्त्यान्योक्तयस्ततः ॥ १५ ॥

28

समुद्रान्योक्तयस्तद्वद्रत्नान्योक्तिस्ततः परम् ।
शङ्खस्यान्योक्तयस्तद्वन्नद्यन्योक्तिस्ततः परम् ॥ १६ ॥

29

तटाकान्योक्तयस्तद्वत्कमलान्योक्तयस्ततः ।
कूपस्यान्योक्तयस्तद्वन्मरुस्थलभवोक्तयः ॥ १७ ॥

30

ततो दावानलान्योक्तिः संकीर्णान्योक्तयस्ततः ।
अथ सर्वनृपाशंसा विशिष्टनृपवर्णनम् ॥ १८ ॥

31

पलायनमरीणां च राजनीतिस्ततः परम् ।
नीतिर्मिश्रकनीतिश्च प्रशंसा करिणां तथा ॥ १९ ॥

32

अश्वप्रशंसा विख्याता धनुर्वेदस्ततःपरम् ।
गान्धर्वशास्त्रमपरं वृक्षायुर्वेद एव च ॥ २० ॥

33

तथैव शकुनज्ञानं पशूनां लक्षणानि च ।
विषापहरणं तद्वद्भूतविद्या ततः परम् ॥ २१ ॥

34

बालग्रहोपशमनं कौतुकानि ततः परम् ।
कल्पस्थानानि केशानां रञ्जनानि ततः परम् ॥ २२ ॥

35

अथ सामान्यशृङ्गारे युवतीनां प्रशंसनम् ।
स्त्रीपुंसजातिकथनं तयोः संयोगवर्णनम् ॥ २३ ॥

36

स्त्रीसेवाकथनं तद्वत्संकेतादिप्रशंसनम् ।
बालाया वर्णनं तद्वद्वयःसंधेश्च वर्णनम् ॥ २४ ॥

37

तरुणीवर्णनं तद्वत्समग्रस्त्रीप्रशंसनम् ।
विप्रलम्भकशृङ्गारे प्रियप्रस्थानवर्णनम् ॥ २५ ॥

38

नायिकावचनं तद्वद्वियुक्तायाः स्थितिस्तथा ।
सखीवाक्यं वियुक्तायां वियोगिन्याः प्रभाषणम् ॥२६॥

39

दूतिकाप्रेषणं कान्ते प्रलापश्च वियोगिनः ।
दूत्युक्तिर्नायकस्याग्रे नायिकायां तदुक्तयः ॥ २७ ॥

40

उपहासादिकं दूत्या नायिकायास्ततः परम् ।
अथ संभोगशृङ्गारे परस्परविलोकनम् ॥ २८ ॥

41

प्रियातिथ्यादिकं तद्वन्मानिनीमानवर्णनम् ।
कलहोक्त्यादिकथनं मिथुनस्योक्तयस्तथा ॥ २९ ॥

42

प्रियस्य शिक्षानुनयौ प्रसादश्च परस्परम् ।
सूर्यास्ते चक्रदुःखं च तमसो वर्णनं तथा ॥ ३० ॥

43

संचारश्चाभिसारीणां शशाङ्कोदयवर्णनम् ।
पानगोष्ठी ततः प्रोक्ता चाटुप्रभृतिवर्णनम् ॥ ३१ ॥

44

सखीवाक्यं नववधूक्रीडायां तदनन्तरम् ।
सुरतक्रीडिताख्यानं विपरीतरतं तथा ॥ ३२ ॥

45

निवृत्तिः सुरतस्यार्थे निशीथे क्रीडनादिकम् ।
प्रभातेर्वर्णनं वायुसूर्ययोर्वर्णनं तथा ॥ ३३ ॥

46

रात्रिसंभोगचेष्टायाः प्रातःप्रकटनं ततः ।
अथ मिश्रकशृङ्गारे सतीकुलवधूस्थितिः ॥ ३४ ॥

47

असतीचरितं तद्वद्वेसन्तादेश्च वर्णनम् ।
ग्रीष्मादेर्वर्णनं तद्वद्वर्षादेरपि वर्णनम् ॥ ३५ ॥

48

शरत्स्वभावव्याख्यानं हेमन्तादेश्च वर्णनम् ।
शिशिरादेस्तथाख्यानं संभिन्नाख्यानकं ततः ॥ ३६ ॥

49

ततो वीररसोक्तिः स्यात्करुणारसवर्णनम् ।
अद्भुतस्य रसस्योक्तिरथ हास्यरसोक्तयः ॥ ३७ ॥

50

भयानकश्च बीभत्सस्ततो रौद्ररसोक्तयः ।
अथ शान्तरसे पूर्वं वैराग्यस्य प्रशंसनम् ॥ ३८ ॥

51

अनित्यतासमाख्यानं विषयादिविडम्बनम् ।
पश्चात्तापस्य कथनं कालस्य चरितं तथा ॥ ३९ ॥

52

ततो विवेककथनमुपदेशस्ततः परम् ।
कालसंख्या ततः प्रोक्ता शारीरं तदनन्तरम् ॥ ४० ॥

53

ततश्चतुर्विधे योगे योगत्रयनिरूपणम् ।
ततस्तु हठयोगः स्याद्गोरक्षादिसुसाधितः ॥ ४१ ॥

54

द्वितीयो हठयोगश्च मार्कण्डेयादिसाधितः ।
मनःस्थैर्यप्रभावश्च महिमाद्याश्च योगिनः ॥ ४२ ॥

55

योगिचर्या ततः प्रोक्ता ज्ञानं चारिष्टजं तथा ।
विदेहमुक्तिकथनं कालवञ्चनसंयुतम् ॥ ४३ ॥

56

सुभाषितवरस्येति कथितोयमनुक्रमः ।
शतं त्रिषष्टचभ्यधिकं परिच्छेदेषु कीर्तितम् ।
गणितं पद्यसंख्याभिः षट्सहस्रं शतत्रयम् ॥ ४४ ॥

---

## अथ नमस्कृतिः ॥ ३ ॥

### तत्रादौ गणेशः ।

57

चलत्कर्णानिलोद्धूतसिन्दूरारुणिताम्बरः ।
जयत्यकालेपि सृजन्संध्यामिव गजाननः ॥ १ ॥

कस्यापि ।

58

उच्चैर्ब्रह्माण्डखण्डद्वितयसहचरं कुम्भयुग्मं दधानः
प्रेङ्खच्चागारिपक्षप्रतिभटविकटश्रोत्रतालाभिरामः ।
देवः शंभोरपत्यं भुजगपतितनुस्पर्धिवर्धिष्णुहस्त-
स्त्रैलोक्याश्चर्यमूर्तिः स जयति जगतामीश्वरः कुञ्जरास्यः ॥ २ ॥

भेरीभांकारस्य ।

## अथ सरस्वती ।

59

करबदरसदृशमखिलं भुवनतलं यत्प्रसादतः कवयः ।
पश्यन्ति सूक्ष्ममतयः सा जयति सरस्वती देवी ॥ ३ ॥

सुबन्धोः ।

## अथ शिवः ।

60

नमस्तुङ्गशिरश्चुम्बिचन्द्रचामरचारवे ।
त्रैलोक्यनगरारम्भमूलस्तम्भाय शंभवे ॥ ४ ॥

बाणभट्टस्य ।

61

मौनादस्तमितैव चाटुभणितिः स्रस्तैकहस्ताङ्कितं
दूरेप्यञ्जलिबन्धनं प्रणमनं स्तब्धार्धमूर्ध्नः कुतः ।
इत्थं संघटितैकविग्रहतया व्यग्रो गिरिग्रामणी-
र्जायां जातरुषं जयत्यनुनयन्देवस्त्रिलोकीगुरुः ॥ ५ ॥

कस्यापि ।

62

वामाङ्गीकृतवामाङ्गि कुण्डलीकृतकुण्डलि ।
आविरस्तु पुरो वस्तु भूतिभूत्यम्बराम्बरम् ॥ ६ ॥

सार्वभौमस्य ।

63

पिनाकफणिबालेन्दुभस्ममन्दाकिनीयुता ।
तथापि भव ते मूर्तिरपवर्गानुसारिणी ॥ ७ ॥

देवेश्वरस्य ।

64

उदरङ्गयभरणभयादर्धाङ्गाहितदारः ।
यदि नैवं तस्यैकसुतः कथमद्यापि कुमारः ॥ ८ ॥

सार्वभौमस्य ।

65

संध्यानतौ नरपुरंध्रितनोः सरोष-
मुत्सारिते गिरिजया निजपाणिपद्मे ।

उत्सर्पिकङ्कणफणीन्द्रफणार्पणेन
पूर्णोञ्जलिर्जयति बालमृगाङ्कमौलेः ॥ ९ ॥
कस्यापि ।

66

उच्चैरुत्तालखेलद्भुजवनपवनोद्भूतशैलौघपात-
स्फारोदञ्चत्पयोधिप्रकटितमुकुटस्वर्धुनीसंगमानि ।
जीयासुस्ताण्डवानि स्फुटविकटजटाकोटिसंघट्टभूरि-
भ्रश्यन्नक्षत्रचक्रव्यवसितसुमनोवृष्टिपावानि शंभोः ॥ १० ॥
भेरीभांकारस्य ।

67

मन्दारमालालुलितालकायै
कपालमालाङ्कितशेखराय ।
दिव्याम्बरायै च दिगम्बराय
नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥ ११ ॥
कस्यापि ।

अथ गौरी ।

68

हरकण्ठग्रहानन्दमीलितनेत्रां नमाम्युमाम् ।
कालकूटविषस्पर्शजातमूर्छागमामिव ॥ १२ ॥
बाणभट्टस्य ।

अथ कृष्णः ।

69

मेघैर्मेदुरमम्बरं वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमै-
र्नक्तं भीरुरयं त्वमेव तदिमं राधे गृहं प्रापय ।
इत्थं नन्दनिदेशतश्चलितयोः प्रत्यध्वकुञ्जद्रुमं
राधामाधवयोर्जयन्ति यमुनाकूले रहःकेलयः ॥१३॥
जयदेवस्य ।

70

आनन्दमादधतमायतलोचनाना-
मानीलमावलितकंधरमात्तवंशम् ।

आपादमा मुकुटमाकलितामृतौघ-
माकारमाकलयताममुमन्तरं नः ॥ १४ ॥

71

पुञ्जीभूतं प्रेम गोपाङ्गनानां
मूर्तीभूतं भागधेयं यदूनाम् ।
एकीभूतं गुप्तवित्तं श्रुतीनां
श्यामीभूतं ब्रह्म मे संनिधत्ताम् ॥ १५ ॥

एतौ राघवचैतन्यश्रीचरणानाम्।

72

परमिममुपदेशमाद्रियध्वं
निगमवनेषु नितान्तखेदखिन्नाः ।
विचिनुत भवनेषु बल्लवीना-
मुपनिषदर्थमुलूखले निबद्धम् ॥ १६ ॥

73

नवनीलमेघरुचिरः परः पुमा-
नवनीमवाप्य धृतगोपविग्रहः ।
नवनीयकीर्तिरमरैरपि स्वयं
नवनीतभिक्षुरधुना स चिन्त्यते ॥ १७ ॥

एतौ बिल्वमङ्गलश्रीचरणानाम्।

74

क्व यासि खलु चौरिके प्रमुषितं स्फुटं दृश्यते
द्वितीयमिह मामकं वहसि कन्दुकं कञ्चुके ।
त्यजेति नवगोपिकाकुचयुगं प्रमथ्नन्बला-
ल्लसत्पुलकपञ्जरो जयति गोकुले केशवः ॥ १८ ॥

दीपकस्य।

75

दृक्पातः कमलासनेस्तु भवतो ज्ञानं मनाङ्मारुते
श्रीकण्ठोयमितः सुरानिति नतांस्ताक्ष्येण विज्ञापितः ।

प्रेयस्याः क्व तदासनं क्व च रुतं कण्ठः क्व चेत्युल्लस-
ल्लक्ष्म्यावासितमानसो विजयते सुप्तप्रबुद्धो हरिः ॥ १९ ॥
कस्यापि ।

76

अतिविपुलं कुचयुगलं रहसि करैरामृशन्मुहुर्लक्ष्म्याः ।
तदपहृतं निजहृदयं जयति हरिर्मृगयमाण इव ॥ २० ॥
अरसीक्कुरस्य ।

77

मकरीविरचनभङ्ग्या राधाकुचकलशपीडनव्यसनी ।
ऋजुमपि रेखां लुम्पन्बल्लववेषो हरिर्जयति ॥ २१ ॥
हरिहरस्य ।

78

खिन्नोसि मुञ्च शैलं बिभृमो वयमिति वदत्सु शिथिलभुजः ।
भरभुग्नवितनबाहुषु गोपेषु हसन्हरिर्जयति ॥ २२ ॥
सुबन्धोः ।

79

शिरश्छायां कृष्णः क्षणमकृत राधाचरणयो-
र्भुजावल्लिच्छायामियमपि तदीयप्रतिकृतौ ।
इति क्रीडाकोपे निभृतमुभयोरप्यनुनय-
प्रसादौ जीयास्तामपि गुरुसमक्षं स्थितवतोः ॥ २३ ॥
कस्यापि ।

80

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते
दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते ।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते
म्लेच्छान्मूर्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः ॥ २४ ॥
जयदेवस्य ।

81

जीयासुः शकुलाकृतेर्भगवतः पुच्छच्छटाच्छोटना-
दुद्यन्तः शतचन्द्रिताम्बरतलं ते बिन्दवः सैन्धवाः ।
यैर्व्यावृत्य पतद्भिरौर्वशिखिनस्तेजोजटीलं वपुः
पानाध्मानवशादरोचकरुजां चक्रे चिरायास्पदम् ॥ २५ ॥

82

वियत्पुच्छाच्छोटोच्छलितजलगर्भं निधिरपा-
मपां नाथः पाथःपृषतलवशून्यो वियदभूत् ।
अभूद्भास्वानौर्वो दिनपतिरभूदौर्वदहन-
श्चलत्काये यस्मिन्स जयति हरिर्मीनवपुषा ॥ २६ ॥

कस्याप्येतौ ।

83

न पङ्कैरालेपं कलयति धरित्रीव्ययभया-
न्न मुस्तामादत्तेप्युरगनगरभ्रंशभयतः ।
न धत्ते ब्रह्माण्डस्फुटनभयतो घुर्घुररवं
वराहो माहात्म्यादिति जयति संकोचिततनुः ॥ २७ ॥

हनूमतः ।

84

दैत्यानामधिपे नखाङ्कुरकुटीकोणप्रविष्टात्मनि
स्फारीभूतकडारकेसरसटासंघट्टघोराकृतेः ।
सक्रोधं च सविस्मयं च सगुरुव्रीडं च सान्तःस्मितं
क्रीडाकेसरिणो हरेर्विजयते तत्कालमालोकितम् ॥ २८ ॥

इन्द्रकवेः ।

अथ ब्रह्मा ।

85

तं वन्दे पद्मसद्मानमुपवीतच्छटाछलात् ।
गङ्गा स्रोतस्त्रयेणैव यं सदैव निषेवते ॥ २९ ॥

राजशेखरस्य ।

अथ रविः ।

86

शुकतुण्डच्छवि सवितुश्चण्डरुचः पुण्डरीकवनबन्धोः ।
मण्डलमुदितं वन्दे कुण्डलमाखण्डलाशायाः ॥ ३० ॥

नागम्मायाः ।

# अथाशिषः ॥ ४ ॥

## तत्र पूर्वं गणेशः ।

87

दन्ताग्रनिर्भिन्नहिमाचलोर्वी-
रन्ध्रोत्थिताहीन्द्रमणिप्रभौघे ।
नागाननः स्तम्भधिया कपोलौ
घर्षन्पितृभ्यां हसितः पुनातु ॥ १ ॥

श्रीगोविन्दराजदेवानाम् ।

88

एकदन्तद्युतिसितः शंभोः सूनुः श्रियेस्तु वः ।
विद्याकन्द इवोद्भिन्नवाङ्कुरमनोहरः ॥ २ ॥

श्रीधनददेवानाम् ।

89

गण्डस्थलीगलदमन्दमदप्रवाह-
माघ्रह्रिरेफमधुरस्वरदत्तकर्णः ।
हर्षादिवालसनिमीलितनेत्रयुग्मो
विघ्नच्छिदे भवतु भूतपतिर्गणेशः ॥ ३ ॥

आसीनगरप्राकारप्रशस्तेः ।

90

विघ्नेशो वः स पायाद्विहतिषु जलधीन्पुष्करायेण पीत्वा
यस्मिन्नुद्धृत्य तोयं वमति तदखिलं दृश्यते व्योम्नि देवैः ।
क्वाप्यम्भः क्वापि विष्णुः क्वचन कमलभूः क्वाप्यनन्तः क्वचिच्छ्रीः
क्वाप्यौर्वः क्वापि शैलाः क्वचन मणिगणाः क्वापि नक्रादिसत्त्वाः ॥ ४ ॥

हनूमतः ।

91

सानन्दं नन्दिहस्ताहतमुरजरवाहूतकौमारबार्हि-
त्रासाच्चासाग्रन्ध्रं विशति फणिपतौ भोगसंकोचभाजि ।
गण्डोड्डीनालिमालामुखरितककुभस्ताण्डवे शूलपाणे-
र्वैनायक्यश्चिरं वो वदनविधुतयः पान्तु चीत्कारवत्यः ॥ ५ ॥

भवभूतेः ।

## अथ शिवः ।

92

उपहरणं विभवानां संहरणं सकलदुरितजालस्य ।
उद्धरणं संसाराच्चरणं वः श्रेयसेस्तु विश्वपतेः ॥ ६ ॥

विद्यारण्यश्रीचरणानाम् ।

93

आसीने पूष्णि तूष्णीं व्यसनिनि शशिनि व्योम्नि कृष्णे सतृष्णे
दैत्येन्द्रे याति निद्रां द्रवति मघवति क्लान्तकान्तौ कृतान्ते ।
अब्रह्मण्यं ब्रुवाणे कमलपुटकुटीश्रोत्रिये शान्त्युपाये
पायाद्वः कालकूटं झटिति कवलयँल्लीलया नीलकण्ठः ॥ ७ ॥

लक्ष्मणखण्डप्रशस्तेः ।

94

वक्त्रं शीतकरोधरो घनरसः कामप्रदो विग्रहः
श्वासो गन्धवहः सरोरुहसुहृत्पाणिः स्मिताभा शुचिः ।
वक्षः पीनपयोधराधिकरणं पृथ्वी नितम्बस्थली-
स्यष्टौ धूर्जटिमूर्तयः स्मरभयाद्दुर्गाश्रिताः पान्तु वः ॥ ८ ॥

वैवेश्वरस्य ।

95

कस्त्वं शूली मृगय भिषजं नीलकण्ठः प्रियेहं
केकामेकां कुरु पशुपतिर्नैव दृश्ये विषाणे ।
स्थाणुर्मुग्धे न वदति तरुर्जीवितेशः शिवाया
गच्छाटव्यामिति हतवचाः पातु वश्चन्द्रचूडः ॥ ९ ॥

भारतीकवेः ।

96

च्युतामिन्दोर्लेखां रतिकलहभग्नं च वलयं
इयं चक्रीकृत्य प्रहसितमुखी शैलतनया ।
अवोचद्यं पश्येत्यवतु स शिवः सा च गिरिजा
स च क्रीडाचन्द्रो दशनकिरणापूरिततनुः ॥ १० ॥

क्रीडाचन्द्रस्य ।

97.

कल्पान्ते क्रोधनस्य त्रिपुरविजयिनः क्रीडया संचरिष्णोः
कृत्वापि प्राणिजातैर्निजमुखकुहरातिथ्यमग्राप्ततृप्तेः ।
दिग्भित्तीः प्रेक्ष्य शून्याः प्रलयजलनिधिप्रेक्षितात्मीयमूर्ति-
ग्रासव्यासक्तमोघभ्रमजनितरुषः पान्तु वो गार्जितानि ॥ ११ ॥

भैरीभांकारस्य ।

98

कल्पान्ते शमितत्रिविक्रममहाकङ्कालबद्धस्फुर-
च्छेषस्यूतनृसिंहपाणिनखरप्रोतादिकोलामिषः ।
विश्वैकार्णवताविशेषमुदितौ तौ मत्स्यकूर्मावुभौ
कर्षन्धीवरतां गतः स्यतु सतां मोहं महाभैरवः ॥ १२ ॥

छिन्नमस्य ।

## अथ लोचनम् ।

99

पक्ष्मालीपिङ्गलिम्नः कण इव तडितां यस्य कृत्स्नः समूहो
यस्मिन्ब्रह्माण्डमीषद्विघटितमुकुले कालयज्वा जुहाव ।
अर्चिर्निष्टप्तचूडाशशिगलितसुधाधोरझांकारिकोणं
तार्तीयं यत्पुरारेस्तदवतु मदनश्लोषणं लोचनं वः ॥ १३ ॥

भवभूतेः ।

## अथ गणाः ।

100

संध्याताण्डवडम्बरव्यसनिनो देवस्य चण्डीपते-
र्भ्रष्टापीडविशीर्णमुण्डचयनव्यग्रा गणाः पान्तु वः ।
यैरौत्सुक्यवशीकृतैर्महगणाद्राहौ गृहीते हठा-
त्सूर्याचन्द्रमसोर्मिथः स्मितवतोर्जातं करास्फालनम् ॥ १४ ॥

कस्यापि ।

## अथ जटाजूटः ॥

101

स धूर्जटिजटाजूटो जायतां विजयाय वः ।
यत्रैकपलितभ्रान्त्या करोत्यद्यापि जाह्नवी ॥ १५ ॥

सूरदमैणः ।

## अथ पार्वती ।

102

प्रत्यासन्नविवाहमङ्गलविधौ देवार्चनव्यग्रया
दृष्ट्वाग्रे परिणेतुरेव लिखितां गङ्गाधरस्याकृतिम् ।
उन्मादस्मितरोषलज्जितधिया गौर्या कथंचिच्चिरा-
द्बद्धस्त्रीवचनालिखे विनिहितः पुष्पाञ्जलिः पातु वः ॥ १६ ॥

103

वक्षःपीठे निरीक्ष्य स्फटिकमणिशिलामण्डलस्वच्छभासि
स्वां छायां साभ्यसूया त्वमियमिति मुहुः सत्यमाश्वासितापि ।
वामे मे दक्षिणेस्याः श्रवसि कुवलयं नाहमित्यालपन्ती
दन्ताश्लेषा सहासं मदनविजयिना पार्वती वः पुनातु ॥ १७ ॥

कस्यापि ।

104

स्वेदस्ते कथमीदृशः प्रियतमे त्वन्नेत्रवह्नेर्विभो
कस्माद्वेपितमेतदिन्दुवदने भोगीन्द्रभीतेस्तव ।
रोमाञ्चः कथमेष देवि भगवन्गङ्गाम्भसां सीकरै-
रित्थं भर्तरि भावगोपनपरा गौरी चिरं पातु वः ॥ १८ ॥

कस्यापि ।

## अथ षण्मुखः ।

105

अर्चिष्मन्ति विदार्य वक्रकुहराण्यासूक्तितो वासुके-
रङ्गुल्या विषकर्बुरान्गणयतः संस्पृश्य दन्ताङ्कुरान् ।
एकं त्रीणि च सप्त पञ्च षडिति प्रध्वस्तसंख्याक्रमा
वाचः क्रौञ्चरिपोः शिशुत्वविकलाः श्रेयांसि पुष्णन्तु वः ॥ १९ ॥

कस्यापि ।

## अथ गङ्गा ।

106

मुक्ताभा नृकपालशुक्तिषु जटावल्लीषु मल्लीनिभा
वह्नौ लाजनिभा दृशो मणिनिभा भोगोत्करे भोगिनाम् ।

नृत्यावर्तविवर्तनेरितपयःसंमूर्छनोच्छालिताः
खेलन्तो हरमूर्ध्नि पान्तु भवतो गङ्गापयोबिन्दवः ॥ २० ॥

कृष्णमिश्रस्य ।

107

एषा धर्मपताकिनी तटसुधासेवावसन्नाकिनी
शुष्यत्पातकिनी भगीरथतपःसाफल्यहेवाकिनी ।
प्रेमारूढपिनाकिनी गिरिसुतासाकेकरालोकिनी
पापाडम्बरडाकिनी त्रिभुवनानन्दाय मन्दाकिनी ॥ २१ ॥

कस्यापि ।

## अथ ताण्डवम् ।

108

देवा दिक्पतयः प्रयात परतः खं मुञ्चताम्भोमुचः
पातालं व्रज मेदिनि प्रविशत क्षोणीतलं भूधराः ।
ब्रह्मन्नुन्नय दूरमात्मभुवनं नाथस्य नो नृत्यतः
शंभोः संकटमेतदित्यवतु वः प्रोत्सारणा नन्दिनः ॥ २२ ॥

महानाटकात् ।

109

संध्याताण्डवडम्बरव्यसनिनो भर्गस्य चण्डभ्रमि-
व्यानृत्यद्भुजदण्डमण्डलभुवो झञ्झानिलाः पान्तु वः ।
येषामुच्छलतां जवेन झगिति व्यूहेषु भूमीभृता-
मुड्डीनेषु विडौजसा पुनरसौ दम्भोलिरालोकितः ॥ २३ ॥

सोमनाथप्रशस्तेः ।

## अथ हरिहरौ ।

110

स्फटिकमरकतश्रीहारिणोः प्रीतियोगा-
त्तदवतु वपुरेकं कामकंसद्विषोर्वः ।
भवति गिरिसुतायाः सार्धमम्भोधिपुत्र्या
सदृशमहसि कण्ठे यत्र सीमाविवादः ॥ २४ ॥

कस्यापि ।

111

यौ तौ शङ्खकपालभूषितकरौ मालास्थिमालाधरौ
देवौ द्वारवतीश्मशाननिलयौ नागारिगोवाहनौ ।
त्र्यक्षौ बलिदक्षयज्ञमथनौ श्रीशैलजावल्लभौ
पापं वो हरतां सदा हरिहरौ श्रीवत्सगङ्गाधरौ ॥ २५ ॥
कस्यापि ।

## अथ चण्डी ।

112

विद्राणे रुद्रवृन्दे सवितरि तरले वह्निणि ध्वस्तवज्रे
जाताशङ्के शशाङ्के विरमति मरुति त्यक्तवैरे कुबेरे ।
वैकुण्ठे कुण्ठितास्त्रे महिषमतिरुषं पौरुषोपघ्ननिघ्नं
निर्विघ्नं निघ्नती वः शमयतु दुरितं भूरिभावा भवानी ॥२६॥
बाणभट्टस्य ।

## अथ कृष्णः ।

113

पान्तु वो जलदश्यामाः शार्ङ्गज्याघातकर्कशाः ।
त्रैलोक्यमण्डपस्तम्भाश्चत्वारो हरिवाहवः ॥ २७ ॥
कस्यापि ।

114

भ्राम्यन्मन्दरकंदरोदरदरीव्यावर्तिभिर्वारिधेः
कल्लोलैरलमाकुलं कलयतो लक्ष्म्या मुखाम्भोरुहम् ।
औत्सुक्याच्चरलाः स्मराद्विकसिता भीत्या समाकुञ्चिताः
क्रोधेन ज्वलिता मुदा मुकुलिताः शौरेर्दृशः पान्तु वः ॥२८॥
कस्यापि ।

115

अर्धोन्मीलितलोचनस्य पिबतः पर्याप्तमेकं स्तनं
सद्यः प्रस्रुतदुग्धदिग्धमपरं हस्तेन संमार्जतः ।
मात्रा चाङ्गुलिलालितस्य चिबुके स्मेरायमाणे मुखे
विष्णोः क्षीरकणाम्बुधामधवला दन्तद्युतिः पातु वः ॥२९॥
बिल्वमङ्गलश्रीचरणानाम् ।

116

अस्मिन्कुञ्जे विनापि प्रचलति पवनाद्वर्तते कोपि नूनं
पश्यामः किं न गत्वेत्यनुसरति गणे भीतभीतैर्भकाणाम् ।
तस्मिन्राधासखो वः सुखयतु विलसल्लीलया कैटभारि-
र्व्यातन्वानो मृगारिप्रबलघुरघुरारावरौद्राभिनादान् ॥३०॥

कस्यापि ।

117

दर्पणार्पितमालोक्य मायास्त्रीरूपमात्मनः ।
आत्मन्येवानुरक्तो वः शिवं दिशतु केशवः ॥ ३१ ॥

कस्यापि ।

118

गच्छाम्यच्युत दर्शनेन भवतः किं तृप्तिरुत्पद्यते
किं त्वेवं विजनस्थयोर्हतजनः संभावयत्यन्यथा ।
इत्यामन्त्रणभङ्गिसूचितवृथावस्थानखेदालसा-
माश्लिष्यन्पुलकाङ्कुराञ्चिततनुर्गोपीं हरिः पातु वः ॥ ३२ ॥

कस्यापि ।

119

हृदयं कौस्तुभोद्भासि हरेः पुष्णातु वः श्रियम् ।
राधाप्रवेशरोधाय दत्तमुद्रमिव श्रिया ॥ ३३ ॥

कुमुदस्य ।

120

रामो नाम बभूव हुं तदबला सीतेति हुं तां पितु-
र्वाचा पञ्चवटीवने निवसतस्तस्याहरद्रावणः ।
कृष्णेनेति पुरातनीं निजकथामाकर्ण्य मात्रेरितां
सौमित्रे क्व धनुर्धनुर्धनुरिति प्रोक्ता गिरः पान्तु वः ॥ ३४ ॥

वसुंधरस्य ।

121

सकलभुवनबन्धोर्वैरमिन्दोः सरोजै-
रनुचितमिति मत्वा यः स्वपादारविन्दम् ।
घटयितुमिव मायी योजयत्याननेन्दौ
वटदलपुटशायी मङ्गलं वः कृषीष्ट ॥ ३५ ॥

कस्यापि ।

122

कोयं द्वारि हरिः प्रयाह्युपवनं शाखामृगस्यात्र किं
कृष्णोहं दयिते बिभेमि सुतरां कृष्णादहं वानरात् ।
राधेहं मधुसूदनो व्रज लतां तामेव पुष्पान्विता-
मित्थं निर्वचनीकृतो दयितया ह्रीणो हरिः पातु वः ॥ ३६ ॥

कस्यापि ।

## अथ दशावताराः ।

123

दिश्याद्वः शकुलाकृतिः स भगवान्नैःश्रेयसीं संपदं
यस्य स्फूर्जदतुच्छपुच्छशिखरप्रेङ्खोलनक्रीडनैः ।
विष्वग्वार्धिसमुच्छलज्जलभरैर्मन्दाकिनीसंगते-
र्गङ्गासागरसंगमप्रणयिनी जाता विहायःस्थली ॥ ३७ ॥

124

निष्प्रत्यूहमनल्पकल्पचलितत्रैलोक्यरक्षागुरुः
क्रीडाकूर्मकलेवरः स भगवान्दिश्यादमन्दां मुदम् ।
कल्पान्तोदधिमध्यमज्जनवशाद्व्यासर्पतः संलुठ-
त्पृष्ठे यस्य बभूव सैकतकणच्छायं धरित्रीतलम् ॥ ३८ ॥

125

दृप्यद्दैत्यकुटुम्बिनीजनमनःसंतोषसंकोचनः
कुर्याद्विश्वमनश्वरं स भगवान्क्रोडावतारो हरिः ।
यद्दंष्ट्राङ्कुरकोटिकोटरकुटीकोणान्तरस्थेयसी
पृथ्वी भात्यवदातकेतकदलालीनेव भृङ्गाङ्गना ॥ ३९ ॥

हनूमत एते ।

126

चटच्चटिति चर्मणि च्छमिति चोच्छलच्छोणिते
धगद्धगिति मेदसि स्फुटरवास्थिनि छागिति ।
पुनातु भवतो हरेरमरवैरिवक्षःस्थल-
क्षणत्करजपञ्जरक्रकचकाषजन्मानलः ॥ ४० ॥

वाक्पतिराजस्य ।

127

ब्रह्माण्डच्छत्रदण्डः शतधृतिभवनाम्भोरुहो नालदण्डः
क्षोणीनौकूपदण्डः क्षरदमरसरित्पट्टिकाकेतुदण्डः ।
ज्योतिश्चक्राक्षदण्डस्त्रिभुवनविजयस्तम्भदण्डोऽङ्घ्रिदण्डः
श्रेयस्त्रैविक्रमस्ते वितरतु विबुधद्वेषिणां कालदण्डः ॥ ४१ ॥

दण्डिनः ।

128

किं दोर्भ्यां किमु कार्मुकोपनिषदा भर्गप्रसादेन किं
किं वेदाधिगमेन भास्वति भुगोर्वंशे च किं जन्मना ।
किं चानेन ममाद्भुतेन तरसा पीडां कृतान्तोपि चे-
द्विप्राणां कुरुतेन्तरित्यनुशयो रामस्य पुष्णातु वः ॥ ४२ ॥

हनूमतः ।

129

कूर्मो मूलवदालवालवदपां राशिर्लतावद्दिशो
मेघाः पल्लववत्प्रसूनफलवन्नक्षत्रसूर्येन्दवः ।
स्वामिन्व्योमतरुः क्रमेण मम कियाञ्छुत्वेति गां मारुतेः
सीतान्वेषणमादिशन्दिशतु वो रामः सलज्जः श्रियम् ॥ ४३ ॥

कस्यापि ।

130

कृष्ण त्वं नवयौवनोसि चपलाः प्रायेण गोपाङ्गनाः
कंसो भूपतिरब्जनालमृदुलग्रीवा वयं गोदुहः ।
तद्याचेऽञ्जलिना भवन्तमधुना वृन्दावनं मद्विना
मा यासीरिति नन्दगोपवचसा नम्रो हरिः पातु वः ॥४४॥

बिल्वमङ्गलश्रीचरणानाम् ।

131

ध्यानव्याजमुपेत्य चिन्तयसि कामुन्मील्य चक्षुः क्षणं
पश्यानङ्गशरातुरं जनमिमं त्रातापि नो रक्षसि ।
मिथ्याकारुणिकोसि निर्दयतरस्त्वत्तः कुतोन्यः पुमा-
ञ्शश्वन्मारवधूभिरित्यभिहितो बुद्धो जिनः पातु वः ॥४५॥

श्रीहरिगणस्य ।

132

उद्यत्करकरवालः शकतिमिरध्वंसने महानिपुणः ।
कल्किहरिर्वः पायादपायतः कलिनिशान्तोत्थः ॥ ४६ ॥

शार्ङ्गधरस्य ।

133

पाठीनः कमठः किटिर्नरहरिः खर्वाकृतिर्भार्गवो
रामः कंसनिषूदनो दशबलः कल्की च नारायणः ।
युष्माकं स विभूतयेस्तु भगवान्सेतुर्भवाम्भोनिधा-
वुत्ताराय युगे युगे युगपतिस्त्रैलोक्यनाथो हरिः ॥ ४७ ॥

हनूमतः ।

## अथ लक्ष्मीः ।

134

पायात्पयोधिदुहितुः कपोलामलचन्द्रमाः ।
यत्र संक्रान्तबिम्बेन हरिणा हरिणायितम् ॥ ४८ ॥

कस्यापि ।

135

उत्तिष्ठन्त्या रतान्ते भरमुरगपतौ पाणिनैकेन कृत्वा
धृत्वा चान्येन वासो विगलितकबरीभारमंसे वहन्त्या ।
भूयस्तत्कालकान्तिद्विगुणितसुरतप्रीतिना शौरिणा वः
श्यामालिङ्ग्य नीतं वपुरलसलसद्बाहु लक्ष्म्याः पुनातु ॥४९॥

निशानारायणस्य ।

## अथ सूर्यः ।

136

सिन्दूरस्पृहया स्पृशन्ति करिणां कुम्भस्थमाधोरणा
भिल्ली पल्लवशङ्कया विचिनुते सान्द्रद्रुमद्रोणिषु ।
कान्ताः कुङ्कुमशङ्कया करतले मृद्नन्ति लग्नं च य-
त्तत्तेजः प्रथमोद्भवं भ्रमकरं सौरं चिरं पातु वः ॥ ५० ॥

विक्रमस्य ।

137

जम्भारातीभकुम्भोद्भवमिव दधतः सान्द्रसिन्दूररेणुं
रक्तैः सिक्ता इवौघैरुदयगिरितटीधातुधाराद्रवस्य ।
आयान्त्या तुल्यकालं कमलवनरुचेवारुणा वो विभूत्यै
भूयासुर्भासयन्तो भुवनमभिनवा भानवो भानवीयाः ॥९१॥

138

भक्तिप्रह्वाय दातुं मुकुलपुटकुटीकोटरक्रोडलीनां
लक्ष्मीमाकृष्टुकामा इव कमलवनोद्घाटनं कुर्वते ये ।
कालाकारान्धकारानननपतितजगत्साध्वसध्वंसकल्याः
कल्याणं वः क्रियासुः किसलयरुचयस्ते करा भास्करस्य ॥९२॥

एतौ मयूरस्य ।

---

# अथ सुभाषितप्रशंसा ॥५॥

139

संसदि तदेव भूषणमुपकारकमत्वसरे धनं मुख्यम् ।
सूक्तं दधति सुवर्णं कल्याणमनर्घमिह धन्याः ॥ १ ॥

कस्यापि ।

140

कथमिह मनुष्यजन्मा संप्रविशति सदसि विबुधगमितायाम् ।
येन न सुभाषितामृतमाह्लादि निपीतमा तृप्तेः ॥ २ ॥

चाणक्यस्य ।

141

सुभाषितमयैर्द्रव्यैः संग्रहं न करोति यः ।
सोपि प्रस्तावयज्ञेषु कां प्रदास्यति दक्षिणाम् ॥ ३ ॥

कस्यापि ।

142

प्रसन्नाः कान्तिहारिण्यो नानाश्लेषविचक्षणाः ।
भवन्ति कस्यचित्पुण्यैर्मुखे वाचो गृहे स्त्रियः ॥ ४ ॥

विक्रमभट्टस्य ।

ये सूक्तीन्दुकलाकलङ्कजनका ये गाढगर्वज्वरा
ये वा केवलतर्ककर्कशधियः साक्षाच्च ये श्रोत्रियाः ।
ये वा द्वेषमषीमलीमसधियस्तान्प्राज्ञगोष्ठीरस-
प्रौढप्रावृडवग्रहान्परिहरन्वाचां प्रसारं कुरु ॥ ५ ॥

कस्यापि ।

144

कर्णामृतं सूक्तिरसं विमुच्य
दोषेषु यत्नः सुमहान्खलस्य ।
अवेक्षते केलिवनं प्रविष्टः
क्रमेलकः कण्टकजालमेव ॥ ६ ॥

विल्हणस्य ।

---

## अथ काव्यप्रशंसा ॥ ६ ॥

145

अविदितगुणापि सुकवेर्भणितिः कर्णेषु वमति मधुधाराम् ।
अनधिगतपरिमलापि हि हरति दृशं मालतीमाला ॥ १ ॥

सुबन्धोः ।

146

निरवद्यानि पद्यानि यद्यनाद्यस्य का क्षतिः ।
भिक्षुकक्षाविनिक्षिप्तः किमिक्षुर्नीरसो भवेत् ॥ २ ॥

भवभूतेः ।

147

कान्पृच्छामः सुराः स्वर्गे निवसामो वयं भुवि ।
किं वा काव्यरसः स्वादुः किं वा स्वादीयसी सुधा ॥ ३ ॥

कस्यापि ।

148

ख्यातिं गमयति सुजनः सुकविर्विदधाति केवलं काव्यम् ।
पुष्णाति कमलमम्भो लक्ष्म्या तु रविर्नियोजयति ॥ ४ ॥

कस्यापि ।

149

विपुलहृदयाभियोग्ये खिद्यति काव्ये जडो न मौख्यें स्वे ।
निन्दति कञ्चुकमेव प्रायः शुष्कस्तनी नारी ॥ ५ ॥

कस्यापि ।

150

याता यान्ति च यातारो लोकाः शोकाधिका भुवि ।
काव्यसंबन्धिनी कीर्तिः स्थायिनी निरपायिनी ॥ ६ ॥

श्रीअनन्तदेवानाम् ।

151

किं तेन किल काव्येन मृद्यमानस्य यस्य ताः ।
उदधेरिव नायान्ति रसामृतपरम्पराः ॥ ७ ॥

जयमाधवस्य ।

152

नवोक्तिर्जातिरग्राम्या श्लेषोक्लिष्टः स्फुटो रसः ।
विकटाक्षरसंबन्धः कृत्स्नमेकत्र दुष्करम् ॥ ८ ॥

बाणभट्टस्य ।

153

दुर्जनहुताशतप्तं काव्यसुवर्णं विशुद्धिमायाति ।
दर्शयितव्यं तस्मान्मत्सरिमनसः प्रयत्नेन ॥ ९ ॥

154

यन्त्राकृष्टसुवर्णसूत्रमिव यत्पद्यं सुमेरोस्तटा-
दुन्मीलत्कुरुविन्दकन्दल इव स्वच्छः पदार्थस्तु यः ।
यत्राप्युल्लसदंशुकान्तरलसत्कान्ताकुचान्तोपमं
व्यङ्ग्यं यत्तदहो कवित्वमपरं वाग्देवतोपज्ञवः ॥ १० ॥

कयोरप्येतौ ।

---

## अथ सामान्यकविप्रशंसा ॥ ७ ॥

155

कतिपयनिमेषवर्तिनि जन्मजरामरणविह्वले जगति ।
कल्पान्तकोटिबन्धुः स्फुरति कवीनां यशःप्रसरः ॥ १ ॥

शङ्खधरस्य ।

156

सुभाषितरसास्वादबद्धरोमाञ्चकञ्चुकाः ।
विनापि कामिनीसङ्गं कवयः सुखमासते ॥ २ ॥

कस्यापि ।

157

सन्ति श्वान इवासंख्या जातिभाजो गृहे गृहे ।
उत्पादका न बहवः कवयः शरभा इव ॥ ३ ॥

बाणभट्टस्य ।

158

कवयः परितुष्यन्ति नेतरे कविसूक्तिभिः ।
न ह्यकूपारवत्कूपा वर्धन्ते विधुकान्तिभिः ॥ ४ ॥

श्रीधनदेवानाम् ।

159

किं कवेस्तस्य काव्येन किं काण्डेन धनुष्मतः ।
परस्य हृदये लग्नं न घूर्णयति यच्छिरः ॥ ५ ॥

त्रिविक्रमभट्टस्य ।

160

मुखमात्रेण काव्यस्य करोत्यहृदयो जनः ।
छायामच्छामपि श्यामां राहुस्तारापतेरिव ॥ ६ ॥

बाणभट्टस्य ।

161

लङ्कापतेः संकुचितं यशो य-
द्यत्कीर्तिपात्रं रघुराजपुत्रः ।
स सर्व एवादिकवेः प्रभावो
न कोपनीयाः कवयः क्षितीन्द्रैः ॥ ७ ॥

बिल्हणस्य ।

162

उत्फुल्लगल्लैरालापाः क्रियन्ते दुर्मुखैः सुखम् ।
जानाति हि पुनः सम्यक्कविरेव कवेः श्रमम् ॥ ८ ॥

त्रिविक्रमभट्टस्य ।

163

शीलाविज्ञामारुलामोरिकाद्याः
काव्यं कर्तुं सन्तु विज्ञाः स्त्रियोपि ।

विद्यां वेत्तुं वादिनो निर्विजेतुं
दातुं वक्तुं यः प्रवीणः स वन्द्यः ॥ ९ ॥
श्रीधनदेवानाम्।

164

अपि मुदमुपयान्तो वाग्विलासैः स्वकीयैः
परभणितिषु तृप्तिं यान्ति सन्तः कियन्तः ।
निजघनमकरन्दस्यन्दपूर्णालवालः
कलशसलिलसेकं नेहते किं रसालः ॥ १० ॥
जयदेवस्य ।

165

ते धन्यास्ते महात्मानो तेषां लोके स्थितं यशः ।
यैर्निबद्धानि काव्यानि ये वा काव्येषु कीर्तिताः ॥ ११ ॥
कस्यापि ।

166

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः ।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम् ॥ १२ ॥
भर्तृहरेः ।

167

महीपतेः सन्ति न यस्य पार्श्वे
कवीश्वरास्तस्य कुतो यशांसि ।
भूपाः कियन्तो न बभूवुरुर्व्यां
नामापि जानाति न कोपि तेषाम् ॥ १३ ॥
बिल्हणस्य ।

168

अर्थान्केचिदुपासते कृपणवत्केचित्त्वलंकुर्वते
वेश्यावत्खलु धातुवादिन इवोद्बध्नन्ति केचिद्रसान् ।
अर्थालंकृतिसद्रसद्रवमुचां वाचां प्रशस्तिस्पृशां
कर्तारः कवयो भवन्ति कतिचित्पुण्यैरगण्यैरिह ॥ १४ ॥
श्रीराघवचैतन्यश्रीचरणानाम् ।

169

कविवाक्यामृततीर्थस्नानैः पूता भृशं यशोदेहाः ।
येषां त एव भूपा जीवन्ति मृता वृथैवान्ये ॥ १५ ॥

170

अमृतोत्प्रेक्षणे चारुरशेषजनसज्जनः ।
कविर्गरुडवन्मान्य इन्द्रवज्रादिवृत्तकृत् ॥ १६ ॥

एतौ शार्ङ्गधरस्य ।

171

काव्यमय्यो गिरो यावच्चरन्ति विशदा भुवि ।
तावत्सारस्वतं स्थानं कविरासाद्य तिष्ठति ॥ १७ ॥

कस्यापि ।

---

## अथ विशिष्टकविप्रशंसा ॥ ८ ॥

172

कवीन्दुं नौमि वाल्मीकिं यस्य रामायणीं कथाम् ।
चन्द्रिकामिव चिन्वन्ति चकोरा इव साधवः ॥ १ ॥

शार्ङ्गधरस्य ।

173

श्रवणाञ्जलिपुटपेयं विरचितवान्भारताख्यममृतं यः ।
तमहमरागमतृष्णं कृष्णद्वैपायनं वन्दे ॥ २ ॥

नारायणभट्टस्य ।

174

त्रयोमयस्त्रयो वेदास्त्रयो देवास्त्रयो गुणाः ।
त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ॥ ३ ॥

राजशेखरस्य ।

175

कवयः कालिदासाद्याः कवयो वयमप्यमी ।
पर्वते परमाणौ च पदार्थत्वं प्रतिष्ठितम् ॥ ४ ॥

कृष्णभट्टस्य ।

176

कविरमरः कविरचलः कविरभिनन्दश्च कालिदासश्च ।
अन्ये कवयः कपयश्चापलमात्रं परं दधति ॥ ५ ॥

कस्यापि ।

177

श्लेषे केचन शब्दगुम्फविषये केचिद्रसे चापरे-
लंकारे कतिचित्सदर्थविषये चान्ये कथावर्णके ।
आः सर्वत्र गभीरधीरकवितावित्र्याटवीचातुरी-
संचारी कविकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पञ्चाननः ॥ ६ ॥

श्रीचन्द्रदेवानाम् ।

178

भवभूतिमनादृत्य निर्वाणमतिना मया ।
मुरारिपदचिन्तायामिदमाधीयते मनः ॥ ७ ॥

कस्यापि ।

179

शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चालीरीतिरुच्यते ।
शीलाभट्टारिकावाचि बाणोक्तिषु च सा यदि ॥ ८ ॥

कस्यापि ।

180

नीलोत्पलदलश्यामां विज्जिकां मामजानता ।
वृथैव दण्डिना प्रोक्तं सर्वशुक्ला सरस्वती ॥ ९ ॥

विज्जिकायाः ।

181

इन्दुप्रभारसविदं विहगं विहाय
कीराननं स्फुरसि भारति का रतिस्ते ।
आद्यं यदि श्रयसि जल्पतु कौमुदीनां
गोविन्दराजवचसां च विशेषमेषः ॥ १० ॥

देवेश्वरस्य ।

182

यथेयं वाग्देवी सुकविमुखवासव्यसनिनी
कुहूकण्ठीकण्ठे विलसति तथा चेदनवधिः ।
तदा भूमीभागे निरुपमतमः किंचिदिव वा
समाधत्ते साम्यं धनदभणितीनां मधुरिमा ॥ ११ ॥

श्रीधनददेवानाम् ।

183

न मुग्धदयिताधरे न विषभाजि रत्नाकरे
न राहुमुखकोटरे न किल तार्क्ष्यपक्षान्तरे ।
सुदर्शनकवीश्वरे रसिकचक्रचूडामणौ
गुणौकसि सुधा बुधास्त्यजत सान्द्रचन्द्रभ्रमम् ॥ १२ ॥

श्रीहरिहरिदेवानाम् ।

184

सरस्वतीव कार्णाटी विजयाङ्का जयत्यसौ ।
या वैदर्भगिरां वासः कालिदासादनन्तरम् ॥ १३ ॥

कस्यापि ।

185

माघेन विघ्नितोत्साहा नोत्सहन्ते पदक्रमे ।
स्मरन्तो भारवेरेव कवयः कपयो यथा ॥ १४ ॥

धनपालस्य ।

186

हृदि लग्नेन बाणेन यन्मन्दोपि पदक्रमः ।
भवेत्कविकुरङ्गाणां चापलं तत्र कारणम् ॥ १५ ॥

187

तावत्कविविहंगानां ध्वनिर्लोकेषु शस्यते ।
यावन्नो विशति श्रोत्रे मयूरमधुरध्वनिः ॥ १६ ॥

त्रिलोचनस्यैतौ ।

188

भासो रामिलसोमिलौ वररुचिः श्रीसाहसाङ्कः कवि-
र्मेण्ठो भारविकालिदासतरलाः स्कन्धः सुबन्धुश्च यः ।
दण्डी बाणदिवाकरौ गणपतिः कान्तश्च रत्नाकरः
सिद्धा यस्य सरस्वती भगवती के तस्य सर्वेपि ते ॥१७॥

189

अहो प्रभावो वाग्देव्या यन्मातङ्गदिवाकरः ।
श्रीहर्षस्याभवत्सभ्यः समो बाणमयूरयोः ॥ १८ ॥

190

सरस्वतीपवित्राणां जातिस्तत्र न देहिनाम् ।
व्यासस्पर्धी कुलालोभूद्यद्रोणो भारते कविः ॥ १९ ॥

राजशेखरस्यैते ।

---

## अथ कुकविनिन्दा ॥ ९ ॥

191

अप्रगल्भाः पदन्यासे जननीरागहेतवः ।
सन्त्येके बहुलालापाः कवयो बालका इव ॥ १ ॥

विक्रमभट्टस्य ।

192

गणयन्ति नापशब्दं न वृत्तभङ्गं क्षयं न चार्थस्य ।
रसिकत्वेनाकुलिता वेश्यापतयः कुकवयश्च ॥ २ ॥

कस्यापि ।

193

द्राघीयसा धाष्टर्यगुणेन युक्ताः
कैः कैरपूर्वैः परकाव्यखण्डैः ।
आडम्बरं ये वचसां वहन्ति
ते केपि कन्थाकवयो जयन्ति ॥ ३ ॥

बिल्हणस्य ।

194

धिक्त्वां रे कलिकाल याहि विलयं केयं विपर्यस्तता
हा कष्टं श्रुतिशालिनां व्यवहतिर्म्लेच्छोचिता दृश्यते ।
एकैर्वाङ्मयदेवता भगवती विक्रेतुमानीयते
निःशङ्कैरपरैः परीक्षणविधौ सर्वाङ्गमुद्घाट्यते ॥ ४ ॥

बिल्हणस्य ।

195

कविभिर्नृपसेवासु चित्तालंकारहारिणी ।
वाणी वेश्येव लोभेन परोपकरणीकृता ॥ ५ ॥

क्षेमेन्द्रस्य ।

196

अन्यवर्णपरावृत्त्या बन्धचिह्ननिगूहनैः ।
अनाख्यातः सतां मध्ये कविश्चौरो विभाव्यते ॥ ६ ॥

---

## अथ पण्डितप्रशंसा ॥ १० ॥

197

अधिगतपरमार्थान्पण्डितान्मा वमंस्था-
स्तृणमिव लघुलक्ष्मीर्नैव तान्संरुणद्धि ।
मदमिलितमिलिन्दश्यामगण्डस्थलानां
न भवति बिसतन्तुर्वारणं वारणानाम् ॥ १ ॥

198

इह तुरगशतैः प्रयान्तु मूर्खा
धनरहितास्तु बुधाः प्रयान्तु पद्भ्याम् ।
गिरिशिखरगतापि काकपङ्क्तिः
पुलिनगतैर्न समत्वमेति हंसैः ॥ २ ॥

199

अञ्जलिस्थानि पुष्पाणि वासयन्ति करद्वयम् ।
अहो सुमनसां प्रीतिर्वामदक्षिणयोः समा ॥ ३ ॥

कस्यापि ।

200

उदीरितोर्थः पशुनापि गृह्यते
हयाश्च नागाश्च वहन्ति नोदिताः ।
अनुक्तमप्यूहति पण्डितो जनः
परेङ्गितज्ञानफला हि बुद्धयः ॥ ४ ॥

कस्यापि ।

201

पण्डिते हि गुणाः सर्वे मूर्खे दोषाश्च केवलाः ।
तस्मान्मूर्खसहस्रेण प्राज्ञ एको न लभ्यते ॥ ५ ॥

202

गीतशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम् ।
व्यसनेन हि मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा ॥ ६ ॥

कयोरप्येतौ ।

203

हर्तुर्याति न गोचरं किमपि शं पुष्णाति सर्वात्मना
ह्यर्थिभ्यः प्रतिपाद्यमानमनिशं प्राप्नोति वृद्धिं पराम् ।
कल्पान्तेष्वपि न प्रयाति निधनं विद्याख्यमन्तर्धनं
येषां तान्प्रति मानमुज्झत नृपाः कस्तैः सह स्पर्धते ॥ ७ ॥

204

त्वं राजा वयमप्युपासितगुरुप्रज्ञाभिमानोन्नताः
ख्यातस्त्वं विभवैर्यशांसि कवयो दिक्षु प्रतन्वन्ति नः ।
इत्थं मानद नातिदूरमुभयोरप्यावयोरन्तरं
यद्यस्मासु पराङ्मुखोसि वयमप्येकान्ततो निःस्पृहाः ॥ ८ ॥

एतौ भर्तृहरेः ।

---

# अथ कुपण्डितनिन्दा ॥ ११ ॥

205

व्यासादीन्कविपुंगवानुचितैर्वाक्यैः सलीलं हस-
च्चुच्चैर्जल्प निमील्य लोचनयुगं श्लोकान्सगर्वं पठ ।
काव्यं धिक्कुरु यत्परैर्विरचितं स्पर्धस्व सार्धं बुधै-
र्यद्यभ्यर्थयसे श्रुतेन रहितः पाण्डित्यमाप्तुं बलात् ॥ १ ॥

कस्यापि ।

206

ये संसत्सु विवादिनः परयशःशूलेन शल्याकुलाः
कुर्वन्ति स्वगुणस्तवेन गुणिनां यन्नाद्रुणाच्छादनम् ।
तेषां रोषकषायितोदरदृशां कोपोष्णनिःश्वासिनां
दीप्ता रत्नशिखेव कृष्णफणिनां विद्या जनोद्वेजिनी ॥ २ ॥

207

ग्रीवास्तम्भभृतः परोन्नतिकथामात्रे शिरःशूलिनः
सोद्वेगभ्रमणप्रलापविपुलक्षोभाभिभूतस्थितेः ।
अन्तर्द्वेषविषप्रवेशविषमक्रोधोष्णनिःश्वासिनः
कष्टा नूनमपण्डितस्य विकृतिर्भीमज्वरारम्भभूः ॥ ३ ॥

क्षेमेन्द्रस्यैतौ ।

208

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः ।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि नरं न रञ्जयति ॥ ४ ॥

भर्तृहरेः ।

---

## अथ महतां प्रशंसा ॥ १२ ॥

209

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः ।
यशसि चाभिरतिर्व्यसनं श्रुतौ
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥ १ ॥

भर्तृहरेः ।

210

इयमुन्नतसत्त्वशालिनां
महतां कापि कठोरचित्तता ।
उपकृत्य भवन्ति दूरतः
परतः प्रत्युपकारशङ्कया ॥ २ ॥

211

नाल्पीयसि निबध्नन्ति पदमुन्नतचेतसः ।
येषां भुवनलाभेपि निःसीमानो मनोरथाः ॥ ३ ॥

212

अहो किमपि चित्राणि चरित्राणि महात्मनाम् ।
लक्ष्मीं तृणाय मन्यन्ते तद्भरेण नमन्त्यपि ॥ ४ ॥

एते देवेश्वरस्य ।

213

किं वा परेण बहुना परिजल्पितेन
संसर्ग एव महतां महते फलाय ।
अम्भोनिधेस्तटरुहास्तरवोपि येन
वेलाजलोच्छलितरत्नकृतालवालाः ॥ ५ ॥

214

आपत्स्वेव हि महतां शक्तिरभिव्यज्यते न संपत्सु ।
अगुरोस्तथा न गन्धः प्रागस्ति यथाग्निपतितस्य ॥ ६ ॥

कयोरप्येतौ ।

215

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि ।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति ॥ ७ ॥

भवभूतेः ।

216

जितरोषरया महाधियः
सपदि क्रोधजितो लघुर्जनः ।
विजितेन जितस्य दुर्मते-
र्मतिमद्भिः सह का विरोधिता ॥ ८ ॥

माघस्य ।

217

गवादीनां पयोन्येद्युः सद्यो वा जायते दधि ।
क्षीरोदधेस्तु नाद्यापि महतां विकृतिः कुतः ॥ ९ ॥

देवेश्वरस्य ।

218

संपदो महतामेव महतामेव चापदः ।
वर्धते क्षीयते चन्द्रो न तु तारागणः क्वचित् ॥ १० ॥

219

अपकुर्वन्नपि प्रायः प्राप्नोति महतः फलम् ।
और्वं दहन्तमेवाग्निं संतर्पयति सागरः ॥ ११ ॥

220

महतां प्रार्थनेनैव विपत्तिरपि शोभते ।
दन्तभङ्गो हि नागानां श्लाघ्यो गिरिविदारणे ॥ १२ ॥

221

तरुमूलादिषु निहितं जलमाविर्भवति पल्लवाग्रेषु ।
निभृतं यदुपक्रियते तदपि महान्तो वहन्त्युच्चैः ॥ १३ ॥

222

अचिन्त्याः पन्थानः किमपि महतामन्धकरिपो-
र्यदक्ष्णोभूत्तेजस्तदकृत कथामप्यमदनाम् ।
मुनेर्नेत्रादत्रेर्यदजनि पुनर्ज्योतिरहह
प्रतेने तेनेदं मदनमयमेव त्रिभुवनम् ॥ १४ ॥

केषामप्येते ।

223

महात्मानोनुगृह्णन्ति भजमानान्निपूनपि ।
सपत्नीः प्रापयन्त्यब्धिं सिन्धवो नगनिम्नगाः ॥ १५ ॥

माघकवेः ।

---

## अथ धीरप्रशंसा ॥१३॥

224

सह परिजनेन विलसति धीरो गहनानि तरति पुनरेकः ।
विषमेकेन निपीतं त्रिपुरजिता सह सुरैरमृतम् ॥ १ ॥

कस्यापि ।

225

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेच्छम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥ २ ॥

भर्तृहरेः ।

226

श्लाघ्या महतामुच्चतिरद्भुतमध्यवसितं च धीराणाम् ।
कनकगिरिरनभिलङ्घ्यो रविरनिशमनुज्झितारम्भः ॥ ३ ॥

कस्यापि ।

227

कदर्थितस्यापि हि धैर्यवृत्ते-
र्न शक्यते धैर्यगुणः प्रमार्ष्टुम् ।
अधोमुखस्यापि कृतस्य वह्ने-
र्नाधः शिखा यान्ति कदाचिदेव ॥ ४ ॥

भर्तृहरेः ।

228

ये दीनेषु दयालवः स्पृशति यानल्पोपि न श्रीमदो
व्यग्रा ये च परोपकारकरणे हृष्यन्ति ये याचिताः ।
स्वस्थाः सन्ति च यौवनोन्मदमहाव्याधिप्रकोपेपि ये
तैः स्तम्भैरिव सुस्थितैः कलिभरक्रान्ता धरा धार्यते ॥५॥

229

अर्थः सुखं कीर्तिरपीह मा भू-
दनर्थ एवास्तु तथापि धीराः ।
निजप्रतिज्ञामनुरुध्यमाना
महोद्यमाः कर्म समारभन्ते ॥ ६ ॥

कयोरप्येतौ ।

230

अङ्गणवेदी वसुधा कुल्या जलधिः स्थली च पातालम् ।
वल्मीकश्च सुमेरुः कृतप्रतिज्ञस्य धीरस्य ॥ ७ ॥

बाणभट्टस्य ।

---

## अथ सज्जनप्रशंसा ॥ १४ ॥

231

उपकर्तुं प्रियं वक्तुं कर्तुं स्नेहमकृत्रिमम् ।
सज्जनानां स्वभावोयं केनेन्दुः शिशिरीकृतः ॥ १ ॥

232

निर्गुणेष्वपि सत्त्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः ।
नहि संहरते ज्योत्स्नां चन्द्रश्चाण्डालवेश्मसु ॥ २ ॥

233

उपकारिषु यः साधुः साधुत्वे तस्य को गुणः ।
अपकारिषु यः साधुः स साधुः सद्भिरुच्यते ॥ ३ ॥

234

हृदयानि सतामेव कठिनानीति मे मतिः ।
खलवाग्विशिखैस्तीक्ष्णैर्भिद्यन्ते न मनाग्यतः ॥ ४ ॥

235

अपेक्षन्ते न च स्नेहं न पात्रं न दशान्तरम् ।
सदालोकहिते युक्ता रत्नदीपा इवोत्तमाः ॥ ५ ॥

केषामप्येते ।

236

उपचरितव्याः सन्तो यद्यपि कथयन्ति नैकमुपदेशम् ।
यास्तेषां स्वैरकथास्ता एव भवन्ति शास्त्राणि ॥ ६ ॥

भर्तृहरेः ।

237

सुजनो न याति वैरं परहितनिरतो विनाशकालेपि ।
छेदेपि चन्दनतरुः सुरभयति मुखं कुठारस्य ॥ ७ ॥

रविगुप्तस्य ।

238

अतिकुपिता अपि सुजना योगेन मृदूभवन्ति न तु नीचाः ।
हेम्नः कठिनस्यापि द्रवणोपायोस्ति न तृणानाम् ॥ ८ ॥

कस्यापि ।

239

अनुकुरुतः खलसुजनावग्रिमपाश्चात्यभागयोः सूच्याः ।
विदधाति रन्ध्रमेको गुणवानन्यस्तु पिदधाति ॥ ९ ॥

गोभटस्य ।

240

सन्तोपि सन्तः क्व किरन्तु तेजः
क्व नु ज्वलन्तु क्व ननु प्रथन्ताम् ।
विधाय रुद्धा ननु वेधसैव
ब्रह्माण्डकोषे घटदीपकल्पाः ॥ १० ॥

241

गोत्रस्थितिं न मुञ्चन्ति सदा सन्ततिमाश्रिताः ।
उदन्वन्तश्च सन्तश्च महासत्त्वतयानया ॥ ११ ॥

242

ब्रूतेन्यस्यासतोप्यार्यो गुणान्दोषांस्तु दुर्जनः ।
तुल्येप्यसत्ये किं त्वेको गच्छत्यूर्ध्वमधोपरः ॥ १२ ॥

243

आस्तामन्यत्सुजनाः परोपकारैककरणदुर्ललिताः ।
संतापितपिशुनेषु स्वगुणेष्वपि हन्त खिद्यन्ते ॥ १३ ॥

244

यदमी दशन्ति दशना रसना तत्स्वादमनुभवति ।
प्रकृतिरियं विमलानां क्लिश्यन्ति यदन्यकार्येषु ॥ १४ ॥

देवेश्वरस्य ।

245

शरदि न वर्षति गर्जति वर्षति वर्षासु निःस्वनो मेघः ।
नीचो वदति न कुरुते न वदति सुजनः करोत्येव ॥१५॥

246

अद्यापि नोज्झति हरः किल कालकूटं
कूर्मो बिभर्ति धरणी खलु पृष्ठभागे ।
अम्भोनिधिर्वहति दुर्वहवाडवाग्नि-
मङ्गीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति ॥ १६ ॥

247

आदिमध्यनिधनेषु सौहृदं
सज्जने भवति नेतरे जने ।
छेदतापनविघर्षताडनै-
र्नान्यभावमुपयाति काञ्चनम् ॥ १७ ॥

248

ये जाते व्यसने निराकुलधियः संपत्सु नाभ्युन्नताः
प्राप्तेनैव पराङ्मुखाः प्रणयिनि प्राणोपयोगैरपि ।

ह्रीमन्तः स्वगुणप्रकाशनविधावन्यस्तुतौ पण्डिता-
स्ते भूमण्डलमण्डनैकतिलकाः सन्तः कियन्तो जनाः ॥१८॥

249

मुखेन नोद्गिरत्यूर्ध्वं हृदये न नयत्यधः ।
जरयत्यन्तरे साधुर्दोषं विषमिवेश्वरः ॥ १९ ॥

250

तदपकृतं विधिनार्थिषु यत्सन्तः स्वल्पसंपदो विहिताः ।
तुच्छे पयसि घनानां सीदति बत जीवलोकोयम् ॥ २० ॥
केषामप्येते ।

251

नूनं दुग्धाब्धिमन्थोत्थावियौ सुजनदुर्जनौ ।
किं त्विन्दोः सोदरः पूर्वः कालकूटस्य चेतरः ॥ २१ ॥
राजशेखरस्य ।

---

## अथ मनस्विप्रशंसा ॥ १५ ॥

252

कामं प्रियानपि प्राणान्विमुञ्चन्ति मनस्विनः ।
इच्छन्ति न त्वमित्रेभ्यो महतीमपि सत्क्रियाम् ॥ १ ॥
भर्तृहरेः ।

253

अदृष्टमुखभङ्गस्य युक्तमन्धस्य याचितुम् ।
अहो बत महत्कष्टं चक्षुष्मानपि याचते ॥ २ ॥
कस्यापि ।

254

पुण्ये ग्रामे वने वा महति सितपटच्छन्नपालीं कपाली-
मादाय न्यायगर्भं द्विजहुतहुतभुग्धूमधूम्रोपकण्ठम् ।
द्वारं द्वारं प्रवृत्तो वरमुदरदरीपूरणाय क्षुधार्तो
मानी प्राणी स्वदेशे न पुनरनुदिनं तुल्यकुल्येषु दीनः ॥ ३ ॥

255

वरमहिमुखे क्रोधाध्माते करो विनिवेशितो
विषमपि वरं पीत्वा सुप्तं कृतान्तनिवेशने ।
गिरिवरतटान्मुक्तश्चात्मा वरं शतधा कृतो
न तु खलजनाद्वाप्तैर्वैः कृतं हितमात्मनः ॥ ४ ॥

एतौ भर्तृहरेः ।

256

ब्रह्माण्डं कियदस्ति तत्र वसुधापिण्डं किमाचक्ष्महे
तत्राप्येकतरं तु खण्डमभितास्तस्मिन्नृपाः केचन ।
तेभ्यो दैन्यशतोपनीतविभवा दृष्टानुकम्पास्तु ते
धिङ्मूढाः स्पृहयन्ति हन्त किमपि स्वार्थेन तेभ्योपि ये ॥ ५ ॥

श्रीदेवगणदेवानाम् ।

257

पातालान्न विमोचितो बत बलिर्नीतो न मृत्युः क्षयं
नोन्मृष्टं शशलाञ्छनस्य मलिनं नोन्मूलिता व्याधयः ।
शेषस्यापि धरां विधृत्य न कृतो भारावतारः क्षणं
चेतः सत्पुरुषाभिमानमनिशं मिथ्या वहन्खिद्यसे ॥ ६ ॥

258

एकः स एव जीवति हृदयविहीनोपि सहृदयो राहुः ।
यः सकललघिमभाजनमुदरं न बिभर्ति दुष्पूरम् ॥ ७ ॥

259

वरं हालाहलं पीतं सद्यः प्राणहरं विषम् ।
न तु दृष्टं धनान्धस्य भ्रूभङ्गकुटिलं मुखम् ॥ ८ ॥

260

प्रत्युपकुर्वन्बह्वपि न भवति पूर्वोपकारिणा तुल्यः ।
एकोनुकरोति कृतं निष्कारणमेव कुरुतेन्यः ॥ ९ ॥

261

कामं वनेषु हरिणास्तृणेन जीवन्त्ययत्नसुलभेन ।
धनिषु न दैन्यं विदधति ते खलु पशवो वयं सधियः ॥१०॥

262

ब्रूत नूतनकूष्माण्डफलानां के भवन्त्यमी ।
अङ्गुलीदर्शनाद्येन विलीयन्ते मनस्विनः ॥ ११ ॥

केषामप्येते ।

263

ब्रह्माण्डमण्डलीमात्रं किं लोभाय मनस्विनः ।
शफरीस्फुरितेनाब्धेः क्षुब्धता जातु जायते ॥ १२ ॥

264

कुसुमस्तबकस्येव द्वयी वृत्तिर्मनस्विनः ।
मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य शीर्यते वन एव वा ॥ १३ ॥

एतौ भर्तृहरेः ।

265

पादाहतं यदुत्थाय मूर्धानमधिरोहति ।
स्वस्थादेवापमानेपि देहिनस्तद्वरं रजः ॥ १४ ॥

266

मा जीवन्यः परावज्ञादुःखदग्धोपि जीवति ।
तस्याजननिरेवास्तु जननीक्लेशकारिणः ॥ १५ ॥

267

समूलघातमघ्नन्तः परान्नोद्यन्ति मानिनः ।
प्रध्वंसितान्धतमसस्तत्रोदाहरणं रविः ॥ १६ ॥

एते माघकवेः ।

---

## अथोदारप्रशंसा ॥ १६ ॥

268

आकारमात्रविज्ञानसंपादितमनोरथाः ।
ते धन्या ये न शृण्वन्ति दीनाः प्रणयिनां गिरः ॥ १ ॥

269

देहि देहीति जल्पन्ति त्यागिनोप्यर्थिनोपि च ।
आलोकयन्ति रभसादस्ति नास्तीति न क्वचित् ॥ २ ॥

270

युद्ध्यन्ते पक्षिपशवः पठन्ति शुकशारिकाः ।
दातुं शक्नोति यो वित्तं स शूरः स च पण्डितः ॥ ३ ॥

271

एकेन तिष्ठताधस्तादन्येनोपरि तिष्ठता ।
दातृयाचकयोर्भेदः कराभ्यामेव सूचितः ॥ ४ ॥

272

सैव परं न विनश्यति तनुरपि या श्रीर्निवेशिता सत्सु ।
अवशिष्यते हिमांशोः सैव कला या स्थिता शंभौ ॥ ५ ॥

273

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम् ।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥ ६ ॥

274

बोधयन्ति न याचन्ते भिक्षाचारा गृहे गृहे ।
दीयतां दीयतां नित्यमदातुः फलमीदृशम् ॥ ७ ॥

केषामप्येते ।

275

अर्थिनां कृपणा दृष्टिस्त्वन्मुखे पतिता सकृत् ।
तदवस्था पुनर्देव नान्यस्य मुखमीक्षते ॥ ८ ॥

दण्डिनः ।

276

यद्दासि विशिष्टेभ्यो यच्चाभासि दिने दिने ।
तत्ते वित्तमहं मन्ये शेषमन्यस्य रक्षसि ॥ ९ ॥

भगवतो व्यासस्य ।

277

किं तया क्रियते लक्ष्म्या या वधूरिव केवला ।
या न वेश्येव सामान्या पथिकैरुपभुज्यते ॥ १० ॥

विक्रमादित्यस्य ।

278

लक्ष्मीपयोधरोत्सङ्गकुङ्कुमारुणितो हरेः ।
धन्यो बलिः स येनास्य भिक्षापात्रीकृतः करः ॥ ११ ॥

279
कर्णस्त्वचं शिबिर्मांसं जीवं जीमूतवाहनः ।
ददौ दधीचिरस्थीनि नास्त्यदेयं महात्मनाम् ॥ १२ ॥

280
द्विः शरं नाभिसंधत्ते द्विः स्थापयति नाश्रितान् ।
द्विर्ददाति न चार्थिभ्यो रामो द्विर्नाभिभाषते ॥ १३ ॥
केषामप्येते ।

281
दाता नीचोपि सेव्यः स्यान्निष्फलो न महानपि ।
जलार्थी वारिधिं त्यक्त्वा पश्य कूपं निषेवते ॥ १४ ॥

---

## अथ तेजस्विप्रशंसा ॥ १७ ॥

282
बालस्यापि रवेः पादाः पतन्त्युपरि भूभृताम् ।
तेजसा सह जातानां वयः कुत्रोपयुज्यते ॥ १ ॥

283
सिंहः शिशुरपि निपतति मदमलिनकपोलभित्तिषु गजेषु ।
प्रकृतिरियं सत्त्ववतां न खलु वयस्तेजसो हेतुः ॥ २ ॥

284
तेजांसि यस्य प्रशमं प्रयान्ति
धाराप्रहारेण स वह्निरन्यः ।
अयं पुनर्वाडवनामधेयः
समुद्रमापीय बिभर्ति तेजः ॥ ३ ॥

285
एकः स एव तेजस्वी सैंहिकेयः सुरद्विषाम् ।
शिरोमात्रावशेषेण जीयन्ते येन शत्रवः ॥ ४ ॥
केषामप्येते ।

286
मौनी पादप्रहारेपि न क्षमी नीच एव सः ।
आकृष्टशस्त्रो मित्रेपि न तेजस्वी खलो हि सः ॥ ५ ॥
क्षेमेन्द्रस्य ।

287

तुल्येपराधे स्वर्भानुर्भानुमन्तं चिरेण यत् ।
हिमांशुमाशु ग्रसते तन्नादिक्षः स्फुटं फलम् ॥ ६ ॥

माघकवेः

288

तेजस्विनि क्षमासारे नातिकार्कश्यमाचरेत् ।
अतिनिर्मन्थनादग्निश्चन्दनादपि जायते ॥ ७ ॥

289

तेजोहीने महीपाले स्वे परे च विकुर्वते ।
निःशङ्को हि जनो धत्ते पदं भस्मन्यनूष्माणि ॥ ८ ॥

कयोरप्येतौ ।

---

## अथ गुणप्रशंसा ॥ १८ ॥

290

गुणाः कुर्वन्ति दूतत्वं दूरेपि वसतां सताम् ।
केतकीगन्धमाघ्राय स्वयमायान्ति षट्पदाः ॥ १ ॥

291

गुणवज्ज्ञनसंपर्काद्याति स्वल्पोपि गौरवम् ।
पुष्पाणामनुषङ्गेण सूत्रं शिरसि धार्यते ॥ २ ॥

292

गुणाः सर्वत्र पूज्यन्ते पितृवंशो निरर्थकः ।
वासुदेवं नमस्यन्ति वसुदेवं न मानवाः ॥ ३ ॥

293

गुणिनि गुणज्ञो रमते नागुणशीलस्य गुणिनि परितोषः ।
अलिरेति वनात्कमलं न दर्दुरस्त्वेकवासोपि ॥ ४ ॥

294

नीरसान्यपि रोचन्ते कर्पासस्य फलानि मे ।
येषां गुणमयं जन्म परेषां गुह्यगुप्तये ॥ ५ ॥

295

गुणा गुणज्ञेषु गुणीभवन्ति
ते निर्गुणं प्राप्य भवन्ति दोषाः ।
सुस्वादुतोयाः प्रवहन्ति नद्यः
समुद्रमासाद्य भवन्त्यपेयाः ॥ ६ ॥

296

गुणिनं जनमालोक्य निजबन्धनशङ्कया ।
राजँल्लक्ष्मीः कुरङ्गीव दूरं दूरं पलायते ॥ ७ ॥

297

गुणैः सर्वज्ञकल्पोपि सीदत्येको निराश्रयः ।
अनर्घमपि माणिक्यं हेमाश्रयमपेक्षते ॥ ८ ॥

298

गुणेषु क्रियतां यत्नः किमाटोपैः प्रयोजनम् ।
विक्रीयन्ते न घण्टाभिर्गावः क्षीरविवर्जिताः ॥ ९ ॥

299

गुणैर्गौरवमायाति न महत्यापि संपदा ।
पूर्णेन्दुर्न तथा वन्द्यो निष्कलङ्को यथा कृशः ॥ १० ॥

300

न सौख्यसौभाग्यकरा गुणा नृणां
स्वयं गृहीताः सुदृशां कुचा इव ।
परैर्गृहीता हितयं वितन्वते
न तेन गृह्णन्ति निजं गुणं बुधाः ॥ ११ ॥

301

कौशेयं कृमिजं सुवर्णमुपलाद्दूर्वापि गोरोमतः
पङ्कात्तामरसं शशाङ्क उदधेरिन्दीवरं गोमयात् ।
काष्ठादग्निरहेः फणादपि मणिर्गोपित्ततो रोचना
प्राकाश्यं स्वगुणोदयेन गुणिनो गच्छन्ति किं जन्मना ॥१२॥

केषामप्येते ।

302

गुणैरुत्तुङ्गतां याति नोच्चैरासनसंस्थितः ।
प्रासादशिखरस्थोपि काकः किं गरुडायते ॥ १३ ॥

भर्तृहरेः ।

303

गुणवन्तः क्लिश्यन्ते प्रायेण भवन्ति निर्गुणाः सुखिनः ।
बन्धनमायान्ति शुका यथेष्टसंचारिणः काकाः ॥ १४ ॥

304

गुणो दूषणतां याति दूषणं गुणतां क्वचित् ।
तथा हि नम्रता दोषः स्तनयोः स्तब्धता गुणः ॥ १५ ॥

305

अहो वैचित्र्यमेतस्य संसारस्य किमुच्यते ।
गुणोपि क्लेशहेतुः स्याद्विभ्रान्तः कण्ठकन्दले ॥ १६ ॥

306

अनवसरे गुणवानपि हृदयादवतार्यते हारः ।
पश्य शलाकावसरे तृणेपि भूपैः प्रसार्यते स्वकरः ॥१७॥

केषामप्येते ।

---

## अथ संतोषप्रशंसा ॥ १९ ॥

307

अकृत्वा परसंतापमगत्वा खलनम्रताम् ।
अनुत्सृज्य सतां वर्त्म यत्स्वल्पमपि तद्बहु ॥ १ ॥

व्यासस्य ।

308

वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं च लक्ष्म्या
सम इह परितोषो निर्विशेषो विशेषः ।
स हि भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला
मनसि च परितुष्टे कोर्थवान्को दरिद्रः ॥ २ ॥

भर्तृहरेः ।

309

दरिद्रस्य परा मूर्तिस्तृष्णा न द्रविणाल्पता ।
जरद्गवधनः शंभुस्तथापि परमेश्वरः ॥ ३ ॥

विष्णुशर्मणः ।

310

संतोषामृततृप्तानां यत्सुखं शान्तचेतसाम् ।
कुतस्तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम् ॥ ४ ॥

311

आगमिष्यन्ति ते भावा ये भावा मयि भाविताः ।
अहं तैरनुगन्तव्यो न तेषामन्यतो गतिः ॥ ५ ॥

312

यो मे गर्भगतस्यापि वृत्तिं कल्पितवान्स्वयम् ।
शेषवृत्तिविधाने च स किं सुप्तोथवा मृतः ॥ ६ ॥

313

अचिन्तितानि दुःखानि यथैवायान्ति देहिनाम् ।
सुखान्यपि तथा मन्ये दैन्यमत्रातिरिच्यते ॥ ७ ॥

314

पञ्चमेहनि षष्ठे वा शाकं पचति यो गृहे ।
अनृणी चाप्रवासी च स वारिचर मोदते ॥ ८ ॥

315

आत्माधीनशरीराणां स्वपतां निद्रया स्वया ।
कदन्नमपि मर्त्यानाममृतत्वाय कल्पते ॥ ९ ॥

316

सर्वत्र संपदस्तस्य संतुष्टं यस्य मानसम् ।
उपानद्गूढपादस्य ननु चर्मावृतैव भूः ॥ १० ॥

भगवतो व्यासस्यैतौ ।

317

आरोग्यं विद्वत्ता सज्जनमैत्री महाकुले जन्म ।
स्वाधीनता च पुंसां महदैश्वर्यं विनाप्यर्थैः ॥ ११ ॥

318

सर्पाः पिबन्ति पवनं न च दुर्बलास्ते
शुष्कैस्तृणैर्वनगजा बलिनो भवन्ति ।
कन्दैः फलैर्मुनिवराः क्षपयन्ति कालं
संतोष एव पुरुषस्य परं निधानम् ॥ १२ ॥

319

अर्थी करोति दैन्यं लब्धार्थो गर्वमपरितोषं च ।
नष्टधनश्च स शोकं सुखमास्ते निःस्पृहः पुरुषः ॥ १३ ॥

320

तन्मूलं गुरुतायास्तत्सौख्यं तद्यशस्तदौर्जित्यम् ।
तत्सौभाग्यं पुंसां यदेतदप्रार्थनं नाम ॥ १४ ॥

केषामप्येते ।

---

## अथ संसर्गप्रशंसा ॥ २० ॥

321

महानुभावसंसर्गः कस्य नोन्नतिकारकः ।
रथ्याम्बु जाह्नवीसङ्गाद्विदशैरपि वन्द्यते ॥ १ ॥

322

द्रवत्वात्सर्वलोहानां ममत्वान्मृगपक्षिणाम् ।
भयाल्लोभाच्च मूर्खाणां दर्शनात्संगतं सताम् ॥ २ ॥

323

विकृतिं नैव गच्छन्ति सङ्गदोषेण साधवः ।
आवेष्टितं महासर्पैश्चन्दनं न विषायते ॥ ३ ॥

324

न स्थातव्यं न गन्तव्यं क्षणमप्यधमैः सह ।
पयोपि शौण्डिनीहस्ते मदिरां मन्यते जनः ॥ ४ ॥

325

वीणावंशाश्रयात्तुम्बं चुम्बत्युच्चैः कुचौ स्त्रियः ।
तत्तु नापितसंसर्गाद्रक्तं नक्तंचरो यथा ॥ ५ ॥

326

किंचिदाश्रयसौन्दर्याद्धत्ते शोभामसाध्वपि ।
कान्ताविलोचने न्यस्तं मलीमसमिवाञ्जनम् ॥ ६ ॥

327

आश्रयवशेन सततं गुरुता लघुता च जायते जन्तोः ।
विन्ध्ये विन्ध्यसमानाः करिणो बत दर्पणे लघवः ॥ ७ ॥

328

संसर्गाद्भवति हि साधुता खलानां
साधूनां न च खलसंगमात्खलत्वम् ।
आमोदं कुसुमभवं मृदेव धत्ते
मृद्गन्धं न च कुसुमानि धारयन्ति ॥ ८ ॥

329

असाधुः साधुर्वा भवति खलु जात्यैव पुरुषो
न सङ्गाद्दौर्जन्यं न हि सुजनता कस्यचिदपि ।
प्ररूढे संसर्गे मणिभुजगयोर्जन्मजनिते
मणिर्नाहेर्दोषान्स्पृशति न तु सर्पो मणिगुणान् ॥ ९ ॥

केषामप्येते ।

330

संतप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामापि न ज्ञायते
मुक्ताकारतया तदेव नलिनीपत्रस्थितं राजते ॥
स्वातौ सागरशुक्तिसंपुटगतं तज्ज्ञायते मौक्तिकं
प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणः संसर्गतो जायते ॥ १० ॥

331

अश्वः शस्त्रं शास्त्रं वीणा वाणी नरश्च नारी च ।
पुरुषविशेषं प्राप्ता भवन्ति योग्या अयोग्याश्च ॥ ११ ॥

एतौ विष्णुशर्मणः ।

# अथ धनप्रशंसा ॥ २१ ॥

332

जातिर्यातु रसातलं गुणगणस्तस्याप्यधो गच्छतु
शीलं शैलतटात्पतत्वभिजनः संदह्यतां वह्निना ।
शौर्ये वैरिणि वज्रमाशु निपतत्वर्थोस्तु नः केवलं
येनैकेन विना गुणास्तृणलवप्रायाः समस्ता इमे ॥ १ ॥

333

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः
स पण्डितः स श्रुतवान्गुणज्ञः ।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः
सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति ॥ २ ॥

एतौ भर्तृहरेः ।

334

वयोवृद्धास्तपोवृद्धा ज्ञानवृद्धास्तु ये परे ।
ते सर्वे धनवृद्धस्य द्वारे तिष्ठन्ति किंकराः ॥ ३ ॥

चाणक्यस्य ।

335

हेतुप्रमाणयुक्तं वाक्यं न श्रूयते दरिद्रस्य ।
अप्यतिपरुषमसत्यं पूज्यं वाक्यं समृद्धस्य ॥ ४ ॥

क्षेमेन्द्रस्य ।

336

अर्थार्थी जीवलोकोयं इमशानमपि सेवते ।
जनितारमपि त्यक्त्वा निःस्वं गच्छति दूरतः ॥ ५ ॥

337

न सा विद्या न तच्छीलं न तद्दानं न सा कला ।
अर्थार्थिभिर्न तच्छौर्यं धनिनां यन्न कीर्त्यते ॥ ६ ॥

338

यथामिषं जले मत्स्यैर्भक्ष्यते श्वापदैर्भुवि ।
आकाशे पक्षिभिश्चैव तथा सर्वत्र वित्तवान् ॥ ७ ॥

339

न वित्तं दर्शयेत्प्राज्ञः कस्यचित्स्वल्पमप्यहो ।
मुनेरपि यतस्तस्य दर्शनाच्चलते मनः ॥ ८ ॥

एते विष्णुशर्मणः ।

340

लक्ष्म्या परिपूर्णोहं न भयं मेस्तीति मोहनिद्रैषा ।
परिपूर्णस्यैवेन्दोर्भवति भयं सिंहिकासूनोः ॥ ९ ॥

341

भक्ते द्वेषो जडे प्रीतिररुचिर्गुरुलङ्घनम् ।
मुखे च कटुता नित्यं धनिनां ज्वरिणामिव ॥ १० ॥

342

आलिङ्गिताः परैर्यान्ति प्रस्खलन्ति समे पथि ।
अव्यक्तानि च भाषन्ते धनिनो मद्यपा इव ॥ ११ ॥

343

पतन्ति खड्गधारासु विशन्ति मकरालयम् ।
किं न कुर्वन्ति सुभगे कष्टमर्थार्थिनो जनाः ॥ १२ ॥

344

गुणयुक्तोप्यधो याति रिक्तः कूपे घटो यथा ।
निर्गुणोपि भृतः पश्य जनैः शिरसि धार्यते ॥ १३ ॥

केषामप्येते ।

---

## अथ दुर्जननिन्दा ॥ २२ ॥

345

खलः सर्षपमात्राणि परच्छिद्राणि पश्यति ।
आत्मनो बिल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति ॥ १ ॥

346

न विना परवादेन रमते दुर्जनो जनः ।
काकः सर्वरसान्भुक्त्वा विनामेध्यं न तृप्यति ॥ २ ॥

एतौ व्यासस्य ।

347

परितोषयिता न कश्चन
स्वगतो यस्य गुणोस्ति देहिनः ।
परदोषकथाभिरल्पकः
स्वजनं तोषयितुं किलेच्छति ॥ ३ ॥

348

सहजान्धदृशः स्वदुर्नये
परदोषेक्षणदिव्यचक्षुषः ।
स्वगुणोच्चगिरो मुनिव्रताः
परवर्णग्रहणेष्वसाधवः ॥ ४ ॥

एतौ माघकवेः ।

349

विषधरतोप्यतिविषमः खल इति न मृषा वदन्ति विद्वांसः ।
यदयं नकुलद्वेषी स कुलद्वेषी पुनः पिशुनः ॥ ५ ॥

350

अतिमलिने कर्तव्ये भवति खलानामतीव निपुणा धीः ।
तिमिरे हि कौशिकानां रूपं प्रतिपद्यते दृष्टिः ॥६॥

एतौ सुबन्धोः ।

351

लब्धोच्छ्रायो नीचः प्रथमतरं स्वामिनं पराभवति ।
भूमिरजो रथ्यादावुत्थापकमेव संवृणुते ॥ ७ ॥

एष रविगुप्तस्य ।

352

उपकृतमनेन सुहृदयमित्यसतामस्ति न क्वचिदपेक्षा ।
होतुः स्वहस्तमाश्रितमुद्वृत्तोग्निर्दहत्येव ॥ ८ ॥

353

विषमा मलिनात्मानो द्विजिह्वा जिह्मगा इव ।
जगत्प्राणहरा नित्यं कस्य नोद्वेजकाः खलाः ॥ ९ ॥

354

दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययालंकृतोपि सन् ।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयंकरः ॥ १० ॥

चाणक्यस्य ।

355

परिशुद्धामपि वृत्तिं समाश्रितो दुर्जनः परान्व्यथते ।
पवनाशिनोपि भुजगाः परोपतापं न मुञ्चन्ति ॥ ११ ॥

356

नीचः समाश्रितोवश्यमनवाप्य पराश्रयम् ।
छिद्रं न रतिमाप्नोति दृष्टान्तोत्र कटीभवः ॥ १२ ॥

357

खलानां कण्टकानां च द्विविधैव प्रतिक्रिया ।
उपानन्मुखभङ्गो वा दूरतो वा विसर्जनम् ॥ १३ ॥

358

सुमुखोपि सुवृत्तोपि सन्मार्गपतितोपि सन् ।
सतां वै पादलग्नोपि व्यथयत्येव कण्टकः ॥ १४ ॥

359

अपूर्वः कोपि कोपाग्निः सज्जनस्य खलस्य च ।
एकस्य शाम्यति स्नेहाद्वर्धतेन्यस्य वारितः ॥ १५ ॥

360

निमित्तमुद्दिश्य हि यः प्रकुप्यति
ध्रुवं स तस्यापगमे प्रशाम्यति ।
अकारणद्वेषि मनोस्ति यस्य
कथं जनस्तं परितोषयिष्यति ॥ १६ ॥

361

पादाहतोपि दृढदण्डसमाहतोपि
यं दंष्ट्रया स्पृशति तं किल हन्ति सर्पः ।
हर्षादिवैष पिशुनोत्र मनुष्यधर्मा
कर्णे परं स्पृशति हन्त्यपरं समूलम् ॥ १७ ॥

362

नौश्च दुर्जनजिह्वा च प्रतिकूलविसर्पिणी ।
परप्रतारणायैव दारुणा केन निर्मिता ॥ १८ ॥

363

यस्मिन्वंशे समुत्पन्नस्तमेव निजचेष्टितैः ।
दूषयत्यचिरेणैव घुणकीट इवाधमः ॥ १९ ॥

364

प्रेरयति परमनार्यः शक्तिविहीनोपि जगदभिद्रोहे ।
तेजयति शस्त्रधारां स्वयमसमर्था शिला छेत्तुम् ॥ २० ॥

365

स्वभावकठिनस्यास्य कृत्रिमां बिभ्रतो नतिम् ।
गुणोपि परहिंसायै चापस्य च खलस्य च ॥ २१ ॥

366

अयःपिण्ड इवोत्तप्ते खलानां हृदये क्षणात् ।
पतिता अपि नेक्ष्यन्ते गुणास्तोयकणा इव ॥ २२ ॥

367

वर्जनीयो मतिमता दुर्जनः सख्यवैरयोः ।
श्वा भवत्यपकाराय लिहन्नपि दशन्नपि ॥ २३ ॥

368

वक्रतां बिभ्रतो यस्य गुह्यमेव प्रकाशते ।
कथं खलु समो न स्यात्पुच्छेन पिशुनः शुनः ॥ २४ ॥

369

शिरसि निहितोपि नित्यं यत्नादपि सेवितो बहुस्नेहैः ।
तरुणीकच इव नीचः कौटिल्यं नैव विजहाति ॥ २५ ॥

370

पात्रमपात्रीकुरुते दहति गुणं स्नेहमाशु नाशयति ।
अमले मलं प्रयच्छति दीपज्वालेव खलमैत्री ॥ २६ ॥

371

स्नेहेन भूतिदानेन कृतः स्वच्छोपि दुर्जनः ।
दर्पणश्चान्तिके तिष्ठन्करोत्येकमपि द्विधा ॥ २७ ॥

372

यथा यथैव स्नेहेन भूयिष्ठमुपचर्यते ।
धत्ते तथा तथा तापं महावैश्वानरः खलः ॥ २८ ॥

373

स्तोकेनोन्नतिमायाति स्तोकेनायात्यधोगतिम् ।
अहो नु सदृशी वृत्तिस्तुलाकोटेः खलस्य च ॥ २९ ।

374

नैवात्मनो विनाशं गणयति पिशुनः परव्यसनहृष्टः ।
प्राप्य सहस्रविनाशं समरे नृत्यति कबन्ध इव ॥ ३० ।

375

दह्यमानाः सुतीव्रेण नीचाः परयशोग्निना ।
अशक्तास्तत्पदं गन्तुं ततो निन्दां प्रकुर्वते ॥ ३१ ॥

376

खलः सत्क्रियमाणोपि ददाति कलहं सताम् ।
दुग्धधौतोपि किं याति वायसः कलहंसताम् ॥ ३२ ॥
केषामप्येते ।

377

न विषममृतं कर्तुं शक्यं प्रयत्नशतैरपि
त्यजति कटुतां न स्वां निम्बः स्थितोपि पयोह्रदे ।
गुणपरिचितामार्यां वाणीं न जल्पति दुर्जन-
श्चिरमपि बलाध्माते लोहे कुतः कनकाकृतिः ॥ ३३ ॥
भर्तृहरेः ।

---

## अथ कृपणनिन्दा ॥ २३ ॥

378

यदर्ज्यते परिक्लेशैरर्जितं यच्च भुज्यते ।
विभज्यते यदन्तेन्यैः कस्यचिन्मास्तु तद्धनम् ॥ १ ॥

379

यत्करोत्यरतिं क्लेशं तृष्णां मोहं प्रजागरम् ।
न तद्धनं कदर्याणां हृदयव्याधिरेव सः ॥ २ ॥

एतौ क्षेमेन्द्रस्य।

380

मृत्युः शरीरगोप्तारं वसुरक्षं वसुंधरा ।
दुश्चारिणी च हसति स्वपतिं पुत्रवत्सलम् ॥ ३ ॥

बाणभट्टस्य ।

381

नन्दनरेन्द्रद्रविणैर्दुष्कृतमिव किमपि विहितमतिघोरम् ।
वसुधातलोष्मपाको विरमति नाद्यापि यत्तेभ्यः ॥ ४ ॥

वल्लभदेवस्य।

382

गाढतरनिबद्धमुष्टेः कोषनिषण्णस्य सहजमलिनस्य ।
कृपणस्य कृपाणस्य च केवलमाकारतो भेदः ॥ ५ ॥

गोभट्टस्य ।

383

कृपणसमृद्धीनामपि भोक्तारः सन्ति केचिदतिनिपुणाः ।
जलसंपदोम्बुराशेर्यान्ति वशं सर्वदैव वडवाग्नेः ॥ ६ ॥

प्रकाशवर्षस्य ।

384

प्राप्तानपि न लभन्ते भोगान्भोक्तुं स्वकर्मभिः कृपणाः ।
मुखपाकः किल भवति द्राक्षापाके बलिभुजां हि ॥ ७ ॥

रविगुप्तस्य।

385

त्यागभोगविहीनेन धनेन धनिनो यदि ।
भवामः किं न तेनैव धनेन धनिनो वयम् ॥ ८ ॥

कस्यापि।

386

कृपणेन समो दाता न भूतो न भविष्यति ।
अस्पृशन्नेव वित्तानि यः परेभ्यः प्रयच्छति ॥ ९ ॥

व्यासस्य ।

387

यो न ददाति न भुङ्क्ते सति विभवे नैव तस्य तद्द्रव्यम् ।
तृणमयकृत्रिमपुरुषो रक्षति सस्यं परस्यार्थे ॥ १० ॥

कस्यापि ।

388

कृपणेन मृतेनापि शवेनेव न दीयते ।
मांसं वर्धयता तेन काकस्योपकृतिः कृता ॥ ११ ॥

389

उदारचरितस्त्यागी याचितः कृपणोधिकम् ।
एको धनं ततः प्राणानन्यः प्राणांस्ततो धनम् ॥ १२ ॥

390

दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य ।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ॥ १३ ॥

391

नोपभोक्तुमपि क्लीबो जानात्युपचितां श्रियम् ।
ग्राम्यो विरागयत्येव रमयन्नपि कामिनीम् ॥ १४ ॥

केषामप्येते ।

---

## अथ याचकनिन्दा ॥ २४ ॥

392

देहीति वक्तुकामस्य यद्दुःखमुपजायते ।
दाता चेत्तद्विजानीयाद्दद्यात्स्वपिशितान्यपि ॥ १ ॥

कस्यापि ।

393

वेपथुर्मलिनं वक्त्रं दीना वाग्गद्गदः स्वरः ।
मरणे यानि चिह्नानि तानि चिह्नानि याचके ॥ २ ॥

व्यासस्य ।

394

भ्रातर्धातरशेषयाचकजने वैरायसे सर्वदा
यस्माद्विक्रमशालिवाहनमहीभृन्मुञ्जभोजादयः ।
अत्यन्तं चिरजीविनो न विहितास्ते विश्वजीवातवो
मार्कण्डध्रुवलोमशप्रभृतयः सृष्टाः प्रभूतायुषः ॥ ३ ॥

395

उड्डीना गुणपक्षिणः सुखफलान्याराद्दिकीर्णान्यधः
पर्यस्ताः परितो यशःस्तबकिताः संपल्लतापल्लवाः ।
प्रागेवापसृतः प्रमोदहरिणश्छाया कथान्तं गता
दैन्यारण्यमतङ्गजेन महता भग्नेभिमानद्रुमे ॥ ४ ॥

396

विद्यावतः कुलीनस्य धनं याचितुमिच्छतः ।
कण्ठे पारावतस्येव वाङ्करोति गतागतम् ॥ ५ ॥

397

दक्षिणाशाप्रवृत्तस्य प्रसारितकरस्य च ।
तेजस्तेजस्विनोर्कस्य हीयतेन्यस्य का कथा ॥ ६ ॥

398

गुरुतामुपयाति यन्मृतः
पुरुषस्तद्विदितं मयाधुना ।
ननु लाघवहेतुरर्थिता
न मृते तिष्ठति सा मनागपि ॥ ७ ॥

399

साधुरेवार्थिभिर्याच्यः क्षीणवित्तोपि सर्वदा ।
शुष्कोपि हि नदीमार्गः खन्यते सलिलार्थिभिः ॥ ८ ॥

400

तृणादपि लघुस्तूलस्तूलादपि हि याचकः ।
वायुना किं न नीतोसौ मामयं प्रार्थयिष्यति ॥ ९ ॥

केषामप्येते ।

## अथ दरिद्रनिन्दा ॥ २५ ॥

401

उत्थाय हृदि लीयन्ते दरिद्राणां मनोरथाः ।
बालवैधव्यदग्धानां कुलस्त्रीणां कुचा इव ॥ १ ॥

कस्यापि ।

402

हे दारिद्र्य नमस्तुभ्यं सिद्धोहं त्वत्प्रसादतः ।
पश्याम्यहं जगत्सर्वं न मां पश्यति कश्चन ॥ २ ॥

कस्यापि ।

403

इह लोकेपि धनिनां परोपि स्वजनायते ।
स्वजनोपि दरिद्राणां तत्क्षणाद्दुर्जनायते ॥ ३ ॥

404

रोगी चिरप्रवासी परान्नभोजी परावसथशायी ।
यज्जीवति तन्मरणं यन्मरणं सोस्य विश्रामः ॥ ४ ॥

405

परीक्ष्य सत्कुलं विद्यां शीलं शौर्यं सुरूपताम् ।
विधिर्ददाति निपुणः कन्यामिव दरिद्रताम् ॥ ५ ॥

406

दारिद्र्यानलसंतापः शान्तः संतोषवारिणा ।
याचकाशाविघातान्तर्दाहः केनोपशाम्यति ॥ ६ ॥

407

अर्था न सन्ति न च मुञ्चति मां दुराशा
त्यागान्न संकुचति दुर्ललितं मनो मे ।
याञ्ञा च लाघवकरी स्ववधे च पापं
प्राणाः स्वयं व्रजत किं प्रविलम्बितेन ॥ ७ ॥

माघकवेः ।

408

मारोदीश्चिरमेहि वस्त्ररुचिरान्दृष्ट्वाद्य बालानिभा-
नायातस्तव वत्स दास्यति पिता ग्रैवेयकं वाससी ।

श्रुत्वैवं गृहिणीवचांसि निकटे कुड्यस्य निष्किञ्चनो
निःश्वस्याश्रुजलप्लवप्लुतमुखः पान्थः पुनः प्रस्थितः ॥ ८ ॥

409

वासःखण्डमिदं प्रयच्छ यदि वा स्वाङ्के गृहाणार्भकं
रिक्तं भूतलमत्र नाथ भवतः पृष्ठे पलालोच्चयः ।
दंपत्योरिति जल्पितं निशि यदा चौरः प्रविष्टस्तदा
लब्धं कर्पटमन्यतस्तदुपरि क्षिप्त्वा रुदन्निर्गतः ॥ ९ ॥

410

वृद्धोन्धः पतिरेष मञ्चकगतः स्थूणावशेषं गृहं
कालोभ्यर्णजलागमः कुशलिनी वत्सस्य वार्तापि नो ।
यत्नात्संचिततैलबिन्दुघटिका भग्नेति पर्याकुला
दृष्ट्वा गर्भभरालसां निजवधूं श्वश्रूश्चिरं रोदिति ॥ १० ॥

411

अम्बा तुष्यति न मया न स्नुषया सापि नाम्बया न मया ।
अहमपि न तया न तया वद राजन्कस्य दोषोयम् ॥ ११ ॥

दरिद्रस्य दोषः । केषामप्येते ।

412

चण्डालश्च दरिद्रश्च द्वावेतौ सदृशाविह ।
चण्डालस्य न गृह्णन्ति दरिद्रो न प्रयच्छति ॥ १२ ॥

श्रीवाल्मीकेः ।

---

## अथ मूर्खनिन्दा ॥ २६ ॥

413

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम् ।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति ॥ १ ॥

चाणक्यस्य ।

414

वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा जडे
न तु खलु तयोर्ज्ञाने शक्तिं करोत्युपहन्ति वा ।

भवति च पुनर्भूयान्भेदः फलं प्रति तद्यथा
प्रभवति शुचिर्बिम्बग्राहे मणिर्न मृदां चयः ॥ २ ॥
कालिदासस्य ।

415

लभेत सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडय-
न्पिबेच्च मृगतृष्णिकासु सलिलं पिपासार्दितः ।
कदाचिदपि पर्यटञ्छशविषाणमासादये-
न्न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् ॥ ३ ॥

416

प्रसह्य मणिमुद्धरेन्मकरवक्त्रदंष्ट्राङ्कुरा-
त्समुद्रमपि संतरेत्प्रचलदूर्मिमालाकुलम् ।
भुजंगमपि कोपितं शिरसि पुष्पवद्धारये-
न्न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् ॥ ४ ॥
एतौ भर्तृहरेः ।

417

मूर्खो हि जल्पतां पुंसां श्रुत्वा वाचः शुभाशुभाः ।
अशुभं वाक्यमादत्ते पुरीषमिव शूकरः ॥ ५ ॥
व्यासस्य ।

418

उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये ।
पयःपानं भुजंगानां केवलं विषवर्धनम् ॥ ६ ॥
चाणक्यस्य ।

---

## अथ तृष्णानिन्दा ॥ २७ ॥

419

बलिभिर्मुखमाक्रान्तं पलितैरङ्कितं शिरः ।
गात्राणि शिथिलायन्ते तृष्णैका तरुणायते ॥ १ ॥
भर्तृहरेः ।

420

तृष्णे देवि नमस्तुभ्यं धैर्यविघ्नविकारिणि ।
विष्णुस्त्रैलोक्यनाथोपि यत्त्वया वामनीकृतः ॥ २ ॥
कस्यापे ।

421

भ्रान्तं याचनतत्परेण मनसा देहीति वाक्प्रेरिता
भुक्तं मानविवर्जितं परगृहे साशङ्कया काकवत् ।
साक्षेपं भ्रुकुटीकटाक्षकुटिलं दृष्टं खलानां मुखं
तृष्णे देवि यदन्यदिच्छसि पुनस्तत्रापि सज्जा वयम् ॥ ३ ॥

422

नास्त्यन्या तृष्णया तुल्या कापि स्त्री सुभगा क्वचित् ।
या प्राणानपि मुष्णन्ती भवत्येवाधिकं प्रिया ॥ ४ ॥

423

च्युता दन्ताः सिताः केशा दृङ्निरोधः पदे पदे ।
पातसज्जमिमं देहं तृष्णा साध्वी न मुञ्चति ॥ ५ ॥

424

तृष्णे त्वमपि तृष्णान्धा त्रिषु स्थानेषु वर्तसे ।
व्याधितेष्वनपत्येषु जरापरिणतेषु च ॥ ६ ॥

425

धनेषु जीवितव्येषु स्त्रीषु भोजनवृत्तिषु ।
अतृप्ता मानवाः सर्वे याता यास्यन्ति यान्ति च ॥ ७ ॥

426

तृष्णे देवि नमस्तुभ्यं या त्वं सर्वस्य सर्वदा ।
उत्पादयस्ययत्नेन गोष्पदे सागरभ्रमम् ॥ ८ ॥

427

अपि मेरूपमं प्राज्ञमपि शूरमपि स्थिरम् ।
तृणीकरोति तृष्णैषा निमेषेण नरोत्तमम् ॥ ९ ॥

केषामप्येते ।

---

## अथ लोभनिन्दा ॥ २८ ॥

428

लोभः सदा विचिन्त्यो लुब्धेभ्यः सर्वतो भयं दृष्टम् ।
कार्याकार्यविचारो लोभविमूढस्य नास्त्येव ॥ १ ॥

429

अतिसाहसमतिदुष्करमत्याश्चर्यं च दानमर्थानाम् ।
योपि ददाति शरीरं न ददाति स वित्तलेशमपि ॥ २ ॥

430

केपि स्वभावलुब्धास्तीव्रतरां यातनामपि सहन्ते ।
न तु संत्यजन्ति वित्तं मात्सर्यमिवाधमाः सततम् ॥ ३ ॥

431

और्वा इवातिलुब्धा भवन्ति धनलवणवारिबहुतृष्णाः ।
तृणलवमिव निजदेहं त्यजन्ति लेशं न वित्तस्य ॥ ४ ॥

432

सत्यप्रशमतपोभिः सत्यधनैः शास्त्रवेदिभिर्विजितः ।
लोभोवटं प्रविष्टः कुटिलं हृदयं किराटानाम् ॥ ५ ॥

एते क्षेमेन्द्रस्य ।

433

नात्यर्थमर्थार्थनया लुब्धमुद्वेजयेज्जनम् ।
अब्धिर्दत्ताश्चरत्नश्रीर्मथ्यमानोसृजद्विषम् ॥ ६ ॥

434

प्रायेण धनिनामेव धनलोभो निरन्तरम् ।
पश्य कोटिद्वयोपेतं लक्षाय प्रणतं धनुः ॥ ७ ॥

एतौ कयोरपि ।

---

## अथ दैवाख्यानम् ॥ २९ ॥

435

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे
विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तः सदा संकटे ।
रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारितः
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे ॥ १ ॥

भर्तृहरेः ।

436

नमस्यामो देवान्ननु हतविधेस्तेपि वशगा
विधिर्वन्द्यः सोपि प्रतिनियतकर्मैकफलदः ।
फलं कर्मायत्तं यदि किममरैः किं च विधिना
नमस्तत्कर्मभ्यो विधिरपि न येभ्यः प्रभवति ॥ २ ॥

437

खल्वाटो दिवसेश्वरस्य किरणैः संतापितो मस्तके
वाञ्छन्देशमनातपं विधिवशाद्बिल्वस्य मूलं गतः ।
तत्राप्यस्य महाफलेन पतता भग्नं सशब्दं शिरः
प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यान्त्यापदः ॥ ३ ॥

438

मज्जत्वम्भसि यातु मेरुशिखरं शत्रूञ्जयत्वाहवे
वाणिज्यं कृषिसेवनादि सकला विद्याः कलाः शिक्षतु ।
आकाशं विपुलं प्रयातु खगवत्कृत्वा प्रयत्नं परं
नाभाव्यं भवतीह कर्मवशतो भाव्यस्य नाशः कुतः ॥ ४ ॥

एते भर्तृहरेः ।

439

स्ववशः करोति कर्म प्रमादतः परवशो भवति ।
स्ववशो रोहति वृक्षं निपतत्यवशस्ततः पुरुषः ॥ ५ ॥

कस्यापि ।

440

किं त्वं न वेत्सि जगति प्रख्यातं लाभकारणे मूलम् ।
विधिलिखिताक्षरमालं फलति कपालं न भूपालः ॥ ६ ॥

441

द्वीपादन्यस्मादपि मध्यादपि जलनिधेर्दिशोप्यन्तात् ।
आनीय झटिति घटयति विधिरभिमतमभिमुखीभूतः ॥ ७ ॥

442

भाग्यवन्तं प्रसूयेथा मा शूरं ना च पण्डितम् ।
शूराश्च कृतविद्याश्च वने सीदन्ति पाण्डवाः ॥ ८ ॥

443

गजभुजंगविहंगमबन्धनं
शशिदिवाकरयोर्ग्रहपीडनम् ।
मतिमतां च विलोक्य दरिद्रतां
विधिरहो बलवानिति मे मतिः ॥ ९ ॥

444

न केवलं मनुष्येषु दैवं देवेष्वपि प्रभुः ।
सति मित्रे धनाध्यक्षे चर्मप्रावरणो हरः ॥ १० ॥

445

अम्भोधिः स्थलतां स्थलं जलधितां धूलीलवः शैलतां
मेरुर्मृत्कणतां तृणं कुलिशतां वज्रं तृणक्लीबताम् ।
वह्निः शीतलतां हिमं दहनतामायाति यस्येच्छया
लीलादुर्ललिताद्भुतव्यसनिने दैवाय तस्मै नमः ॥ ११ ॥

446

अरक्षित तिष्ठति दैवरक्षितं
सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति ।
जीवत्यनाथोपि वने विसर्जितः
कृतप्रयत्नोपि गृहे न जीवति ॥ १२ ॥

447

सच्छिद्रो मध्यकुटिलः कर्णः स्वर्णस्य भाजनम् ।
धिग्दैवं निर्मलं नेत्रं पात्रं कज्जलभस्मनः ॥ १३ ॥

448

दाता बलिः प्रार्थयिता च विष्णु-
र्दानं च भूर्वाजिमखस्य कालः ।
नमोस्तु तस्यै भवितव्यतायै
यस्याः फलं बन्धनमेव जातम् ॥ १४ ॥

केषामप्येते ।

449

भगवन्तौ जगन्नेत्रे सूर्याचन्द्रमसावपि ।
पश्य गच्छत एवास्तं नियतिः केन लङ्घ्यते ॥ १५ ॥
शूद्रकवेः ।

450

प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ
विफलत्वमेति बहुसाधनता ।
अवलम्बनाय दिनभर्तुरभू-
न्न पतिष्यतः करसहस्रमपि ॥ १६ ॥
माघकवेः ।

451

प्रियसखि विपद्दण्डप्रान्तप्रपातपरंपरा-
परिचयचले चिन्ताचक्रे निधाय विधिः खलः ।
मृदमिव बलात्पिण्डीकृत्य प्रगल्भकुलालव-
द्भ्रमयति मनो नो जानीमः किमत्र करिष्यति ॥ १७ ॥
विज्जकायाः ।

452

किं करोति नरः प्राज्ञः शूरो वाप्यथ पण्डितः ।
दैवं यस्य छलान्वेषि करोति विफलाः क्रियाः ॥ १८ ॥
चाणक्यस्य ।

453

यन्मनोरथशतैरगोचरं
न स्पृशन्ति कवयो गिरापि यत् ।
स्वप्नवृत्तिरपि यत्र दुर्लभा
लीलयैव विदधाति तद्विधिः ॥ १९ ॥
दैवगणस्य ।

---

## अथोद्यमाख्यानम् ॥ ३० ॥

454

न दैवमिति संचिन्त्य त्यजेदुद्योगमात्मनः ।
अनुद्यमेन कस्तैलं तिलेभ्यः प्राप्तुमर्हति ॥ १ ॥

455

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी-
र्दैवं हि दैवमिति कापुरुषा वदन्ति ।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या
यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोत्र दोषः ॥ २ ॥

कृष्णमिश्रस्य ।

456

विहाय पौरुषं यो हि दैवमेवावलम्बते ।
प्रासादसिंहवत्तस्य मूर्ध्नि तिष्ठन्ति वायसाः ॥ ३ ॥

457

उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः ।
नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः ॥ ४ ॥

458

पूर्वजन्मजनितं पुराविदः
कर्म दैवमिति संप्रचक्षते ।
उद्यमेन तदुपार्जितं चिरा-
द्दैवमुद्यमवशं न तत्कथम् ॥ ५ ॥

459

दैवं पुरुषकारेण साध्यसिद्धिनिबन्धनम् ।
योतिक्रमितुमिच्छेत स लोके नावसीदति ॥ ६ ॥

460

कामपि श्रियमासाद्य यस्तद्बृद्धौ न चेष्टते ।
तस्यायतिषु न श्रेयो बीजभोजिकुटुम्बवत् ॥ ७ ॥

केषामप्येते ।

461

संपदा सुस्थितंमन्यो भवति स्वल्पयापि यः ।
कृतकृत्यो विधिर्मन्ये न वर्धयति तस्य ताम् ॥ ८ ॥

462

असंपादयतः कांचिदर्थं जातिक्रियागुणैः ।
यदृच्छाशब्दवत्पुंसः संज्ञायै जन्म केवलम् ॥ ९ ॥

एतौ माघकवेः ।

# अथ प्रकीर्णकाख्यानम् ॥ ३१ ॥

463

दानाय लक्ष्मीः सुकृताय विद्या
चिन्ता परब्रह्मविनिश्चयाय ।
परोपकाराय वचांसि यस्य
वन्द्यस्त्रिलोकीतिलकः स एकः ॥ १ ॥

श्रीदेवगणदेवानाम् ।

464

निष्कलङ्ककलयैकयापि यः
संयुतः स खलु पूज्यते जनैः ।
भद्र पश्य जलजोपि धार्यते
शंकरेण शिरसा निशाकरः ॥ २ ॥

शार्ङ्गधरस्य ।

465

एके सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थं परित्यज्य ये
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाविरोधेन ये ।
तेमी मानुषराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये
ये तु घ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे ॥ ३ ॥

भर्तृहरेः ।

466

अन्यमुखे दुर्वादो यः प्रियवदने स एव परिहासः ।
इतरेन्धनजन्मा यो धूमः सोगुरुभवो धूपः ॥ ४ ॥

गोवर्धनाचार्यस्य ।

467

अहो बत महत्कष्टं विपरीतमिदं जगत् ।
येनापत्रपते साधुरसाधुस्तेन तुष्यति ॥ ५ ॥

468

अदाता पुरुषस्त्यागी धनं संत्यज्य गच्छति ।
दातारं कृपणं मन्ये मृतोप्यर्थं न मुञ्चति ॥ ६ ॥

एतौ व्यासस्य ।

469

दातव्यं भोक्तव्यं सति विभवे संचयो न कर्तव्यः ।
पश्येह मधुकरीणां संचितमर्थं हरन्त्यन्ये ॥ ७ ॥

470

अशठमलोलमजिह्मं त्यागिनमनुरागिणं विशेषज्ञम् ।
यदि नाश्रयति नरं श्रीः श्रीरेव हि वञ्चिता तत्र ॥ ८ ॥

471

या स्वसद्मनि पद्मेपि संध्यावधि विजृम्भते ।
इन्दिरा मन्दिरेन्येषां कथं तिष्ठति सा चिरम् ॥ ९ ॥

472

रक्षन्ति कृपणाः पाणौ द्रव्यं क्रव्यमिवात्मनः ।
तदेव सन्तः सततमुत्सृजन्ति यथा मलम् ॥ १० ॥

473

सद्विद्या यदि का चिन्ता वराकोदरपूरणे ।
शुकोप्यशनमाप्नोति राम रामेति च ब्रुवन् ॥ ११ ॥

474

ददतो युद्धचमानस्य पठतः पुलको न चेत् ।
आत्मनश्च परेषां च धिक्त्यागं पौरुषं वचः ॥ १२ ॥

475

न तद्भुक्तं न तत्पीतं न तत्सुप्तं न तद्गतम् ।
यन्मांसमाहिषक्षीरललनावाजिवर्जितम् ॥ १३ ॥

476

दुर्जनदूषितमनसां पुसां सुजनेपि नास्ति विश्वासः ।
बालः पयसा दग्धो दध्यपि फूत्कृत्य भक्षयति ॥ १४ ॥

477

करोति निर्मलाधारस्तुच्छस्यापि महार्घताम् ॥
अम्बुनो बिन्दुरल्पोपि शुक्तौ मुक्ताफलं भवेत् ॥ १५ ।

478

अन्तः कटुरपि लघुरपि सद्वृत्तं यः पुमान्न संत्यजति ।
स भवति सद्यो वन्द्यः सर्षप इव सर्वलोकस्य ॥ १६ ॥

479

किमाद्यत्वगुरुत्वाभ्यां चरमोपि गुणैर्गुरुः ।
केतकीकुसुमे पश्य लघुपत्रेपि गौरवम् ॥ १७ ॥

480

पतितोपि राहुवदने तरणिर्बोधयति पद्मखण्डानि ।
भवति विपद्यपि महतामङ्गीकृतवस्तुनिर्वाहः ॥ १८ ॥

481

निःसारस्य पदार्थस्य प्रायेणाडम्बरो महान् ।
न सुवर्णे ध्वनिस्तादृग्यादृक्कांस्ये प्रजायते ॥ १९ ॥

482

स एव धन्यो विपदि स्वरूपं यो न मुञ्चति ।
त्यजत्यर्ककरैस्तप्तं हिमं देहं न शीतताम् ॥ २० ॥

483

मासि मासि समा ज्योत्स्ना पक्षयोरुभयोरपि ।
तत्रैकः शुक्लपक्षोभूद्यशः पुण्यैरवाप्यते ॥ २१ ॥

484

सौभाग्यं विरलस्य स्यात्सममर्मगुणेष्वपि ।
षट्त्रिंशदायुधा पृथ्वी खड्गायत्तैव कथ्यते ॥ २२ ॥

485

हस्तादपि न दातव्यं गृहादपि न दीयते ।
परोपकरणार्थाय वचनेपि दरिद्रता ॥ २३ ॥

486

पातितोपि कराघातैरुत्पतत्येव कन्दुकः ।
प्रायेण हि सुवृत्तानामस्थायिन्यो विपत्तयः ॥ २४ ॥

487

पदस्थितस्य पद्मस्य मित्रे वरुणभास्करौ ।
पदच्युतस्य तस्यैव क्लेददाहकरावुभौ ॥ २५ ॥

488

वनानि दहतो वह्नेः सखा भवति मारुतः ।
स एव दीपनाशाय कृशे कस्यास्ति सौहृदम् ॥ २६ ॥

489

गतः स कालो यत्रासीदवज्ञा कल्पशाखिनाम् ।
उदुम्बरफलेभ्योपि स्पृहयामोधुना वयम् ॥ २७ ॥

490

भोज्यं भोजनशक्तिश्च रतिशक्तिर्वरस्त्रियः ।
विभवो दानशक्तिश्च नाल्पस्य तपसः फलम् ॥ २८ ॥

491

व्यथयतितरामुपेतः स्वच्छप्रकृतीनवद्यलेशोपि ।
भृशमुद्विजते चक्षुः सक्तेन रजःकणेनापि ॥ २९ ॥

492

शरदि समग्रनिशाकरकरशतहततिमिरसंचया रजनी ।
जलदान्तरितार्कामपि दिवसच्छायां न पूरयति ॥ ३० ॥

493

वरमुन्नतलाङ्गूलात्सटाधूननभीषणात् ।
सिंहात्पादप्रहारोपि न शृगालाधिरोहणम् ॥ ३१ ॥

केषामप्येते ।

---

## अथ समस्याख्यानम् ॥ ३२ ॥

494

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
दलितश्चकितश्छन्नस्तव सैन्ये विसर्पति ॥ १ ॥

कस्यापि ।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपादिति पादद्वयं समस्या ।

495

कामं कामदुघे धुक्ष्व मित्राय वरुणाय च ।
वयं वीरेश दानेन सर्वान्कामानशीमहि ॥ २ ॥

कस्यापि ।

कामं कामदुघे धुक्ष्व मित्राय वरुणाय च । सर्वान्कामानशीमहि इति पादत्रयं समस्या ।

496

असमाने समानत्वं भविता कलहे मम ।
इति मत्त्वा ध्रुवं मानी मृगात्सिंहः पलायते ॥ ३ ॥

कस्यापि ।

मृगात्सिंहः पलायत इति पादैकं समस्या ।

497

विद्यायां दुर्मदो येषां कार्पण्यं विभवे सति ।
तेषां दैवाभिशप्तानां सलिलादग्निरुत्थितः ॥ ४ ॥

कस्यापि ।

सलिलादग्निरुत्थित इति पादैकं समस्या ।

498

दामोदरकराघातविह्वलीकृतचेतसा ।
दृष्टं चाणूरमल्लेन शतचन्द्रं नभस्तलम् ॥ ५ ॥

बाणस्य ।

शतचन्द्रं नभस्तलमिति पादैकं समस्या ।

499

विधे पिधेहि शीतांशुं यावदायाति मे पतिः ।
आयाते दयिते कुर्याः शतचन्द्रं नभस्तलम् ॥ ६ ॥

कस्यापि ।

500

भीष्ममीष्मर्तुसंतापशून्यरथ्यान्तरस्थयोः ।
अन्योन्यालापसुखिनोर्यूनोश्चन्द्रायते रविः ॥ ७ ॥

कस्यापि ।

यूनोश्चन्द्रायते रविरिति पादैकं समस्या ।

501

स्वस्ति क्षत्रियदेवाय जगद्देवाय भूभुजे ।
यद्यशः पुण्डरीकान्तर्गगनं भ्रमरायते ॥ ८ ॥

कस्यापि ।

गगनं भ्रमरायत इति पादैकं समस्या ।

502

यत्कण्ठे गरलं विराजतितरां शीर्षे च मन्दाकिनी
वामाङ्के गिरिजामुखं कटितटे शार्दूलचर्माम्बरम् ।
माया यस्य भवं रुणद्धि सकलं तस्मै नमः शंभवे
जम्बूवज्जलबिन्दुवज्जलजवज्जम्बालवज्जालवत् ॥ ९ ॥

कस्यापि ।

जम्बूवज्जलबिन्दुवज्जलजवज्जम्बालवज्जालवदिति पादैकं समस्या ।

503

रथस्यैकं चक्रं भुजगयमिताः सप्त तुरगा
निरालम्बो मार्गश्चरणरहितः सारथिरपि ।
रविर्गच्छत्यन्तं प्रतिदिनमपारस्य नभसः
क्रियासिद्धिः सत्त्वे वसति महतां नोपकरणे ॥ १० ॥

कस्यापि ।

क्रियासिद्धिः सत्त्वे वसति महतां नोपकरण इति पादैकं समस्या ।

504

विजेतव्या लङ्का चरणतरणीयो जलनिधि-
र्विपक्षः पौलस्त्यो रणभुवि सहायाश्च कपयः ।
तथाप्येको रामः सकलमवधीद्राक्षसकुलं
क्रियासिद्धिःसत्त्वे वसति महतां नोपकरणे ॥ ११ ॥

कस्यापि ।

505

घटो जन्मस्थानं मृगपरिजनो भूर्जवसनो
वने वासः कन्दाशनमपि च दुःस्थं वपुरिदम् ।
तथाप्येकोगस्त्यः सकलमपिबद्वारिधिजलं
क्रियासिद्धिः सत्त्वे वसति महतां नोपकरणे ॥ १२ ॥

कस्यापि ।

506

अस्माकं जलजीविनां जलमिदं सद्वाजिराजित्रजैः
पातव्यं पररक्तरक्तमनसां तृप्तिः पतीनां क्षयः ।

मत्त्वैवं महराजदेव नृपते त्वज्जैत्रयात्रोत्सवे
मत्सी रोदिति मक्षिका च हसति ध्यायन्ति वैरिस्त्रियः॥१३॥
श्रीआनन्ददेवानाम्।

मत्सी रोदिति मक्षिका च हसति ध्यायन्ति वैरिस्त्रिय इति पादैकं समस्या।

507

स्फुरिते जठरे विष्णोर्नवनीतभुजः शिशोः।
मक्षिकापादघातेन कम्पितं भुवनत्रयम्॥ १४
शार्ङ्गधरस्य।

मक्षिकापादघातेन कम्पितं भुवनत्रयमिति पादद्वयं समस्या।

508

रामाभिषेके मदविह्वलायाः
करच्युतो हेमघटस्तरुण्याः।
सोपानमासाद्य करोति शब्दं
ठं ठं ठ ठं ठं ठ ठ ठं ठ ठं ठः॥ १५॥
कस्यापि।

ठंठमिति चरमपादः समस्या।

509

उन्नमय्य सकचग्रहमास्यं
चुम्बति प्रियतमे हठवृत्त्या।
हुं हु हुं हु हु हु हुं हु हु हुं हुं
कूजितं भवति मानधनायाः॥ १६॥
विज्जकायाः।

हुं ह हुं हु इति पादैकं समस्या।

510

प्रलयसहायकनवती गोलानाचम्य सकलभूमिरुहाम्।
विलसति दवदहनावलिरिह जलवाहः परं शरणम्॥ १७॥
मुरारेः।

सहायकनवती गोलानाचम्येति पादैकं समस्या।

511

सुरताय नमस्तस्मै जगदानन्दहेतवे ।
आनुषङ्गि फलं यस्य भोजराज भवादृशाः ॥ १८ ॥
सरस्वतीकुटुम्बबुद्धितुः ।

सुरताय नमस्तस्मै जगदानन्दहेतव इति पादद्वयं समस्या ।

512

अतसीपुष्पसंकाशं खं वीक्ष्य जलदागमे ।
ये वियोगेपि जीवन्ति न तेषां विद्यते भयम् ॥ १९ ॥
मेघस्य ।

अतसीपुष्पसंकाशं न तेषां विद्यते भयमिति पादद्वयं समस्या ।

513

मम करग्रहणाय पणीकृतं
यदि न राघवतोप्यधिरोहति ।
सखि तदैवमभून्मम जीवितं
शशकशृङ्गमयं कठिनं धनुः ॥ २० ॥
कस्यापि ।

शशकशृङ्गमयं कठिनं धनुरिति पादैकं समस्या ।

---

## अथ प्रहेलिकापह्नुतिकूटाख्यानम् ॥ ३३ ॥

514

अपदो दूरगामी च साक्षरो न च पण्डितः ।
अमुखः स्फुटवक्ता च यो जानाति स पण्डितः ॥ १ ॥
कस्यापि ।

अत्र लेखपत्रं प्रकटीकृतम् ।

515

वने जाता वनं त्यक्त्वा वने तिष्ठति नित्यशः ।
पण्यस्त्री न च सा वेश्या यो जानाति स पण्डितः ॥२॥
कस्यापि ।

अत्र नौका प्रकटीकृता नागवल्ली च ।

516

गोपालो न च गोपालस्त्रिशूली न च शंकरः ।
चक्रपाणिः स नो विष्णुर्यो जानाति स पण्डितः ॥ ३ ॥

कस्यापि ।

अत्र महोक्षः प्रकटीकृतः ।

517

उच्छिष्टं शिवनिर्माल्यं वमनं शवकर्पटम् ।
काकविष्ठासमुत्पन्नाः पञ्चैतेतिपवित्रकाः ॥ ४ ॥

उच्छिष्टं दुग्धम् । शिवनिर्माल्यं गङ्गा । वमनं मधु । शवकर्पटं पट्टाम्बरम् । काकविष्ठासमुद्भूताः पिप्पलादय इति प्रकटीकृताः ।

518

विजितात्मभवद्वेषिगुरुपादहतो जनः ।
हिमापहामित्रधरैर्व्याप्तं व्योमाभिनन्दति ॥ ५ ॥

दण्डिनः ।

विना गरुडेन जित इन्द्रः । तदात्मभवोर्जुनः । तद्वेषी कर्णः । तद्गुरुः सूर्यः । तत्पादहतस्तत्किरणसंतप्तः । हिमापहाग्निः । तदमित्रं पानीयम् । तद्धरा मेघाः । इति प्रकटीकृतम् ।

519

काचिन्मृगाक्षी प्रियविप्रयोगे
गन्तुं निशापारमपारयन्ती ।
उद्गातुमादाय करेण वीणां
मृगाङ्कमालोक्य शनैरहासीत् ॥ ६ ॥

कस्यापि ।

वीणां किमर्थमहासीत् यतोयं गीतप्रियो मृगाङ्कमृगो मत्प्रयुक्तं गीतमाकर्णयितुं ततश्चेदवतरति तदा चन्द्रो निष्कलङ्कः स्यात् । मन्मुखसाम्यं च लभेत । प्रियविप्रयोगे संतापकरो मे हिमांशुः । अतोस्य शत्रोश्चन्द्रमसो मन्मुखसाम्यं मा भूदिति वीणामहासीत् । इति प्रकटितोर्थः ।

520

तरुण्यालिङ्गितः कण्ठे नितम्बस्थलमाश्रितः ।
गुरूणां संनिधानेपि कः कूजति मुहुर्मुहुः ॥ ७ ॥

अत्र कलशः प्रकटीकृतः ।

521

अवलोक्य स्तनौ वध्वा गुञ्जाफलविभूषितौ ।
निःश्वस्य रोदितुं लग्ना कुतो व्याधकुटुम्बिनी ॥ ८ ॥

धर्मदासस्यैतौ ।

शबरस्त्री पुत्रजायायाः स्तनौ गुञ्जाफलालंकृतौ दृष्ट्वा कुतो निःश्वस्य रुरोद । यतो मत्पुत्र एतस्यामनुरक्तस्तथा क्षीणतां गतो यथा गजान्विनिहत्य गजमुक्ताफलहारैः स्तनौ विभूषयितुं नालम् । अतो निष्प्रयासग्राह्यैर्गुञ्जाफलैर्विभूषयति । पुत्रे च क्षीणे सति तदर्जितनिर्वाहवृत्तेः सर्वस्यापि कुटुम्बस्य जीवितसंदेहः । अतो व्याधकुटुम्बिनी दुःखान्निःश्वस्य रोदितुं लग्ना । इति प्रकटीकृतोयमर्थः ।

522

गीत्वा किमपि व्याधः शृङ्गं जग्राह तरुणहरिणस्य ।
तमथ समीक्ष्योद्यतकरमेणीमपि लज्जिता व्याधी ॥ ९ ॥

शार्ङ्गधरस्य ।

अस्यार्थः । व्याधः किमप्यद्भुतं गीत्वा गीतमूर्छनाविलीनचित्तस्य तरुणहरिणस्य शृङ्गं जग्राह । किमर्थं जग्राह यतो मद्गीतसुखितस्त्वं याचकस्य मे इदं शिरोदानं देहि । अथ तं हरिणं शिरोदानायोद्यतकरं समीक्ष्य तज्जायां हरिणीं पत्युर्भक्त्या निजशिरोदानायोद्यतकरां च समीक्ष्य व्याधसार्थचारिणी व्याधी लज्जिता । केन हेतुना लज्जिता यतोयं हरिणो दाता इयं च हरिणी पतिभक्ता दातुर्जाया मत्कान्तो याचकः अहं च याचकजाया वरमेते पशवो न वयं मनुष्या इति लज्जिता । अयं प्रथमोर्थः ।

अथवा व्याधजायायाः परिणीतः पूर्वपुरुषो मृतः स च विद्यमानः संगृहीतो द्वितीयः पुरुषः । तं च विलोक्य चिन्तितवती । यतो निजकान्तवियोगासहिष्णुः शिरोदानायोद्यतकरा पतिभक्ता वरमियं हरिणी । परिणीतप्रियमरणे जीविता संगृहीतभर्तृका चासती नाहं मानुषीति लज्जिता । इति द्वितीयोर्थः ।

अथवा इति चिन्तितं तया । यतो येन कर्णेन गीतं श्रुतं तस्य दातुः कर्णस्य पुरो याच्ञायै करो न प्रसारितो व्याधेन । नीरसकठिनकुटिलशृङ्गस्य पुरः करः प्रसारितः । अनुचितं कृतं मूढेन । कृतेप्यनुचिते अकृतपात्रविचारो गीतरसज्ञः स्वभावकृपणं याचकं जानन्मृगयूथपतिर्निजशिरोदानायोद्यतकरो जातः । अतो व्याधी तं हरिणं चतुरं ज्ञात्वा तं च व्याधं मूर्खं ज्ञात्वा हरिणीं च तादृशीं पतिभक्तां वीक्ष्य लज्जिता । इति तृतीयोर्थः ।

## अथापह्नुतिः ॥

523

रुचिरस्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति ।
तत्किं तरुणी नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य ॥१०॥

524

सीत्कारं संजनयति व्रणयत्यधरं तनोति रोमाञ्चम् ।
नागरिकः किमु मिलितो नहि नहि सखि हैमनः पवनः॥११॥

धर्मदासस्यैतौ ।

525

वर्षति मेघे नितरामपतितया नैव शक्यते स्थातुम् ।
उत्कण्ठितासि तरले नहि नहि सखि पिच्छिलः पन्थाः ॥१२॥

कस्यापि ।

526

प्रहरति न पञ्चबाणः केवलमबले निमेषोपि ।
वर्षति परं न देवः क्षणदापि मृगाक्षि विप्रयोगे ते ॥ १३ ॥

## अथ कूटाः

527

केशवं पतितं दृष्ट्वा द्रोणो हर्षमुपागतः ।
रुदन्ति कौरवाः सर्वे हा केशव कथं गतः ॥ १४ ॥

कस्यापि ।

के पानीये । शवं मृतकम् । द्रोणः कृष्णकाकः । कौरवाः सृगालाः । इति सुबोधमेतत्पद्यम् ।

528

अम्बरमम्बुनि पत्नमरातिः
पीतमहीनगणस्य ददाह ।
यस्य वधूस्तनयं गृहमब्जा
पातु स वो हरलोचनवह्निः ॥ १५ ॥

दूरान्वयः । कस्यापि ।

स कृष्णो वो युष्मान्पातु यस्याम्बरं पीतम् । यस्य गृहमम्बुनि । यस्य पत्नमहीनगणस्यारातिः । यस्य वधूरब्जा । यस्य तनयं हरलोचनवह्निर्ददाह । इति सुबोधमेतत्पद्यम् ।

529

लक्ष्मीर्यादोनिधेर्यादो नादो वादोचितं वचः ।
बिभ्यती धीवरेभ्यो या जडेष्वेव निमज्जति ॥ १६ ॥

कस्यापि ।

लक्ष्मीर्यादोनिधेः समुद्रस्य यादो जलजन्तुः अदो वचो वादोचितं न । यतो धीवरेभ्यो विचक्षणेभ्यो बिभ्यती त्रस्यन्ती जडेष्वेव कदर्येष्वेव निमज्जति तिष्ठति । इति सुबोधमेतत्पद्यम् ।

530

पानीयं पातुमिच्छामि त्वत्तः कमललोचने ।
यदि दास्यसि नेच्छामि नो दास्यसि पिबाम्यहम् ॥ १७ ॥

कस्यापि ।

यदि दासी असि नेच्छामि । नो दासी असि पिबाम्यहम् । इति सुबोधमेतत्पद्यम् ।

531

नदीज लङ्केशवनारिकेतु-
र्नगाह्वयो नाम नगारिसूनुः ।
एषोङ्गनावेषधरः प्रमाथी
जित्वा वयं नेष्यति चाद्य गा वः ॥ १८ ॥

बालभारतस्य।

नाम भो नदीज भीष्म एष दृश्यमानः अङ्गनावेषधरः स्त्रीरूपधारी लङ्केशवनारिकेतुर्वानरध्वजः नगाह्वयः अर्जुननामा यतः । किंभूतः नगारिसूनुरिन्द्रपुत्रः । उ भोः कौरवाः अयं प्रमाथी हन्ता । अद्य वो युष्मान् जित्वा गाश्च नेष्यति । इति सुबोधमेतत्पद्यम् ।

532

चञ्चद्भादशनीलनीरजयुतं सप्ताम्बुजोद्भासितं
नित्यं षोडशशोणपद्मरुचिरं धात्रानिशं सेवितम् ।
क्षीराम्भोधिगृहं सहस्रदलसत्पर्यङ्कविश्रान्ति य-
त्पायाद्वः कमलाङ्गसङ्गिशयनं तन्नीलरोचिर्महः ॥ १९ ॥

शार्ङ्गधरस्य ।

अस्य व्याख्या । तन्नीलरोचिः श्यामप्रभं महस्तेजः कृष्णलक्षणं वो युष्मान्पायात् । तत्किंभूतम् । कमलाङ्गसङ्गिशयनं लक्ष्मीसनाथशय्यम् । पुनः किंभूतम् । सहस्रदलसत्पर्यङ्कविश्रान्ति सहस्रफणादिव्यशयनशेषस्थितम् । पुनः किंभूतम् । क्षीराम्भोधिगृहं दुग्धसमुद्रनिवासम् । पुनः किंभूतम् । धात्रा नाभिसरोरुहस्थेन ब्रह्मणा अनिशं सेवितमध्यासितम् । पुनः किंभूतम् । षोडशशोणपद्मरुचिरं षोडशारुणकमलमनोहरम् । षोडशशोणपद्मानां विवृतिः । विष्णोश्चत्वारो हस्ता द्वौ चरणौ । तावन्त एव ब्रह्मणः । द्वौ करौ द्वौ चरणौ लक्ष्म्याः । एवं षोडशशोणपद्मरुचिरम् । पुनः किंभूतम् ।

नित्यमविनाशि । पुनः किंभूतम् सप्ताम्बुजोद्भासितं सप्तकमलशोभितम् । सप्ताम्बुजानां विवृतिः । चत्वारि मुखपद्मानि ब्रह्मणः । एकं नाभिसरोरुहम् । एकं विष्णोर्मुखम् । एकं लक्ष्म्या मुखम् । एवं सप्ताम्बुजोद्भासितम् । पुनः किंभूतम् । चञ्चद्द्वादशनीलनीरजयुतं शोभमानद्वादशनीलोत्पलयुक्तम् । द्वादशनीलनीरजानां विवृतिः । अष्टौ नयनानि ब्रह्मणः । द्वे विष्णोः । द्वे लक्ष्म्याः । एवं द्वादशनीलनीरजयुतम् । अत्रापह्नुतिरलंकारः । इति सुबोधमेतत्पद्यम् ।

533

विकसति नयनाभ्यां कैरवं पङ्कजं च
श्लथयति चरणाब्जं ब्रह्मचर्यं पयोधेः ।
उरसि लसति यस्य श्रेयसां संप्रदायः
स फणिनमधिशेते पद्मया पद्मनाभः ॥ २० ॥

अभिरामपशुपतेः ।

अस्य व्याख्या । स पद्मनाभः पद्मया सह फणिनं शेषमधिशेते । यस्य नयनाभ्यां चन्द्रसूर्यलक्षणाभ्यां कैरवं पङ्कजं च विकसति । यस्य चरणाब्जं गङ्गाजनकं पयोधेर्ब्रह्मचर्यं श्लथयति दूरीकरोति । यस्योरसि श्रेयसां संप्रदायः कौस्तुभमणिर्लसति । एवंविधः पद्मनाभः फणिनमधिशेते । अत्राप्यपह्नुतिरलंकारः । इति सुबोधमेतत्पद्यम् ।

---

## अथ क्रियागुप्त-कर्तृगुप्त-कर्मगुप्त-संधिगुप्त-बिन्दुमती-चित्र-भाषाचित्राख्यानम् ॥ ३४ ॥

534

आगतः पाण्डवाः सर्वेदुर्योधनसमीहया ।
तस्मै गां च सुवर्णं च रत्नानि विविधानि च ॥ १ ॥

कस्यापि ।

यो धनसमीहया आगतस्तस्मै सर्वे पाण्डवा गां च सुवर्णं च विविधानि रत्नानि च अदुः ददति स्म।

इति क्रियागुप्तम् ॥

535

गौरीनखरसादृश्यश्रद्धया शशिनं दधौ।
इहैव गोप्यते कर्ता वर्षेणापि न लभ्यते ॥ २ ॥

कस्यापि।

इः कामः तं हन्तीति इहा ईश्वरः।

इति कर्तृगुप्तम् ॥

536

अन्नवस्त्रसुवर्णानि रत्नानि विविधानि च।
ब्राह्मणेभ्यो नदीतीरे ददाति व्रज सत्वरम् ॥ ३ ॥

कस्यापि।

हे ब्राह्मण। इभ्यः समृद्धः।

इत्यपि कर्तृगुप्तम् ॥

537

एहि हे रमणि पश्य कौतुकं
धूलिधूसरतनुं दिगम्बरम्।
सापि तद्वदनपङ्कजं पपौ
भ्रातरुक्तमपि किं न बुध्यसे ॥ ४ ॥

कस्यापि।

कौ पृथिव्यां तुकं बालं पश्य।

इति कर्मगुप्तम् ॥

538

पिबतस्ते शरावेण वारि कल्हारशीतलम्।
केनेमौ दुर्विदग्धेन हृदये संनिरोपितौ ॥ ५ ॥

शरौ बाणौ। एण हरिण।

इति संधिगुप्तम् ॥

539

वटवृक्षो महानेष मार्गमावृत्य तिष्ठति ।
तावत्त्वया न गन्तव्यं यावन्नान्यत्र गच्छति ॥ ६ ॥

कस्यापि।

वटो ब्राह्मण । ऋक्षो भल्लूकः ।

इत्यपि संधिगुप्तम् ॥

540

न मयागोरसाभिज्ञं चेतः कस्मात्प्रकुप्यसि ।
अस्थानरुदितैरेभिरलमालोहितेक्षणे ॥ ७ ॥

दण्डिनः।

न निषेधे । मे मम । आगोरसाभिज्ञं अपराधरसज्ञातृ ।

इत्यपि संधिगुप्तकम् ॥

541

त्रिनयनचूडारत्नं मित्रं सिन्धोः कुमुद्वतीदयितः ।
अयमुदयति घुसृणारुणरमणीवदनोपमश्चन्द्रः ॥ ८ ॥

ह्रिं ठ ठ ठ ल्रूं ठा ठ ठुं ठि ठुं ठि ठ्वीं: ठु ठु ठुं वी ठ ठि ठ: ।
ठ ठ ठु ठ ठ ठि ठु ठृ ठा ठु ठ ठ ठ वी ठ ठ वे ठ ठ ठुं ठुं: ॥

इति बिन्दुमती ॥

542

विश्वस्य हेतुरमरैर्बहु गीयसे त्वं
विश्वंभरे शवशिवे त्रिगुणात्ममूर्ते ।
चिद्व्योमतोपि परमां प्रथमं वदन्ति
त्वां योगिनस्तुतिपराः प्रणिधानदृष्ट्या ॥ ९ ॥

शार्ङ्गधरस्य ।

अस्य वसन्ततिलकच्छन्दसो दुर्गास्तुतिरूपस्य पद्यस्य चतुर्णामपि पादानां षष्ठसप्तमाष्टमाक्षरलोपेनेन्द्रवज्रावृत्तं शिवस्तुतिश्च जायते ।

543

नमामि मामनोनुन्नमानं मुनिममानिनम् ।
नाननममानामर्मोनामानमुमेनमुम् ॥ १० ॥

शार्ङ्गधरस्य ।

नमामि नमस्करोमि । कम् । उं विष्णुम् । न केवलमुं विष्णुम् । उमेनं पार्वतीनाथम् । हरिहरावित्यर्थः । किंभूतम् । मामनोनुन्नमानम् । मा लक्ष्मीः तस्या मनसो नुन्नः अपहृतो मानो येन सः तम् । लक्ष्मीचाञ्चल्यगर्वापहारिणम् । पुनः किंभूतम् । मुनिं योगीश्वरम् । पुनः किंभूतम् । अमानिनम् । नास्ति मानो यस्यासौ तम् । पुनः किंभूतम् । नाननम् । नानाविधान्याननानि मुखानि यस्यासौ तम् । दशावतारत्वान्नैकविधमुखम् । पुनः किंभूतम् । अमानामम् । अमानमाकाशममति क्रमतीत्यमानामः तम् । पुनः किंभूतम् । ॐनामानम् । ब्रह्मस्वरूपम् । एवंविधम् उम् उमेनं च हरिं हरं च नमामि ।

द्व्यक्षरः ।

544

तारतारतरैरेतैरुत्तरोत्तरतो रुतैः ।
रतार्ता तित्तिरी रौति तीरे तीरे तरौ तरौ ॥ ११ ॥

द्व्यक्षरः कालिदासस्य ।

545

नागविशेषे शेषे शेषेशेषेपि संहृते जगति ।
हंस्यसिकालं कालं का लङ्कालङ्कने स्तुतिर्भवतः ॥ १२ ॥

देवेश्वरस्य सानुप्रासः ।

546

लीलास्मितेन शुचिना मृदुनोदितेन
व्यालोकितेन लघुना गुरुणा गतेन ।
व्याजृम्भितेन जघनेन च दर्शितेन
सा हन्ति तेन गलितं मम जीवितेन ॥ १३ ॥

दण्डिनः सानुप्रासः ।

547

मधुरया मधुबोधितमाधवी
मधुसमृद्धिसमेधितमेधया ।

मधुकराङ्गनया मुहुरुन्मद-
ध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे ॥ १४ ॥

माघकवेः कठिनानुप्राससहितं चतुर्थपादान्तयमकम् ।

548

आम्नायानामाहान्त्या वा-
ग्गीतीरीतीः प्रीतीर्भीतीः ।
भोगो रोगो मोदो मोहो
ध्येये चेच्छेत्क्षेमे देशे ॥ १५ ॥

दण्डिनश्चातुर्मातृकं विद्युन्मालाछन्दः ।

अस्य व्याख्या । आम्नायानां वेदानामन्त्या वागुपनिषदाह अकथयत् । किमाह । गीतीः ईतीः प्रीतीः भीतीः भोगः रोगः मोदः मोहः क्षेमे शुभे देशे आत्मपरमात्मानौ ध्येये इच्छेत् ।

इति चित्राणि ॥

549

उत्सरङ्गकलितोरुकटारी-
भाजिराउतभयंकरभालाः ।
सन्तु पायकगणा जय तैस्त्वं
गामगोहरमिलाप इलावी ॥ १६ ॥

कस्यापि ।

अस्य व्याख्या । हे राजन् पायकगणाः सेवकलोकाः उत्सरङ्गकलितोरुकटारीभाजिराः सन्तु । उत्सरङ्गा अतिमुदिताः कलितोरुकटाः सज्जितपृथुलकपोला ये अरीभाः शत्रुगजास्तेषां योसावाजिः सङ्ग्रामस्तं रान्ति ददतीति उत्सरङ्गकलितोरुकटारीभाजिराः । उत पुनः भयंकरभालाः भ्रुकुटीभीषणललाटाः सन्तु । तैः पायकगणैः इलापः पृथ्वीरक्षकः इलावी जितकंदर्पस्त्वम् अगोहरम् अगोग्रहं यथा स्यादेवं गां पृथिवीं जय । परदेशानात्मीयान्कुरु ।

550

नूनं बादल छाइ खेह पसरी निःश्राणशब्दः खरः
शत्रुं पाडि लुटालि तोडि हनिसौं एवं भणन्त्युद्भटाः ।
झूठे गर्व भरामघालि सहसा रे कन्त मेरे कहे
कण्ठे पाग निवेश जाह शरणं श्रीमल्लदेवं प्रभुम् ॥ १७ ॥

श्रीकण्ठपण्डितस्य ।

इति भाषाचित्रम् ॥

---

## अथ प्रश्नोत्तराख्यानम् ॥ ३५ ॥

तेष्वन्तरालापाः ।

551

गच्छन्ति क्वाजिवह्नौ हुतनिजतनवः का भिनत्ति स्वकूले
किं स्याद्योज्यं विकल्पे क्रकचनिभनखैः किं नृसिंहेन भिन्नम् ।
कीदृग्दित्याः प्रसूतिः किमनलशमनं का नृपैः पालनीया
को वन्द्यः कः प्रमार्ष्टि त्रिभुवनकलुषं स्वर्धुनीवारिपूरः ॥ १ ॥

कस्यापि ।

स्वः । धुनी । वा । रिपूरः । पुनरप्यनुलोमेन । स्वर्धुनी । वारि । पूः । अः । पुनरपि सर्वम् । स्वर्धुनीवारिपूरः ।

552

पुंसः संबोधनं किं विदधति करिणां के रुजोग्रेभिषक्किं
का शून्या ते रिपूणां नरवर नरकं कोवधीद्रोचकं किम् ।
के वा वर्षासु न स्युर्बिसमिव हरिणा किं नखाग्रैर्विभिन्नं
को वा मार्गे विसर्पन्विघटयति तरून्नर्मदावारिपूरः ॥ २ ॥

कस्यापि ।

नः । मदाः । वारि । पूः । अः । पुनरप्यनुलोमेन । नर्म । दावाः । रिपूरः । पुनः सर्वम् । नर्मदावारिपूरः ।

553

के भूषयन्ति स्तनमण्डलानि
कीदृग्युमा चन्द्रमसः कुतः श्रीः ।

किमाह सीता दशकण्ठभीता
हारामहादेवरतातमातः ॥ ३ ॥

कस्यापि।

हाराः। महादेवरता। तमातः रात्रेः। पुनः सर्वम्। हा राम हा देवर तात मातः।

554

रवेः कवेः किं समरस्य सारं
कृषेर्भयं किं किमुशन्ति भृङ्गाः।
खलाङ्गयं विष्णुपदं च केषां
भागीरथीतीरसमाश्रितानाम् ॥ ४ ॥

कस्यापि।

भाः। गीः। रथी। ईतिः। रसम्। आश्रितानाम्। पुनः सर्वम्। भागीरथीतीरसमाश्रितानाम्।

555

कः प्रार्थ्यते मदनविह्वलया युवत्या
भाति क्व पुण्ड्रकमुपैति कथं बतायुः।
क्वानादरो भवति केन च राजतेऽजं
बाह्यास्थि किं फलमुदाहर नालिकेरम् ॥ ५ ॥

कस्यापि।

ना। अलिके। अरम्। प्रतिलोमेन। रङ्के। अलिना। पुनः सर्वम्। नालिकेरम्।

556

कस्य मरौ दुरधिगमः कः कमले कथय विरचितावासः।
कैस्तुष्यति चामुण्डा रिपवस्ते वद कुतो भ्रष्टाः ॥ ६ ॥

आद्युत्तरजातिर्धर्मदासस्य।

कस्य जलस्य। कः ब्रह्मा। कैः शिरोभिः। कुतः पृथिव्याः।

557

नलिनीदलगतजललवतरलं किं यौवनं धनं चायुः।
के शशधरकरनिकरानुकारिणः सज्जना एव ॥ ७ ॥

कस्यापि।

558

किं क्रूरं स्त्रीहृदयं किं गृहिणः प्रियहिताय दारगुणाः ।
कः कामः संकल्पः किं दुष्करसाधनं प्रज्ञा ॥ ८ ॥

दण्डिनः ।

## अथ प्रश्नोत्तरेषु बाह्यालापाः ॥

559

नीचेषु यावनी वाणी का कः स्याच्छुभदो जने ।
शंभोरावरणं किं कं भजन्ते व्याधयो जनम् ॥ ९ ॥

श्रीहरिहरदेवानाम् ।

प्रश्नोत्तरं किम् । अवेलाभोजिनम् । अबे । लाभः । अजिनम् । पुनः सर्वम् । अवेलाभोजिनम् ।

560

कस्मिन्स्वपिति कंसारिः का वृत्तिरधमा नृणाम् ।
किं ब्रूते पितरं बालः किं दृष्ट्वा रमते मनः ॥ १० ॥

कस्यापि ।

प्रश्नोत्तरं किम् । शेषेसेवाबापररूपम् । शेषे । सेवा । बापर । रूपम् ।

## अथ प्रश्नोत्तरेषूक्तिप्रत्युक्तयः ॥

561

कियन्मात्रं जलं विप्र जानुदघ्नं नराधिप ।
तथापीयमवस्था ते नहि सर्वे भवादृशाः ॥ ११ ॥

प्रथमपादस्तृतीयपादश्च नदीमुत्तितीर्षोर्भोजराजस्योक्तिः । द्वितीयपादश्चतुर्थपादश्च राजदर्शनार्थं छद्मकाष्ठभारवाहपण्डितस्य प्रत्युक्तिः ।

562

भूरिभारभराक्रान्त बाधति स्कन्ध एष ते ।
न तथा बाधते स्कन्धो यथा बाधति बाधते ॥ १२ ॥

पूर्वार्धं मृगयाया गृहमागच्छतः शिबिकारूढस्य भोजराजस्योक्तिः । उत्तरार्धं च राजदर्शनार्थं छद्मशिबिकावाहपण्डितस्य प्रत्युक्तिः ।

563

यदेतच्चन्द्रान्तर्जलदलवलीलां वितनुते
तदाचष्टे लोकः शशक इति नो मां प्रति तथा ।
अहं त्विन्दुं मन्ये त्वदरिविरहाक्रान्ततरुणी-
कटाक्षोल्कापातव्रणकिणकलङ्काङ्कितनुम् ॥ १३ ॥

पूर्वार्धं रात्रौ चन्द्रमसं वर्णयतो भोजराजस्य । उत्तरार्धं च राजदर्शनार्थं छद्मचोरस्य पण्डितस्य ।

564

इदमनुचितमक्रमश्च पुंसां
यदिह जरास्वपि मान्मथा विकाराः ।
इदमपि न कृतं नितम्बिनीनां
स्तनपतनावधि जीवितं रतं वा ॥ १४ ॥

पूर्वार्धं शारिक्रीडां कुर्वत्याः शीलाभट्टारिकायाः । उत्तरार्धं च भोजराजस्य ।

565

अष्टौ हाटककोटयस्त्रिनवतिर्मुक्ताफलानां तुलाः
पञ्चाशन्मधुगन्धलुब्धमधुपाः क्रोधोद्धुराः सिन्धुराः ।
लावण्योपचयप्रपञ्चचतुरं पण्याङ्गनानां शतं
दण्डे पाण्ड्यनृपेण ढौकितमिदं वैतालिकायार्पय ॥ १५ ॥

निखिलमपि पद्यं विज्ञापयतो भाण्डागारिकस्योक्तिः । वैतालिकायार्पयेति च सप्ताक्षराणि वैतालिकगीतदत्तकर्णस्य विक्रमादित्यस्य प्रत्युक्तिः ।

566

अलमतिचपलत्वात्स्वप्नमायोपमत्वा-
त्परिणतिविरसत्वात्संगमेनाङ्गनायाः ।

इति यदि शतकृत्वस्तत्त्वमालोचयाम-
स्तदपि न हरिणाक्षीं विस्मरत्यन्तरात्मा ॥ १६ ॥

पूर्वार्धे शिक्षां ददतो गुरोरुक्तिः । उत्तरार्धे च राजकन्यानुरक्तस्य बिल्हणस्य भित्तिलेखप्रत्युक्तिः ।

567
अङ्गणं तदिदमुन्मदद्विप-
श्रेणिशोणितविहारिणो हरेः ।
उल्लसत्तरुणकेलिपल्लवां
शल्लकीं त्यजति किं मतङ्गजः ॥ १७ ॥

पूर्वार्धे तच्चित्तपरीक्षिकाया राजकन्याया उक्तिः । उत्तरार्धे तदनुरक्तस्य बिल्हणस्य प्रत्युक्तिः ।

568
निरर्थकं जन्म गतं नलिन्या
यया न दृष्टं तुहिनांशुबिम्बम् ।
उत्पत्तिरिन्दोरपि निष्फलैव
दृष्टा विनिद्रा नलिनी न येन ॥ १८ ॥

पूर्वार्धे राजकन्यानुरक्तस्य बिल्हणस्योक्तिः । उत्तरार्धे तदनुरक्तचित्ताया राजकन्यायाः ।

---

## अथ जातिः ॥ २६ ॥

569
मण्डलीकृत्य बर्हाणि कण्ठैर्मधुरगीतिभिः ।
कलापिनः प्रनृत्यन्ति काले जीमूतमालिनि ॥ १ ॥

570
कलक्वणितगर्भेण कण्ठेनाघूर्णितेक्षणः ।
पारावतः परावृत्य रिरंसुश्चुम्बति प्रियाम् ॥ २ ॥

एतौ वण्डिनः ।

571

स्थित्वा स्थैर्यादुपाम्भः समजठरशिराश्चक्रमूर्तिर्मुहूर्तं
धूर्तः संत्यक्ततीरः कतिचिदपि पदान्युच्चकैः कुञ्चिताङ्घ्रिः ।
पश्चाद्ग्रीवां प्रसार्य त्वरितगतिरपां मध्यमाविश्य चञ्चुं
चञ्चन्तीमूर्ध्वकण्ठः कथमपि शफरीं स्फारिताक्षो बकोऽत्ति ॥३॥

गोविन्दराजदेवानाम् ।

572

चञ्चच्चञ्चलचञ्चुचुम्बनचलच्चूडाग्रमुग्रं पत-
च्चक्राकारकरालकेसरसटास्फारस्फुरत्कंधरम् ।
वारं वारमुदङ्घ्रिचञ्चलघनभ्रश्यन्नखक्षुण्णयो-
र्दृष्ट्वा कुक्कुटयोर्द्वयोः स्थितिरिति क्रूरक्रमं युध्यतोः ॥ ४ ॥

वररुचेः ।

573

पक्षावुत्क्षिप्य धुन्वन्सकलतनुरुहाभोगविस्तारितात्मा
प्रागेवोड्डीननिद्रः स्फुरदरुणकरोद्भासितं खं निरीक्ष्य ।
प्रातः प्रोत्थाय नीडस्थितचपलतनुर्घर्घरध्वानमुच्चै-
रुद्ग्रीवं पूर्वकायोन्नतविकटसटः कुक्कुटो रारटीति ॥ ५ ॥

कस्यापि ।

574

आलोकत्रस्तनारीकृतसभयमहानादधावज्जनौघ-
व्याप्तद्वारप्रदेशप्रचुरकलकलाकर्णनस्तब्धचक्षुः ।
काष्ठं दण्डं गृहाणेत्यतिमुखरजनैस्ताडितो लोष्टघातै-
र्भीतः सर्पो गृहस्यानधिगतविवरः कोणतः कोणमेति ॥ ६ ॥

शिविरकिशोरकस्य ।

575

धूलीधूसरतनवो राज्यस्थितिरचनकल्पितैकनृपाः ।
कृतमुखवाद्यविकाराः क्रीडन्ति सुनिर्भरं डिम्भाः ॥ ७ ॥

रुद्रटस्य ।

576

आयातो भवतः पितेति सहसा मातुर्निशम्योदितं
धूलीधूसरितो विहाय शिशुभिः क्रीडारसान्प्रस्तुतान्

दूरात्स्मेरमुखः प्रसार्य ललितं बाहुद्वयं बालको
नाधन्यस्य पुरः समेति परया प्रीत्या रटन्घर्घरम् ॥ ८॥

उत्कटस्य।

577

अकूर्चारम्भोपि प्रति चिबुकदेशं करतलं
प्रतिज्ञायां कुर्वन्युवतिषु दृशं स्निग्धतरलाम् ।
कुमारोहंकारात्परिषदि समानानगणय-
न्भुजौ वक्षः पश्यन्नवयसि कान्तिं वितनुते ॥ ९ ॥

शार्ङ्गधरस्य।

578

खड्गहस्तोरिमालोक्य हर्षामर्षसमन्वितः ।
शूरः पुलकितो रक्तनेत्रो हसति जृम्भते ॥ १० ॥

लक्ष्मीधरस्य।

579

गायति हसति च नृत्यति हृदयेन धृतां प्रियां विचिन्तयति ।
समविषमं न च विन्दति गृहगमनसमुत्सुकः पथिकः ॥ ११ ॥

कस्यापि।

580

मातर्धर्मपरे दयां कुरु मयि भ्रान्तेद्य वैदेशिके
द्वारालिन्दककोणके सुनिभृतं यास्यामि सुप्त्वा निशि ।
इत्युक्ते सहसा प्रचण्डगृहिणीवाक्येन निर्भर्त्सितः
स्कन्धन्यस्तपलालमुष्टिविभवः पान्थः पुनः प्रस्थितः ॥१२॥

रविदत्तस्य।

581

भद्रं ते सदृशं यदध्वगशतैः कीर्तिस्तवोद्घुष्यते
स्थाने रूपमनुत्तमं सुकृतिना दानेन कर्णो जितः ।
इत्यालोक्य भृशं दृशा करुणया शीतातुरेण स्तुतः
पान्थेनैकपलालमुष्टिरुचिना गर्वायते हालिकः ॥ १३ ॥

कस्यापि।

582

विलासमसृणोल्लसन्मुसललोलदोःकन्दली-
परस्परपरिस्खलद्वलयनिःस्वनोद्बन्धुराः ।
लसन्ति कलहुंकृतिप्रसभकम्पितोरःस्थल-
त्रुटद्गमकसंकुलाः कलमकण्डनीगीतयः ॥ १४ ॥

विज्जकायाः ।

583

आकर्षन्निव गां वमन्निव खुरौ पश्चार्धमुज्झन्निव
स्वीकुर्वन्निव खं पिबन्निव दिशो वायूंश्च मुष्णन्निव ।
साङ्गारप्रकरां स्पृशन्निव भुवं छायाममृष्यन्निव
प्रेङ्खच्चामरवीज्यमानवदनः श्रीमान्हयो धावति ॥ १५ ॥

सिंहदत्तस्य ।

584

पुरो नुन्नः पश्चाद्व्रजति विधृतश्चोच्छ्रिततनुः
समुत्पत्योत्तानः पतति पथि लोकान्प्रविशति ।
हयः किंचिद्गच्छेद्यदि नयति पत्तिं क्वचिदहो
कशाघाते तिष्ठत्यथ चरणघातेन खनति ॥ १६ ॥

सूक्तिसहस्रात् ।

585

आघ्रायाघ्राय गन्धं विकटमुखपुटो दर्शयन्दन्तपङ्क्तिं
धावत्युन्मुक्तनादो मुहुरपि च रसाद्भूष्टया पृष्ठलग्नः ।
गर्दभ्या पादघातद्विगुणितसुरतप्रीतिराकृष्टशिश्नो
वेगादारुह्य मुह्यन्नवतरति खरः खण्डितेच्छश्चिरेण ॥ १७ ॥

मयूरस्य ।

586

घ्रात्वा श्रोणीमजाया विततमभिमुखं वक्त्रसंकोचभङ्गं
स्थित्वा सूर्यं निरीक्ष्य प्रविकसितसटो घट्टयन्क्ष्मां खुरेण ।
बोबोकारान्प्रकुर्वन्मणिशकलनिभं चालयन्नेत्रयुग्मं
छागश्चाटूननेकांश्चतुर इव बिटो मन्मथान्धः करोति ॥ १८ ॥

कस्यापि ।

587

पार्श्वस्फालावलेपाच्चटुलितचरणोल्लेखिताकाशदेशः
संघट्टोपकोपप्रकटितरसनापल्लवालीढसृक्कः ।
किंचित्साचीकृतास्यः स्फुरदधरपुटः स्फारितातास्रचक्षु-
र्घोराघाताभिलाषादपसरति रुषं दर्शयेन्नेष मेषः ॥ १९ ॥

शक्तवर्मणः ।

588

ग्रीष्मादित्यकरप्रतप्तसिकतामध्योपविष्टः सुखं
शेते गौरखरो मरुस्थलभुवि प्रोथं विधाय क्षितौ ॥
गुञ्जज्जाहककण्टकाहतमरुद्धूतोत्पतद्धूलिभि-
श्छन्नाङ्गः कृकलासकोपि निभृतं मार्तण्डमुद्वीक्षते ॥ २० ॥

589

मार्गं देहि पदं निधेहि निभृतं शब्दं समाकर्णय
श्वानं वारय कन्दलात्कलकलः कोयं सखे तावकः ।
इत्यन्योन्यमनेकधा मृगवधव्यापारपारंगमै-
र्व्याधैः कोप्यधिको रसः प्रतिपदं जल्पद्भिरुत्पाद्यते ॥ २१ ॥

पुष्पाकरस्य ।

590

वामस्कन्धनिषण्णशार्ङ्गकुटिलप्रान्तार्पिताधोमुख-
स्यन्दच्छोणितलम्बमानशशकान्वेणीस्खलच्चामरान् ।
ज्यान्तप्रोतकपोतपोतनिपतद्रक्ताक्ततूणीरका-
न्सोपश्यत्करिकुम्भभेदजनिताक्रन्दान्पुलिन्दान्पुरः ॥ २२ ॥

क्षेमेन्द्रस्य ।

591

गर्जन्हरिः साम्भसि शैलकुञ्जे
प्रतिध्वनीनात्मकृताञ्निशम्य ।
पदं बबन्ध क्रमितुं सरोषः
प्रतर्कयन्नन्यमृगेन्द्रनादम् ॥ २३ ॥

भट्टस्वामिनः ।

592

लीढव्यस्तविपाण्डुराग्रनखयोराकर्णदीर्णं मुखं
विन्यस्याग्रिमयोर्युगे चरणयोः सद्यो विभिन्नद्विपः ।
एतस्मिन्मदगन्धवासितसटः सावज्ञतिर्यग्वल-
त्सृक्कान्ताहतिधूतलोलमधुपः कुञ्जेषु शेते हरिः ॥ २४ ॥

593

अम्भोमुचां सलिलमुद्गमतां निशीथे
तालीवनेषु निभृतस्थितकर्णतालाः ।
आकर्णयन्ति करिणोर्धनिमीलिताक्षा
धारारवान्दशनकोटिनिषण्णहस्ताः ॥ २५ ॥

कस्यापि ।

594

नयनपथनिरोधक्रोधनिर्धूतभाल-
भ्रमदविरलरोमस्तोमबद्धान्धकारः ।
कृमिकवलनलोभोत्खातवल्मीकरन्ध्रो-
त्थितफणिफणघातैरुच्छलत्येष भल्लः ॥ २६ ॥

मदनस्य ।

595

यदर्कीशुक्लान्तः स्फुरदरुणपुष्पोदरधिया
प्रविष्टो नासान्तः क्वणितमलिडिम्भः प्रकुरुते ।
कपिः स्थित्वा स्थित्वा तदिदमनुशृण्वन्विचकितो
धुनोत्यास्यं रौति प्रचलति चलत्युच्छलति च ॥ २७ ॥

कस्यापि ।

596

गर्जित्वा मेघधीरं प्रथममथ शनैर्मण्डलीकृत्य देहं
शृङ्गाभ्यां भीषयन्तावभिमुखमवनिं दारयन्तौ खुराग्रैः ।
मन्दं मन्दं समेत्य स्थिरनिहतपदं दत्तघातौ सरोषं
युध्येते चालयन्तौ कुटिलितमसकृत्पुच्छमेतौ महोक्षौ ॥२८॥

कस्यापि ।

597

आहत्याहत्य मूर्धा द्रुतमनुपिबतः प्रस्रुतं मातुरूधः
किंचित्कुब्जैकजानोरनवरतचलच्चारुपुच्छस्य धेनुः ।
उत्तीर्णा तर्णकस्य प्रियतनयतया दत्तहुंकारमुद्रा
विस्रंसिक्षीरधारालवशबलमुखस्याङ्कमातृप्नि लेढि ॥ २९ ॥
मयूरस्य ।

---

# अथ सदाचारः ॥ ३७ ॥

598

श्रोत्रियं सुभगामग्निं साग्निं गां धार्मिकं नदीम् ।
प्रातरुत्थाय यः पश्येदापद्भ्यः स प्रमुच्यते ॥ १ ॥

599

पापिष्ठं दुर्भगामन्त्यं नग्नमुत्कृत्तनासिकम् ।
अप्रियं प्रातरुत्थाय पश्यन्कलिमवाप्नुयात् ॥ २ ॥

600

प्रेतधूमे विरेके च वान्तौ च क्षुरकर्मणि ।
दुःस्वप्ने दुर्जनस्पर्शे स्नानमात्रं विधीयते ॥ ३ ॥

601

उदक्यापतितम्लेच्छचाण्डालाद्यभिभाषणे ।
मार्जारमूषकस्पर्शे विण्मूत्रोत्सर्गदर्शने ॥ ४ ॥

602

अशुचीक्षणेऽश्रुपाते कलहे श्वासकासयोः ।
रथ्याप्रसर्पणेऽभ्यङ्गे क्षुते नर्मण्युपस्पृशेत् ॥ ५ ॥

603

कुर्यादाचमनाभावे भास्करस्यावलोकनम् ।
स्पृशेद्वा सार्द्रतृणगोगोविड्भूदक्षिणश्रुतीः ॥ ६ ॥

604

देवाधिकारिणो म्लेच्छान्विकर्मस्थान्द्विजानपि ।
विलोक्योपस्पृशेत्स्पृष्ट्वा सवासा जलमाविशेत् ॥ ७ ॥

605

अजाश्वं मुखतो मेध्यं गावो मेध्यास्तु पृष्ठतः ।
ब्राह्मणाः पादतो मेध्याः स्त्रियो मेध्यास्तु सर्वतः ॥ ८ ॥

606

नास्ति यज्ञः स्त्रियाः किंचिन्न व्रतं नोपवासकः ।
या तु भर्तरि शुश्रूषा तया स्वर्गे जयत्यसौ ॥ ९ ॥

607

मृते भर्तरि या नारी ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता ।
मृता सा लभते स्वर्गं यथा ते ब्रह्मचारिणः ॥ १० ॥

608

तिस्रः कोट्यो‌ऽर्धकोटिश्च यानि लोमानि मानुषे ।
तावत्कालं वसेत्स्वर्गे भर्तारं यानुगच्छति ॥ ११ ॥

609

व्यालग्राही यथा व्यालं बिलादुद्धरते बलात् ।
एवं पतिं समुद्धृत्य नारी स्वर्गेषु मोदते ॥ १२ ॥

610

पृथक्चितां समारुह्य न विप्रा गन्तुमर्हति ।
भर्तृदेहेन या याति तस्या लोकाः सनातनाः ॥ १३ ॥

611

शुचि भूमिगतं तोयं शुचिर्नारी पतिव्रता ।
शुचिः क्षेमकरो राजा संतोषी ब्राह्मणः शुचिः ॥ १४ ॥

612

नित्यमास्यं शुचि स्त्रीणां शकुनिः फलपातने ।
वत्सोपि स्तनपाने स्याच्छ्वा मृगग्रहणे शुचिः ॥ १५ ॥

613

गच्छेदेको न पन्थानं स्वयं नोपानहौ हरेत् ।
शिरसा न वहेद्भारं न प्रधावेत वर्षति ॥ १६ ॥

614

न स्नानमाचरेद्भुक्त्वा नातुरो न महानिशि ।
न क्लैः सह नाजस्रं नाविज्ञाते जलाशये ॥ १७ ॥

615

नद्या यद्यत्परिभ्रष्टं यच्चावर्तसमन्वितम् ।
गतप्रत्यागतं यच्च तत्तोयं परिवर्जयेत् ॥ १८ ॥

616

ब्राह्मण्यजागोमहिष्यः सूताः शुष्का नवोदकाः ।
नद्यः शुद्धा दशाहेन शुद्धापो भूमिगा नवाः ॥ १९ ॥

617

प्रवहद्ब्राह्मणं तोयं ताडागं क्षत्रियोदकम् ।
वापीकूपगतं वैश्यं शूद्रं च गृहभाण्डगम् ॥ २० ॥

618

अप्स्वात्मानं न वीक्षेत नावगाहेत्पयोरयम् ।
संदिग्धनावं नारोहेन्न बाहुभ्यां नदीं तरेत् ॥ २१ ॥

619

शीतास्वप्सु निषिच्योष्णा मन्त्रसंभारसंभृताः ।
स्नानं गृहेपि कुर्वाणः प्राप्नोति स्नानजं फलम् ॥ २२ ॥

620

नाग्निं मुखेनोपधमेन्नाधः कुर्यान्न लङ्घयेत् ।
नामेध्यं प्रक्षिपेद्वह्नौ न च पादौ प्रतापयेत् ॥ २३ ॥

621

देवालयं चत्वरं च नक्तं सेवेत न द्रुमान् ।
शून्याटवीं शून्यगृहं श्मशानं च दिनेष्वपि ॥ २४ ॥

622

जलं पिबेन्नाञ्जलना शयानं न प्रबोधयेत् ।
परान्नं वा चरन्तीं गां धयन्तीं च न वारयेत् ॥ २५ ॥

623

शय्यादीपाधमस्तम्भच्छायां दूरेण संत्यजेत् ।
नर्मालापं न कुर्वीत धीमानसद्भिः सह ॥ २६ ॥

624

नोर्ध्वजानुश्चिरं तिष्ठेन्नस्यादुत्कटकासनः ।
न नासिकां विकुष्णीयान्न स्वयं कर्तयेन्नखान् ॥ २७ ॥

625

सर्वथा संत्यजेद्वादं न कंचिन्मर्मणि स्पृशेत् ।
सर्वान्परित्यजेदर्थान्स्वाध्यायस्य विरोधिनः ॥ २८ ॥

626

कुशं स्वर्णं सदा धार्यं बर्हिर्माल्यं न धारयेत् ।
नागन्धं बिभृयात्पुष्पं नात्मार्थं गुम्फयेत्स्रजम् ॥ २९ ॥

627

नित्यमामलके लक्ष्मीर्नित्यं हरितगोमये ।
नित्यं शङ्खे च पद्मे च नित्यं शुक्ले च वाससि ॥ ३० ॥

628

बालार्कं प्रेतधूमं च वृद्धां स्त्रीं पल्वलोदकम् ।
आयुष्कामो न सेवेत रात्रौ च दधिभोजनम् ॥ ३१ ॥

629

नोत्सङ्गे भक्षयेन्नाभ्यन्मौलिं भूमिं च संस्पृशेत् ।
क्वचिद्गच्छेन्न चोच्छिष्टः पश्येज्ज्योतींषि नाशुचिः ॥ ३२ ॥

630

ब्राह्मणो ब्रह्मतीर्थेन त्रिरद्भिः समुपस्पृशेत् ।
कुर्वन्नाचमनं विष्णुमोंकारं चापि संस्मरेत् ॥ ३३ ॥

631

हस्तद्वयस्थितैर्दर्भैः समाचामति यो द्विजः ।
सोमपानफलं तस्य भुक्त्वा यज्ञफलं लभेत् ॥ ३४ ॥

632

गृहेपि निवसन्विप्रो मुनिर्मांसविवर्जनात् ।
मांसादोन्योपि मांसस्य त्यागात्स्वर्गं व्रजेद्ध्रुवम् ॥ ३५ ॥

633

आत्मार्थं यः पशुं हन्यात्सोवश्यं नरकं व्रजेत् ।
देवान्पितॄन्समभ्यर्च्य खादन्मांसं न दोषभाक् ॥ ३६ ॥

634

अनभिध्यां परस्वेषु सर्वसत्त्वेषु सौहृदम् ।
कर्मणां फलमस्तीति मनसा त्रितयं चरेत् ॥ ३७ ॥

635

प्राणातिपातं स्तैन्यं च परदाराभिमर्शनम् ।
त्रीणि पापानि कायेन नित्यशः परिवर्जयेत् ॥ ३८ ॥

636

असत्प्रलापं पारुष्यं पैशुन्यमनृतं तथा ।
चत्वारि वाचा राजेन्द्र न जल्पेन्न च चिन्तयेत् ॥ ३९ ॥

637

अहिंसा सत्यवचनं सर्वभूतानुकम्पनम् ।
शमो दानं यथाशक्ति गार्हस्थो धर्म उच्यते ॥ ४० ॥

638

देवान्पितॄन्मनुष्यांश्च भृत्यान्गृह्याश्च देवताः ।
भोजयित्वा ततः पश्चाद्गृहस्थो भोक्तुमर्हति ॥ ४१ ॥

639

वृक्षांश्छित्त्वा महीं भित्त्वा हत्त्वा कीटपिपीलकान् ।
दत्त्वान्नं कार्षुकोर्थिभ्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४२ ॥

640

राज्ञां दत्त्वा तु षड्भागं देवतानां च विंशतिः ।
त्रिंशद्दत्त्वा च विप्राणां कार्षुको नावसीदति ॥ ४३ ॥

641

चक्षुर्दद्यान्मनो दद्याद्वाचं दद्याच्च सूनृताम् ।
उत्थाय चासनं दद्यादेष धर्मः सनातनः ॥ ४४ ॥

642

तृणानि भूमिरुदकं वाक्चतुर्थी च सूनृता ।
सतामेतानि हर्म्येषु नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥ ४५ ॥

643

प्रासादर्धमपि प्रासमर्थिभ्यः किं न यच्छसि ।
इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति ॥ ४६ ॥

644

उष्णकाले जलं दद्याच्छीतकाले हुताशनम् ।
प्रावृट्काले गृहं देयं सर्वकालेषु भोजनम् ॥ ४७ ॥

645

अवृत्तिव्याधिशोकार्तानुवर्तेत शक्तितः ।
आत्मवत्सततं पश्येदपि कीटपिपीलकम् ॥ ४८ ॥

646

गां पङ्गुब्राह्मणीं दास्याद्वृत्तिं लोपाद्विजं वधात् ।
मोचयन्मुच्यते जन्तुः पापादा मरणान्तिकात् ॥ ४९ ॥

647

न कश्चिदपि जानाति किं कस्य श्वो भविष्यति ।
अतः श्वः करणीयानि कुर्यादद्यैव बुद्धिमान् ॥ ५० ॥

648

अनेन मर्त्यदेहेन यल्लोकद्वयशर्मदम् ।
विचिन्त्य तदनुष्ठेयं हेयं कर्म ततोन्यथा ॥ ५१ ॥

649

उपकारः परो धर्मः परोर्थः कर्मनैपुणम् ।
पात्रे दानं परः कामः परो मोक्षो वितृष्णता ॥ ५२ ॥

650

अञ्जनस्य क्षयं दृष्ट्वा वल्मीकस्य तु संचयम् ।
अवन्ध्यं दिवसं कुर्याद्दानाध्ययनकर्मभिः ॥ ५३ ॥

651

दीपोपशमनं पुंसां कूष्माण्डच्छेदनं स्त्रियाः ।
अचिरेणैव कालेन कुलच्छेदकरं मतम् ॥ ५४ ॥

652

अलाबुं वर्तुलाकारं वार्ताकं कुन्दसंनिभम् ।
प्राणान्तेपि न चाश्नीयान्मसूरान्नं सवल्कलम् ॥ ५५ ॥

653

परदारा न गन्तव्याः सर्ववर्णेषु कर्हिचित् ।
नहीदृशमनायुष्यं त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ ५६ ॥

654

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा च न विविक्तासनो भवेत् ।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥ ५७ ॥

655

प्रकीर्णकेशामनवेक्ष्यकारिणीं
सदा च भर्तुः प्रतिकूलभाषिणीम् ।
परस्य वेश्माभिरतामपत्रपा-
मेवंविधां योषितमाशु वर्जयेत् ॥ ५८ ॥

656

हताधिकारां मलिनां पिण्डमात्रोपजीविनीम् ।
परिभूतामधः शय्यां वासयेद्व्यभिचारिणीम् ॥ ५९ ॥

657

कुचेलिनं दन्तमलावधारिणं
बह्वाशिनं निष्ठुरवाक्यभाषिणम् ।

सूर्योदये चास्तमने च शायिनं
विमुञ्चति श्रीरपि चक्रपाणिनम् ॥ ६० ॥

658

एकच्छागं द्विरावेयं त्रिगवं पञ्चमाहिषम् ।
षडश्वं सप्तमातङ्गं शक्रस्यापि श्रियं हरेत् ॥ ६१ ॥

659

शिरः सुधौतं चरणौ सुनिर्मलौ
वराङ्गनासेवनमल्पभोजनम् ।
अनग्नशायित्वमपर्वमैथुनं
चिरप्रणष्टां श्रियमानयन्ति षट् ॥ ६२ ॥

660

षष्ठीषु तैलं पलमष्टमीषु
क्षौरक्रियां चैव चतुर्दशीषु ।
स्त्रीसेवनं नष्टकलासु पुंसा-
मायुःक्षयार्थं मुनयो वदन्ति ॥ ६३ ॥

661

स्वातुर्जनस्य दशमी तनयांस्त्रयोद-
श्यर्थं निहन्त्युभयमेतदपि द्वितीया ।
सप्तम्यनिन्दुनवमीष्वपि संपदिच्छुः
स्नायात्कदाचिदपि नामलकैर्मनुष्यः ॥ ६४ ॥

662

रोहिणीसहितमुत्तरात्रयं
कीर्तयन्ति मुनयो ध्रुवाह्वयम् ।
बीजहर्म्यनगराभिषेचना-
रामशान्तिविधिषु प्रशस्यते ॥ ६५ ॥

663

रोहिणीषु करपञ्चकेश्विभे
स्युत्तरेषु च पुनर्वसुद्वये ।

रेवतीषु वसुदैवते च मे
नव्यवस्त्रपरिधानमिष्यते ॥ ६६ ॥

664

रविर्नृपविलोकने सुरगुरुर्विवाहोत्सवे
रणे धरणिनन्दनो भृगुसुतः प्रयाणे बली ।
शनिस्तु खलु दीक्षणे सकलशास्त्रबोधे बुधः
शशी निखिलकर्मसु ध्रुवमुदाहृतः सूरिभिः ॥६७॥

एतानि धर्मशास्त्रपुराणज्योतिःशास्त्रेभ्यः ।

---

# अथ धर्मविवृतिः ॥ ३८ ॥

665

ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे ।
धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते ॥ १ ॥

666

यस्य धर्मविहीनस्य दिनान्यायान्ति यान्ति च ।
स लोहकारभस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति ॥ २ ॥

667

परदारपरद्रव्यपरद्रोहपराङ्मुखः ।
गङ्गाप्याह कदागत्य मामयं पावयिष्यति ॥ ३ ॥

668

उत्थायोत्थाय बोद्धव्यं किमद्य सुकृतं कृतम् ।
आयुषः खण्डमादाय रविरस्तं गमिष्यति ॥ ४ ॥

केषामप्येते ।

669

अजरामरवत्प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत् ।
गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत् ॥ ५ ॥

670

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम् ।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥ ६ ॥

एतौ व्यासस्य ।

671

परलोकहितं तात प्रातरुत्थाय चिन्तय ।
इह ते कर्मणामेव विपाकश्चिन्तयिष्यति । ७ ॥

मदालसायाः ।

672

श्रेयो धनार्थिनां धर्मः कामिनां सर्वकामदः ।
धर्मोऽथवापवर्गस्य पारंपर्येण साधकः ॥ ८ ॥

673

इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं क्षमा दया ।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः ॥९॥

674

आनृशंस्यं क्षमा सत्यमहिंसा दम आर्जवम् ।
प्रीतिः प्रसादो माधुर्यं मार्दवं च यमा दश ॥१०॥

675

भावशुद्धिर्मनुष्यैस्तु कर्तव्या सर्वकर्मसु ।
अन्यथा चुम्ब्यते कान्ता भावेन दुहितान्यथा ॥११॥

676

कृत्वापि पातकं कर्म यो दद्यादन्नमर्थिने ।
ब्राह्मणाय विशेषेण न स पापेन लिप्यते ॥१२॥

677

आ श्मशानान्निवर्तन्ते ज्ञातयः सह बान्धवैः ।
त्वयैकेनैव गन्तव्यं तत्कर्म सुकृतं कुरु ॥१३॥

केषामप्येते ।

678

धर्मे मतिर्भवतु वः सततोत्थितानां
स ह्येक एव परलोकगतस्य बन्धुः ।

अर्थाः स्त्रियश्च निपुणैरिह सेव्यमाना
नैवात्मभावमुपयान्ति न च स्थिरत्वम् ॥१४॥
कस्यापि।

679

यावत्स्वस्थमिदं शरीरमरुजं यावज्जरा दूरतो
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महा-
न्संदीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ॥१५॥
भर्तृहरेः।

680

धर्माज्जन्म कुले शरीरपटुता सौभाग्यमायुर्धनं
धर्मेणैव भवन्ति निर्मलयशोविद्यामहीसंपदः।
कान्तारेषु महाभयेषु सततं धर्मः परित्रायते
धर्मः सम्यगुपासितो भवति हि स्वर्गापवर्गप्रदः ॥१६॥
कस्यापि।

681

यन्नागा मदभिन्नगण्डकरटास्तिष्ठन्ति निद्रालवो
द्वारे हेमविभूषिताश्च तुरगा ह्रेषन्ति यद्दर्पिताः।
वीणावेणुमृदङ्गशङ्खपणवैः सुप्तश्च यद्बोध्यते
तत्सर्वं सुरलोकराजसदृशं धर्मस्य विस्फूर्जितम् ॥ १७ ॥
कस्यापि।

682

गङ्गोद्भेदे कुरुक्षेत्रे विश्रान्तौ मणिकर्णिके।
वेण्यां गयायामोंकारे स्नात्वा दत्त्वा सुखी भवेत् ॥ १८ ॥

683

शरणागतरक्षार्थं स्त्रीगोद्विजहिताय च।
स्वाम्यर्थे यस्त्यजेत्प्राणांस्तस्य लोकाः सनातनाः ॥ १९ ॥

684

यो न कामान्न संरम्भान्न द्वेषाद्धर्ममुत्सृजेत्।
यथोक्तकारी सौम्यश्च स सुखं मृत्युमृच्छति ॥ २० ॥

685

यज्ञदानतपस्तीर्थसेवाभिर्विजितेन्द्रियः ।
भौमेषु चान्तरिक्षेषु स्वर्गेषु मनुजो व्रजेत् ॥ २१ ॥

686

वसन्ति सुरलोकेषु निजपुण्यचयैर्नराः ।
विमानैर्विविधाकारैः सर्वकामसमृद्धिभिः ॥ २२ ॥

687

तेभ्यश्च प्रच्युता राज्ञामन्येषां च महात्मनाम् ।
जायन्ते सुखिनां गेहे सद्वृत्तपरिपालकाः ॥ २३ ॥

688

गायन्ति देवाः किल गीतकानि
स्वर्गापवर्गस्य च हेतुभूताः ।
धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे
भवन्ति भूयः कृतिनः सुरत्वात् ॥ २४ ॥

689

पुनः कृत्वाद्भुतं कर्म पूर्वाभ्यासेन मानवाः ।
सुरलोकं प्रयान्त्येव भाग्यवन्तो जितेन्द्रियाः ॥ २५ ॥

690

परात्परतरं यान्ति नारायणपरायणाः ।
न ते तत्र गमिष्यन्ति ये द्विषन्ति महेश्वरम् ॥ २६ ॥

691

वासुदेवे मनो यस्य जपहोमार्चनादिषु ।
तस्यान्तरायो विज्ञेयो देवेन्द्रत्वादिकं फलम् ॥ २७ ॥

692

गत्वा गत्वा निवर्तन्ते चन्द्रसूर्यादयो ग्रहाः ।
अद्यापि न निवर्तन्ते द्वादशाक्षरचिन्तकाः ॥ २८ ॥

693

षडक्षरेण मन्त्रेण पुष्पमेकमपि स्वयम् ।
लिङ्गस्य मूर्ध्नि यो दद्यात्स भूयोऽपि न जायते ॥ २९ ॥

694

उपोष्यैकादशीः सर्वास्तथा कृष्णाश्चतुर्दशीः ।
ध्यात्वा हरिहरं देवं प्राप्नोति परमं पदम् ॥ ३० ॥

695

मोहादवाचीमबुधाः प्रतीचीं
प्राचीमुदीचीमपि पर्यटन्ति ।
सच्चिन्मये मानस एव तीर्थे
स्वच्छे सुखं स्नातुमपारयन्तः ॥ ३१ ॥

---

## अथ पातकविवृतिः ॥ ३९ ॥

696

कथं ते त्यक्तसद्वृत्ताः सुखं रात्रिषु शेरते ।
मरणान्तरिता येषां नरकेषूपपत्तयः ॥ १ ॥

697

कतिपयदिनपरमायुषि मदकारिणि यौवने दुरात्मानः ।
विदधति तथापराधं जन्मैव यथा वृथा भवति ॥ २ ॥
श्रीधनदेवानाम् ।

698

यद्वैरूप्यमनाथता विकलता नीचे कुले जन्मता
दारिद्र्यं स्वजनाच्च यत्परिभवो मौर्ख्यं परप्रेष्यता ।
तृष्णालौल्यमनिर्वृतिः कुशयनं कुस्त्री कुभोज्यं रुजः
सर्वं पापमहीरुहस्य महतो व्यक्तं फलं दृश्यते ॥ ३ ॥
कस्यापि ।

699

व्याधिर्वित्तविनाशः प्रियविरहो दुर्भगत्वमुद्वेगः ।
सर्वत्राशाभङ्गः स्फुटं भवत्यकृतपुण्यस्य ॥ ४ ॥

700

त्रिभिर्वर्षैस्त्रिभिर्मासैस्त्रिभिः पक्षैस्त्रिभिर्दिनैः ।
अत्युग्रपुण्यपापानामिहैव फलमश्नुते ॥ ५ ॥

701

मित्रद्रुहः कृतघ्नस्य स्त्रीघ्नस्य पिशुनस्य च ।
चतुर्णामपि चैतेषां निष्कृतिं नैव शुश्रुमः ॥ ६ ॥

702

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः ।
महान्ति पातकान्याहुस्तत्संसर्गी च पञ्चमः ॥ ७ ॥

703

अकृतज्ञमकार्यज्ञं दीर्घरोषमनार्जवम् ।
चतुरो विद्धि चाण्डालाञ्जन्मना सह पञ्चमम् ॥ ८ ॥

704

ब्रह्मघ्ने च सुरापे च चौरे भग्नव्रते तथा ।
निष्कृतिर्विहिता लोके कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः ॥ ९ ॥

धर्मशास्त्रेभ्य एते ।

705

ऋतुस्नातां तु यो भार्यां नैव गच्छति मूढधीः ।
घोरायां भ्रूणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः ॥१० ॥

706

अदुष्टापतितां भार्यां मूढो यस्तु परित्यजेत् ।
सप्तजन्मनि स स्त्रीत्वं लभते नात्र संशयः ॥ ११ ॥

707

कूटसाक्षी मृषावादी यश्चासदनुशास्ति वै ।
ते मोहमृत्यवः सर्वे तथा ये वेदनिन्दकाः ॥ १२ ॥

708

रौरवं कूटसाक्षी तु याति यश्चानृतो नरः ।
कुम्भीपाकं प्रयात्येव मानवो गुरुतल्पगः ॥१३ ॥

मार्कण्डेयात् ।

709

स्त्रीबालस्वामिमित्रघ्ना गोघ्ना विश्वासघातिनः ।
सुरापो ब्रह्महा चौरो यान्त्येते सर्वनारकान् ॥ १४ ॥

710

असत्प्रतिग्रहीता च नरके यात्यधोमुखे ।
एको मिष्टान्नभुग्यः स याति पूयवहं नरः ॥ १५ ॥

711

आगारदाही मित्रघ्नः शाकुनिर्ग्रामयाजकः ।
रुधिरान्धे पतन्त्येते सोमविक्रयिणश्च ये ॥१६॥

712

मधुहा ग्रामहन्ता च याति वैतरणीं नरः ।
असिपत्रवनं याति दर्पाद्वननिकृन्तनः ॥१७॥

713

मृगच्छागादिहन्ता च वह्निज्वाले निपात्यते ।
व्रतलोपाश्रमभ्रष्टो याति संदंशनारके ॥१८॥

714

कृते पापेनुतापो वै यस्य पुंसः प्रजायते ।
प्रायश्चित्तं तु तस्यैकं हरिसंस्मरणं परम् ॥१९॥
एते विष्णुपुराणात्।

715

नरकेभ्यः समुत्तीर्णः पापी तिर्यक्त्वमश्नुते ।
तरुकीटपतङ्गेषु श्वापदैकशफादिषु ॥२०॥

716

मानुष्यं प्राप्य कुब्जो वा कुत्सितो वामनोपि वा ।
म्लेच्छचण्डालशूद्रेषु वैश्यक्षत्रेषु जायते ॥२१॥

717

शारीरैः कर्मदोषैश्च याति स्थावरतां नरः ।
वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरन्त्यजातिताम् ॥२२॥

718

पतितान्प्रतिगृह्याथ खरयोनिं व्रजेन्नरः ।
शिष्यो गुरोः स्त्रियं गत्वा श्वयोनौ संप्रपद्यते ॥२३॥

719

गर्दभो जायते जन्तुः पित्रोश्चाप्यवमानकः ।
मातापितरमाक्रुश्य शारिका संप्रजायते ॥२४॥

720

भर्तृपिण्डं समभ्यन्यस्तदुष्टानि निषेवते ।
सोपि मोहसमापन्नो जायते वानरो मृतः ॥२५॥

721

न्यासापहर्ता नरकाद्विमुक्तो जायते कृमिः ।
असूयकश्च नरकान्मुक्तो भवति लावकः ॥२६॥

722

विश्वासहन्ता च नरो मीनयोनौ प्रपद्यते ।
अन्नापहारी च नरो मूषकः संप्रजायते ॥ २७ ॥

723

परदाराभिमर्षी च वृको घोरोभिजायते ।
गुरोः सख्युस्तथा राज्ञो भर्तुर्भार्यामुपेयिवान् ।
श्वसृगालबकोलूकव्यालसूकरतां लभेत् ॥ २८ ॥

724

देवतातिथिविप्राणामदत्त्वा योन्नमश्नुते ।
प्रमुक्तो नरकात्सोपि वायसः संप्रजायते ॥ २९ ॥

725

ज्येष्ठं पितृसमं वापि भ्रातरं योवमन्यते ।
नरकात्सोपि विभ्रष्टः क्रौञ्चयोनौ प्रपद्यते ॥ ३० ॥

726

शूद्रश्च ब्राह्मणीं गत्वा कृमियोनौ प्रपद्यते ।
तस्यामपत्यमुत्पाद्य काष्ठान्तः कीटको भवेत् ॥ ३१ ॥

727

अशस्त्रं पुरुषं हत्वा नरः संजायते खरः ।
कृमिः स्त्रीवधकर्त्ता च बालहन्ता च जायते ॥ ३२ ॥

728

हृते कांस्ये तु हारीतः कपोतो रौप्यभाजने ।
हृत्वा तु काञ्चनं भाण्डं कृमियोनौ प्रपद्यते ॥ ३३ ॥

729

मयूरो वर्णकान्हृत्वा हृते चैवांशुके शुकः ।
छुच्छुन्दरिः शुभान्गन्धान्वङ्गं हृत्वा शशो भवेत् ॥ ३४ ॥

730

भूनारीकाञ्चनगवां हर्ता गत्वा तु नारकान् ।
तृणगुल्मलतावल्लीत्वक्सारतरुतां लभेत् ॥ ३५ ॥

एते मार्कण्डेयपुराणात् ।

731

सर्वपातकसंघातकक्षदावानलं परम् ।
गोविन्दनामकथनं गङ्गास्नानं च मे मतम् ॥ ३६ ॥

732

मुकुन्द दामोदर वासुदेव
श्रीकान्त चक्रायुध कृष्ण विष्णो ।
गोविन्द नारायण पद्मनाभ
त्रिविक्रमानन्त हरे नमस्ते ॥ ३७ ॥

एतौ शार्ङ्गधरस्य ।

733

तटस्थमुद्धृतं वापि शीतमुष्णमथापि वा ।
गाङ्गमम्बु पुनात्येव पापादामरणान्तिकात् ॥ ३८ ॥

कस्यापि ।

734

त्यज दुर्जनसंसर्गं भज साधुसमागमम् ।
कुरु पुण्यमहोरात्रं स्मर नित्यमनित्यताम् ॥ ३९ ॥

कस्यापि ।

735

स्वपुरुषमभिवीक्ष्य पाशहस्तं
वदति यमः किल तस्य कर्णमूले ।

परिहर मधुसूदनप्रपन्ना-
न्प्रभुरहमन्यनृणां न वैष्णवानाम् ॥ ४० ॥
विष्णुपुराणात् ।

736

रामं दूर्वादलश्यामं पद्माक्षं पीतवाससम् ।
स्तुवन्ति नामभिर्दिव्यैर्न ते संसारिणो नराः ॥ ४१ ॥
पद्मपुराणात् ।

---

## अथ खेचरभूचरेषु पूर्वं सूर्यान्योक्तयः ॥ ४० ॥

737

रवेरेवोदयः श्लाघ्यः कोन्येषामुदयग्रहः ।
न तमांसि न तेजांसि यस्मिन्नभ्युदिते सति ॥ १ ॥

738

खद्योतो द्योतते तावद्यावन्नोदयते शशी ।
उदिते तु सहस्रांशौ न खद्योतो न चन्द्रमाः ॥ २ ॥

739

तस्यैवाभ्युदयो भूयाद्भानोर्यस्योदये सति ।
विकासभाजो जायन्ते गुणिनः कमलाकराः ॥ ३ ॥
केषामप्येते ।

740

देवो हरिर्वहतु वक्षसि कौस्तुभं त-
मन्यैव काचन पुनर्द्युमणेः प्रतिष्ठा ।
यत्पादसंगतितरंगितसौरभाणि
धत्ते स एव शिरसा सरसीरुहाणि ॥ ४ ॥
महादेवस्य ।

741

उद्यन्त्वमूनि सुबहूनि महामहांसि
चन्द्रोप्यलं भुवनमण्डलमण्डनाय ।
सूर्यादृते न तदुदेति न चास्तमेति
येनोदितेन दिनमस्तमितेन रात्रिः ॥ ५ ॥

742

करान्प्रसार्य रविणा दक्षिणाशावलम्बिना ।
न केवलमनेनात्मा दिवसोपि लघूकृतः ॥ ६ ॥

743

निमीलनाय पद्मानामुदयायाल्पतेजसाम् ।
तमसामवकाशाय व्रजत्यस्तमहो रविः ॥ ७ ॥

744

येनोन्मथ्य तमांसि मांसलघनस्पर्धीनि सर्वं जग-
च्चक्षुष्मत्परमार्थतः कृतमिदं देवेन तिग्मत्विषा ।
तस्मिन्नस्तमिते विवस्वति कियान्क्रूरो जनो दुर्जनो
यद्बभ्राति धृतिं शशाङ्कशकलालोके प्रदीपेथवा ॥ ८ ॥

केषामप्येते ।

745

पातः पूष्णो भवति महते नोपतापाय यस्मा-
त्कालेनास्तं क इह न गता यान्ति यास्यन्ति चान्ये ।
एतावत्तु व्यथयति यदालोकबाह्यैस्तमोभि-
स्तस्मिन्नेव प्रकृतिमहति व्योम्नि लब्धोवकाशः ॥ ९ ॥

746

गते तस्मिन्भानौ त्रिभुवनसमुन्मेषविरह-
व्यथां चन्द्रो नेष्यत्यनुचितमितो नास्ति किमपि ।
इदं चेतस्तापं जनयतितरामत्र यदमी
प्रदीपाः संजातास्तिमिरहतिबद्धोद्धुरशिखाः ॥ १० ॥

एतौ भल्लटस्य ।

747

यत्पादाः शिरसा न केन विधृताः पृथ्वीभृतां मध्यत-
स्तस्मिन्भास्वति राहुणा कवलिते लोकत्रयीचक्षुषि ।
खद्योतैः स्फुरितं तमोभिरुदितं ताराभिरुज्जृम्भितं
घूकैरुत्थितमाः किमत्र करवै किं केन नो चेष्टितम् ॥ ११ ॥

परिमलस्य ।

## अथ चन्द्रान्योक्तयः ॥ ४१ ॥

748

आलोकवन्तः सन्त्येव भूयांसो भास्करादयः ।
कलावानेव तु यावद्भावकर्मणि कर्मठः ॥ १ ॥

प्रह्लादनस्य ।

749

दैवाद्यद्यपि तुल्योभूद्भूतेशस्य परिग्रहः ।
तथापि किं कपालानि तुलां यान्ति कलानिधेः ॥ २ ॥

भवभूतेः ।

750

अहो नक्षत्रराजस्य साभिमानं विचेष्टितम् ।
परिक्षीणस्य वक्रत्वं संपूर्णस्य सुवृत्तता ॥ ३ ॥

751

हरमुकुटे सुरतटिनीनिकटस्थितिलोभतो द्विजेन्द्रेण ।
अपि गरलं फणिफूत्कृतिरीक्षणतीक्ष्णाशुशुक्षणिः क्षान्तः ॥ ४ ॥

752

निजकरनिकरसमृद्ध्या धवलय भुवनानि पार्वण शशाङ्क ।
सुचिरं हन्त न सहते हतविधिरिह सुस्थितं कमपि ॥ ५ ॥

753

शिरसा धार्यमाणोपि सोमः सोमेन शंभुना ।
तथापि कृशतां धत्ते कष्टः खलु पराश्रयः ॥ ६ ॥

754

व्यज्यमानकलङ्कस्य वृद्धौ वृद्धौ कलानिधेः ।
आशास्महे वयं पूर्वां सर्वश्लाघ्यां कृशां दशाम् ॥ ७ ॥

केषामप्येते ।

755

नयनमसि जनार्दनस्य शंभो-
र्मुकुटमणिः सुदृशां त्वमादिदेवः ।

त्यजसि न मृगमात्रमेकमिन्दो
विरमति येन कलङ्किंवदन्ती ॥ ८ ॥

उमापतिधरस्य ।

756

यद्यपि शिरोधिरोहति रौद्रः क्रोधेन सिंहिकातनयः ।
त्यजति न शरणं यातं सागरसूनुर्मृगं तदपि ॥ ९ ॥

मदनस्य ।

757

क्षीणः क्षीणः समीपत्वं पूर्णः पूर्णोतिदूरताम् ।
उपैति मित्राद्यचन्द्रो युक्तं तन्मलिनात्मनः ॥ १० ॥

758

यज्ज्ञातोसि पयोनिधौ हरजटाजूटे प्रसिद्धोसि य-
द्विश्वस्योदरदीपकोसि विधिना सृष्टोसि यच्चामृतैः ।
भ्रातः शीतमयूख सर्वमधुना म्लानीकृतं तत्त्वया
राजीवं यदपास्य कैरवकुलं नीतं विकासास्पदम् ॥ ११ ॥

759

लब्धं जन्म सह श्रिया स्वयमपि त्रैलोक्यभूषाकरः
स्थित्यर्थं परमेश्वरोभ्युपगतस्तेनापि मूर्ध्ना धृतः ।
वृद्धिं शीतकरस्तथापि न गतः क्षीणः परं प्रत्युत
प्रायः प्राक्तनमेव कर्म बलवत्कः कस्य कर्तुं क्षमः ॥१२॥

केषामप्येते ।

760

पादन्यासं क्षितिधरगुरोर्मूर्ध्नि कृत्वा सुमेरोः
क्रान्तं येन क्षपिततमसा मध्यमं धाम विष्णोः ।
सोयं चन्द्रः पतति गगनादल्पशेषैर्मयूखै-
र्दूरारोहो भवति महतामप्यपभ्रंशहेतुः ॥ १३ ॥

कालिदासस्य ।

761

पीयूषं वपुषोस्य हेतुरुदयो विश्वस्य नेत्रोत्सवः
प्लुष्टं भानुकरैरयं त्रिभुवनं ज्योत्स्नाभरैः सिञ्चति ।

सर्वाशाप्रतिरोधकान्धतमसध्वंसाय बद्धोद्यमो
धिग्धातारमिहापि लक्ष्म लिखितुं यस्य प्रवृत्तं मनः ॥१४॥
कस्यापि।

762

निरर्थकं जन्म गतं नलिन्या
यया न दृष्टं तुहिनांशुबिम्बम् ।
उत्पत्तिरिन्दोरपि निष्फलैव
दृष्टा प्रहृष्टा नलिनी न येन ॥ १५ ॥
कस्यापि।

763

विरम तिमिर साहसादमुष्मा-
द्यदि रविरस्तमितः स्वतस्ततः किम् ।
कलयसि न पुरो महोमहोर्मि-
द्युतिनिधिरभ्युदयत्ययं शशाङ्कः. ॥ १६ ॥
बल्लालसेनस्य।

764

उच्चैः स्थानकृतोदयैर्बहुविधैर्ज्योतिर्भिरुद्यत्प्रभैः
शुक्राद्यैः किममीभिरत्र वितथां प्रौढिं दधानैरपि ।
यावल्लोकतमोपहेन भवता लक्ष्मीर्न विस्तार्यते
तावच्चन्द्र कथं प्रयाति परमां वृद्धिं स रत्नाकरः ॥१७॥
त्रिलोचनस्य।

---

## अथ मेघान्योक्तयः ॥ ४२ ॥

765

एकस्य तस्य मन्ये धन्यामभ्युन्नतिं जलधरस्य ।
विश्वं सशैलकाननमाननमवलोकते यस्य ॥ १ ॥
प्रह्लादनस्य ।

766

संप्रति न कल्पतरवो न सिद्धयो नापि देवता वरदाः ।
जलद त्वयि विभाम्यति सृष्टिरियं भुवनलोकस्य ॥ २ ॥
वस्तुपालस्य।

767

क्षणदृष्टनष्टतडितो निजसंपत्तेः पयोदनिवहेन ।
ज्ञातं साधु यदुचितं भुवनेभ्यो वितरता वारि ॥ ३ ॥

कस्यापि ।

768

प्रावृषेण्यस्य मालिन्यं दोषः कोभीष्टवर्षिणः ।
शारदाभ्रस्य शुभ्रत्वं वद कुत्रोपयुज्यते ॥ ४ ॥

769

जलधर जलभरनिकरैरपहर परितापमुद्धतं जगतः ।
नो चेदपसर दूरं हिमकरकरदर्शनं वितर ॥ ५ ॥

चन्द्रकवेः ।

770

चातकः स्वानुमानेन जलं प्रार्थयतेम्बुदात् ।
स स्वोदारतया सर्वां प्लावयत्यम्बुना महीम् ॥ ६ ॥

कस्यापि ।

771

शालेयेषु शिलातलेषु च गिरेः शृङ्गेषु गर्तेषु च
श्रीखण्डेषु विभीतकेषु च तथा पूर्णेषु रिक्तेषु च ।
स्निग्धेन ध्वनिनाखिलेपि जगतीचक्रे समं वर्षतो
वन्दे वारिदसार्वभौम भवतो विश्वोपकारिव्रतम् ॥ ७ ॥

कस्यापि ।

772

नीहाराकरसारसागरसरित्कासारनीरश्रियं
त्यक्त्वा तोयद चातकेन महती सेवा समालम्बिता ।
तस्यैतत्फलितं समुज्झसि शिलासंताडनं मस्तके
गाढं गर्जसि वज्रमुज्झसि तडिल्लेखाभिरातर्जसि ॥ ८ ॥

कस्यापि ।

773

क्षुद्राः सन्ति सहस्रशः स्वभरणव्यापारमात्रोद्यताः
स्वार्थो यस्य परार्थ एव स पुमानेकः सतामग्रणीः ।

दुष्पूरोदरपूरणाय पिबति स्रोतःपतिं वाडवो
जीमूतस्तु निदाघतापितजगत्संतापविच्छित्तये ॥ ९ ॥

कस्यापि ।

774

अन्योपि चन्दनतरोर्महनीयमूर्तेः
सेकार्थमुत्सहति तद्गुणबद्धतृष्णः ।
शाखोटकस्य पुनरस्य महाशयोय-
मम्भोद एव शरणं यदि निर्गुणस्य ॥ १० ॥

कस्यापि ।

775

अये हेलावेलातुलितकुलशैले जलनिधौ
कुतो वारामोघं बत जलद मोघं वितरसि ।
समन्तादुत्तालज्वलदनलकीलाकवलन-
क्लमोपेतानेतानुपचर पयोभिर्विटपिनः ॥ ११ ॥

बिल्हणस्य ।

776

मार्गो भूरिमरुर्जलं स्थलभुवि स्वप्नेपि नो लभ्यते
तीव्रो वाति समीरणः क्वचिदपि च्छायाभृतो न द्रुमाः ।
अङ्गारप्रकरान्किरन्निव रविर्ग्रीष्मे तपत्यम्बरे
तद्गेहः पान्थहिताय पूरय धरां पाथोद पाथोभरैः ॥ १२ ॥

शार्ङ्गधरस्य ।

777

भेकैः कोटरशायिभिर्मृतमिव क्ष्मान्तर्गतं कच्छपैः
पाठीनैः पृथुपङ्कपीठलुठनाद्यस्मिन्मुहुर्मूर्छितम् ।
तस्मिञ्छुष्कसरस्यकालजलदेनागत्य तच्चेष्टितं
यत्राकण्ठनिमग्नवन्यकरिणां यूथैः पयः पीयते ॥ १३ ॥

अकालजलदस्य ।

778

आश्वास्य पर्वतकुलं तपनोष्मतप्तं
दुर्दाववह्निविधुराणि च काननानि ।

नानानदीनदशतानि च पूरयित्वा
रिक्तोसि यज्जलद सैव तवोत्तमा श्रीः ॥ १४ ॥
कस्यापि ।

779

अयि जलद यदि न दास्यसि कतिचित्त्वं चातकाय जलकणिकाः ।
तदयमचिरेण भविता सलिलाञ्जलिदानयोग्यस्ते ॥ १५ ॥

780

विलपति तथा सारङ्गोयं भवानयमुद्धतो
जलमपि च ते संयोगोयं कथंचिदुपस्थितः ।
उपकुरु कुरु प्रह्वं चेतो न वेत्सि यदग्रतो
जलधर पुनः क्व त्वं क्वायं क्व ते जलबिन्दवः ॥ १६ ॥

781

स्वयि वर्षति पर्जन्ये सर्वे पल्लविता द्रुमाः ।
अस्माकमर्कवृक्षाणां पूर्वपत्रेपि संशयः ॥ १७ ॥

782

त्वमेव चातकाधार इति केषां न गोचरः ।
धिगम्भोद यदस्यापि कार्पण्योक्तीः प्रतीक्षसे ॥ १८ ॥
केषामप्येते ।

783

एतदत्र पथिकैकजीवनं
पश्य शुष्यतितरां महत्सरः ।
धिङ्मुधाम्बुधर रुद्धसद्गति-
र्वर्धिता किमिति तेद्रिवाहिनी ॥ १९ ॥
प्रकाशवर्षस्य ।

784

अमुं कालक्षेपं त्यज जलद गम्भीरमधुरैः
किमेभिर्निर्घोषैः सृज झगिति झात्कारि सलिलम् ।
अये पश्यावस्थामकरुण समीरव्यतिकर-
ज्वलद्दावज्वालावलिजटिलमूर्तेर्वटपिनः ॥ २० ॥
अचलस्य ।

785

शोषं गते सरसि शैवलमञ्जरीणा-
मन्तस्तिमिर्लुठति तापविसंष्ठुलाङ्गः ।
अत्रान्तरे यदि न वारिद वारिपूरै-
राप्लावयेस्तदनु किं मृतमण्डनेन ॥२१॥

786

कालातिक्रमणं कुरुष्व तडितां विस्फूर्जितैस्त्रासय
स्फारैर्भीषय गर्जितैरतितरां काष्ण्यं मुखे दर्शय ।
अस्यानन्यगतेः पयोद मनसो जिज्ञासया चातक-
स्याधेहि त्वमिहाखिलं तदपि न त्वत्तः परं याचते ॥२२॥

787

भूयो गर्जितमम्बुद प्रकटिता विद्युत्खमापूरितं
दूरावग्रहपृष्ठनिष्ठ तदलं वृष्ट्या तवातः परम् ।
निर्दग्धाखिलशालिहालिकवधूसंनद्धनेत्रैः परं
नैराश्यादिह वर्षितव्यमधुना केदारपूरं पयः ॥२३॥

788

नैताः स्वयमुपभोक्ष्यसि मोक्ष्यसि जलदोषरादिषु क्वापि ।
तत्किं तत्र न मुञ्चसि मुक्ता मुक्ता भवन्ति यत्रापः ॥२४॥

789

यदम्बुकणमादाय प्राप्तोसि जलदोन्नतिम् ।
तस्योपर्यम्बुधेर्गर्जा मलिनस्योचितैव ते ॥ २५ ॥

केषामप्येते ।

---

## अथ वायोरन्योक्तयः ॥ ४२ ॥

790

वरतरुविघटनपटवः कटवश्चञ्चन्ति वायवो बहवः ।
तत्कुसुमबहलपरिमलगुणविन्यासे कृती त्वेकः ॥ १ ॥

भानुपण्डितस्य ।

791

अलिपटलैरनुयातां सहृदयहृदयज्वरं विलुम्पन्तीम् ।
मृगमदपरिमललहरीं समीर पामरपुरे किरसि ॥ २ ॥

भवभूतेः ।

792

ये जात्या लघवः सदैव गणनां याता न ये कुत्रचि-
त्पद्भ्यामेव विमर्दिताः प्रतिदिनं भूमौ निलीनाश्चिरम् ।
उक्षिप्ताश्चपलाशयेन मरुता पश्यान्तरिक्षे सखे
तुङ्गानामुपरि स्थितिं क्षितिभृतां कुर्वन्त्यमी पांसवः ॥ ३ ॥

भल्लटस्य ।

793

परमो मरुत्सखाग्नेस्तेजोवृद्धिं तनोति तज्ज्ञं तु ।
दीपं हरति तदस्य ज्ञातं प्रतिपत्तिनिर्वहणम् ॥ ४ ॥

कस्यापि ।

794

कोयं भ्रान्तिप्रकारस्तव पवन पदं लोकपादाहतानां
तेजस्विव्रातसेव्ये नभसि नयसि यत्पांसुपूरं प्रतिष्ठाम् ।
अस्मिन्नुत्थाप्यमाने जननयनपथोपद्रवस्तावदास्तां
केनोपायेन सद्यो वपुषि कलुषतादोष एष त्वयैव ॥ ५ ॥

795

हंहो दग्धसमीर सर्पति भवत्यस्मिन्वने शाखिनां
शाखाघर्षणतः स कोपि सुचिरं जज्वाल दावानलः ।
येनादाहि पलायमानहरिणं भस्मीभवद्भूरुहं
शुष्यन्निर्झरमुत्पतत्खगकुलं वेल्लद्भुजंगं वनम् ॥ ६ ॥

कयोरप्येतौ ।

---

## अथ हंसान्योक्तयः ॥ ४४ ॥

796

कंसारिचरणोद्भूतसिन्धुकल्लोललालितम् ।
मन्ये हंस मनो नीरे कुल्यानां रमते कथम् ॥ १ ॥

शार्ङ्गधरस्य ।

797

अम्भोजिनीवननिवासविलासमेव
हंसस्य हन्ति नितरां कुपितो विधाता ।
न त्वस्य दुग्धजलभेदविधौ प्रसिद्धां
वैदग्ध्यकीर्तिमपहर्तुमसौ समर्थः ॥ २ ॥

भर्तृहरेः ।

798

अपसरणमेव शरणं मौनं वा तत्र राजहंसस्य ।
कटु रटति निकटवर्ती वाचाटष्टिट्टिभो यत्र ॥ ३ ॥

799

भृङ्गाङ्गनाजनमनोहरहारिगीत-
राजीवरेणुकणकीर्णपिशङ्गतोयाम् ।
रम्यां हिमाचलनदीं प्रविहाय हंस
हे हे हताश वद कां दिशमुत्सुकोसि ॥ ४ ॥

800

स्थित्वा क्षणं विततपक्षतिरन्तरिक्षे
मातङ्गसङ्गकलुषां नलिनीं विलोक्य ।
उत्पन्नमन्युपरिघर्घरनिःस्वनेन
हंसेन साभु परिवृत्य गतं न लीनम् ॥ ५ ॥

801

सरसि बहुशस्ताराछायां दशन्परिवञ्चितः
कुमुदविटपान्वेषी हंसो निशास्वविचक्षणः ।
न दशति पुनस्ताराशङ्की दिवापि सितोत्पलं
कुहकचकितो लोकः सत्येप्यपायमपेक्षते ॥ ६ ॥

802

वातान्दोलितपङ्कजच्युतरजःपुञ्जाङ्गरागोज्ज्वलो
यः शृण्वन्कलकूजितं मधुलिहां संजातहर्षः पुरा ।
कान्ताचञ्चुपुटापवर्जितबिसग्रासमहेप्यक्षमः
सोयं संप्रति हंसको मरुगतः कौपं पयो याचते ॥ ७ ॥

803

तरौ तीरोद्भूते क्वचिदपि दलाच्छादिततनुः
पतद्धारासारां गमय विषमां प्रावृषमिमाम् ।
निवृत्तायां तस्यां सरसि सरसोत्फुल्लनलिने
स एव त्वं हंसः पुनरपि विलासास्त इह ते ॥ ८ ॥

804

रे राजहंस किमिति त्वमिहागतोसि
योसौ बकः स इह हंस इति प्रतीतः ।
तद्गम्यतामनुपदेन पुनः स्वभूमौ
यावद्वदन्ति न बकं खलु मूढलोकाः ॥ ९ ॥

805

यो दिव्याम्बुजलीनमत्तमधुपप्रोद्गीतिरम्यं सर-
स्त्यक्त्वा मानसमल्पवारिणि रतिं बध्नाति कैदारिके ।
तस्यालीकसुखाशया परिभवक्रोडीकृतस्याधुना
हंसस्योपरि टिट्टिभो यदि पदं धत्तेत्र को विस्मयः ॥ १० ॥

806

अन्या सा सरसी मराल मुनिभिर्यत्तीरसोपानिका-
विन्यस्तान्बलितण्डुलान्कवलयन्दृष्टोसि हृष्टैर्मुखैः ।
एषा पङ्कणवापिका कमलिनीखण्डेन गुप्तात्मभि-
र्व्याधैस्त्वद्विधमुग्धबन्धनविधौ को नाम नो सूत्र्यते ॥ ११ ॥

807

भो हंसास्तावदम्भोरुहकुहररजोरञ्जिताङ्गाः सहेलं
हंसीभिः पद्मखण्डे मधुरमधुकरारावरम्ये रमध्वम् ।
यावच्चायं दुरन्तो हरगलगरलव्यालजालालिनील-
प्रोन्मीलन्मेघमालामलिनसकलदिङ्मण्डलोभ्येति कालः ॥ १२ ॥

808

हे पक्षिन्नागतस्त्वं कुत इह सरसस्तत्क्रियद्भो विशालं
किं मद्धाम्नोपि वाढं तदतिशठ महापाप मा ब्रूहि मिथ्या ।

इत्थं कूपोदरस्थः शपति तटगतं दर्दुरो राजहंसं
नीचः प्रायः शठार्थो भवति हि विषमो नापराधेन दृष्टः ॥१३॥

केषामप्येते।

809

यः संतापमपाकरोति जगतां यश्चोपकारक्षमः
सर्वेषाममृतात्मकेन वपुषा प्रीणाति नेत्राणि यः ।
तस्याप्युन्नतिमम्बुदस्य सहसे यन्न त्वमेतावता
वर्णेनैव परं मराल धवलः कृष्णश्चरित्रैरसि ॥ १४ ॥

श्रीभोजदेवस्य।

810

गतं तन्नाम्भोयैं तटमपि चितं जालकशतैः
सखे हंसोत्तिष्ठ त्वरितममुतो गच्छ सरसः ।
न यावत्पङ्कोक्तः कलुषिततनुर्भूरिविलस-
न्बकोटो वाचाटश्चरणयुगलं मूर्ध्नि कुरुते ॥१५॥

811

यदि नाम दैवगत्या जगदसरोजं कदापि संजातम् ।
अवकरनिकरं विकिरति तत्किं कृकवाकुरिव हंसः ॥१६॥

812

अस्ति यद्यपि सर्वत्र नीरं नीरजमण्डितम् ।
रमते न मरालस्य मानसं मानसं विना ॥१७॥

813

आकारः कमनीयताकुलगृहं लीलालसा सा गतिः
संपर्कः कमलालयैः कलतया लोकोत्तरं कूजितम् ।
यस्येयं गुणसंपदस्ति महती तस्यातिभव्यस्य ते
संरम्भत्वमसह्यमद्भुकलहे नाहं सहे हंस हे ॥१८॥

814

नद्यो नीचरता दुरापपयसः कूपाः पयोराशयः
क्षारा दुष्टबकोटसंकटतटोद्देशास्तडागादयः ।

भ्रान्त्वा भूतलमाकलय्य सकलानम्भोनिवेशानिति
स्वां भो मानस संस्मरन्पुनरसौ हंसः समभ्यागतः ॥११॥
केषामप्येते ।

## अथ मधुकरान्योक्तयः ॥ ४५ ॥

815

मधुकर तव करनिकरैः किं किं क्रान्तं कुलं न कुसुमानाम् ।
तद्वद सरसिजमुकुले लब्धं किंचिद्यदन्यतस्तत्किम् ॥१॥

816

गौरीं चम्पककलिकामपहाय भ्रान्त दुर्बुद्धे ।
शाल्मलिकुसुमदलेषु स्वैरं गुञ्जन्न लज्जसे मधुप ॥२॥
शार्ङ्गधरस्य ।

817

भ्रमन्वनान्ते नवमञ्जरीषु
न षट्पदो गन्धफलीमजिघ्रत् ।
सा किं न रम्या स च किं रन्ता
बलीयसी केवलमीश्वरेच्छा ॥ ३ ॥
लक्ष्म्याः ।

818

भ्रमर भ्रमता दिगन्तराणि
क्वचिदासादितमीक्षितं श्रुतं वा ।
वद सत्यमपास्य पक्षपातं
यदि जातीकुसुमानुकारि पुष्पम् ॥ ४ ॥
श्रीगणदेवानाम् ।

819

अभिनवनलिनीविनोदलुब्धो
मुकुलितकैरविणीवियोगभीरुः ।
भ्रमति मधुकरोयमन्तराले
भ्रयति न पङ्कजिनीं कुमुद्वतीं वा ॥ ५ ॥
श्रीधनदेवानाम् ।

820

नो मल्लीमयमीहते न भजते मत्तेभकुम्भस्थलीं
वासन्तीं सहते न चन्दनवनीमालम्बते न क्वचित् ।
जातीमेव हृदीश्वरीमिव महानन्दैककन्दाङ्कुरां
ध्यायन्निर्वृतिमेति षट्पदयुवा योगीव वीतभ्रमः ॥ ६ ॥

श्रीपुष्पाकरदेवानाम् ।

821

किं मालति म्लायसि यद्यविद्य-
श्चुचुम्ब तुम्बीकुसुमं षडङ्घ्रिः ।
प्राणी चतुर्भिश्चरणैः पशुश्चे-
त्स षड्भिरध्यर्धपशुः कथं न ॥ ७ ॥

कस्यापि ।

822

केतकीकुसुमं भृङ्गः खण्ड्यमानोपि सेवते ।
दोषाः किं नाम कुर्वन्ति गुणापहृतचेतसः ॥ ८ ॥

कस्यापि ।

823

अन्यासु तावदुपमर्दसहासु भृङ्ग
लोलं विनोदय मनः सुमनोलतासु ।
मुग्धामजातरजसं कलिकामकाले
व्यर्थं कदर्थयसि किं नवमालिकायाः ॥ ९ ॥

विकटनितम्बायाः ।

824

मदनमवलोक्य निष्फलमनित्यतां बन्धुजीवकुसुमानाम् ।
वनमुपगम्य भ्रमरः संप्रति जातो जपासक्तः ॥ १० ॥

825

फुल्लेषु यः कमलिनीकमलोदरेषु
चूतेषु यो विलसितः कलिकान्तरस्थः ।
पद्याद्य तस्य मधुपस्य शरद्व्यपाये
कृच्छ्रेण वेणुविवरे दिवसाः प्रयान्ति ॥ ११ ॥

826

स्वामोदवासितसमग्रदिगन्तराला
रक्ता मनोहरशिखा सुकुमारमूर्तिः ।
सेव्या सरोजकलिका तु यदैव जाता
नीतस्तदैव विधिना मधुपोन्यदेशम् ॥ १२ ॥

827

किं क्वापि प्रलयानलैर्विटपिनो निर्दह्य भस्मीकृताः
किं वा दैवगजेन पङ्कजवनं निष्कन्दमुन्मूलितम् ।
किं वा हन्त कृतान्तकेसरिभयात्त्यक्तो मदः कुञ्जरै-
र्येनास्मिन्विरसे करीरकुसुमे हा भृङ्ग विश्राम्यसि ॥ १३ ॥

828

अनुसरति करिकपोलं भ्रमरः श्रवणेन ताड्यमानोपि ।
गणयति न तिरस्कारं दानान्धविलोचनो नीचः ॥ १४ ॥

829

मधुकरगणश्चूतं त्यक्त्वा गतो नवमल्लिकां
पुनरपि गतो रक्ताशोकं कदम्बतरुं ततः ।
तदपि सुचिरं स्थित्वा तेभ्यः प्रयाति सरोरुहं
परिचितजनद्वेषी लोको नवं नवमीहते ॥ १५ ॥

830

यस्याः संगमवाञ्छया न गणिता वाप्यो विनिद्रोत्पला
यामालिङ्ग्य समुत्सुकेन मनसा यातः परां निर्वृतिम् ।
भग्नां तामवलोक्य चन्दनलतां भृङ्गेण यज्जीव्यते
धैर्यं नाम तदस्तु तस्य न पुनः स्नेहानुरूपं कृतम् ॥ १६ ॥

831

अपसर मधुकर दूरं परिमलबहुलेपि केतकीकुसुमे ।
इह नहि मधुलवलेशो भवति परं धूलिधूसरं वदनम् ॥ १७ ॥

832

दग्धा सा बकुलावली कवलितास्ते ते रसालद्रुमाः
भ्रष्टास्तेपि विनिद्रपुष्पपटलीपीतातपाः पादपाः ।
भ्रातर्भृङ्ग दवाग्निना वनमिदं वल्मीकशेषं कृतं
किं संप्रत्यपि काननान्तरपरिस्पन्दाय मन्दायसे ॥ १८ ॥

833

दूरादुज्झति चम्पकं न च भजत्यम्भोजराजीरजो
नो जिघ्रत्यपि पाटलापरिमलं धत्ते न चूते रतिम् ।
मन्दारेपि न सादरो विचकिलोपान्तेपि संतप्यते
तन्मन्ये क्वचिदङ्ग भृङ्गतरुणेनास्वादिता मालती ॥ १९ ॥

834

ये वर्धिताः करिकपोलमदेन भृङ्गाः
प्रोत्फुल्लपङ्कजरजःसुरभीकृताङ्गाः ।
ते सांप्रतं प्रतिदिनं गमयन्ति कालं
निम्बेषु चार्ककुसुमेषु च दैवयोगात् ॥ २० ॥

835

कृत्वापि कोशपानं भ्रमरयुवा पुरत एव कमलिन्याः ।
अभिलषति बकुलकलिकां मधुलिहि मलिने कुतः सत्यम् ॥ २१ ॥

836

इह सरसि सहर्षं मञ्जुगुञ्जाभिरामं
मधुकर कुरु केलिं सार्धमम्भोजिनीभिः ।
अनुपममकरन्दामोददत्तप्रमोदा
त्यजति बत न निद्रां मालती यावदेषा ॥ २२ ॥

837

येनामोदिनि केसरस्य मुकुले पीतं मधु स्वेच्छया
नीता येन निशा शशाङ्कधवला पद्मोदरे शारदी ।
भ्रान्तं येन मदप्रवाहमलिने गण्डस्थले दन्तिनां
सोयं भृङ्गयुवा करीरविटपे बध्नाति तुष्टिं कुतः ॥ २३ ॥

## अथ कोकिलान्योक्तयः ॥ ४६ ॥

838

काकैः सह विवृद्धस्य कोकिलस्य कला गिरः ।
खलसङ्गेऽपि नैष्ठुर्यं कल्याणप्रकृतेः कुतः ॥ १ ॥

839

समुद्गिरसि वाचः किं पुंस्कोकिल सुकोमलाः ।
श्वभ्रेस्मिञ्जडपाषाणगुरुनिर्घोषभैरवे ॥ २ ॥

840

अस्यां सखे बधिरलोकनिवासभूमौ
किं कूजितेन खलु कोकिल कोमलेन ।
एते हि दैवहतकास्तदभिन्नवर्णं
त्वां काकमेव कलयन्ति कलानभिज्ञाः ॥ ३ ॥

केषामप्येते ।

841

कोकिल कलप्रलापैरलमलमालोकसे रसालं किम् ।
शरनिकरभरितशरधिः शबरः सरतीह परिसरे सधनुः ॥ ४ ॥

श्रीधनदेवानाम् ।

842

तवैतद्वाचि माधुर्यं जाने कोकिल कृत्रिमम् ।
यैः पोषितोसि तानेव जातपक्षो जहासि यत् ॥ ५ ॥

श्रीभोजदेवस्य ।

843

मूकीभूय तमेव कोकिल मधुं बन्धुं प्रतीक्षस्व हे
हेलोल्लासितमल्लिकापरिमलामोदानुकूलानिलम् ।
यत्रैतास्तव सूक्तयः सफलतामायान्त्यमी तूल्लस-
त्पांसूत्तम्भभृतो निदाघदिवसाः संतापसंदायिनः ॥ ६ ॥

कस्यापि ।

844

येनानन्दमये वसन्तसमये सौरभ्यहेलामिल-
द्भृङ्गालीमुखरे रसालशिखरे नीताः पुरा वासराः ।

आः कालस्य वशेन कोकिलयुवा सोप्यद्य सर्वा दिशः
खेलद्वायसचञ्चुघातविदलन्मूर्धा मुहुर्धावति ॥७॥

भेरीभांकारस्य।

845

क्वचिज्झिल्लीनादः क्वचिदतुलकाकोलकलहः
क्वचित्कङ्कारावः क्वचिदपि कपीनां कलकलः।
क्वचिद्घोरः फेरुध्वनिरयमहो दैवघटना
कथंकारं तारं रसति चकितः कोकिलयुवा ॥८॥

कस्यापि।

846

यस्याकर्ण्य वचः सुधाकवलितं वाचंयमानामपि
व्यग्राणि ग्रथयन्ति मन्मथकथां चेतांसि चैत्रोत्सवे।
रे रे काक वराक साकममुना पुंस्कोकिलेनाधुना
स्पर्धाबन्धमुपेयुषस्तव नु किं लज्जापि नो जायते ॥९॥

भल्लटस्य।

847

रे बालकोकिल करीरमरुस्थलीषु
किं दुर्विदग्ध मधुरध्वनिमातनोषि।
अन्यः स कोपि सहकारतरुप्रदेशो
राजन्ति यत्र तव विभ्रमभाषितानि ॥ १० ॥

कस्यापि।

848

रसालशिखरासीनाः सन्तु सन्तु पतत्रिणः।
तन्मञ्जरीरसामोदविन्दुरेकः कुहूमुखः ॥११॥

849

रे कीर कैतवसुगीरिति संकलय्य
मा मात्र संरससि सज्जनरञ्जनाय।
बालोपि यत्र कलकण्ठसुकण्ठपीठ-
संलोठिकोमलकूहूरुतपूर्णकर्णः ॥१२॥

एतौ श्रीचन्द्रदेवस्य।

850

दात्यूहाः सरसं रसन्तु सुभगं गायन्तु केकाभृतः
कादम्बाः कलमालपन्तु मधुरं कूजन्तु कोयष्टयः ।
दैवाद्यावदसौ रसालविटपिच्छायामनासादय-
न्निर्विण्णः कुटजेषु कोकिलयुवा संजातमौनव्रतः ॥१३॥

851

भ्रातः कोकिल कूजितेन किमलं नाद्याप्यनर्घ्यो गुण-
स्तूष्णीं तिष्ठ विशीर्णपर्णपटलच्छन्नः क्वचित्कोटरे ।
प्रोद्दामद्रुमसंकटे कटुरटत्काकावलीसंकुलः
कालोयं शिशिरस्य संप्रति सखे नायं वसन्तोत्सवः ॥१४॥

केषामप्येतौ ।

---

## अथ चातकान्योक्तयः ॥४७॥

852

एक एव खगो मानी चिरं जीवतु चातकः ।
पिपासितो वा म्रियते याचते वा पुरंदरम् ॥१॥

कस्यापि ।

853

दीनोन्नतचलपक्षतया
बह्वपि लब्धमवस्तु ।
चातक यत्संभावनया
किमपि यदस्ति तदस्तु ॥२॥

854

चातकस्य खलु चञ्चुसंपुटे
नो पतन्ति यदि वारिबिन्दवः ।
सागरीकृतमहीतलस्य किं
दोष एष जलदस्य दीयते ॥३॥

855

सत्यं सत्यं मुनेर्वाक्यं नादत्तमुपतिष्ठते ।
अम्बुभिः पूरिता पृथ्वी चातकस्य मरुस्थली ॥४॥

856

बीजैरङ्कुरितं जटाभिरुदितं वल्लीभिरुज्जृम्भितं
कन्दैः कन्दलितं जनैः समुदितं धाराधरे वर्षति ।
भ्रातश्चातक पातकं किमपि ते सम्यङ्न जानीमहे
येनास्मिन्न पतन्ति तावकमुखे द्वित्राः पयोबिन्दवः ॥५॥

857

चातक धूमसमूहं दृष्ट्वा मा धाव वारिधरबुद्ध्या ।
इह हि पतिष्यति भवतो नयनयुगादेव वारि परम् ॥ ६ ॥

858

रक्ताब्जपुञ्जरजसारुणितान्विमुच्य
स्वच्छान्सुधासमरसानपि वारिराशीन् ।
यच्चातकः पिबति वारिधरोदबिन्दू-
न्मन्ये तदाननिभयाच्छिरसोभिमानी ॥ ७ ॥

859

कूपे पानमधोमुखस्य हि भवेद्वाप्यो वराक्यः स्त्रियः
सामान्यं बकटिट्टिभैः सह सरस्येवं समालोकयन् ।
नादत्ते तृषितोपि सिन्धुसलिलं क्रूरैर्वृतं जन्तुभि-
र्मानादुद्धतकंधरः सुरपतिं तच्चातको याचते ॥ ८ ॥

860

गर्जितबधिरीकृतककुभा
किमपि कृतं न घनेन ।
कियती चातकचञ्चुपुटी
सापि भृता न जलेन ॥ ९ ॥

861

अन्येपि सन्ति बत तामरसावतंसा
हंसावलीवलयिनो जलसंनिवेशाः ।
कोप्याग्रहो गुरुरयं हतचातकस्य
पौरंदरीं यदभिवाञ्छति वारिधाराम् ॥ १० ॥

862

अन्ये ते जलदायिनो जलधरास्तृष्णां विनिघ्नन्ति ये
भ्रातश्चातक किं वृथात्र रटितैः खिन्नोसि विभाम्यताम् ।
मेघः शारद एष काशधवलः पानीयरिक्तोदरो
गर्जत्येव हि केवलं भृशतरं नो बिन्दुमप्युज्झति ॥ ११ ॥

863

समागमिष्यतोम्भोद वेत्ति कः समयं तव ।
रौति नो यदि सारङ्गस्तवोच्चैः खे पुरःसरः ॥ १२ ॥
चन्द्रस्य ।

864

यः कृष्णं कुरुते मुखं जनयति त्रासं तडिद्भिस्तु यो
यश्च प्रार्थयते परं दलयति श्रोत्राणि यो गर्जितैः ।
सत्यं चातक तं तथाविधमपि भ्रातस्त्वया याचता
जीमूतं कृतमेव तुल्यमनयोरर्थित्वतिर्यक्त्वयोः ॥१३॥

865

धिग्वारिदं परिहृतान्यजलाशयस्य
यच्चातकस्य कुरुते न तृषः प्रशान्तिम् ।
धिक्चातकं तमपि योर्थितयास्तलज्ज-
स्तं तादृशं च यदुपैति पिपासितोपि ॥१४॥

866

विश्वोपजीव्येपि पिबत्यपो न
पद्माकरे यद्यपि चातकोयम् ।
स्वार्थक्षतिस्तस्य तृषातुरस्य
लघुत्वमत्रास्ति न किंचिदस्य ॥१५॥
केषामप्येते ।

---

## अथ मयूरान्योक्तयः ॥४८॥

867

एतस्मिन्मलयाचले बहुविधैः किं तैरकिंचित्करैः
काकोलूककपोतकोकिलकुलैरेकोपि पार्श्वस्थितः ।

केकी कूजति चेत्तदा विघटितव्यालावलीबन्धनः
सेव्यः स्यादिह सर्वलोकमनसामानन्दनश्चन्दनः ॥१॥

कस्यापि।

868

केका कर्णामृतं ते सकुसुमकबरीकान्तिहारी कलापः
कण्ठच्छाया पुरारेर्गलरुचिरुचिरा सौहृदं मेघसंघैः।
विश्वद्वेषिद्विजिह्वस्फुरदुरुपिशितैर्नित्यमाहारवृत्तिः
कैः पुण्यैः प्राप्तमेतत्सकलमपि सखे चित्रवृत्तं मयूर ॥२॥

शार्ङ्गधरस्य।

869

वेगज्वलद्विटपपुञ्जमहारवोयं
गर्जन्न तीव्रतरहेतिरियं न शम्पा।
दावाग्निधूमनिवहोयमयं न मेघः
किं नृत्यसि द्रुतमितो व्रज तत्कलापिन् ॥३॥

लक्ष्मीधरस्य।

870

अये नीलग्रीव क्व कथय सखे तेद्य मुनयः
परं तोषं येषां तव रवविलासो वितनुते।
अमी दूरात्क्रूराः क्वणितमिदमाकर्ण्य सहसा
त्वरन्ते हन्तुं त्वामहह शबराः पुञ्जितशराः ॥ ४ ॥

कस्यापि।

871

हारीताः सरसं रसन्तु मधुरं कूजन्तु पुंस्कोकिलाः
सानन्दं गिरमुद्गिरन्तु च शुकाः किं तैः शिरस्थैरपि।
एकेनापि तलस्थितेन नदता श्रीखण्ड निस्तर्जना-
द्व्यालानां च शिखण्डिनां ननु महत्पाण्डित्यमुद्दण्डितम् ॥५॥

श्रीचन्द्रदेवानाम्।

872

किं दूरेण पयोधरा उपरि किं नान्ये रटन्तः श्रुता
निर्व्यापारतया च पक्षिषु गताः किं वा न पक्षा वृथा।

रम्यं वा गगने न किं विहरणं किं तूयकाकावली-
पर्यायप्रतिपत्तिलाघवभयाद्भूमौ स्थिता बर्हिणः ॥ ६ ॥
कस्यापि ।

873

यत्नादपि कः पठयेच्छिखिनामाहारनिर्गमस्थानम् ।
यदि जलदनिनदमुदितास्त एव मूढा न नृत्येयुः ॥ ७ ॥
भर्तृहरेः ।

---

## अथ शुकान्योक्तयः ॥ ४९ ॥

874

शुक यत्तव पठनव्यसनं
न गुणः स गुणाभासः ।
समजनि येन तवामरणं
शरणं पञ्जरवासः ॥ १ ॥
श्रीधनदेवानाम् ।

875

सत्संगत्यमवाप्य यः पुरवने नानारसास्वादवा-
न्कीरः शास्त्रविचारचारुवचनैरानन्दकारी जने ।
दैवेनास्फुटवाक्प्रपञ्चविहतश्रोत्रस्य तस्याटवीं
प्राप्तस्यात्मसभाप्रगल्भकपिषु स्यान्मौनमेवोचितम् ॥ २ ॥
कस्यापि ।

876

भ्रातः कीर कठोरचञ्चुकषणक्रोधायतैः कूजितैः
किं माधुर्यनिषिक्तसूक्तिविशदः कण्ठावटुः शोष्यते ।
सेयं दैववशादृशा परिणता राजन्यपात्रस्य ते
भिक्षच्छिद्रितभित्तिमुद्रितघटः प्राप्तो यतः पञ्जरः ॥ ३ ॥
कस्यापि ।

877

माणिक्यद्रवलिप्तमौक्तिकतुलां बिभ्रन्ति नो दाडिमी-
बीजान्येष निरीक्षते न रमते हैमेप्यहो पञ्जरे ।

तत्तादृग्वनवाससंमदमहामोदैकमेदस्विनी
वृत्तिर्मे गलितानया हतगिरेत्येवं शुकः शोचते ॥ ४ ॥

श्रीराघवचैतन्यानाम्।

878

इदमपटु कपाटं जर्जरः पञ्जरोयं
विरमति न गृहेस्मिन्क्रूरमार्जारयात्रा ।
शुक मुकुलितजिह्वं स्थीयतां किं वचोभि-
स्तव वचनविनोदे नादरः पामराणाम् ॥ ५ ॥

कृष्णमिश्रस्य।

879

अमुष्मिन्नुद्याने विहगखल एष प्रतिकलं
विलोलः काकोलः क्वणति किल यावत्पटुतरम् ।
सखे तावत्कीर ब्रूहय हृदि वाचंयमकलां
न मौनेन न्यूनीभवति गुणभाजां गुणगणः ॥ ६ ॥

कस्यापि।

---

## अथ काकान्योक्तयः ॥ ५० ॥

880

गात्रं ते मलिनं तथा श्रवणयोरुद्वेगकृत्क्रेङ्कृतं
भक्ष्यं सर्वमपि स्वभावचपलं दुश्चेष्टितं ते सदा ।
एतैर्वायस संगतोस्यविनयैर्दोषैकमूलैः परं
यत्सर्वत्र कुटुम्बवत्सलमतिस्तेनैव धन्यो भवान् ॥१॥

शार्ङ्गधरस्य।

881

पथि निपतितां शून्ये दृष्ट्वा निरावरणाननां
दधिभृतघटीं गर्वोन्नद्धः समुन्नतकंधरः ।
निजसमुचितास्तास्ताश्चेष्टा विकारशताकुलो
यदि न कुरुते काणः काकः कदा नु करिष्यति ॥ २ ॥

भल्लटस्य।

882

आ मरणादपि विरुतं कुर्वाणाः स्पर्धया सह मयूरैः ।
किं जानन्ति वराकाः काकाः केकारवं कर्तुम् ॥ ३ ॥

883

तुल्यवर्णच्छदः कृष्णः कोकिलैः सह संगतः ।
केन विज्ञायते काकः स्वयं यदि न भाषते ॥ ४ ॥

884

रूक्षस्यामधुरस्य चातिमलिनच्छायस्य धृष्टस्य च
क्षुद्रस्य क्षतिकारिणोतिचपलस्याह्लादविच्छेदिनः ।
येयं निम्बफलेषु काक भवतस्तिक्तेषु नैसर्गिकी
प्रीतिस्तत्सदृशं विधेर्विलसितं निष्पन्नमेतच्चिरात् ॥ ५ ॥

885

प्रत्यङ्गणं प्रतितरु प्रतिवारितीरं
काकाश्चरन्ति चलचञ्चुपुटा रटन्तः ।
ना यान्ति तृप्तिमथ मण्डितपुण्डरीक-
खण्डे वसन्नहह तृप्यति राजहंसः ॥ ६ ॥

886

कृष्णं वपुर्वहतु चुम्बतु सत्फलानि
रम्येषु संचरतु चूतवनान्तरेषु ।
पुंस्कोकिलस्य चरितानि करोतु कामं
काकः कलध्वनिविधौ ननु काक एव ॥ ७ ॥

887

किं केकीव शिखण्डमण्डिततनुः सारीव किं सुस्वरः
किं वा हंस इवाङ्गनागतिगुरुः किं कीरवत्पाठकः ।
किं वा हन्त शकुन्तपालिपिकवत्कर्णामृतस्यन्दनः
काकः केन गुणेन काञ्चनमये व्यापारितः पञ्जरे ॥ ८ ॥

888

अत्रस्थः सखि लक्षयोजनगतस्यापि प्रियस्यागमं
वेत्त्यारव्याति च धिक्छुकादय इमे सर्वे पठन्तः शठाः ।

मत्कान्तस्य वियोगतापदहनज्वालावलीचन्दनः
काकस्तेन गुणेन काञ्चनमये व्यापारितः पञ्जरे ॥ १ ॥
केषामप्येते।

---

## अथ बकान्योक्तयः ॥ ५१ ॥

889

नालेनेव स्थित्वा पादेनैकेन कुञ्चितग्रीवम् ।
जनयति कुमुदभ्रान्तिं वृद्धबको बालमत्स्यानाम् ॥ १ ॥
वृद्धेः ।

890

एष बकः सहसैव विपन्नः
शाठ्यमहो क्व नु तद्गतमस्य ।
साधु कृतान्त न कश्चिदपि त्वां
वञ्चयितुं सुशठोपि समर्थः ॥ २ ॥

891

बकोट ब्रूमस्त्वां लघुनि सरसि क्वापि शफरै-
स्तव न्याय्या वृत्तिर्न पुनरवगाढुं समुचितः ।
इतश्चेतश्चाभ्रंलिहलहरिहेलातरलित-
क्षितिभ्रग्रासैकग्रहिलतिमिपोतः पतिरपाम् ॥ ३ ॥

892

न कोकिलानामिव मञ्जु गुञ्जितं
न लब्धलास्यानि गतानि हंसवत् ।
न बर्हिणानामिव चित्रपक्षता
गुणस्तथाप्यास्त बके बकव्रतम् ॥ ४ ॥

893

जातिस्तस्य न मानसे न शुचिभिर्वृत्तिर्मृणालाङ्कुरै-
र्नै ब्रह्मोद्वहनेन निर्मलयशःप्राप्तिर्न वाचः कलाः ।
जीवन्सत्त्ववधेन बाह्यधवलो भ्राम्यन्सगर्वं पुन-
र्मिथ्यैवोन्नतकंधरः शठबको हंसैः सह स्पर्धते ॥ ५ ॥

894

उभौ श्वेतौ पक्षौ चरति गगनेवारितगतिः
सदा मीनं भुङ्क्ते वसति सकलः स्थाणुशिरसि ।
बके चान्द्रः सर्वो गुणसमुदयः किंचिदधिको
गुणाः स्थाने मान्या नरवर न तु स्थानरहिताः ॥ ६ ॥

895

रे रे शिष्ट बकोट नाकतटिनीतीरे तपस्विव्रतं
ध्यानेनानिमिषोपभोगमनसा युक्तं करोषीदृशम् ।
एवं यत्किल मानसस्य पदवीं काङ्क्षस्ययुक्तं हि त-
न्नीरक्षीरविवेकनिर्मलधियो हंसस्य नान्यस्य सा ॥ ७ ॥

केषामप्येते ।

---

## अथ खद्योतान्योक्तयः ॥ ५२ ॥

896

जर्जरतृणाग्रमदहन्सर्षपकणमप्रकाशयन्नूनम् ।
कीटत्वमात्मतत्त्वात्खद्योतः ख्यापयन्नवति ॥ १ ॥

जयवर्धनस्य ।

897

इन्दुः प्रयास्यति विनङ्क्ष्यति तारकश्रीः
स्थास्यन्ति लीढतिमिरा न मणिप्रदीपाः ।
अन्धं समग्रमपि कीटमणे भविष्य-
त्युन्मेषमेष्यति भवानपि दूरमेतत् ॥ २ ॥

कस्यापि ।

898

अदृष्टिव्यापारं गतवति दिनानामधिपतौ
यशःशेषीभूते शशिनि गतधाम्नि ग्रहगणे ।
तथान्धं संजातं जगदुपनते मेघसमये
यथामी गण्यन्ते तमसि पटवः कीटमणयः ॥ ३ ॥

आनन्दवर्धनस्य ।

899

घनसंतमसमलीमसदशदिशि निशि यद्विराजसि तदन्यत् ।
कीटमणे दिनमधुना तरणिकरान्तरितसितकिरणम् ॥ ४ ॥
भल्लटस्य ।

---

## अथ सिंहान्योक्तयः ॥ ५२ ॥

900

एकोहमसहायोहं कृशोहमपरिच्छदः ।
स्वप्नेप्येवंविधा चिन्ता मृगेन्द्रस्य न जायते ॥ १ ॥
कस्यापि ।

901

मृगेन्द्रं वा मृगारिं वा द्वयं व्याहरतां जनः ।
तस्य द्वयमपि व्रीडा क्रीडादलितदन्तिनः ॥ २ ॥

902

मृगेभ्यो रक्ष्यते क्षेत्रं नरैस्तृणमयैरपि ।
सिंहाक्रान्तं पुनर्मूढ न हर्यैर्न च दन्तिभिः ॥ ३ ॥

903

मृगैर्नष्टं शशैर्लीनं वराहैर्वलितं रुषा ।
हयानां हेषितं श्रुत्वा सिंहैः पूर्ववदासितम् ॥ ४ ॥

904

हरिरलसविलोचनः सहेलं
बलमवलोक्य पुनर्जगाम निद्राम् ।
अधिगतपतिविक्रमास्तभीति-
र्न तु वनितास्य विलोकयांचकार ॥ ५ ॥

905

एकाकिनि वनवासिन्यराजलक्ष्मण्यनीतिशास्त्रज्ञे ।
सत्त्वोत्कटे मृगपतौ राजेति गिरः परिणमन्ति ॥ ६ ॥
केषामप्येते ।

906

नास्योच्छ्रायवती तनुर्न दशनौ नो दीर्घदीर्घः करः
सत्यं वारण नैष केसरिशिशुस्त्वाडम्बरैः स्पर्धते ।

तेजोबीजमजेयमस्य हृदये न्यस्तं पुनर्वेधसा
तादृक्त्कादृशमेव येन सुतरां भोज्यं पशुं मन्यते ॥ ७ ॥
आनन्दवर्धनस्य ।

907

क्षुत्क्षामोपि जरान्वितोपि शिथिलप्राणोपि कष्टां दशा-
मापन्नोपि विपन्नदीधितिरपि प्राणेषु गच्छत्स्वपि ।
मत्तेभेन्द्रविभिन्नकुम्भपिशितग्रासैकबद्धस्पृहः
किं जीर्णं तृणमत्ति मानमहतामग्रेसरः केसरी ॥ ८ ॥
भर्तृहरेः ।

908

येनानर्गलफालकेलिदलितप्रत्यग्रकादम्बिनी-
धाराघोरणिधौतधातुषु पुरा शैलेषु लीलायितम् ।
सोयं शृङ्गनिपातभग्नचरणः स्फारस्फुरत्फेरवी-
फेत्कारैः कुपितोद्य खादति मुहुः पाणी मृगग्रामणीः ॥ ९ ॥
भेरीभांकारस्य ।

909

अनिशं मतङ्गजानां बृंहितमाकर्ण्यते यथा विपिने ।
मन्ये तथा न जीवति गजेन्द्रपलकवलनः सिंहः ॥ १० ॥
शार्ङ्गधरस्य ।

910

जीर्णोपि क्रमहीनोपि कृशोपि यदि केसरी ।
तथापि यूथनाथस्य शङ्कातङ्काय कल्पते ॥ ११ ॥
पुष्पाकरस्य ।

911

खनन्नाखुबिलं सिंहः पाषाणशकलाकुलम् ।
ग्रामोति नखभङ्गं वा फलं वा मूषको भवेत् ॥ १२ ॥

912

अस्मिन्नम्भोदवृन्दध्वनिजनितरुषि प्रेक्षमाणेन्तरिक्षं
मा काक व्याकुलोभूस्तरुशिखरशवक्रव्यलेशानशान ।
धत्ते मत्तेभकुम्भव्यतिकरकरजग्रामवज्राग्रजाग्र-
द्ग्रासव्यासक्तमुक्ताधवलितकवलो न स्पृहामत्र सिंहः ॥ १३ ॥
महीपतिमण्डलीकस्य ।

913

ग्रामाणामुपशल्यसीमनि मदोद्रेकस्फुरत्सौष्ठवाः
फेत्कारध्वनिमुद्विरन्ति बहवः संभूय गोमायवः ।
सोन्यः कोपि घनाघनध्वनिघनः पारीन्द्रगुञ्जारवः
शुष्यद्गण्डमलोलशुण्डमचलत्कर्णं गजैर्यः श्रुतः ॥ १४ ॥

रल्हणस्य ।

914

एणः क्रीडति सूकरश्च खनति द्वीपी च गर्वायते
क्रोष्टा क्रन्दति वल्गते च शशको वेगाद्रुरुर्धावति ।
निःशङ्कः करिपोतकस्तरुलतामुन्पोटते लीलया
हंहो सिंह विना त्वयाद्य विपिने कीदृग्दशा वर्तते ॥ १५ ॥

कस्यापि ।

915

रे मातङ्ग मदाम्बुडम्बरतया रोलम्बरोलं वह-
न्वन्यानामवलम्बनं वनमिदं भङ्क्तुं यदुत्कण्ठसे ।
दृष्टस्तत्किमहो महोन्नतधराधैरेयधात्रीधर-
प्रस्थप्रस्थितमेघयूथमथनोत्कण्ठी न कण्ठीरवः ॥ १६ ॥

बिल्हणस्य ।

916

यस्यावन्ध्यरुषः प्रतापवसतेर्नादेन धैर्यद्रुहा
शुष्यन्ति स्म मदप्रवाहसरितः सद्योपि दिग्दन्तिनाम् ।
दैवात्कष्टदशावशं गतवतः सिंहस्य तस्याधुना
कर्षत्येव करेण केसरसटाभारं जरत्कुञ्जरः ॥ १७ ॥

कस्यापि ।

917

यः शौर्यावधिरेव यस्य सहसा दिग्दन्तिनोप्यन्तिकं
नायाताः किल येन विन्ध्यवसुधा गम्या न कस्याप्यभूत् ।
तस्मिन्कौतुकिना त्वया करिपतौ लुप्ते कपोलस्थली-
भृङ्गः कैसरिवीर संप्रति पुनः कुत्रैष विश्राम्यतु ॥ १८ ॥

कस्यापि ।

# अथ गजान्योक्तयः ॥ ५४ ॥

918

नीवारप्रसवाग्रमुष्टिकवलैर्यो वर्धितः शैशवे
पीतं येन सरोजपत्रपुटके होमावशेषं पयः ।
तं पश्चान्मदमन्थरालिवलयव्याकुम्भगण्डं गजं
सानन्दं सभयं च पश्यति मुहुर्दूरे स्थितस्तापसः ॥ १ ॥

कस्यापि ।

919

कर्णे चामरचारुकम्बुकलिकाः कण्ठे मणीनां गणः
सिन्दूरप्रकरः शिरःपरिसरे पार्श्वान्तिके किङ्किणी ।
लब्धश्चेन्नृपवाहनेन करिणा बद्धेन भूषाविधि-
स्तत्किं भूधरधूलिधूसरतनुर्मान्यो न वन्यः करी ॥ २ ॥

कस्यापि ।

920

केलिं कुरुष्व परिभुङ्क्ष्व सरोरुहाणि
गाहस्व शैलतटनिर्झरिणीपयांसि ।
भावानुरक्तकरिणीकरलालिताङ्ग
मातङ्ग मुञ्च मृगराजरणाभिलाषम् ॥ ३ ॥

आनन्दवर्धनस्य ।

921

पीतं यत्र हिमं पयः कवलिता यस्मिन्मृणालाङ्कुरा-
स्तापार्तेन निमज्य यत्र सरसो मध्ये विमुक्तः श्रमः ।
धिक्तस्यैव जलानि पङ्किलयतः पाथोजिनीं मथ्नतः
कूलान्युल्खनतः करीन्द्र भवतो लज्जापि नो जायते ॥ ४ ॥

922

रेवावारिणि वारणेन विपुले राजीवराजीरजः-
पुञ्जापिञ्जरितोर्मिणि प्रविगलद्दानाम्बुगन्धोत्कटे ।
पीतं येन मृगारिरक्तमसकृद्दन्तान्तराले स्थितं
कौपं सोपि पयः पपौ हतविधेः को गोचरे नागतः ॥ ५ ॥

कयोरप्येतौ ।

923

तापो नापगतस्तृषापि न कृशा धौता न धूली तनो-
र्न स्वच्छन्दमकारि कन्दकवलः का नाम केलीकथा ।
दूरोत्क्षिप्तकरेण हन्त करिणा स्पृष्टा न वा पद्मिनी
प्रारब्धो मधुपैरकारणमयो झंकारकोलाहलः ॥ ६ ॥

लक्ष्मणसेनस्य ।

924

नाभूवन्भुवि यस्य कुत्रचिदपि स्पर्धाकराः कुञ्जराः
सिंहेनापि न लङ्घिता किमपरं यस्योद्धता पद्धतिः ।
कष्टं सोपि कदर्थ्यते करिवरः स्फारारवैः फेरवै-
रापातालगभीरपङ्कपटलीमग्नोद्य भग्नोद्यमः ॥ ७ ॥

बिल्हणस्य ।

925

भो भोः करीन्द्र दिवसानि कियन्ति तावद्
अस्मिन्मरौ समतिवाहय कुत्रचित्त्वम् ।
रेवाजलैर्निजकरेणुकरप्रमुक्तै-
र्भूयः शमं गमयितासि निदाघदाहम् ॥ ८ ॥

गोविन्दराजस्य ।

926

न गृह्णाति ग्रासं नवकमलकिञ्जल्किनि जले
न पङ्के वाहार्दं व्रजति बिसभङ्गार्धशबले ।
प्रगल्भप्रेमार्द्रामपि विषहते नान्यकरिणीं
स्मरन्दावभ्रष्टां हृदयदयितां वारणपतिः ॥ ९ ॥

927

पादाघातविघूर्णिता वसुमती त्रासाकुलाः पक्षिणः
पङ्काङ्कानि सरांसि गण्डकषणक्षोदक्षताः शाखिनः ।
प्राप्येदं करिपोतकैर्विधिवशाच्छार्दूलशून्यं वनं
तत्तन्नाम कृतं विशृङ्खलतया वक्तुं न यत्पार्यते ॥ १० ॥

928

घासग्रासं गृहाण त्यज करिकलभ प्रीतिबन्धं करिण्याः
पाशग्रन्थिव्रणानामविरलमधुना देहि पङ्कानुलेपम् ।
दूरीभूतास्तवैते शबरवरवधूविभ्रमोद्भ्रान्तहृष्य-
द्रेवातीरोपकण्ठच्युतकुसुमरजोधूसरा विन्ध्यपादाः ॥ ११ ॥

केषामप्येते ।

929

दानार्थिनो मधुकरा यदि कर्णतालै-
र्दूरीकृताः करिवरेण मदान्धबुद्ध्या ।
तस्यैव गण्डयुगमण्डनहानिरेषा
भृङ्गाः पुनर्विकचपद्मवने चरन्ति ॥ १२ ॥

कस्यापि ।

930

आरामोद्यमनर्गलेन बलिना भग्नः समग्रो मये-
त्यन्तःसंभृतहर्षवर्धितमदोद्यं किमुन्माद्यसि ।
मातङ्ग प्रतिवर्षमेव भवतो भावी निदाघज्वर-
स्तत्रापि प्रतिकारमर्हसि सखे सम्यक्समालोचितुम् ॥ १३ ॥

931

गले पाशस्तीव्रश्चरणयुगले गाढनिगडो
दृढः स्कन्धे बन्धः शिरसि सृणिपातः खरतरः ।
नरः स्कन्धारूढा बत मरणयोग्येपि विषये
न जानीमोत्यर्थं द्विरद वद कस्मात्तव मदः ॥ १४ ॥

932

कौपे पयसि लघीयसि तापेन करः प्रसारितः करिणा ।
सोपि न पयसा लिप्तो लाघवमात्मा परं नीतः ॥ १५ ॥

933

कौपं वारि विलोक्य वारणपते किं विस्मितेनास्यते
प्रायो भाजनमस्य संप्रति भवांस्तत्पीयतामादरात् ।

उन्मज्जच्छबरीपुलिन्दललनापीनस्तनास्फालन-
स्फारीभूतमहोर्मिनिर्मलजला दूरेधुना नर्मदा ॥ १६ ॥

934

नो मन्ये दृढबन्धनात्क्षतमिदं नैवाङ्कुशोद्घातनं
स्कन्धारोहणताडनात्परिभवं नैवान्यदेशागमम् ।
चिन्तां मे जनयन्ति चेतसि यथा स्मृत्वा स्वयूथं वने
सिंहत्रासितभीतभीरुकलभा यास्यन्ति कस्याश्रयम् ॥१७॥

935

पत्युर्यत्पतितावशेषकवलग्रासेन वृत्तिः कृता
पीतं यच्च करावगाहकलुषं तत्पीतशेषं पयः ।
प्राणान्पूर्वतरं विहाय तदिदं प्राप्तं करिण्या फलं
यद्बन्धव्रणकातरस्य करिणः क्लिष्टं न दृष्टं मुखम् ॥ १८ ॥

केषामप्येते ।

936

यदि मत्तोसि मतङ्गज किममीभी रसालसरलतरुदलनैः ।
हरिमनुसर खरनखरं व्यपनयति स करटकण्डूतिम् ॥ १९ ॥

वल्लभदेवस्य ।

---

## अथ हरिणान्योक्तयः ॥ ५५ ॥

937

दूर्वाङ्कुरतृणाहारा धन्यास्ते वै वने मृगाः ।
विभवोन्मत्तचित्तानां न पश्यन्ति मुखानि यत् ॥ १ ॥

938

कति कति न मदोद्धताश्चरन्ति
प्रतिशिखरि प्रतिकाननं कुरङ्गाः ।
क्वचिदपि पुनरुत्तमा मृगास्ते
मदयति यन्मद एव मेदिनीशान् ॥ २ ॥

939

इह किं कुरङ्गशावक केदारे कमलमञ्जरीं त्यजसि ।
तृणधन्वा तृणबाणस्तृणघटितः कपटपुरुषोयम् ॥ ३ ॥

940

छित्त्वा पाशमपास्य कूटरचनां भङ्क्त्वा बलाद्वागुरां
पर्यन्ताग्निशिखाकलापजटिलान्निःसृत्य दूरं वनात् ।
व्याधानां शरगोचरादतिजवेनोत्पत्य गच्छन्मृगः
कूपान्तःपतितः करोति विगुणे किं वा विधौ पौरुषम् ॥ ४ ॥

941

द्रुततरमितो गच्छन्प्राणैः कुरङ्ग वियुज्यसे
किमिति वलितग्रीवं स्थित्वा मुहुर्मुहुरीक्षसे ।
विदधति हतव्याधानां ते मनागपि नार्द्रतां
कठिनमनसामेषामेते विलोकितविभ्रमाः ॥ ५ ॥

942

स्थलीनां दग्धानामुपरि मृगतृष्णामनुसरं-
स्तृषार्तः सारङ्गो विरमति न खिन्नेपि मनसि ।
अजानानस्तत्त्वं न स मृगयतेन्यत्र सरसी-
मभूमौ प्रत्याशा न च फलति विघ्नं च कुरुते ॥ ६ ॥

943

अल्पीयःस्खलनेन यत्र पतनं कृच्छ्रेण यत्रोन्नति-
र्द्वारे वेत्रलतावितानगहने कष्टः प्रवेशक्रमः ।
हे सारङ्ग मनोरमा वनभुवस्त्यक्त्वा विशेषार्थिना
किं भूभृत्कटकस्थितिव्यसनिना व्यर्थं खुराः शातिताः ॥ ७ ॥

944

सारङ्गो न लतागृहेषु रमते नो पांसुले भूतले
नो रम्यासु वनोपकण्ठहरितच्छायासु शीतास्वपि ।
तामेवायतलोचनामनुदिनं ध्यायन्मुहुः प्रेयसीं
शैलेन्द्रोदरकंदरासु गतधीः शृङ्गावशेषः स्थितः ॥ ८ ॥

केषामप्येते ।

945

वसन्त्यरण्येषु चरन्ति दूर्वां
पिबन्ति तोयान्यपरिग्रहाणि ।
तथापि वध्या हरिणा नराणां
को लोकमाराधयितुं समर्थः ॥ ९ ॥

मुक्तापीडस्य ।

946

आः कष्टं वनवाससाम्यकृतया सिद्धाश्रमश्रद्धया
पल्लीं बालकुरङ्ग संप्रति कुतः प्राप्तोसि मृत्योर्मुखम् ।
यत्रानेककुरङ्गकोटिकदनक्रीडोल्लसल्लोहित-
स्रोतोभिः परिपूरयन्ति परिखामुद्दामराः पामराः ॥ १० ॥

बिल्हणस्य ।

947

स्वच्छन्दं हरिणेन या विरहिता दैवात्समासादिता
भङ्गप्रस्रुतदुग्धबिन्दुमधुरा शालेर्नवा मञ्जरी ।
निःश्वासानलदग्धकोमलतृणप्रख्यापितान्तर्व्यथ-
स्तामेव प्रतिवासरं मुनिरिव ध्यायन्वने शुष्यति ॥ ११ ॥

धर्मकीर्तेः ।

948

सेयं स्थली नवतृणाङ्कुरजालमेत-
त्सेयं मृगीति हृदि जातमदः कुरङ्गः ।
नैवं तु वेत्ति यदिहान्तरितो लताभि-
रायाति सज्जितकठोरशरः किरातः ॥ १२ ॥

इन्द्रकवेः ।

949

रोमन्थमारचय मन्थरमेत्य निद्रां
मुञ्च भ्रमं तदनु संचर रे यथेच्छम् ।
दूरे स पामरजनो मुनयः किलैते
निष्कारणं हरिणपोत बिभेषि कस्मात् ॥ १३ ॥

धर्मवर्धनस्य ।

## अथ करभान्योक्तयः ॥ ५६ ॥

950

वपुर्विषमसंस्थानं कर्णज्वरकरो रवः ।
करभस्याशुगत्यैव छादिता दोषसंहतिः ॥ १ ॥

भल्लटस्य ।

951

कुमुदशबलैः फुल्लाम्भोजैः सरोभिरलंकृतां
मरकतमणिश्यामां शष्पैर्विहाय वनस्थलीम् ।
स्मरति करभो यद्वृक्षाणां चरन्मरुजन्मनां
परिचयरतिः सा दुर्वारा न सा गुणवैरिता ॥ २ ॥

जीवनायकस्य ।

952

यस्मिन्नुच्चैर्विषमगहनान्तर्गता स्वादुवल्ली
स्वेच्छं भुक्ता सरलितगलेनात्मचेतोनुरूपा ।
तत्तारुण्यं करभ गलितं कुत्र ते प्राग्विलासा
यत्स्वाधीनं यदपि सुलभं तेन तुष्टिं विधेहि ॥ ३ ॥

953

करभदयिते योसौ पीलुस्त्वया मधुलुब्धया
व्यपगतघनच्छायस्त्यक्तो न सादरमीक्षितः ।
चलकिसलयैः सोपीदानीं प्ररूढनवाङ्कुरः
करभदयितावृन्दैरन्यैः सुखं परिभुज्यते ॥ ४ ॥

954

चिन्तां मुञ्च गृहाण पल्लवमिदं श्लक्ष्णस्य शालस्य वा
गाङ्गस्यास्य जलस्य चन्द्रवपुषो गण्डूषमेकं पिब ।
जीवन्द्रक्ष्यसि ताः पुनः करभ हे दासेरकीया भुवो
रम्याः पीलुशमीकरीरबदरीकूजत्कपोताकुलाः ॥ ५ ॥

955

यस्यासीन्नवपीलुपल्लबदरग्रासोपि संतुष्टये
दीर्घाध्वन्यनुगम्यते न पदवी यस्य स्वयूथ्यैरपि ।

सोयं संप्रति याति बालकरभः क्षीणोद्यमः क्षामतां
मन्ये नूनमनेन दैवहतकेनास्वादितं तन्मधु ॥ ६ ॥

956

पीलूनां फलवत्कषायमधुरं रोमन्थयित्वा मरौ
शाखाग्रं यदखादि चारु करभीवक्त्रार्पितं प्रेमतः ।
तत्स्मृत्वा करभेण खेदविधुरं दीर्घं तथा फूत्कृतं
प्राणानामभवत्तदेव सहसा प्रस्थानतूर्यं यथा ॥ ७ ॥

957

दुष्प्रापमम्बु पवनः परुषोतितापी
छायाभृतो न तरवः फलभारनम्राः ।
इत्थं सखे करभ वच्मि भवन्तमुच्चैः
का संगतिः खलु मरौ रमणीयतायाः ॥ ८ ॥

958

अस्याननस्य भवतः खलु कोटिरेषा
कण्टारिका यदि भवेदविशीर्णपर्णा ।
योग्या कथं करभ कल्पतरोर्लताया-
स्ते पल्लवा विमलविद्रुमभङ्गभाजः ॥ ९ ॥

959

दासेरको रसत्येष युक्तं भारेधिरोहति ।
उत्तार्यमाणेपि पुनर्यत्तत्र किमु कुर्महे ॥ १० ॥

केषामप्येते ।

960

करभदयिते यत्तत्पीतं सुदुर्लभमेकदा
मधु वनगतं तस्यालाभे विरौषि किमुत्सुका ।
कुरु परिचितैः पीलोः पत्रैर्धृतिं मरुगोचरै-
र्जगति सकले कस्यावाप्तिः सुखस्य निरन्तरा ॥ ११ ॥

भगवतो व्यासस्य ।

# अथ वृषभान्योक्तयः ॥ ५७ ॥

961

नास्य भारग्रहे शक्तिर्न च वाहगुणः कृती ।
देवागारबलीवर्दस्तथाप्यभाति शोभनम् ॥ १ ॥

962

अनसि सीदति सैकतवर्त्मनि
प्रचुरभारभरक्षपितौक्षके ।
गुरुभरोद्धरणोद्धुरकंधरं
स्मरति सारथिरद्य धुरंधरम् ॥ २ ॥

963

मार्गे कर्दमदुर्गमे जलभृते गर्ताशतैराकुले
खिन्ने शाकटिके भरेतिविषमे दूरं गते रोधसि ।
शब्देनैतदहं ब्रवीमि महता कृत्वोच्छ्रितां तर्जनी-
मीदृक्षे विषमे विहाय धवलं वोढुं क्षमः को धुरम् ॥ ३ ॥

964

दन्ताः सप्त चलं विषाणयुगलं पुच्छाञ्चलः कर्बुरः
कुक्षिश्चन्द्रकिता वपुः कुसुमितं सव्यच्युतं चेष्टितम् ।
अस्मिन्दुष्टवृषे वृषाग्रिमगुणग्रामानभिज्ञात्मनो
ग्रामीणस्य तथापि चेतसि चिरं धुर्यभ्रमः स्फूर्जति ॥ ४ ॥

965

कासांचिद्धवलश्चिरं निवसतां चित्तेपरासां पुन-
र्नीलो वा कपिलोथवा वरवृषो रक्तोथवा मेचकः ।
ग्रामीणैरवधीरितोपि शिथिलस्कन्धोप्यनूर्ध्वश्रवाः
स्वान्ते मे परतन्त्रतुन्दिलतनुर्जागर्त्ययं कर्बुरः ॥ ५ ॥

श्रीचन्द्रस्य ।

966

गुरुर्नायं भारः क्वचिदपि न पन्थाः स्थपुटितो
न ते कुण्ठा शक्तिर्वहनमपि तेङ्गे न विकलम् ।

इह द्रङ्गे नान्यस्तव गुणसमानस्तदधुना
धुनानेन स्कन्धं धवल किमु मुक्तः पथि भरः ॥ ६ ॥

967

न ध्वानं कुरुषे न यासि विकटं नोच्चैर्वहस्याननं
दर्पान्नो लिखसि क्षितिं खुरपुटैर्नावज्ञया वीक्षसे ।
किं तु त्वं वसुधातलैकधवल स्कन्धाधिरूढे भरे
तीराण्युच्चतटीविटङ्कविषमाण्युल्लङ्घयन्वीक्ष्यसे ॥ ७ ॥

968

यस्यादौ व्रजमण्डनस्य वहतो गुर्वीं धुरं धैर्यतो
धौरेयैः प्रगुणीकृतो न युगपत्स्कन्धः समस्तैरपि ।
तस्यैव श्लथकम्बलस्य धवलस्योत्थापने सांप्रतं
द्रङ्गेत्रैव जरावसादिततनोर्गोः पुण्यमुद्घोष्यते ॥ ८ ॥

969

एतानि बालधवल प्रविहाय कामं
गोष्ठाङ्गणे तरलतर्णकचेष्टितानि ।
स्कन्धं निधेहि धुरि पूर्वधुरीणमुक्तो
नेतव्यतामुपगतोस्ति तवैष भारः ॥ ९ ॥

970

न खनति खुरैः क्षोणीपृष्ठं न नर्दति सादरं
प्रकृतिपरुषं प्रेक्ष्याप्यग्रे न कुप्यति गोचरम् ।
वहति च धुरं धुर्यो धैर्यादनुद्धतकंधरो
जगति गुणिनः कार्यौदार्यात्परानतिशेरते ॥१०॥

केषामप्येते ।

---

## अथ सामान्यवृक्षान्योक्तयः ॥ ५८ ॥

971

किं जातोसि चतुष्पथे घनतरं छन्नोसि किं छायया
छन्नश्चेत्फलितोसि किं फलभरैराद्योसि किं संनतः ।

हे सद्वृक्ष सहस्व संप्रति सखे शाखाशिखाकर्षण-
क्षोभामोटनभञ्जनानि जनतः स्वैरेव दुश्चेष्टितैः ॥ १ ॥
भदन्तज्ञानवर्मणः ।

972

छायासुप्तमृगः शकुन्तनिवहैर्विश्रावितोत्पल्लवः
कीरैरावृतकोटरः कपिकुलैः स्कन्धे कृतप्रश्रयः ।
विस्रब्धं मधुपैर्निपीतकुसुमः श्राव्यः स एकस्तरु-
र्यत्राङ्गीकृतसत्त्वसंप्लवभरे भग्नापदोन्ये द्रुमाः ॥ २ ॥
बीजकस्य ।

973

शाखाशतचितवियतः सन्ति कियन्तो न कानने तरवः ।
परिमलभरमिलदलिकुलदलितदलाः शाखिनो विरलाः ॥३॥
श्रीवैद्यभानुपण्डितस्य ।

974

गतास्ते विस्तीर्णस्तबकभरसौरभ्यलहरी-
परीतव्योमानः प्रकृतिगुरवः केपि तरवः ।
इहोद्याने संप्रत्यहह परिशिष्टाः क्रमवशा-
दमी वल्मीकास्ते भुजगकुललीलावसतयः ॥ ४ ॥

975

तीव्रो निदाघसमयो बहुपथिकजनश्च मारवः पन्थाः ।
मार्गस्थस्तरुरेकः कियतां संतापमपनयति ॥ ५ ॥
प्रत्यग्रैः पत्रनिचयैस्तरुर्यैरेव शोभितः ।
जहाति जीर्णास्तानेव किं वा चित्रं कुजन्मनः ॥ ६ ॥

976

रोलम्बैर्न विलम्बितं विघटितं धूमाकुलैः कोकिलै-
र्मायूरैश्चलितं पुरैव रभसा कीरैरधीरैर्गतम् ।
एकेनापि सपल्लवेन तरुणा दावानलोपप्लवः
सोढः को न विपत्सु मुञ्चति जनो मूर्धापि यो लालितः ॥७॥

977

पत्रपुष्पफलच्छायामूलवल्कलदारुभिः ।
धन्या महीरुहो येभ्यो निराशा यान्ति नार्थिनः ॥ ८ ॥

978

छायावन्तो गतव्यालाः स्वारोहाः फलदायिनः ।
मार्गद्रुमा महान्तश्च परेषामेव भूतये ॥ ९ ॥

979

भुक्तं स्वादु फलं कृतं च शयनं शाखाग्रजैः पल्लवै-
स्त्वच्छायापरिशीतलं सुसलिलं पीतं व्यपेतश्रमैः ।
विश्रान्ताः सुचिरं परं सुमनसः प्रीतिः किमत्रोच्यते
त्वं सन्मार्गतरुर्वयं च पथिका यामः पुनर्दर्शनम् ॥ १० ॥

केषामप्येते।

980

भुक्तानि यैस्तव फलानि पचेलिमानि
क्रोडस्थितैरहह वीतभयैः प्रसुप्तम् ।
ते पक्षिणो जलरयेण विकृष्यमाणं
पश्यन्ति पादप भवन्तममी तटस्थाः ॥ ११ ॥

श्रीमहादेवस्य ।

981

विपन्नं पद्मिन्या मृतमनिमिषैर्यातमलिभिः
खगैरप्युड्डीनं रथचरणहंसप्रभृतिभिः ।
दशां दीनां नीते सरसि विषमग्रीष्मदिवसः
कुलीनत्वादास्ते तटरुहतरुः कोपि तदपि ॥ १२ ॥

नागपैयस्य ।

982

शाखोटशाल्मलिपलाशकरीरकाद्याः
शृण्वन्तु पुण्यनिलयो यदसौ वसन्तः ।
युष्मभ्यमर्पयतु पल्लवपुष्पलक्ष्मीं
सौरभ्यसंभवविधिस्तु विधेरधीनः ॥ १३ ॥

गार्ङ्गदेवस्य ।

983

पान्थाधार इति द्विजाश्रय इति श्लाघ्यस्तरूणामिति
स्निग्धच्छाय इति प्रियो दृश इति स्थानं गुणानामिति ।
पर्यालोच्य महातरो तव घनच्छायां वयं संश्रिता-
स्तत्त्वत्कोटरवासिनो द्विरसना दूरीकरिष्यन्ति नः ॥१४॥

984

हिमसमयो वनवह्निर्जवनः पवनस्तडिल्लताविभवः ।
हन्त सहन्ते यावत्तावद्रुम कुरु परोपकृतिम् ॥ १५ ॥

985

ये पूर्वं परिपालिताः फलभरच्छायादिभिः प्राणिनो
विश्रामद्रुम कथ्यतां तव विपत्काले क्व ते सांप्रतम् ।
एताः संगतिमात्रकल्पितपुरस्कारास्तु धन्यास्त्वचो
यासां छेदनमन्तरेण पतितो नायं कुठारस्त्वयि ॥ १६ ॥

986

वृद्धिर्यस्य तरोर्मनोरथशतैराशावता प्रार्थिता
जातोसौ सरसः प्रकामफलदः सर्वाश्रितोपाश्रयः ।
नानादेशसमागतैरविदितैराक्रान्तमन्यैः खगै-
स्तं लब्धावसरोपि वृद्धशकुनिर्दूरे स्थितो वीक्षते ॥ १७ ॥

केषामप्येते ।

---

## अथ वृक्षविशेषान्योक्तयः ॥ ५९ ॥

तत्र पूर्वं कल्पवृक्षः ।

987

कल्पद्रुमोपि कालेन भवेद्यदि फलप्रदः ।
को विशेषस्तदा तस्य वन्यैरन्यैर्महीरुहैः ॥ १ ॥

कस्यापि ।

988

स्वर्णैः स्कन्धपरिग्रहो मरकतैरुल्लासिताः पल्लवा
मुक्ताभिः स्तबकश्रियो मधुलिहां वृन्दानि नीलोत्पलैः ।

संकल्पानुविधायि यस्य फलितं कस्तस्य धत्ते तुलां
धिग्जातिं द्रुमसंकथासु यदयं कल्पद्रुमोपि द्रुमः ॥ २ ॥
रल्हणस्य ।

## अथ पारिजातः ।

989

परिमलसुरभितनभसो बहवः कनकाद्रिपरिसरे तरवः ।
तदपि सुराणां चेतसि निवसितमिव पारिजातेन ॥ ३ ॥
श्रीवल्लभदेवस्य ।

## अथ चन्दनम् ।

990

सन्त्येव गिलिताकाशा महीयांसो महीरुहाः ।
तथापि जनताचित्तानन्दनश्चन्दनद्रुमः ॥ ४ ॥
हरिगणस्य ।

991

कान्ताकेलिं कलयतु तरुः कोपि कश्चित्प्रभूणा-
मत्यानन्दं जनयतु फलैः कोपि लोकान्धिनोतु ।
धन्यं मन्ये मलयजमहो यः प्रभूतोपतापं
संसारस्य द्रुतमपनयत्यात्मदेहव्ययेन ॥ ५ ॥
शार्ङ्गधरस्य ।

992

केचिल्लोचनहारिणः कतिपये सौरभ्यसंभारिणः
केप्यन्ये फलधारिणः प्रतिदिशं ते सन्तु हन्त द्रुमाः ।
धन्योयं हरिचन्दनः परिसरे यस्य स्थितैः शाखिभिः
शाखोटादिभिरप्यहो मृगदृशामङ्गेषु लीलायितम् ॥६॥
श्रीपुष्पाकरदेवस्य ।

993

भ्रातश्चन्दन किं ब्रवीमि विकटस्फूर्जत्फणाभीषणा
गन्धस्यापि महाविषाः फणभृतो गुप्त्यै यदेते कृताः ।
दैवात्पुष्पफलान्वितो यदि भवानत्राभविष्यत्तदा
नो जाने किमकल्पयिष्यदधिकं रक्षार्थमस्यात्मनः ॥ ७ ॥
श्रीभोजदेवस्य ।

994

एतैर्दक्षिणगन्धवाहबलनैः श्रीखण्ड किं सौरभं
ब्रूमस्ते परितो मधुव्रतयुवा येनायमानीयते ।
माकन्दादपहृत्य पङ्कजवनाद्दुद्धूय कुन्दोदरा-
दुड्डाम्यद्विपगण्डमण्डलतलादाकृष्य हृष्यन्मनाः ॥ ८ ॥

995

यद्यपि चन्दनविटपी विधिना फलकुसुमवर्जितो विहितः ।
निजवपुषैव परेषां तथापि संतापमपनयति ॥ ९ ॥

996

धिक्चेष्टितानि परशो परशोचनीय-
बालप्रवालमलयाद्रिरुहद्रुहस्ते ।
निर्भिद्यमानहृदयोपि महाप्रभावः
स त्वन्मुखं पुनरभीः सुरभीकरोति ॥ १० ॥

997

वासः शैलशिलान्तरेषु सहजः सङ्गो भुजंगैः सह
प्रेङ्खत्क्षारपयोधिवीचिभिरभूदुद्धूतिसेकक्रिया ।
जानीमो न वयं प्रसीदतु भवाञ्श्रीखण्ड तत्कथ्यतां
कस्मात्ते परतापखण्डनमहापाण्डित्यमभ्यागतम् ॥ ११ ॥

998

आमोदैस्तैर्दिशि दिशि गतैर्दूरमाकृष्यमाणाः
साक्षाल्लक्ष्मीं तव मलयज द्रष्टुमभ्यागताः स्मः ।
किं पश्यामः सुभग भवतः क्रीडति क्रोड एव
व्यालस्तुभ्यं भवतु कुशलं मुञ्च नः साधु यामः ॥ १२ ॥

999

मूलं भुजंगैः शिखरं विहंगैः
शाखाः प्लवंगैः कुसुमानि भृङ्गैः ।
नास्त्येव तच्चन्दनपादपस्य
यन्नाश्रितं सत्त्वभरैः समन्तात् ॥ १३ ॥

केषामप्येते ।

## अथागुरुः ।

1000

अगुरुरिति वदतु लोको गौरवमत्रैव पुनरहं मन्ये ।
दाहशतगुणैव वृत्तिर्यस्य जने जनितदाहेपि ॥ १४ ॥

वल्लभदेवस्य ।

1001

आरामाभरणस्य पल्लवचयैरापीततिग्मत्विषः
पाथोद प्रशमं नयागुरुतरोरेतस्य दाहज्वरम् ।
ब्रूमस्त्वामुपकारकातर गतप्रायाः पयःसंपदो
दग्धोप्येष तरुर्दिशः परिमलैरापूर्य निर्वास्यति ॥ १५ ॥

## अथ चम्पकः ।

1002

अन्तःप्रतप्तमरुसैकतदह्यमान-
मूलस्य चम्पकतरोः क्व विकासचिन्ता ।
प्रायो भवत्यनुचितस्थितिदेशभाजां
श्रेयः स्वजीवपरिपालनमात्रमेव ॥ १६ ॥

धर्मवर्धनस्य ।

1003

केनापि चम्पकतरो बत रोपितोसि
कुग्रामपामरजनान्तिकवाटिकायाम् ।
यत्र प्ररूढनवशाकविवृद्धलोभा-
द्गोभग्नवाटघटनोचितपल्लवोसि ॥ १७ ॥

विज्जाकायाः ।

## अथाशोकः ।

1004

किं ते नम्रतया किमुन्नततया किं वा घनच्छायया
किं वा पल्लवलीलया किमनया चाशोक पुष्पश्रिया ।
यत्त्वन्मूलनिषण्णखिन्नपथिकस्तोमः स्तुवन्नन्वहं
न स्वादूनि मृदूनि खादति फलान्याकण्ठमुत्कण्ठितः ॥ १८ ॥

श्रीभोजदेवस्य ।

1005

मृदूनां स्वादूनां लघुरपि फलानां न विभव-
स्तवाशोक स्तोकः स्तबकमहिमा सोप्यसुरभिः ।
यदेतन्नो तन्वीकरचरणलावण्यसुभगं
श्रवालं बालं स्यात्तरुषु सकलङ्कः किमपरः ॥ १९ ॥

सरस्वतीकुटुम्बस्य ।

## अथ मालती ।

1006

किं मालतीकुसुम ताम्यसि निष्ठुरेण
केनापि यत्किल विलूनमितो लताग्रात् ।
लोकोत्तरेण विलसद्गुणगौरवेण
को नामुना शिरसि नाम करिष्यति त्वाम् ॥ २० ॥

नम्मैयस्य ।

1007

अदीयस्त्वाधिक्याच्च भवति विमर्दे क्षममिदं
न चान्येभ्यो रूपे भवति कुसुमेभ्योधिकतरम् ।
प्रसूनं मालत्यास्तदपि हृदयाह्लादकरण-
श्रवीणैरामोदैर्भवति जगतो मौलिनिलयम् ॥ २१ ॥

कस्यापि ।

1008

भवति हृदयहारी कोपि कस्यापि हेतु-
र्न खलु गुणविशेषः प्रेमबन्धोपयोगी ।
किसलयितवनान्ते कोकिलालापरम्ये
विकसति न वसन्ते मालतीकोत्र हेतुः ॥ २२ ॥

कस्यापि ।

1009

कुसुमस्तबकैर्नम्राः सन्त्येव परितो लताः ।
तथापि भ्रमरभ्रान्तिं हरत्येकैव मालती ॥ २३ ॥

कस्यापि ।

## अथ मल्लिका ।

1010

न च गन्धवहेन चुम्बिता
न च पीता मधुपेन मल्लिका ।
पिहितैव कठोरशाखया
पारणामस्य जगाम गोचरम् ॥ २४ ॥

## अथ केतकी ।

1011

रोलम्बस्य चिराय केतकिपरिष्वङ्गेष्वभङ्गो रसः
सुज्ञातं बत केतकस्य च मनो भृङ्गप्रसङ्गोत्सुकम् ।
जानात्येव मिथोनुरागमनयोः सर्वोपि नैसर्गिकं
प्रत्यूहाय दलेषु धिक्समभवन्मर्माविधः कण्टकाः ॥२५॥

कस्यापि।

1012

पत्राणि कण्टकशतैः परिवेष्टितानि
वार्तापि नास्ति मधुनो रजसान्धकारः।
आमोदमात्ररसिकेन मधुव्रतेन
नालोकितानि तव केतकि दूषणानि ॥ २६ ॥

कस्यापि ।

1013

एतासु केतकि लतासु विकासिनीषु
सौभाग्यमद्भुततरं भवती बिभर्ति ।
यत्कण्टकैर्व्यथितमात्मवपुर्न जानं-
स्त्वामेव सेवितुमुपक्रमते द्विरेफः ॥ २७ ॥

श्रीमहादेवस्य ।

## अथ पाटला ।

1014

पाटलया वनमध्ये कुसुमितया मोहितस्तथा भ्रमरः ।
सैवेयमिति यथाभूत्प्रतीतिरस्यान्यपुष्पेषु ॥ २८ ॥

शार्ङ्गधरस्य ।

## अथ सहकारः ।

1015

गाता कोकिल एव ज्ञाता च रसाल एव नियतमिदम् ।
यः पञ्चममुद्गायति यस्यास्थिषु पुलकमुकुलानि ॥ २९ ॥

कस्यापि ।

1016

न तादृक्कर्पूरे न च मलयजे नो मृगमदे
फले वा पुष्पे वा तव भवति यादृक्परिमलः ।
परं त्वेको दोषस्त्वयि खलु रसालेधिकगुणे
पिके वा काके वा गुरुलघुविशेषं न मनुषे ॥ ३० ॥

कस्यापि ।

1017

उत्तंसकौतुकरसेन विलासिनीनां
लूनानि यस्य न नखैरपि पल्लवानि ।
उद्यानमण्डनतरो सहकार स त्व-
मङ्गारकारकरगोचरतां गतोसि ॥ ३१ ॥

उत्पलराजस्य ।

1018

कति पल्लविता न पुष्पिता वा
तरवः सन्ति समन्ततो वसन्ते ।
जगतीविजये तु पुष्पकेतोः
सहकारी सहकार एक एव ॥ ३२ ॥

कस्यापि ।

1019

यो दृष्टः स्फुटदस्थिसंपुटवशान्निर्यत्प्रवालाङ्कुरो
दैवात्स द्विदलादिकक्रमवशादारूढशाखाशतः ।
स्निग्धं पल्लवितो घनं मुकुलितः स्फारच्छदं पुष्पितः
सोत्कर्षं फलितो भृशं च नमितः कोप्येष चूतद्रुमः ॥ ३३ ॥

हेतुकस्य ।

1020

एतस्मिन्वनमार्गभूपरिसरे सौन्दर्यमुद्राङ्कितः
प्रोद्यद्भिः फलपत्रपुष्पनिचयैश्भूतः स एकः परम् ।
यं वीक्ष्य स्मितवक्त्रमुद्गतमहासंतोषमुल्लासित-
स्फारोत्कण्ठमकुण्ठितक्रममसी धावन्ति पान्थव्रजाः ॥ ३४ ॥

भट्टनायकस्य ।

1021

छाया फलानि मुकुलानि च यस्य विश्व-
माह्लादयन्ति सहकारमहीरुहस्य ।
आमृष्य तस्य शिखया नवपल्लवानि
मथ्नासि रे दवहुताश हताश कष्टम् ॥ ३५ ॥

कस्यापि ।

1022

कूष्माण्डीफलवत्फलं न यदपि न्यग्रोधवन्नोद्धता
रम्भापत्रनिभं दलं न कुसुमं नो केतकीपुष्पवत् ।
सौरभ्यं कुसुमे दले तदपि तत्किंचित्समुज्जृम्भते
लोके येन रसाल साल नितरां त्यक्त्वा गुणांस्तौमि ते ॥ ३६ ॥

शार्ङ्गधरस्य ।

1023

यावत्फलोदयमुखः सहकार जात-
स्तावच्च कण्टककुलैः परिवेष्टितोसि ।
छायापि ते न सुलभा फलमस्तु दूरे
त्वं निष्फलो वरमहो सुखसेवनीयः ॥ ३७ ॥

कस्यापि ।

अथ पनसः ।

1024

गरीयःसौरभ्ये रसपरिचये नार्हति सुधा
सिता मृद्वीकापि प्रथिमनि निमग्नः फलभरः ।
परार्थे कोशश्रीरिति पुलकितः कण्टकमिषा-
दहो ते चारित्रं पनस मनसः कस्य न मुदे ॥ ३८ ॥

कस्यापि ।

## अथ कदली ।

1025

तालीतरोरनुपकारि फलं फलित्वा
लज्जावशादुचित एव विनाशयोगः ।
एतत्तु चित्रमुपकृत्य फलैः परेभ्यः
प्राणान्निजाञ्झगिति यत्कदली जहाति ॥ ३९ ॥

कस्यापि ।

## अथ द्राक्षा ।

1026

यद्यपि न भवति हानिः परकीयां चरति रासभे द्राक्षाम् ।
असमञ्जसं हि दृष्ट्वा तथापि परितप्यते चेतः ॥ ४० ॥

कस्यापि ।

1027

दासेरकस्य दासीयं बदरी यदि रोचते ।
एतावतैव किं द्राक्षा न साक्षादमृतप्रदा ॥ ४१ ॥

कर्पूरकवेः ।

## अथ दाडिमम् ।

1028

आ पुष्पप्रसरान्मनोहरतया विश्वास्य विश्वं जनं
हंहो दाडिम तावदेव सहसे वृद्धिं स्वकीयामिह ।
यावन्नैति परोपभोगसहतामेषा ततस्तां तथा
ज्ञात्वा ते हृदयं द्विधा दलति यत्तेनातिवन्द्यो भवान् ॥४२॥

श्रीभोजदेवस्य ।

## अथ नालिकेरः ।

1029

प्रथमवयसि पीतं तोयमल्पं स्मरन्तः
शिरसि निहितभारा नालिकेरा नराणाम् ।
ददति जलमनल्पास्वादमाजीवितान्तं
नहि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति ॥ ४३ ॥

कस्यापि ।

अथ तालः ।

1030

अध्वन्यध्वनि भूरुहः फलभृतो नम्रानुपेक्ष्यादरा-
दूरादुन्नतिसंश्रयव्यसनिनः पान्थस्य मुग्धात्मनः ।
यन्मूलं समुपागतस्य मधुरच्छायाफलैः का कथा
शीर्णेनापि हि नोपयोगमगमत्पर्णेन तालद्रुमः ॥ ४४ ॥

कस्यापि ।

अथ भूर्जः ।

1031

दौर्जन्यमात्मनि परं प्रथितं विधात्रा
भूर्जद्रुमस्य विफलत्वसमर्पणेन ।
किं चर्मभिर्निशितशस्त्रशतावकृत्ते-
राशां न पूरयति सोर्थिपरंपराणाम् ॥ ४५ ॥

भट्टगोविन्दराजस्य ।

1032

कुर्वन्तु नाम जनतोपकृतिं प्रसून-
च्छायाफलैरविकलैः सुलभैर्द्रुमास्ते ।
सोढास्तु कर्तनरुजः पररक्षणार्थ-
मेकेन भूर्जतरुणा करुणापरेण ॥ ४६ ॥

श्रीवैद्यभानुपण्डितस्य ।

अथाश्वत्थः ।

1033

वर्धितैः सेवितैः किं तैः सत्यश्वत्थेन्यपादपैः ।
वर्धितो नरकाद्रक्षेत्स्पृष्टोरिष्टानि हन्ति यः ॥ ४७ ॥

माधवभागधस्य ।

अथ न्यग्रोधः ।

1034

विस्तीर्णो दीर्घशाखाश्रितशकुनिशतः शाखिनामग्रणीस्त्वं
न्यग्रोध क्रोधमन्तः प्रकटयसि न चेद्दम्भि किंचित्तदल्पम् ।

जलपोप्येष त्रपाकृत्प्रलघुपरिकरा कापि कूष्माण्डवल्ली
पक्षीपृष्ठप्रतिष्ठा हसति निजफलैस्त्वत्फलार्द्धं किमन्यत् ॥४८॥
कस्यापि ।

1035

महातरुर्वा भवति समूलो वा विनश्यति ।
नान्तरप्रत्ययानेति न्यग्रोधकणिकाङ्कुरः ॥ ४९ ॥
कस्यापि ।

## अथ मधूकः ।

1036

तत्तेजस्तरणेर्निदाघसमये तद्वारि मेघागमे
तज्जाड्यं शिशिरे मदेकशरणैः सोढं पुरा यैर्दलैः ।
आयातस्त्वधुना फलस्य समयः किं तेन मे तैर्विना
स्मृत्वा तानि शुचेव रोदिति गलत्पुष्पैर्मधूकद्रुमः ॥ ५० ॥
कस्यापि ।

1037

मूलादेव फलस्य विस्तृतिभरश्छायाप्यनन्यादृशी
ते यस्य प्रसवाः सुमञ्जुलरसैरानन्दयन्ति प्रजाः ।
स्नेहं च प्रकटीकरोति परमं भूयः फलानां गुणै-
र्हित्वैकैकगुणांस्तरून्भज सखे तस्मान्मधूकद्रुमम् ॥ ५१ ॥
कस्यापि ।

## अथ शाल्मलिः ।

1038

हंसाः पद्मवनाशया मधुलिहः सौरभ्यगन्धाशया
पान्थाः स्वादुफलाशया बलिभुजो गृध्राश्च मांसाशया ।
दूरादुन्नतपुष्परागनिकरैर्निःसारमित्योन्नतै
रे रे शाल्मलिपादप प्रतिदिनं के न त्वया वञ्चिताः ॥ ५२ ॥
कस्यापि ।

1039

कायः कण्टकभूषितो न च घनच्छायाकृतः पल्लवाः
पुष्पाणि च्युतसौरभाणि न दलश्रेणी मनोहारिणी ।

किं ब्रूमः फलभारमस्य यदुपन्यासेपि लज्जामहे
तद्भोः केन गुणेन शाल्मलितरो जातोसि सीमद्रुमः ॥ ९३ ॥
कस्यापि ।

अथ निम्बः ।

1040

निम्ब किं बहुनोक्तेन निष्फलानि फलानि ते ।
यानि संजातपाकानि काका निःशेषयन्त्यमी ॥ ९४ ॥

1041

यस्मादर्थिजनो मनोभिलषितं लब्ध्वा मुदा मेदुरः
सार्धं बन्धुजनैश्चकार विविधान्भोगान्विलासोद्धुरः ।
तं दैवेन विवेकशून्यमनसा निर्मूल्य चूतद्रुमं
स्थाने तस्य तु काकलोकवसतिर्निम्बः समारोपितः ॥ ९५ ॥
कयोरप्येतौ ।

अथ बुब्बूलः ।

1042

गात्रं कण्टकसंकटं प्रविरलच्छायाभृतः पल्लवा
निर्गन्धः कुसुमोत्करस्तव फलं न क्षुद्विनाशक्षमम् ।
बुब्बूलद्रुम मूलमेति न जनस्तत्तावदास्तामहो
अन्येषामपि शाखिनां फलवतां गुप्त्यै वृतिर्जायसे ॥ ९६ ॥

अथ खदिरः ।

1043

चन्दने विषधरान्सहामहे
वस्तु सुन्दरमगुप्तिमत्कुतः ।
रक्षितुं वद किमात्मसौष्ठवं
वर्धिताः खदिर कण्टकास्त्वया ॥ ९७ ॥
भल्लटस्य ।

1044

पदं तदिह नास्ति यन्न खदिरैः खरैरावृतं
न तेपि खदिरा न ये कुटिलकण्टकैरावृताः ।

न ते कुटिलकण्टकाः किमपि ये न मर्माच्छिद-
स्तदुज्झत वृथा स्थितिं बत सहध्वमध्वश्रमम् ॥ ५८ ॥
कस्यापि।

## अथ किंशुकः ।

1045

किंशुकाद्गच्छ मा तिष्ठ शुक भाविफलाशया ।
बाह्यरङ्गप्रसङ्गेन के के नानेन वञ्चिताः ॥ ५९ ॥
कस्यापि।

## अथ शाखोटः।

1046

कस्त्वं भोः कथयामि दैवहतकं मां विद्धि शाखोटकं
वैराग्यादिव वृक्ष साधु विदितं कस्मादिदं भाषसे ।
वामेनात्र वटस्तमध्वगजनः सर्वात्मना सेवते
न च्छायापि परोपकारकृतये मार्गस्थितस्यापि मे ॥ ६० ॥
कस्यापि।

## अथ पीलुः ।

1047

धन्याः सूक्ष्मफला अपि प्रियतमास्ते पीलुवृक्षाः क्षितौ
क्षुत्क्षीणेन जनेन हि प्रतिदिनं येषां फलं भुज्यते ।
किं तैस्तत्र महाफलैरपि पुनः कल्पद्रुमाद्यैर्द्रुमै-
र्येषां नाम मनागपि श्रमनुदे छायापि न प्राप्यते ॥ ६१ ॥
शक्तिकुमारस्य।

## अथ करीरः ।

1048

फलं दूरतरेऽप्यास्तां पुष्णासि कुसुमैर्जनान् ।
इतरे तरवो मन्ये करीर तव किंकराः ॥ ६२ ॥

1049

किं पुष्पैः किं फलैस्तस्य करीरस्य दुरात्मनः ।
येन वृद्धिं समासाद्य न कृतः पत्रसंग्रहः ॥ ६३ ॥

अथ बिल्वः ।

1050

आमोदीनि सुमेदुराणि च मृदुस्वादूनि च क्ष्मारुहा-
मुद्यानेषु वनेषु लब्धजनुषां सन्तीतरेषामपि ।
किंतु श्रीफलता तवैव जयिनी मालूर दिङ्मण्डले
यस्यैतानि फलानि यौवनवतीवक्षोजलक्ष्मीगृहाः ॥ ६४ ॥

कस्यापि ।

अथ शालिः ।

1051

शाखासंततिसंनिरुद्धनभसो भूयांस एवावनौ
विद्यन्ते तरवः फलैरविकलैरार्तिच्छिदः प्राणिनाम् ।
किंतु द्वित्रिदलैरलंकृततनोः शालेः स्तुमस्तुङ्गतां
दत्त्वा येन निजं शिरः सुकृतिना को नाम न प्रीणितः ॥ ६५ ॥

नम्मैयस्य ।

अथेक्षुः ।

1052

परार्थे यः पीडामनुभवति भङ्गेपि मधुरो
यदीयः सर्वेषामिह खलु विकारोप्यभिमतः ।
न संप्राप्तो वृद्धिं यदि स भृशमक्षेत्रपतितः
किमिक्षोर्दोषोसौ न पुनरगुणाया मरुभुवः ॥ ६६ ॥

इन्दुराजस्य ।

1053

मुखे यद्वैरस्यं वपुरपि पुनर्ग्रन्थिनिचितं
न संतप्तः कोपि क्षणमपि भजेन्मूलमभितः ।
फलं चैवाप्राप्यं वितथसरलिम्नश्च भवत-
स्तदिक्षो नो युक्तं विहितमितरैर्यन्त्रदलनम् ॥ ६७ ॥

कस्यापि ।

अथ कर्पासः ।

1054

श्लाघ्यं कर्पासफलं यस्य गुणै रन्ध्रवन्ति पिहितानि ।
मुक्ताफलानि तरुणीकुचकलशेषु सुष्ठु विलसन्ति ॥ ६८ ॥

1055

निष्पेषोत्थमहाव्यथापरतरं प्राप्तं तुलारोहणं
ग्राम्यस्त्रीनखलुञ्चनव्यतिकरस्तन्त्रीप्रहारव्यथा ।
मातङ्गोज्झिततुण्डवारिकणिकापानं च कूर्चाहतिः
कर्पासेन परार्थसाधनविधौ किं किं न चाङ्गीकृतम् ॥ ६९ ॥

केषामप्येते ।

## अथ शणः ।

1056

भूर्जः परोपकृतये निजकवचविकर्तनं सहते ।
परबन्धनाय च शणः प्रेक्षध्वमिहान्तरं कीदृक् ॥ ७० ॥

वल्लभदेवस्य ।

## अथ कण्टकारिका ।

1057

उचितं नाम नारङ्गचां केतक्यामपि कण्टकाः ।
रसगन्धोज्झिते किं ते कण्टकाः कण्टकारिके ॥ ७१ ॥

कस्यापि ।

## अथ धत्तूरः ।

1058

महेशस्त्वां धत्ते शिरसि रसराजस्य जयिनी
विशुद्धिस्त्वत्सङ्गात्कनकमयमेतत्त्रिभुवनम् ।
तनोति त्वत्सेवां ननु कनकवृक्ष त्वदपरः
परस्तत्को नु स्याद्यदि न सुलभीभावमभजः ॥ ७२ ॥

प्रह्लादनस्य ।

## अथ तृणानि ।

1059

उत्तुङ्गैस्तरुभिः किमेभिरखिलैराकाशसंस्पर्धिभि-
र्धन्योसौ नितरामुलूपविटपी नद्यास्तटेवस्थितः ।
एवं यः कृतबुद्धिरुद्धतजलव्यालोलवीचीवशा-
न्मज्जन्तं जनमुद्धरामि सहसा तेनैव मज्जामि वा ॥ ७३ ॥

राणकस्य ।

1060

रूढस्य सिन्धुतटमनु तस्य तृणस्यापि जन्म कल्याणम् ।
यत्सलिलमज्जदाकुलजनस्य हस्तावलम्बनं भवति ॥ ७४ ॥

वल्लभदेवस्य ।

## अथ ताम्बूलवल्ली ।

1061

वल्लीनां कति न स्फुरन्ति परितः पत्राणि किं तैरिह
स्निग्धैरप्यतिकोमलैरपि निजामेवाश्रयद्भिः श्रियम् ।
तानेव स्तुमहे महाजनमुखश्रीकारिजन्मव्रता-
न्यान्स्मृते नवनागरीप्रियतमांस्तांम्बूलवल्ली छदान् ॥ ७५ ॥

कस्यापि ।

1062

किं वीरुधो भुवि न सन्ति सहस्रसंख्या
यासां दलानि न परोपकृतिं भजन्ति ।
एकैव वल्लिषु विराजति नागवल्ली
या नागरीवदनचन्द्रमलंकरोति ॥ ७६ ॥

कस्यापि ।

## अथ तुम्बी ।

1063

सर्वास्तुम्ब्यः समकटुरसास्तुम्बिवल्लीप्रसूता-
स्तासां बाह्या अपि कतिपया दुस्तरं तारयन्ति ।
शब्दायन्ते सरसमपराः शुष्ककाष्ठे निषण्णा-
स्तन्मध्येन्या ज्वलितहृदयाः शोणितं संपिबन्ति ॥ ७७ ॥

कस्यापि ।

---

## अथ पर्वतान्योक्तयः ॥ ६० ॥

1064

विन्ध्यमन्दरसुमेरुभूभृतां
यत्पतिस्तुहिनपर्वतोभवत् ।

ईश्वरश्चशुरताप्रभावत-
स्तद्ध्रुवं जगति जृम्भते यशः ॥ १ ॥

शार्ङ्गधरस्य ।

1065

ये संतोषसुखप्रबुद्धमनसस्तेषामभिन्नो मृदो
येप्यन्ये धनलोभसंकुलधियस्तेषां तु दूरे नृणाम् ।
इत्थं कस्य कृते कृतः स विधिना तादृक्पदं संपदां
स्वात्मन्येव समाप्तहेममहिमा मेरुर्न मे रोचते ॥ २ ॥

विद्यापतेः ।

1066

आचक्ष्महे बत किमद्यतनीमवस्थां
तस्याद्य विन्ध्यशिखरस्य महोन्नतस्य ।
यत्रैव सप्त मुनयस्तपसा निषेदुः
सोयं विलासवसतिः पिशिताशनानाम् ॥ ३ ॥

कस्यापि ।

1067

मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण
शाखोटनिम्बकुटजा अपि चन्दनन्ति ।
किं तेन हेमगिरिणा रजताद्रिणा वा
यस्याश्रिताश्च तरवस्तरवस्त एव ॥ ४ ॥

कस्यापि ।

1068

मुरारातिर्लक्ष्मीं त्रिपुरविजयी शीतकिरणं
करीन्द्रं पौलोमीपतिरपि स लेभे जलनिधेः ।
त्वया किं वा लब्धं कथय मथितो मन्दरगिरे
शरण्यः शैलानां यदयमदयं रत्ननिलयः ॥ ५ ॥

कस्यापि ।

1069

शक्रादरक्षि यदि पक्षयुगं तथापि
मैनाक सन्ति तव नेह गतागतानि ।

निःसत्त्वता च निरपत्रपता च किंतु
पाथोनिधौ निपतता भवतार्जिता च ॥ ६ ॥

कस्यापि।

1070

एकस्यायमुदेति मूर्धनि गिरेरन्यस्य चैव क्रमा-
दस्तं याति कलानिधिस्तदुभयोरस्तः प्रशस्तोचलः।
को नामोदयिनं करोति न शिरोमाणिक्यमस्तं पुन-
र्यांतं यः कुरुते भवानिव स दुष्प्रापोस्ति पृथ्वीतले ॥ ७ ॥

कस्यापि।

1071

रोहणाचल शैलेषु कस्तुलां कलयेत्तव।
यस्य पाषाणखण्डानि मण्डनानि महीभृताम् ॥ ८ ॥

प्रह्लादनस्य।

1072

रत्नानां न किमालयो जलनिधिः किं न स्थिरा मेदिनी
किं न व्योम महत्पदं सुकृतिनां किं नाम नैवोन्नतम्।
हंहो रोहण किंतु याचकचमूनिःशङ्कटङ्कक्षति-
क्षान्तिस्वीकरणेन गोत्रतिलकस्त्रैलोक्यवन्द्यो भवान् ॥ ९ ॥

कस्यापि।

1073

नाधन्यानां निवासं विदधति गिरयः शेखरीभूतचन्द्राः
शृङ्गैर्ज्योत्स्नाप्रवाहं द्रुतमिव तुहिनं दिङ्मुखेषु क्षिपन्तः।
येषामुच्चैस्तरूणामविहतगतिना वायुना कम्पितानां
माकाशे विप्रकीर्णः कुसुमचय इवाभाति तारामहौघः ॥१०॥

कस्यापि।

---

## अथागस्त्यान्योक्तयः ॥ ६१ ॥

1074

कम्पन्ते गिरयः पुरंदरभयान्मैनाकमुख्या पुनः
क्रन्दन्त्यम्बुधराः स्फुरन्ति वडवावक्त्रोद्गता वह्नयः।

भोः कुम्भोद्भव मुच्यतां जलनिधिः स्वस्त्यस्तु ते सांप्रतं
निद्रालुः श्रथबाहुवल्लिकमलाश्लेषो हरिः सीदति ॥ १ ॥
कस्यापि ।

1075

अखर्वपर्वगर्तासु विच्छिन्नो यस्य वारिधिः ।
स एव हि मुनेः पाणिरधस्ताद्विन्ध्यभूभृतः ॥ २ ॥
कस्यापि ।

1076

अल्पीयसैव पयसा यत्कुम्भः पूर्यते प्रसिद्धं तत् ।
ब्राह्मं तेजः पश्यत कुम्भोद्भूतः पपौ वार्धिम् ॥ ३ ॥
शार्ङ्गधरस्य ।

---

## अथ समुद्रान्योक्तयः ॥ ६२ ॥

1077

नावज्ञानादवैदग्ध्यादुदधेर्महिमैव सः ।
यत्तीरपङ्क्तिमग्नानि महारत्नानि शेरते ॥ १ ॥

1078

यद्यपि बद्धः शैलैर्यद्यपि गिरिमथनमुषितसर्वस्वः ।
तदपि पतनभीतभूधररक्षायां दीक्षितो जलधिः ॥ २ ॥

1079

यद्यपि स्वच्छभावेन दर्शयत्युदधिर्मणीन् ।
तथापि जानुदघ्नोयमिति चेतसि मा कृथाः ॥ ३ ॥

1080

रत्नैरापूरितस्यापि मदलेशोस्ति नाम्बुधेः ।
मुक्ताः कतिपयाः प्राप्य मातङ्गा मदविह्वलाः ॥ ४ ॥

1081

अधः करोषि यद्रत्नं मूर्ध्ना धारयसे तृणम् ।
दोषस्तवैव जलधे रत्नं रत्नं तृणं तृणम् ॥ ५ ॥
केषामप्येते ।

1082

स्वस्त्यस्तु विद्रुमवनाय नमो मणिभ्यः
कल्याणिनी भवतु मौक्तिकशुक्तिरेषा ।
प्राप्तं मया सकलमेव फलं पयोधे-
र्यद्दारुणैर्जलचरैर्न विदारितोस्मि ॥ ६ ॥

इन्द्रकवेः ।

1083

आदाय वारि परितः सरितां मुखेभ्यः
किं तावदर्जितमनेन दुरर्णवेन ।
क्षारीकृतं च वडवावदने हुतं च
पातालकुक्षिकुहरे विनिवेशितं च ॥ ७ ॥

श्रीशुकस्य ।

1084

मावाणो मणयो हरिर्जलचरो लक्ष्मीः पयोमानुषी
मुक्तौघाः सिकताः प्रवाललतिकाः शैवालमम्भः सुधा ।
तीरे कल्पमहीरुहाः किमपरं नाम्नापि रत्नाकरो
दूरे कर्णरसायनं निकटतस्तृष्णापि नो शाम्यति ॥ ८ ॥

कस्यापि ।

1085

एतस्मादमृतं सुरैः शतमखेनोच्चैःश्रवाः सद्गुणः
कृष्णेनाद्भुतविक्रमैकवसतिर्लक्ष्मीः समासादिता ।
इत्यादिप्रचुराः पुरातनकथाः सर्वेभ्य एव श्रुता
अस्माभिस्तु न दृष्टमत्र जलधौ मिष्टं पयोपि क्वचित् ॥ ९ ॥

कस्यापि ।

1086

संख्येया न भवन्ति ते युगशतैर्गाम्भीर्यमुख्या गुणाः
सत्यं वारिनिधे तथापि तदिदं चित्ते विधत्ते व्यथाम् ।
स्वच्छन्देन तिमिंगिलाञ्जिकुलग्रासं मुहुः कुर्वतो
यत्ते वारयितुं निजेपि विषये न स्वामिता विद्यते ॥ १० ॥

कस्यापि ।

1087

हेलोल्लासितकल्लोल धिक्के सागर गर्जितम् ।
तव तीरे तृषाक्रान्तः पान्थः पृच्छति कूपिकाम् ॥ ११ ॥
कस्यापि ।

1088

तृषं धरायाः शमयत्यशेषं
यः सोम्बुदो गर्जति गर्जतूच्चैः ।
यस्त्वेककस्यापि न हन्ति तृष्णां
स किं वृथा गर्जति निस्त्रपोब्धिः ॥ १२ ॥
कस्यापि ।

1089

कल्लोलैः स्थगयन्मुखानि ककुभामभ्रंलिहैरम्भसा
क्षारेणापि दिवानिशं जलनिधे गर्जन्न विश्राम्यसि ।
एतत्ते यदि घोरनक्रनिलयं स्वादु व्यधास्यद्विधिः
किं कर्तासि तदा न वेद्मि तरलैः स्वैरेव दुश्चेष्टितैः ॥ १३ ॥
कस्यापि ।

1090

यद्वीचीभिः स्पृशसि गगनं यच्च पातालमूलं
रत्नैरुद्दीपयसि पयसा यत्पिधत्से धरित्रीम् ।
धिक्सर्वं तत्तव जलनिधे यद्विमुच्याम्बुधारा-
स्तीरे नीरग्रहणरसिकैरध्वगैरुज्झितोसि ॥ १४ ॥
गौडाभिनन्दस्य ।

1091

अयं वारामेको निलय इति रत्नाकर इति
श्रितोस्माभिस्तृष्णातरलितमनोभिर्जलनिधिः ।
क एवं जानीते निजकरपुटीकोटरगतं
क्षणादेनं ताम्यत्तिमिमकरमापास्यति मुनिः ॥ १५ ॥
मालवरुद्रस्य ।

1092

चपलतरतरंगैर्दूरमुत्सारितोपि
प्रथयति तव कीर्तिं दक्षिणावर्तशङ्खः ।

परिगणय पयोधे पद्मनाभार्घयोग्यं
तव निकटनिषण्णैः क्षुल्लकैः श्राध्यता का ॥ १६ ॥
कस्यापि ।

1093

इतः स्वपिति केशवः कुलमितस्तदीयद्विषा-
मितश्च शरणार्थिनः शिखरिपक्षिणः शेरते ।
इतोपि वडवानलः सह समस्तसंवर्तकै-
रहो विततमूर्जितं भरसहं च सिन्धोर्वपुः ॥ १७ ॥
भर्तृहरेः ।

1094

द्यामारोहति वाञ्छति स्थगयितुं तेजोपि तेजस्विना-
मुच्चैर्गर्जति पूरयन्नपि महीमम्भोभिरम्भोधरः ।
कांश्चिद्रागुपजीव्य तोयचुलकान्सिन्धोर्भवत्संनिधेः
पानीयप्रचयेषु सत्स्वपि न ते जातो विकारः क्वचित् ॥ १८ ॥
कस्यापि ।

1095

अये वारां राशे कुलिशकरकोपप्रतिभया-
दयं पक्षप्रेम्णा गिरिपरिवढस्त्वामुपगतः ।
त्वदन्तर्वास्तव्याद्यदि पुनरयं वाडवशिखी
प्रदीप्तः प्रत्यङ्गं ग्लपयति ततः कोस्य शरणम् ॥ १९ ॥
कस्यापि ।

1096

किं वाच्यो महिमा महाजलनिधेर्यस्येन्द्रवज्राहति-
त्रस्तः क्ष्माभृदमज्जदम्बुनिचये कौलीरपोताकृतिः ।
मैनाकोपि गभीरनीरविलसत्पाठीनपृष्ठोल्लस-
च्छैवालाङ्कुरकोटिकोटरकुटीकुड्यान्तरे निर्वृतः ॥ २० ॥

1097

तावत्सप्तसमुद्रमुद्रितमही भूभृद्भिरभ्रंकषै-
स्तावद्भिः परिवारिता पृथुतरैर्द्वीपैः समन्तादियम् ।

यस्य स्फारफणामणौ निलयिनी तिर्यक्फणालंकृतिः
शेषः सोप्यगमद्यदङ्गदपदं रुद्राय तस्मै नमः ॥ २१ ॥
एतौ बधिरकवेः ।

---

## रत्नान्योक्तयः ॥ ६३ ॥

1098

अनस्तमितसारस्य तेजसस्तद्विजृम्भितम् ।
येन पाषाणखण्डस्य मौल्यमल्पं वसुंधरा ॥ १ ॥

1099

यस्य वज्रमणेर्भेदे भिद्यन्ते लोहसूचयः ।
करोति तत्र किं नाम नारीनखविलेखनम् ॥ २ ॥

1100

सोमकान्तो मणिः स्वच्छः सूर्यकान्तस्तथा न किम् ।
उद्गारे तु विशेषोस्ति तयोरमृतवह्निजः ॥ ३ ॥

1101

स्फटिकस्य गुणो योसौ स एवायाति दोषताम् ।
धत्ते स्वच्छतया छायां यतो मलवतामपि ॥ ४ ॥

1102

सुधाकरकरस्पर्शाद्बहिर्द्रवसि सर्वतः ।
चन्द्रकान्तमणे तेन्तर्मृदुत्वं लोकविश्रुतम् ॥ ५ ॥

1103

वपुःपरीणाहगुणेन तेभ्यो
यशस्विनः किं मणयो भवन्ति ।
तथापि चूडासु महीपतीनां
त एव खेलन्ति न गण्डशैलाः ॥ ६ ॥

1104

त्यज निजगुणाभिमानं मरकत पतितोसि पामरे वणिजि ।
काचमणेरपि मौल्यं लभसे यत्नादपि ते श्रेयः ॥ ७ ॥

1105

भ्रष्टं नृपतिकिरीटाद्भूमौ पतितं तिरोहितं रजसा ।
विधिविलसितेन रत्नं जनचरणविडम्बनां सहते ॥ ८ ॥

1106

आघ्रातं परिलीढमुग्रनखरैः क्षुण्णं च यच्चर्वितं
क्षिप्तं यद्धतनीरसत्वकुपितेनेति व्यथां मा कृथाः ।
हे माणिक्य तवैतदेव कुशलं यद्वानरेणाग्रहा-
दन्तःसत्त्वनिरूहणाय सहसा चूर्णीकृतं नाश्मना ॥ ९ ॥

1107

उत्तंसेषु ननर्त न क्षितिभुजां न प्रेक्षकैर्लक्षितः
साकाङ्क्षं लुठितो न च स्तनतटे लीलावतीनां क्वचित् ।
कष्टं भोश्चिरमन्तरेव जलधेर्दैवाद्विशीर्णोभव-
स्खेलच्छ्यालकुलाङ्गघर्षणपरिक्षीणप्रमाणो मणिः ॥ १० ॥

केषामप्येते ।

1108

गौरस्त्यैर्दाक्षिणात्यैः स्फुरदुरुमतिभिर्मित्र पाश्चात्यसंवै-
रौदीच्यैर्यत्परीक्ष्य क्षितिपतिमुकुटे न्यासि माणिक्यमेकम् ।
यद्येतस्मिन्कथंचित्कथयति कृपणः कोपि मालिन्यमन्यः
प्रेक्षावन्तस्तदा तं निरवधिजडतामन्दिरं संगिरन्ते ॥ ११ ॥

अच्युतस्य ।

1109

ये गृह्णन्ति हठात्तृणानि मणयो ये वाप्ययःखण्डकं
ते दृष्टाः प्रतिधाम दग्धमनसो विच्छिन्नसंख्याश्चिरम् ।
नो जाने किमभावतः किमथवा दैवादहो भूयते
नामाप्यत्र न तादृशस्य हि मणे रत्नानि गृह्णाति यः ॥ १२ ॥

कस्यापि ।

1110

केनासीनः सुखमकरुणेनाकरादुद्धृतस्त्वं
विक्रेतुं वा समभिलषितः केन वास्मिन्कुदेशे ।

यस्मिन्वित्तव्ययभरसहो ग्राहकस्तावदास्तां
नास्ति भ्रातर्मरकतमणे त्वत्परीक्षाक्षमोपि ॥ १३ ॥
शर्ववर्मणः ।

1111

न श्वेतांशुवदन्धकारदलनादुद्द्योतिता रोदसी
नाप्यैरावतवन्निरस्तदितिजत्रासः कृतो वासवः ।
नो चिन्तामणिरत्नवत्त्रिभुवने छिन्ना विपद्यार्थिनां
भूत्वा तस्य हरेरुरःप्रणयिना किं कौस्तुभेनार्जितम् ॥ १४ ॥
कस्यापि ।

1112

यन्मुक्तामणयोम्बुधेरुदरतः क्षिप्ता महावीचिभिः
पर्यन्तेषु लुठन्ति निर्मलरुचः स्पष्टाट्टहासा इव ।
तत्तस्यैव परिक्षयो जलनिधेर्द्वीपान्तरालम्बिनो
रत्नानां तु परिग्रहव्यसनिनः सन्त्येव सांयात्रिकाः ॥ १५ ॥
कस्यापि ।

1113

सिन्धुस्तरंगैरुपलाल्य फेना-
न्रत्नानि पङ्कैर्मलिनीकरोति ।
तथापि तान्येव महीपतीनां
किरीटकोटीषु पदं लभन्ते ॥ १६ ॥
कस्यापि ।

---

## अथ शङ्खान्योक्तयः ॥ ६४ ॥

1114

उच्चैरुच्चर रुचिरं झिल्लि वर्त्मनि तरुं समारुह्य ।
दिग्व्यापिनि शब्दगुणे शङ्खः संभावनाभूमिः ॥ १ ॥
कस्यापि ।

1115

कीटगृहं कुटिलोन्तः कठिनः क्षाराम्बुसंभवः शून्यः ।
शङ्खः श्रीपतिनिकटे केन गुणेन स्थितिं लेभे ॥ २ ॥
शार्ङ्गधरस्य ।

1116

अन्तः कुटिलतां बिभ्रच्छङ्खः स खलु निष्ठुरः ।
हुंकरोति यदाध्मातस्तदेव बहु गण्यताम् ॥ ३ ॥

कस्यापि ।

1117

तातः क्षीरनिधिः स्वसा जलधिजा भ्राता सुरेशद्रुमः
सौजन्यं सह कौस्तुभेन शुचिता यस्य द्विजेशादपि ।
धिक्कर्माणि स एव कम्बुरधुना पाषण्डिकान्ताकरे
विभ्रान्तः प्रतिवासरं प्रतिगृहं भैक्षेण कुक्षिंभरिः ॥ ४ ॥

कस्यापि ।

1118

सर्वाशापरिपूरि हुंकृतिमदो जन्मापि दुग्धोदधे-
र्गोविन्दाननचुम्बि सुन्दरतरं पूर्णेन्दुबिम्बाद्वपुः ॥
श्रीरेषा सहजा गुणाः किमपरं भण्यन्त एते हि य-
त्कौटिल्यं हृदि पाञ्चजन्य भवतस्तेनातिलज्जामहे ॥ ५ ॥

कस्यापि ।

1119

शङ्खाः सन्ति सहस्रशो जलनिधेर्वीचिच्छटाघट्टिताः
पर्यन्तेषु लुठन्ति ये दलशतैः कल्माषितक्ष्मातलाः ।
एकः कोपि स पाञ्चजन्य उदभूदाश्चर्यधामा सतां
यः संवर्तभरक्षमैर्मधुरिपोः श्वासानिलैः पूर्यते ॥ ६ ॥

कविरत्नस्य ।

1120

क्व चाम्भोधौ जन्म क्व च वपुरिदं कुन्दधवलं
क्व चावासस्थानं कृतमहह विष्णोः करतले ।
क्व नीचानामास्ये परिणतिरियं चुम्बनविधा-
वितीवेदं शङ्खः करुणकरुणं रोदिति मुहुः ॥ ७ ॥

---

## अथ नद्यन्योक्तयः ॥ ६५ ॥

1121

यद्यपि दिशि दिशि सरितः परितः परिपूरिताम्भसः सन्ति ।
तदपि पुरंदरतरुणीसंगतिसुखदायिनी गङ्गा ॥ १ ॥

1122

आजन्मस्थितयो महीरुह इमे कामं समुन्मूलिताः
कल्लोलाः क्षणभङ्गुराः पुनरमी नीताः परामुन्नतिम् ।
अन्तर्ग्राहपरिग्रहो बहिरपि भ्राम्यन्ति गन्धद्विपा
भ्रातः शोण न सोस्ति यो न हसति त्वत्संपदां विभ्रवान् ॥ २ ॥

1123

छायां प्रकुर्वन्ति नमन्ति पुष्पैः
फलानि यच्छन्ति तटद्रुमा ये ।
उन्मूल्य तानेव नदी प्रयाति
तरंगिणां क्व प्रतिपन्नमस्ति ॥ ३ ॥

1124

कतिपयदिवसस्थायी पूरो दूरोन्नतोपि भविता ते ।
तटिनि तटद्रुमपातनपातकमेकं चिरस्थायि ॥ ४ ॥

1125

कुरु गम्भीराशयतां कल्लोलैर्जनय लोकविश्रान्तिम् ।
वीतपयोधरलक्ष्मीः कस्य न चरणैर्विलङ्घ्यसि ॥ ५ ॥
केषामप्येते ।

---

## अथ तटाकान्योक्तयः ॥ ६६ ॥

1126

हंसैर्लब्धप्रशंसैस्तरलितकमलप्रत्तरङ्गैस्तरंगै-
र्नीरैरन्तर्गभीरैश्चपलबककुलत्रासलीनैश्च मीनैः ।
पालीरूढद्रुमालीतलसुखशयितस्त्रीप्रणीतैश्च गीतै-
र्भाति प्रक्रीडदातिस्तव सलिलवलच्चक्रवाकस्तटाकः ॥ १ ॥
कस्यापि ।

1127

क्रौञ्चः क्रीडतु कूर्दतां च कुररः कङ्कः परिष्वज्यतां
मद्गुर्माद्यतु सारसश्च रसतु प्रोड्डीयतां टिट्टिभः ।

मेकाः सन्तु बका रसन्तु चरतु स्वच्छन्दमाटिस्टटे
हंहो पद्मसरः कुतः कतिपयैर्हंसैर्विना श्रीस्तव ॥ २ ॥
कस्यापि ।

1128

अयमत्रसरः सरस्ते सलिलैरुपकर्तुमर्थिनामनिशम् ।
इदमपि च सुलभमम्भो भवति पुनर्जलधराभ्युदये ॥ ३ ॥
श्रीवल्लभदेवस्य ।

1129

एतस्मिन्मरुमण्डले परिचलत्कल्लोलकोलाहल-
क्रीडत्कङ्कमपङ्कमङ्कविलसन्निःशङ्कमत्यव्रजम् ।
केनेदं विकसत्कुशेशयकुटीकोणक्वणत्षट्पद-
श्रेणिप्रीणितपान्थमुज्ज्वलजलं चक्रे विशालं सरः ॥ ४ ॥
कस्यापि ।

1130

स्तोकाम्भःपरिवर्तिताङ्गशफरग्रासार्थिनः सर्वतो
लप्स्यन्ते बकटिट्टिभभृतयः स्वल्पेषु साधुस्थितिम् ।
सद्यः शोषमुपागतेऽथ सरसि श्रीसद्मपद्माकरे
तस्मिन्पङ्कजिनीविलासरुचयो हंसा क्व यास्यन्त्यमी ॥ ५ ॥
इन्द्रकवेः ।

1131

माद्यद्दिग्गजदानलिप्तकरटप्रक्षालनक्षोभिता
व्योम्नः सीम्नि विचेरुरप्रतिहता यस्योर्मयो निर्मलाः ।
कष्टं भाग्यविपर्ययेण सरसः कल्पान्तरस्थायिन-
स्तस्याप्येकबकप्रचारकलुषं कालेन जातं जलम् ॥ ६ ॥
विज्जकायाः ।

1132

रे पद्माकर यावदस्ति भवतो मध्यं पयः पूरितं
तावच्चक्रचकोरकङ्ककुररश्रेणीं समुल्लासय ।
पश्चात्त्वं समटट्टकोटचटुलत्रोटीपुटव्याहति-
त्रुट्यत्कर्कटकर्परव्यतिकरैर्निन्दास्पदं यास्यसि ॥ ७ ॥
कस्यापि ।

# अथ कमलान्योक्तयः ॥ ६७ ॥

1133

रे पद्मिनीदल तवात्र मया चरित्रं
दृष्टं विचित्रमिव यद्विदितं ध्रुवं तत् ।
यैरेव शुद्धसलिलैः परिपालितस्त्वं
तेभ्यः पृथग्भवसि पङ्कभवोसि यस्मात् ॥ १ ॥

शार्ङ्गधरस्य ।

1134

पङ्कज जलेषु वासः प्रीतिर्मधुपेषु कण्टकैः सङ्गः ।
यद्यपि तदपि तवैतच्चित्रं मित्रोदये हर्षः ॥ २ ॥

लक्ष्मीधरस्य ।

1135

कुमुदं कोशातक्या विकसति रात्रौ दिवा च कूष्माण्ड्याः ।
अलिकुलनिलयं रुचिरं किंतु यशः कुमुदकमलयोरेव ॥३॥

कृष्णस्य ।

1136

वरमश्रीकता लोके नासमानसमानता ।
इतीव कुमुदोद्भेदे कमलैर्मुकुलायितम् ॥ ४ ॥

कस्यापि ।

1137

नालस्यप्रसरो जडेष्वपि कृतावासस्य कोशे रुचि-
र्दण्डे कर्कशता मुखेतिमृदुता मित्रे महान्प्रश्रयः ।
आमूलं गुणसंग्रहव्यसनिता द्वेषश्च दोषाकरे
यस्यैषा स्थितिरम्बुजस्य वसतिर्युक्तैव तत्र श्रियः ॥ ५ ॥

कस्यापि ।

1138

प्रसारितकरे मित्रे जगदुद्द्योतकारिणि ।
किं न कैरव लज्जा ते कुर्वतः कोशसंवृतिम् ॥ ६ ॥

कस्यापि ।

1139

लक्ष्मीसंपर्कजातोयं दोषः पद्मस्य निश्चितम् ।
यदेष गुणसंदोहधाम्नि चन्द्रे पराङ्मुखः ॥ ७ ॥

1140

रत्नाकरतनुजनुषि द्विजराजे राजनि श्रियो मित्रे ।
अमृतकरे च कलावति पद्मिनि वामा कुतो भवती ॥ ८ ॥

श्रीधनदेवानाम् ।

1141

उदितवति द्विजराजे कस्य न हृदये मुदः पदं दधति ।
संकुचसि कमल यदयं हर हर वामो विधिर्भवतः ॥ ९ ॥

कस्यापि ।

1142

अन्तश्छिद्राणि भूयांसि कण्टका बहवो बहिः ।
कथं कमलनालस्य मा भूवन्भङ्गुरा गुणाः ॥ १० ॥

कस्यापि ।

1143

एतेन गुणाः पङ्कज सन्तोपि न ते प्रकाशमायान्ति ।
यल्लक्ष्मीवसतेस्तव मधुपैरुपजीव्यते कोशः ॥ ११ ॥

कस्यापि ।

1144

कामं भवन्तु मधुलम्पटषट्पदौघ-
संघट्टघुर्घुरघनध्वनयोब्जखण्डाः ।
गायन्नतिश्रुतिसुखं विधिरेव यत्र
भृङ्गः स कोपि धरणीधरनाभिपद्मः ॥ १२ ॥

श्रुतधरस्य ।

---

## अथ कूपान्योक्तयः ॥ ६८ ॥

1145

चित्रं न तद्यदयमम्बुधिरम्बुदौघ-
सिन्धुप्रवाहपरिपूरतया महीयान् ।
त्वं त्वार्थिनामुपकरोषि यदल्पकूप
निष्पीड्य कुक्षियुगलं हि महत्त्वमेतत् ॥ १ ॥

1146

दिनमवसितं विश्रान्ताः स्मस्त्वया मरुकूप हे
परमुपकृतं यत्ते वक्तुं पुनर्न वयं क्षमाः ।

भवतु सुकृतैरध्वन्यानामशेषजलो भवा-
नियमपि घनच्छाया भूयात्तवोपतटं शमी ॥ २ ॥
कथोरप्येतौ ।

1147

भीमश्यामप्रतनुवदनक्रूरपातालकुक्षि-
क्रोडप्रान्तोपहितविभवस्याथ किं ते ब्रवीमि ।
येन त्वत्तः समभिलषतो वाञ्छितं क्षुद्रकूप
क्लाम्यन्मूर्तेर्भवति सहसा कस्य नाधोमुखत्वम् ॥ ३ ॥
श्रीभोजदेवस्य ।

1148

सगुणैः सेवितोपान्तो विनतैः प्राप्तदर्शनः ।
नीचोपि कूपः सत्पात्रैर्जीवनार्थं समाश्रितः ॥ ४ ॥
शार्ङ्गधरस्य ।

1149

यद्यपि बहुगुणगम्यं जीवनमेतस्य कूपमुख्यस्य ।
जयति तथापि विवेको दानं पात्रानुमानेन ॥ ५ ॥
कस्यापि ।

---

## अथ मरुस्थलान्योक्तयः ॥ ६९ ॥

1150

मरौ नास्त्येव सलिलं कृच्छ्राद्यद्यपि लभ्यते ।
तत्कटु स्तोकमुष्णं च न करोति वितृष्णताम् ॥ १ ॥
कस्यापि ।

1151

पायं पायं पिब पिब पयः सिञ्च सिञ्चाङ्गमङ्गं
भूयो भूयः कुरु कुरु सखे मज्जनोन्मज्जनानि ।
एषाशेषश्रमशमपटुर्दुःखिताध्वन्यबन्धुः
सिन्धुर्दूरीभवति भवतो मारवः पान्थ पन्थाः ॥ २ ॥
कस्यापि ।

1152

भो भोः किं किमकाण्ड एव पतितस्त्वं पान्थ कान्या गति-
स्तत्तादृक्तृषितस्य ते खलमतिः सोयं जलं गूहते ।

अस्थानोपगतामकालसुलभां तृष्णां प्रति क्रुध्य हे
त्रैलोक्यप्रथितप्रभावमहिमा मार्गोऽयमस्मादृशः ॥ ३ ॥
अभिनवगुप्तस्य ।

1153

सत्पादपान्विपुलपल्लवपुष्पपुञ्ज-
संपत्परीतवपुषः फलभारनम्रान् ।
व्योमाग्रशिञ्जितशकुन्तसमाश्रितोरु-
शाखान्मरौ मृगयते न ततोस्ति मुग्धः ॥ ४ ॥
कस्यापि ।

1154

किमसि विमनाः किं चोन्मादी क्षणादपि लक्ष्यसे
पुनरपि पुनः प्रेक्षापूर्वा न काश्चन ते क्रियाः ।
स्वयमजलदां जानानोपि प्रविश्य मरुस्थलीं
शिशिरमधुरं वारि प्रातुं यदध्वग वाञ्छसि ॥ ५ ॥
नरसिंहस्य ।

---

## अथ दावानलान्योक्तयः ॥ ७० ॥

1155

यस्या महत्त्वभाजो भवन्ति गुणिनोमिता धनुर्दण्डाः ।
दहतस्तां वंशालीं को वनवह्ने विवेकस्ते ॥ १ ॥
कस्यापि ।

1156

हे दावानल शैलाग्रवासिनः साधुशाखिनः ।
मुग्ध व्यर्थं त्वया दग्धाः प्रेरितेन प्रभञ्जनैः ॥ २ ॥
कस्यापि ।

1157

दुर्दैवप्रभवप्रभञ्जनजवादुद्भूतभूमीरुहा-
नेतान्सत्त्वगुणाश्रयानकरुण प्रुष्यन्किमुन्माद्यसि ।
ब्रूमस्त्वां वनहव्यवाह यदमी दग्धार्धदग्धा अपि
द्रष्टव्यास्तव तु क्षणाद्विलयिनो नामापि न ज्ञायते ॥ ३ ॥
कस्यापि ।

1158

अभ्युन्नतेपि जलदे जगदेकसार-
साधारणप्रणयहारिणि हा यदेते ।
उल्लासलास्यललितं तरवो न यान्ति
हे दावपावक स तावक एव दोषः ॥ ४ ॥

कस्यापि ।

1159

विध्वस्ता मृगपक्षिणो विधुरतां नीताः स्थलीदेवता
धूमैरन्तरिताः स्वभावमलिनैराशा मही तापिता ।
भस्मीकृत्य सुपुष्पपल्लवफलैर्नम्रान्महापादपा-
नुन्मत्तेन दवानलेन विपिनं वल्मीकशेषं कृतम् ॥ ५ ॥

---

## अथ संकीर्णान्योक्तयः ॥ ७१ ॥

1160

बिभ्राणे त्वयि भस्म कः समभवन्मन्दादरश्चन्दने
कः क्षौमं कलयांचकार न कृती कृत्तिं वसाने त्वयि ।
धत्तूरस्पृहयालुतां त्वयि गते तत्याज कः केतकीं
स्वातन्त्र्याज्जहिहि त्वमीश्वर गुणांल्लोकोस्ति तद्ग्राहकः ॥ १ ॥

कस्यापि ।

1161

छिन्त्से ब्रह्मशिरो यदि प्रथयसि प्रेतेषु सख्यं यदि
क्षीबः क्रीडसि मातृभिर्यदि रतिं धत्से श्मशाने यदि ।
सृष्ट्वा संहरसि प्रजा यदि तथाप्याधाय भक्त्या मनः
कं सेवे करवाणि किं त्रिजगती शून्या त्वमेवेश्वरः ॥ २ ॥

धोईकवेः ।

1162

दामोदरमुदराहितभुवनं यो वहति लीलया गरुडः ।
कस्य तरोरुपरिष्टात्खिन्नोसौ भ्रान्तिमपनयतु ॥ ३ ॥

कस्यापि ।

1163

अहिरहिरिति संभ्रमपदमितरजने किमपि कातरे भवतु ।
विहगपतेराहारः स तु सरलमृणालदलरुचिरः ॥ ४ ॥

कस्यापि ।

1164

यः पीयूषसहोदरैः स्नपयति ज्योत्स्नाजलैः सर्वतो
यश्च त्वामधिकाधिकं ज्वलयति प्रोद्दामतापैः करैः ।
भ्रातर्व्योम तयोरपि स्थितिमिह व्यातन्वतो विक्रिया-
निर्मुक्तस्य महत्त्वमेतदसमं दूरेधिरूढं तव ॥ ५ ॥

श्रीभोजदेवस्य ।

1165

शैत्यं नाम गुणस्तवैव तदनु स्वाभाविकी स्वच्छता
किं ब्रूमः शुचितां भवन्ति शुचयः स्पर्शेन यस्यापरे ।
किंचातः परमुच्यते स्तुतिपदं यज्जीवनं देहिनां
त्वं चेन्नीचपथेन गच्छसि पयः कस्त्वां निरोद्धुं क्षमः ॥ ६ ॥

1166

अब्जं त्वब्जमथाब्जभूस्तत इदं ब्रह्माण्डमण्डात्पुन-
र्विश्वं स्थावरजङ्गमं तदितरं त्वन्मूलमित्थं पयः ।
धिक्त्वां चौर इव प्रयासि निभृतं निर्गत्य जालान्तरै-
र्बध्यन्ते विवशास्त्वदेकशरणास्त्वामाश्रिता जन्तवः ॥ ७ ॥

कयोरप्येतौ।

1167

समुद्रस्यापत्यं प्रथितमहिमामुद्रितभुवः
स्वसा प्रालेयांशोस्त्रिनयनशिरोधामवसतेः ।
मुरारातेर्योषित्सरसिरुहकिंजल्कनिलया
तथापि श्रीः स्त्रीत्वात्प्रकृतिचपलालिङ्गति खलान् ॥ ८ ॥

1168

तापापहे सहृदये रुचिरे प्रबुद्धे
मित्रानुरागनिरते धृतसद्गुणौघे ।

स्वाङ्गप्रदानपरिपूरितषट्पदौघे
युक्तं तवेह कमले कमले स्थितिर्यत् ॥ ९ ॥
कयोरप्येतौ ।

1169

जम्भारिरेव जानाति रम्भासंभोगविभ्रमम् ।
घटचेटीविटः किंस्विज्जानात्यमरकामिनीम् ॥ १० ॥
कस्यापि ।

1170

यदेतत्कामिन्या सुरतविरतौ पल्लवरुचा
करेणानीतस्त्वं वससि सह हारेण गुणिना ।
मुहुः कुर्वन्गीतं कुचकलशपीठोपरि लुठ-
न्नये वीणादण्ड प्रकटय फलं कस्य तपसः ॥ ११ ॥
कस्यापि ।

1171

यदेतन्नेत्राम्भः पतदपि समासाद्य तरुणी-
कपोले व्यासङ्गं कुचकलशमस्याः कलयति ।
ततः श्रोणीबिम्बं व्यवसितविलासं तदुचितं
स्वभावस्वच्छानां विपदपि सुखं नान्तरयति ॥ १२ ॥
कस्यापि ।

1172

यत्पूर्वं पवनाग्निशस्त्रसलिलैश्चीर्णं तपो दुष्करं
तस्यैतत्फलमीदृशं परिणतं यज्जातरूपं वपुः ।
मुग्धापाण्डुकपोलचुम्बनसुखं सङ्गश्च रत्नोत्तमैः
प्राप्तुं कुण्डल वाञ्छसे किमपरं यन्मूढ दोलायसे ॥ १३ ॥
कस्यापि ।

1173

सद्वृत्तसद्गुणविचित्रमहार्हकान्त
कान्ताघनस्तनतटाञ्चितचारुमूर्ते ।
आः पामरीकठिनकण्ठविलग्नभङ्ग
हा हार हारितमहो भवता गुणित्वम् ॥ १४ ॥
कस्यापि ।

1174

मौलौ सन्मणयो गृहं गिरिगुहा त्यागः किलात्मत्वचो
निर्यत्नोपनतैश्च वृत्तिरनिलैरेकत्र चर्यैदृशी ।
अन्यत्रानृजुवर्त्म वाग्द्विरसना वक्रे विषं वीक्षणं
सर्वामङ्गलसूचकं कथय भो भोगिन्सखे किं न्विदम् ॥ १५ ॥
कस्यापि ।

1175

दुश्चरितैरेव निजैर्भवति दुरात्मा विशङ्कितो नित्यम् ।
दर्शनपथमापन्नं पन्नगकुलमाकुलीभवति ॥ १६ ॥
कस्यापि ।

1176

यस्मै ददाति विवरं भूमिः फूत्कारमात्रभीतेव ।
आशीविषः स दैवादद्य करण्डस्थितिं सहते ॥ १७ ॥
कस्यापि ।

1177

भेकेन क्वणता सरोषपरुषं यत्कृष्णसर्पानने
दातुं कर्णचपेटमुज्झितभिया हस्तः समुल्लासितः ।
यच्चाधोमुखमक्षिणी पिदधता नागेन तूष्णीं स्थितं
तत्सर्वं विषमन्त्रिणो भगवतः कस्यापि लीलायितम् ॥ १८ ॥
कस्यापि ।

1178

श्रुत्वा कुम्भसमुद्भवेन मुनिना किंचिन्मदात्याहितं
सिन्धावन्धकुटुम्बदर्दुरकुलं हर्षादिदं ध्यायति ।
गाम्भीर्याद्यदि ते न बिभ्यति न वा त्रस्यन्ति भेकीशिशो-
रत्रागत्य सुखं वसन्तु तिमयो जातानुकम्पावयम् ॥ १९ ॥
कस्यापि ।

1179

आपूर्येत पुनः स्फुरच्छफरिकाशारोर्मिभिर्वारिभि-
र्भूयोपि प्राविजृम्भमाणनलिनं पश्येम तोयाशयम् ।
इत्याशाशततन्तुबद्धहृदयो नक्तंदिनं दीनधीः
शुष्यत्यातपशोषितस्य सरसस्तीरे जरत्सारसः ॥ २० ॥
कस्यापि ।

1180

अस्तं गतोयमरविन्दवनैकबन्धु-
र्भास्वान्न लङ्घ्यति कोपि विधिप्रणीतम् ।
हे चक्र धैर्यमवलम्ब्य विमुञ्च शोकं
धीरास्तरन्ति विपदं न तु दीनचित्ताः ॥ २१ ॥

कस्यापि ।

1181

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पङ्कजं च ।
इत्यादि चिन्तयति कोशगते द्विरेफे
हा हन्त हन्त नलिनीं गज उन्मुमूल ॥ २२ ॥

कस्यापि ।

1182

हंसः प्रयाति शनकैर्यदि यातु तस्य
नैसर्गिकी गतिरियं हि न तत्र चित्रम् ।
गत्या तया जिगमिषुर्बक एष मूढ-
श्चेतो दुनोति सकलस्य जनस्य नूनम् ॥ २३ ॥

कस्यापि ।

1183

कल्याणं नः किमधिकमितो जीवनार्थं पथस्त्वं
छित्त्वा वृक्षानहह दहसि भ्रातरङ्गारकार ।
न त्वेतस्मिन्नशनिपिशुनैरातपैराकुलाना-
मध्वन्यानामशरणमरुप्रान्तरे कोभ्युपायः ॥ २४ ॥

कस्यापि।

1184

भ्रातर्ग्राम्यकुविन्द कन्दलयता वस्त्राण्यमूनि त्वया
गोणीविभ्रमभाजनानि सुबहून्यात्मा किमायास्यते ।
किं त्वेकं रुचिरं चिरादभिनवं वासस्तथा तन्यतां
यन्नोज्झन्ति कुचस्थलात्क्षणमपि क्षोणीभुजां वल्लभाः ॥ २५ ॥

कस्यापि ।

1185

रे लाङ्गलिक निषद्याक्रोडे लोहं पुरा यदद्राक्षीः ।
स्पर्शस्पर्शविशेषात्तदखिलमजनिष्ट हेम नृपयोग्यम् ॥ २६ ॥

अच्युतस्य ।

1186

दुर्गा नदी शिथिलबन्धावलम्बिनी नौ-
रभ्युन्नता जलमुचो विषमः समीरः ।
आरूढवान्निजकुटुम्बयुतोध्वनीन-
स्तत्कर्णधार कुरु यत्सदृशं कुलस्य ॥ २७ ॥

कस्यापि ।

1187

वंशः प्रांशुरसौ घुणव्रणमयो जीर्णा वरत्रा इमाः
कीलाः कुण्ठतया विशन्ति न महीमाहन्यमाना अपि ।
आरोहव्यवसायसाहसमिदं शैलूष संत्यज्यतां
दूरे श्रीर्निकटे कृतान्तमहिषग्रैवेयघण्टारवः ॥ २८ ॥

कस्यापि ।

1188

मौलिः स्वर्णकिरीटकान्तिरुचिरः केयूरभव्यौ भुजौ
स्वङ्कृत्याः किल कञ्चुकिप्रभृतयो देवेति विज्ञाप्यसे ।
इत्थं कल्पनया कुशीलवनृपाहंकारदार्ढ्यं वृथा
नृत्यान्ते भवतो भविष्यति मषीमात्रावशेषं वपुः ॥ २९ ॥

कस्यापि ।

1189

अमी तिलास्तैलिक नूनमेतां
स्नेहादवस्थां भवतोपनीताः ।
द्वेषोभविष्यद्यदमीषु नूनं
तदा न जाने किमिवाकरिष्यः ॥ ३० ॥

कस्यापि ।

1190

किं व्यक्तीकुरुषे सरोजमुकुलाकारामुरोजश्रियं
लीनेनाधरपल्लवे कुसुमतां किं वा स्मितेनामुना ।

आकूतामृतशीतलाः भ्रमयसे किं वा गिरो नागरी-
र्मुग्धे कामिनि किं मुधा घटयसि क्लीबे कटाक्षच्छटाः ॥ ३१ ॥

1191

वक्रा नैष तनूविवर्तनगतीर्गृह्णाति साचिस्मित-
स्मेरैर्दृग्वलनैरमुष्य न मनाक्चेतः परावर्तते ।
हस्ते त्वं मुनिदारकस्य पतिता कल्याणि तन्नीयतां
वेदीमार्जनबर्हिरर्पणवषट्कर्तव्यपाकैर्वयः ॥ ३२ ॥

1192

स्रग्दाम मूर्धनि निधेहि गवेधुकानां
गुञ्जामयीमुरसि धारय हारयष्टिम् ।
बाले कलावति चिरं पतितासि पल्लौ
तल्लौहमन्यदपि भूषणमेषणीयम् ॥ ३३ ॥

केषामप्येते ।

1193

भ्रातः काञ्चनलेपगोपितबहिस्ताम्राकृते सर्वतो
मा भैषीः कलश स्थिरो भव चिरं देवालयस्योपरि ।
ताम्रत्वं गतमेव काञ्चनमयी कीर्तिः स्थिरा तेधुना
नान्तस्तत्त्वविचारणप्रणयिनो लोका बहिर्बुद्धयः ॥ ३४ ॥

कस्यापि ।

1194

न यत्र गुणवत्पात्रमेकमप्यस्ति संनिधौ ।
कस्तत्र भवतः पान्थ कूपेम्बुग्रहणादरः ॥ ३५ ॥

1195

रक्ष पात्रगतं स्नेहं प्रदीपश्रीविवर्धनम् ।
प्रयास्यन्ति विनानेन भस्मत्वं भवतो गुणाः ॥ ३६ ॥

एतौ राजपितामहमहादेवस्य।

1196

को हि तुलामधिरोहति शुचिना दुग्धेन सहजमधुरेण ।
तप्तं विकृतं मथितं केवलमुद्विरति यत्स्नेहम् ॥ ३७ ॥

कस्यापि ।

1197

दृढतरगलकनिबन्धः कूपनिपातोपि कलश ते धन्यः ।
यज्जीवनदानैस्त्वं तर्षामर्षं नृणां हंसि ॥ ३८ ॥

1198

यत्सद्गुणोपि सरलोपि तटस्थितोपि
वंशोद्गतोपि विदधासि नृशंसकर्म ।
वक्रात्मनो बडिशदण्ड तदेतदस्य
जानामि संगतिफलं तव कण्टकस्य ॥ ३९ ॥

1199

द्वात्रिंशद्दशनद्वेषिमध्ये भ्रमसि नित्यशः ।
तदिदं शिक्षिता केन जिह्वे संचारकौशलम् ॥ ४० ॥

1200

अनिल निखिलविश्वं प्राणिति त्वत्प्रयुक्तं
सपदि च विनिमीलत्याकुलं त्वद्वियोगात् ।
वपुरपि परमेशस्याचितं नोचितं ते
सुरभिमसुरभिं वा यत्स्वमङ्गीकरोषि ॥ ४१ ॥

1201

अपि त्यक्तासि कस्तूरि पामरैः पङ्कशङ्कया ।
अलं खेदेन भूपालाः किं न सन्ति महीतले ॥ ४२ ॥

केषामप्येते ।

1202

जन्मस्थानं न खलु विमलं वर्णनीयो न वर्णो
दूरे पुंसां वपुषि रचना पङ्कशङ्कां करोति ।
यद्यप्येवं सकलसुरभिद्रव्यगर्वापहारी
को जानीते परिमलगुणं काक कस्तूरिकायाः ॥ ४३ ॥

विद्यापतेः ।

1203

कौस्तुभमुरसि मुरारेः शिरसि शशी द्योतते पुरां जयिनः ।
तनुजन्मानौ जलधेर्जगतुरियतीं गतिं पश्य ॥ ४४ ॥

कस्यापि ।

1204

तुल्यं भूभृति जन्म तुल्यमुभयोर्मूल्यं च तुल्यं वपु-
स्तुल्यं दार्ढ्यमुदग्रटङ्कदलनं तुल्यं च पाषाणयोः ।
एकस्याखिलवन्दनाय विधिना देवत्वमारोपितं
तद्वारे विहितापरस्य तु पदाघातास्पदं देहली ॥ ४५ ॥

1205

तृषार्तैः सारङ्गैः प्रतिजलधरं भूरि विरुतं
घनैर्मुक्ता धाराः सपदि पयसस्तान्प्रति मुहुः ।
खगानां के मेघाः क इह विहगा वा जलमुचा-
मयाच्यो नार्तानामनुपकरणीयो न महताम् ॥ ४६ ॥

कस्यापि ।

1206

भ्रातः पञ्जरलावक मा कुरु संतोषमन्यनिधनेन ।
प्रातस्तवैव धातुर्वामत्वं किं न जानासि ॥ ४७ ॥

कस्यापि ।

1207

मलोत्सर्गे गजेन्द्रस्य मूर्ध्नि काकः करोति यत् ।
कुलानुरूपं तत्तस्य यो गजो गज एव सः ॥ ४८ ॥

1208

ग्रासाद्गलितासिक्थस्य करिणः किं गतं भवेत् ।
पिपीलकस्तु तेनैव सकुटुम्बोपि जीवति ॥ ४९ ॥

1209

बन्धनस्थोपि मातङ्गः सहस्रभरणक्षमः ।
अपि स्वच्छन्दचारी श्वा स्वोदरेणापि दुःखितः ॥ ५० ॥

1210

ऊर्णां नैष दधाति नैव विषयो वाहस्य दोहस्य वा
तृप्तिर्नास्य महोदरस्य बहुभिर्घासैः पलालैरपि ।
हा कष्टं कथमस्य पृष्ठशिखरे गोणी समारोप्यते
को गृह्णाति कपर्दकैरलमिति ग्राम्यैर्गजो हस्यते ॥ ५१ ॥

केषामप्येते ।

1211

पिब पयः प्रसर क्षितिपान्तिकं
कलय कांचन काञ्चनशृङ्खलाम् ।
इदमवद्यतमं हि यदीहसे
भषण संप्रति केसरिणस्तुलाम् ॥ ९२ ॥

भीमसिंहपण्डितस्य ।

1212

उदस्योच्चैः पुच्छं शिरसि निहितं जीर्णकुटिलं
यदृच्छाव्यापन्नद्विपपिशितलेशाः कवलिताः ।
गुहागर्ते शून्ये सुचिरमुषितं जम्बुक सखे
किमेतस्मिन्कुर्मो यदसि न गतः सिंहसमताम् ॥ ९३ ॥

भट्टेन्दुराजस्य ।

1213

यस्यां स केसरियुवा पदमाबबन्ध
गन्धद्विपेन्द्ररुधिरारुणिताङ्गणायाम् ।
तामद्य पर्वतदरीं धुतधूम्रलोमा
गोमायुरेष वपुषा मलिनीकरोति ॥ ९४ ॥

कस्यापि ।

1214

निष्कन्दामरविन्दिनीं स्थपुटितोद्देशां कसेरुस्थलीं
जम्बालाविलमम्बु कर्तुमितरा सूते वराही सुतान् ।
दंष्ट्रायां चतुरर्णवोर्मिपटलैराप्लावितायामियं
यस्या एव शिशोः स्थिता वसुमती सा पोत्रिणी पुत्रिणी ॥९५॥

कस्यापि ।

1215

शतपदी सति पादशते क्षमा
यदि न गोष्पदमप्यतिवर्तितुम् ।
किमियता द्विपदस्य हनूमतो
जलनिधेः क्रमणे विवदामहे ॥ ९६ ॥

भल्लटस्य ।

1216

वृक्षान्दोलनमद्य ते क्व नु गतं नर्म स्वयूथस्य वा
यूकान्वेषणरोषसौख्यबहुलाश्चेष्टा मुखोत्थाः क्व ताः ।
क्वारण्ये फलपूर्णगल्लकुहरस्यान्येषु ता भीषिका
भीतः संप्रति कौशिकाङ्गलवलब्यालः कपे नृत्यसि ॥ ९७ ॥

श्रीदामोदरदेवानाम् ।

1217

आकर्ण्य गुञ्जितरवं घनगर्जितुल्यं
सिंहस्य यान्ति वनमन्यदिभा भयार्ताः ।
तत्रैव पौरुषनिधिः स्वकुलेन सार्धं
दर्पोद्धुरो वसति वीतभयो वराहः ॥ ९८ ॥

शार्ङ्गधरस्य ।

---

## अथ सामान्यराजप्रशंसा ॥ ७२ ॥

1218

सरस्वती स्थिता वक्त्रे लक्ष्मीः करसरोरुहे ।
कीर्तिः किं कुपिता देव येन देशान्तरं गता ॥ १ ॥

सरस्वतीकुटुम्बस्य ।

1219

तुलामारुह्य रविणा वृश्चिके निहितं पदम् ।
भवता शिरसि न्यस्यमयत्नेनैव भोगिनाम् ॥ २ ॥

1220

किं कृतेन न यत्र त्वं यत्र त्वं किमसौ कलिः ।
कलौ चेद्भवतो जन्म कलिरस्तु कृतेन किम् ॥ ३ ॥

1221

सर्वदा सर्वदोसीति मिथ्या संस्तूयसे बुधैः ।
नारयो लेभिरे पृष्ठं न वक्षः परयोषितः ॥ ४ ॥

1222

कोप्यन्यः कल्पवृक्षोयं चकास्ति क्षितिमण्डले ।
यत्पाणिपल्लवोप्येकः कुरुतेधः सुरद्रुमम् ॥ ५ ॥

केषामप्येते ।

1223

देव त्वं जय यस्य राजति महाराष्ट्रीकुचोचं कुलं
लाटीवाङ्मृदु नर्म चेदिवनितानाभीगभीरं मनः ।
आभीरीकटिविस्तृता मतिरसिर्गौडीकचश्यामलः
कर्णाटीरतिनिष्ठुरो रणरसः कीरीमुखाच्छं यशः ॥ ६ ॥

1224

ते कौपीनधनास्त एव हि परं धात्रीफलं भुञ्जते
तेषां द्वारि नदन्ति वाजिनिवहास्तैरेव लब्धा क्षितिः ।
तैरेतत्समलंकृतं निजकुलं किं वा बहु ब्रूमहे
ये दृष्टाः परमेश्वरेण भवता रुष्टेन तुष्टेन वा ॥ ७ ॥

कयोरप्येतौ।

1225

संग्रामाङ्गणमागतेन भवता चापे समारोपिते
देवाकर्णय येन येन सहसा यद्यत्समासादितम् ।
कोदण्डेन शराः शरैररिशिरस्तेनापि भूमण्डलं
तेन त्वं भवता च कीर्तिरतुला कीर्त्या च लोकत्रयम् ॥ ८ ॥

कस्यापि ।

1226

देव त्वद्यशसि प्रसर्पति जगल्लक्ष्मीसुधोच्चैःश्रव-
श्चन्द्रैरावणकौस्तुभाः स्थितिमिवामन्यन्त दुग्धाम्बुधौ ।
किं त्वेकः पुनरस्ति दूषणकणो यन्नोपयाति भ्रमा-
त्कृष्णं श्रीः शितिकण्ठमद्रितनया नीलाम्बरं रोहिणी ॥ ९ ॥

कस्यापि ।

1227

किं वृत्तान्तैः परगृहगतैः किं तु नाहं समर्थ-
स्तूष्णीं स्थातुं प्रकृतिमुखरो दाक्षिणात्यस्वभावः ।
गेहे गेहे विपणिषु तथा चत्वरे पानगोष्ट्या-
मुन्मत्तेव भ्रमति भवतो वल्लभा देव कीर्तिः ॥ १० ॥

मातङ्गदिवाकरस्य ।

1228

युधिष्ठिरोसि भीमोसि चरितैरर्जुनो भवान् ।
प्रज्ञया सहदेवोसि वाच्यता न कुलस्य ते ॥ ११ ॥

1229

बलिकर्णदधीचाद्याः पुरा पञ्चत्वमागताः ।
पञ्चत्वं न गताश्चित्रं त्वयि जीवति पञ्चमे ॥ १२ ॥

1230

त्वद्गुणैर्ग्रथितः शुद्धैरमितैर्ब्रह्मगोलकः ।
विधत्ते कीर्तिकन्यायाः विधिराक्रीडकौतुकम् ॥ १३ ॥

केषामप्येसे ।

1231

यशोदयामण्डितकान्तदेहो
बाल्येपि गोपालजनस्य नेता ।
गोमण्डलं पासि बलेन युक्तः
कथं न राजन्पुरुषोत्तमोसि ॥ १४ ॥

कस्यापि

1232

साशङ्कस्य समाकुलीकृतमतेरत्यन्तनिस्तेजसः
स्विन्नाङ्गस्य विकम्पमानहृदयस्यारूढमन्योर्भृशम् ।
लज्जां संत्यजतः क्रमं विमृशतो विघ्नान्बहून्पश्यतः
क्लेशो योर्थिजनस्य वक्तुमनसो मा भूत्स ते विद्विषाम् ॥ १५ ॥

कस्यापि ।

1233

नो कामः प्रतिहन्यते प्रणयिषु स्वप्नेपि नाथ त्वया
नैवाधः कुरुषे वृषं द्विरसना व्याला न ते वल्लभाः ।
नो बह्वस्तव मूर्तयो न च तनुर्नित्यं जडानुग्रह-
व्यग्रा नो विषमा च दृक्त्वमथ च ख्यातः क्षितावीश्वरः ॥ १६ ॥

कस्यापि ।

1234

सिक्तायां वीरकण्ठस्थलबहलगलद्रक्तधाराम्बुवर्षै-
र्माद्यन्मातङ्गकुम्भोद्दलनविलुलितैर्मौक्तिकैः पुष्पतायाम् ।

संग्रामोद्यानभूमौ तुरगखुरमुखोत्खातकृष्टस्थलायां
जातं त्वत्खड्गवल्ल्यां फलमतुलरसास्वादहृद्यं जयश्रीः ॥१७॥

कस्यापि।

1235

उद्यद्बालाङ्कुरश्रीर्दशि दिशि दशनैरेभिराशागजानां
रोहन्मूला सुगैरैरुरगपतिफणैरत्र पातालकुक्षौ ।
अस्मिन्नाकाशदेशे विकसितकुसुमा राशिभिस्तारकाणां
नाथ त्वत्कीर्तिवल्ली फलति फलमिदं बिम्बमिन्दोः सुधार्द्रम्॥१८॥

कस्यापि।

1236

हारानाहर देव चन्द्रधवलान्नो चेत्पयोधेस्तटीं
संप्राप्ते त्वयि सैन्यवारणगणैर्मज्जद्भिराक्षोभितम् ।
सिन्दूरारुणमम्बु मेघपटलीपीतोज्झितं शुक्तिषु
स्वल्पैरेव दिनैः करिष्यति महीमाताम्रमुक्ताफलाम् ॥ १९॥

कस्यापि।

1237

दर्पान्धगन्धगजकुम्भकपाटकूट-
संक्रान्तिनिघ्नघनशोणितशोणशोचिः ।
वीरैर्व्यलोकि युधि कोपकषायकान्तिः
कालीकटाक्ष इव यस्य करे कृपाणः ॥ २० ॥

कस्यापि।

1238

इन्दुं निन्दति चन्दनं न सहते मल्लीस्रजं नेहते
हारं द्वेष्टि सिताभ्रमुज्झति बिसस्तोमं निगृह्णाति च ।
श्रीभूपाल महीधरेषु विपिनेष्वम्भोधितीरेषु च
त्वत्कीर्तिस्त्वदरिप्रिया च विलसत्युच्चैःस्फुरत्पाण्डिमा ॥२१॥

कस्यापि।

1239

कृष्णत्वं घनमण्डलस्य गलितं लग्नं मुखे त्वद्द्विषां
विद्युद्दाम जगाम तावकमसिं गर्जिर्भवद्दुन्दुभिम् ।

वृष्टिस्त्वत्परिपन्थिपार्थिववधूनेत्रेषु चक्रे स्थितिं
चापं ते वसुधाधिनाथ बलभित्कोदण्डकान्तिः श्रिता ॥ २२ ॥

कस्यापि ।

1240

सिन्दूरं सीमन्तास्मितं मुखाद्वैरिराजवनितानाम् ।
यस्य प्रतापयशसी हरतः स्म सदृग्गुणासहने ॥ २३ ॥

श्रीधनदेवानाम् ।

1241

अभिमतफलदाता त्वं च कल्पद्रुमश्च
प्रकटमिह विशेषं कंचनोदाहरामः ।
कथमिव मधुरोक्तिप्रेमसंमानमिश्रं
तुलयति सुरशाखी देव दानं त्वदीयम् ॥ २४ ॥

कस्यापि ।

1242

कल्पद्रुमो न जानाति न ददाति बृहस्पतिः ।
अयं तु जगतीजानिर्जानाति च ददाति च ॥ २५ ॥

कस्यापि ।

1243

नालिङ्गन्ति कुचद्वयं भवदिभप्रोत्तुङ्गकुम्भद्वय-
त्रासाद्वेणिलतासु नैव दधति प्रीतिं तवासिभ्रमात् ।
भूभङ्गान्भवदीयदुर्धरधनुर्भ्रान्त्या भजन्ते न ते
वैरिक्षोणिभुजो निजाम्बुजदृशां भूमण्डलाखण्डल ॥ २६ ॥

1244

भग्नासु रिपुसेनासु नेतरत्त्वं महामहाः ।
खड्गान्तर्निजमेवैकमद्राक्षीः संमुखं मुखम् ॥ २७ ॥

1245

देव त्वद्विजयप्रयाणविलसत्सद्वाजिराजित्रज-
क्षुण्णक्ष्मातललीनपांसुपटलप्राप्तानिमेषेक्षणाः ।
सुत्रामा बहु मन्यते फणिपतिं पातालमूलस्थितं
सोप्युद्दामकरीन्द्रदुर्धरभरक्रान्तः सहस्रेक्षणम् ॥ २८ ॥

1246

अत्युक्तौ यदि न प्रकुप्यसि मृषावादे न चेन्मन्यसे
तद्भूमोद्भुतकीर्तनेन रसना केषां न कण्डूयते ।
देव त्वत्तरुणप्रतापतपनज्वालावलीशोषिताः
सर्वे वारिधयस्तवारिवनितानेत्राम्बुभिः पूरिताः ॥ २१ ॥

केषामप्येते ।

---

## अथ विशिष्टराजवर्णनम् ॥ ७३ ॥

1247

गायन्तु किंनरगणाः सह किंनरीभिः
श्रीरामचन्द्र शिखरेषु हिमाचलस्य ।
शङ्खेन्दुकुन्ददलबालमृणालनाल-
नीहारहारहरहाससितं यशस्ते ॥ १ ॥

श्रीवाल्मीकिकवेः ।

1248

कूर्मः पादोत्र यष्टिर्भुजगपतिरसौ भाजनं भूतधात्री
शैलापूरःसमुद्राः कनकगिरिरयं वृत्तवार्तिप्ररोहः ।
अर्चिश्चण्डांशुरोचिर्गगनमलिनिमा कज्जलं दह्यमाना
शत्रुश्रेणीपतंगा जयति रघुपते त्वत्प्रतापप्रदीपः ॥ २ ॥

हनूमतः ।

1249

तत्कृतं यन्न केनापि तद्दत्तं यन्न केनचित् ।
तत्साधितमसाध्यं यद्विक्रमार्केण भूभुजा ॥ ३ ॥

1250

हस्ती वन्यः स्फटिकघटिते भित्तिभागे स्वबिम्बं
दृष्ट्वा दृष्ट्वा प्रतिगज इति त्वद्रिषां मन्दिरेषु ।
दन्ताघाताद्गलितदशनस्तं पुनर्वीक्ष्य सद्यो
मन्दं मन्दं स्पृशति करिणीशङ्कया विक्रमार्क ॥ ४ ॥

कयोरप्येतौ ।

1251

हृष्यत्कृष्टासिपिष्टोत्कटकरटिघटाकुम्भकूटावटान्त-
र्निश्चूतासृक्तटिन्यास्तटनिकटनटत्कौणपाट्टाट्टहासा ।
श्रीभोज त्वद्रणक्ष्मा क्षतभटविकटोरःस्थलत्रोटकुप्य-
द्भूधौघत्रोटिकोटिप्रकटचटचटाशब्दरौद्राभवद्भाक् ॥ ५ ॥

1252

भो भोः श्रीभोजदेवं श्रयत विनयतः शत्रवः क्षत्रवर्गाः
प्राणत्राणाय नो वा न भवति भवतां क्वाप्यरण्यं शरण्यम् ।
मत्वा मातङ्गकुम्भद्वितयमिति पुरा क्रूरवृत्तिर्भिनत्ति
क्रुद्धः शुद्धान्तकान्ताकुचकलशयुगं रंहसा सिंहशावः ॥६॥

1253

श्रीभोज साम्यं तव कल्पवृक्षः
सदा वदान्योपि कथं प्रयातु ।
यतो भवद्दानसुपुष्टविप्र-
हव्येन कुक्षिंभरिरस्य भर्ता ॥ ७ ॥

एते देवेश्वरपाण्डितस्य ।

1254

मन्दश्चन्द्रकिरीटपूजनरसे तृष्णा न कृष्णार्चने
स्तम्भः शंभुनितम्बिनीप्रणतिषु व्यग्रो न धातुर्गृहे ।
अस्माकं परमर्दनोस्ति वदने न्यस्तेन संरक्षितः
पृथ्वीराजनरेश्वरादिति तृणं तत्पत्तने पूज्यते ॥ ८ ॥

विनायकपण्डितस्य ।

1255

आ विन्ध्यादा हिमाद्रेर्विरचितविजयस्तीर्थयात्राप्रसङ्गा-
दङ्गीवेषु प्रहर्ता नृपतिषु विनमत्कंधरेषु प्रसन्नः ।
आर्यावर्तं यथार्थं पुनरपि कृतवान्म्लेच्छविच्छेदनाभि-
र्देवः शाकंभरीन्द्रो जगति विजयते वीसलक्षोणिपालः ॥९॥

1256

ब्रूते संप्रति चाहुवाणतिलकः शाकंभरीभूपतिः
श्रीमान्विग्रहराज एष विजयी संतानजानात्मनः ।

अस्माभिः करदं व्यधायि हिमवद्विन्ध्यान्तरालं भुवः
शेषस्वीकरणाय मास्तु भवतामुद्योगशून्यं मनः ॥ १० ॥

एतौ नृगनृपतिपाषाणयज्ञयूपप्रशस्तेः ।

1257

मा चक्र चक्रिविरहज्वरकातरो भूः
संकोचमम्बुज न यांहि न यामिनीयम् ।
हम्मीरभूपहयटापविदीर्णभूमि-
रेणूत्करैरयमकारि दिवान्धकारः ॥ ११ ॥

कस्यापि ।

1258

राजन्नाजमृगाङ्क शंकरकवे किं पत्रिकायामिदं
श्लोकः कस्य तवैष देव शृणुमः संपठ्यतां पठ्यते ।
एतासामरविन्दसुन्दरदृशां द्राक्चामरान्दोलना-
दुद्वेल्लद्भुजवल्लिकङ्कणरणत्कारः क्षणं वार्यताम् ॥ १२ ॥

1259

अर्धं दानववैरिणा गिरिजयाप्यर्धं हरस्याहृतं
देवेत्थं जगतीतले स्मरहराभावे समुन्मीलति ।
गङ्गा सागरमम्बरं शशिकला शेषश्च पृथ्वीतलं
सर्वज्ञत्वमधीश्वरत्वमगमत्त्वां मां च भिक्षा श्रिता ॥ १३ ॥

एतौ शंकरकवेः ।

1260

पृथ्वी श्रीमदनङ्गभीम महती तद्वेष्टनं वारिधिः
पीतोसौ कलशोद्भवेन मुनिना स व्योम्नि खद्योतवत् ।
तद्विष्णोर्दनुजाधिनाथजयिनः पूर्णं पदं नाभव-
द्देवश्चेतसि वर्तते तव सदा त्वत्तो महान्नापरः ॥ १४ ॥

सार्वभौमस्य ।

1261

चक्रः पप्रच्छ पान्थं कथय मम सखे नास्ति स क्वापि देशो
वस्तुं नो यत्र रात्रिर्भवति भुवि खगायेति स प्रत्युवाच ।

नीते मेरौ समाप्तिं कनकवितरणैः श्रीजगद्देवनाम्ना
सूर्येनन्तर्हितेस्मिन्कतिपयदिवसैर्वासराद्वैतसृष्टिः ॥ १५ ॥

कस्यापि ।

1262

मुखे हारावाप्तिर्नयनयुगले कङ्कणभरो
नितम्बे पत्त्राली सतिलकमभूत्पाणियुगलम् ।
अरण्ये श्रीकर्ण त्वदरियुवतीनां विधिवशा-
दपूर्वोयं भूषाविधिरहह जातः किमधुना ॥ १६ ॥

कस्यापि ।

1263

कीर्तिः कैतववीररुद्र भवतः स्वर्वाहिनीगाहिनी
दिक्पालानखिलान्परीत्य दधती पाण्योः प्रतापानलम् ।
सप्ताम्भोनिधिमण्डलान्यधिगता त्वय्येकपत्नीव्रत-
ख्यात्यै विष्णुपदं स्पृशत्यनुदिनं शेषस्य शीर्षण्यपि ॥१७॥

कस्यापि ।

1264

विन्ध्याद्रिः करिसाधने निरुपमो रत्नाकरः कोशभृ-
त्सौगन्धी मलयाचलः परिचराः सर्वेपि विद्याधराः ।
विश्वाशापरिपूरणं वितरणं देशोप्यहो दक्षिणः
पाण्ड्याखण्डल वीरपाण्ड्य भवतः किं किं न लोकोत्तरम् ॥१८॥

सुदर्शनकवेः ।

1265

तवाङ्गणे सुन्दर वीरपाण्ड्य
मतङ्गजाः शृङ्खलिनो विभान्ति ।
आवासदानादरिभूपतीना-
माशान्तशैला इव सापराधाः ॥ १९ ॥

कस्यापि ।

1266

मुञ्चति मुञ्चति कोशं त्यजति त्यजति क्षमामाशु ।
भर्जुनदेवकृपाणे भजति च भजति प्रकम्पमरिवर्गः ॥ २० ॥

## अथारिपलायनम् ॥ ७४ ॥

1267

अधाक्षीन्नो लङ्कामयमयमुदन्वन्तमतर-
द्विशल्यां सौमित्रेरयमुपनिनायौषधिवराम् ।
इति स्मारं स्मारं त्वदरिनगरीभित्तिलिखितं
हनूमन्तं दन्तैर्दशति कुपितो राक्षसगणः ॥ १ ॥

कस्यापि ।

1268

राजन्नाजसुता न पाठयति मां देव्योपि तूष्णीं स्थिताः
कुब्जे भोजय मां कुमारसचिवैर्नाद्यापि किं भुज्यते ।
इत्थं राजशुकस्तवारिभवने मुक्तोध्वगैः पञ्जरा-
च्चिरंस्थानवलोक्य शून्यवलभामेकैकमाभाषते ॥ २ ॥

कस्यापि ।

1269

कुरबक कराघातक्रीडासुखेन वियुज्यसे
बकुलविटपिन्स्मर्तव्यं ते रसासवसेचनम् ।
चरणघटनाबन्ध्यो यास्यस्यशोक सशोकता-
मिति जनपुरत्यागे यस्य द्विषां जगदुः स्त्रियः ॥ ३ ॥

रत्नाकरस्य ।

1270

क्रामन्त्यः क्षतकोमलाङ्गुलिगलद्रक्तैः सदर्भाः स्थलीः
पादैः पातितयावकैरिव गलद्वाष्पाम्बुधौताननाः ।
भीता भर्तृकरावलम्बितकरास्त्वच्छत्रुनार्योधुना
दावाग्निं परितो भ्रमन्ति पुनरप्युद्यद्विवाहा इव ॥ ४ ॥

कस्यापि ।

1271

क्षणं कान्तारागप्रसरविलसन्मानसरतिः
क्षणं शालोत्सङ्गे द्विजकुलरवाकृष्टहृदयः ।
क्षणं पन्थानश्रुतिपुलकितो यज्ञयभरा-
द्वसन्पाप्तोरण्ये रिपुरवनिपालस्थितिमिव ॥ ५ ॥

वैद्यभानुपण्डितस्य ।

1272

तन्वीमुज्झितभूषणां कलगिरं रोमोद्गमं बिभ्रतीं
वेपन्तीं व्रणिताधरां विवसनां सीत्कारमातन्वतीम् ।
दोर्भ्यां चण्डतुषारपातसभयामालिङ्ग्य कण्ठे भृशं
स्वां मूर्तिं दयितामिवातिरसिकां त्वद्द्विषः शेरते ॥ ६ ॥

कस्यापि ।

1273

यातीतः पान्थ पन्था व्रजति ननु कथं स्थावरं वर्त्म मुग्धे
मार्गं पृच्छामि पृच्छ स्थितमिदमिह ते विस्मितं वीक्ष्य नेत्रे ।
अध्वानं ब्रूह्यपेतध्वनि भवति वचश्चित्रमुद्भाष्पनेत्रा
हस्यन्ते दावमूढाः पथि पथिकविटैस्त्वद्द्विषां नाथ नार्यः ॥७॥

कस्यापि ।

1274

भूसंपर्करजोनिपातमलिनाः स्वस्माद्गृहात्प्रच्युताः
सामान्यैरपि जन्तुभिः करतले निःशङ्कमालिङ्गिताः ।
संलग्नाः क्वचिदेकतामुपगताः क्वापि प्रबुद्धाः क्वचि-
त्सुप्ताः क्वापि च सारिवत्यतिगृहं भ्रान्तास्तवारिस्त्रियः ॥८॥

1275

सालकाननयुक्तापि सालकाननवर्जिता ।
हारावरुद्धकण्ठापि विहारारिवधूस्तव ॥ ९ ॥

1276

आत्ते सीमन्तरत्ने मरकतनिचिते हेमताटङ्कपत्रे
लुप्तायां मेखलायां कनकमणितुलाकोटियुग्मे गृहीते ॥
शोणं बिम्बोष्ठकान्त्या त्वदरिमृगदृशामित्वरीणामरण्ये
राजन्गुञ्जाफलानां स्रज इति शबरा नैव हारं हरन्ति ॥ १० ॥

केषामप्येते ।

1277

कर्षद्भिः सिचयाञ्चलान्यतिरसात्कुर्वद्भिरालिङ्गनं
गृह्णानैः कचमालिखद्भिरधरं विभ्रामयद्भिः करौ ।

प्रत्यक्षेपि भवद्विरोधिनृपतेरन्तःपुराणामहो
धिक्कष्टं विटपैर्विटैरिव वने किं नाम नो चेष्टितम् ॥ ११ ॥

श्रीधनदेवानाम् ।

1278

त्वद्वैरिणो वीर पलायितस्य
प्रकाशयच्चक्रमरण्यमार्गम् ।
कृशानुरासीदभिनन्दनीय-
स्तुङ्गेषु लग्नो निजमन्दिरेषु ॥ १२ ॥

1279

राजन्द्विषस्ते भयविद्रुतस्य
भालत्वचं कण्टकिनो वनान्ताः ।
अद्यापि किं वानुभविष्यतीति
व्यपाटयन्द्रष्टुमिवाक्षराणि ॥ १३ ॥

1280

स्नाताः प्रावृषि मेघवान्तसलिलैः संरूढदूर्वाङ्कुर-
व्याजेनात्तकुशाः प्रणालसलिलैर्दत्त्वा निवापाञ्जलीन् ।
प्रासादास्तव विद्विषां परिपतत्कुड्यस्थपिण्डच्छला-
त्कुर्वन्ति प्रतिवासरं निजपतिप्रेताय पिण्डक्रियाम् ॥ १४ ॥

केषामप्येते ।

---

## अथ राजनीतिः ॥ ७९ ॥

1281

राजास्य जगतो हेतुर्वृद्धेर्वृद्धाभिसंमतः ।
नयनानन्दजननः शशाङ्क इव वारिधेः ॥ १ ॥

1282

धार्मिकं पालनपरं सम्यक्परपुरंजयम् ।
राजानमभिमन्यन्ते प्रजापतिमिव प्रजाः ॥ २ ॥

1283

पर्जन्य इव भूतानामाधारः पृथिवीपतिः ।
विकलेपि हि पर्जन्ये जीव्यते न तु भूपतौ ॥ ३ ॥

1284

प्रजां संरक्षति नृपः सा वर्धयति पार्थिवम् ।
वर्धनाद्रक्षणं श्रेयस्तन्नाशेन्यत्सदप्यसत् ॥ ४ ॥

1285

आत्मानं प्रथमं राजा विनयेनोपपादयेत् ।
ततोमात्यांस्ततो भृत्यांस्ततः पुत्रांस्ततः प्रजाः ॥५॥

1286

राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापाः समे समाः ।
लोकास्तमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजाः ॥ ६ ॥

1287

नृपाणां च नराणां च केवलं तुल्यमूर्तिता ।
आधिक्यं तु क्षमा धैर्यमाज्ञा दानं पराक्रमः ॥ ७ ॥

1288

सदानुरक्तप्रकृतिः प्रजापालनतत्परः ।
विनीतात्मा हि नृपतिर्भूयसीं श्रियमश्नुते ॥ ८ ॥

1289

प्रजा न रञ्जयेद्यस्तु राजा रक्षादिभिर्गुणैः ।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम् ॥९ ॥

1290

अजामिव प्रजां हन्याद्यो मोहात्पृथिवीपतिः ।
तस्यैका जायते तृप्तिर्द्वितीया न कथंचन ॥ १० ॥

1291

प्रजापीडनसंतापात्समुद्भूतो हुताशनः ।
राज्ञः श्रियं कुलं प्राणान्नादग्ध्वा विनिवर्तते ॥ ११ ॥

1292

यथा बीजाङ्कुरः सूक्ष्मः प्रयत्नेनाभिवर्धितः।
फलप्रदो भवेत्काले तद्वल्लोकः सुरक्षितः ॥१२॥

1293

हिरण्यधान्यरत्नानि गजेन्द्राश्वापि वाजिनः।
तथान्यदपि यत्किंचित्प्रजाभ्यः स्यान्महीपतेः ॥ १३ ॥

1294

उत्खातान्प्रतिरोपयन्कुसुमितांश्चिन्वँल्लघून्वर्धय-
न्नत्युच्चान्नमयन्पृथूंश्च लघयन्विश्लेषयन्संहतान् ।
कुर्वञ्जान्कण्टकिनो बहिर्निरसयन्म्लानान्पुनः सेचय-
न्मालाकार इव प्रयोगनिपुणो राजा चिरं नन्दति ॥१४॥

1295

अकृत्वा निजदेशस्य रक्षां यो विजिगीषते ।
स नृपः परिधानेन वृतमौलिः पुमानिव ॥ १५ ॥

1296

विजिगीषुररिर्मित्रं पार्ष्णिग्राहोथ मध्यमः ।
उदासीनोन्तरान्तर्धिरित्येषा नृपतेः स्थितिः ॥ १६ ॥

1297

निर्विषोपि यथा सर्पः फटाटोपैर्भयंकरः ।
तथाडम्बरवान्राजा न परैः परिभूयते ॥ १७ ॥

1298

पुष्पैरपि न योद्धव्यं किं पुनर्निशितैः शरैः।
रणे विजयसंदेहः प्रधानपुरुषक्षयः ॥ १८ ॥

1299

भूमिर्मित्रं हिरण्यं वा विग्रहस्य फलत्रयम् ।
नास्त्येकमपि यद्येषां न तत्कुर्यात्कथंचन ॥ १९ ॥

1300

सामैव हि प्रयोक्तव्यमादौ कार्यं विजानता ।
सामसिद्धानि कार्याणि विक्रियां यान्ति न क्वचित् ॥ २० ॥

1301

न विश्वसेदमित्रस्य मित्रस्यापि न विश्वसेत् ।
विश्वासाद्भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति ॥ २१ ॥

1302

शपथैः संधितस्यापि न विश्वासं व्रजेद्रिपोः ।
राज्यलोभोद्यतो वृत्रः शक्रेण शपथैर्हतः ॥ २२ ॥

1303

उपकारगृहीतेन शत्रुणा शत्रुमुद्धरेत् ।
पादलग्नं करस्थेन कण्टकेनेव कण्टकम् ॥ २३ ॥

1304

नोपेक्षितव्यो विद्वद्भिः शत्रुरल्पोप्यवज्ञया ।
वह्निरल्पोपि संवृद्धः कुरुते भस्मसाद्वनम् ॥ २४ ॥

1305

कौर्मं संकोचमास्थाय प्रहारानपि मर्षयेत् ।
काले काले च मतिमानुत्तिष्ठेत्कृष्णसर्पवत् ॥ २५ ॥

1306

तावद्भयस्य भेतव्यं यावद्भयमनागतम् ।
आगतं तु भयं दृष्ट्वा प्रहर्तव्यमभीतवत् ॥ २६ ॥

1307

परोपि हितवान्बन्धुर्बन्धुरप्यहितः परः ।
अहितो देहजो व्याधिर्हितमारण्यमौषधम् ॥ २७ ॥

1308

यच्छक्यं ग्रसितुं ग्रासं ग्रस्तं परिणमेच्च यत् ।
हितं च परिणामे स्यात्तदाद्यं भूतिमिच्छता ॥ २८ ॥

1309

मा तात साहसं कार्षीर्विभवैर्गर्वमागतः ।
स्वगात्राण्यपि भाराय भवन्ति हि विपर्यये ॥ २९ ॥

1310

मा त्वं तात बले स्थित्वा बाधिष्ठा दुर्बलं जनम् ।
नहि दुर्बलदग्धानां कुले किंचित्प्ररोहति ॥ ३० ॥

1311

यानि मिथ्याभिभूतानां पतन्त्यश्रूणि रोदता ।
तानि संतापकान्घ्नन्ति सपुत्रपशुबान्धवान् ॥ ३१ ॥

1312

ब्राह्मणेषु च ये शूराः स्त्रीषु ज्ञातिकुलेषु च ।
वृन्तादिव फलं पक्वं धृतराष्ट्र पतन्ति ते ॥ ३२ ॥

1313

देवब्रह्मस्वपुष्टानि सैन्यानि पृथिवीपतेः ।
युद्धकाले विशीर्यन्ते सैकताः सेतवो यथा ॥ ३३ ॥

1314

प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाग्निर्दैवतं महत् ।
एवं विद्वानविद्वांश्च ब्राह्मणो दैवतं महत् ॥ ३४ ॥

1315

अदैवं दैवतं कुर्युर्दैवतं चाप्यदैवतम् ।
लोकपालान्सृजेयुश्च लोकानन्यांश्च कोपिताः ॥ ३५ ॥

1316

युगे युगे च ये धर्मास्तेषु धर्मेषु ये द्विजाः ।
तेषां निन्दा न कर्तव्या युगरूपा हि वै द्विजाः ॥ ३६ ॥

1317

आक्रम्य यद्द्विजैर्भुक्तं परिक्षीणैश्च बान्धवैः ।
गोभिश्च नृपशार्दूल राजसूयाद्विशिष्यते ॥ ३७ ॥

1318

गतश्रीर्गणकान्द्वेष्टि गतायुश्च चिकित्सकान् ।
गतश्रीश्च गतायुश्च ब्राह्मणान्द्वेष्टि भारत ॥ ३८ ॥

1319

बुद्धौ कलुषभूतायां विनाशे समुपस्थिते ।
अनयो नयसंकाशो हृदयान्नापसर्पति ॥ ३९ ॥

1320

म कालः खड्गमुद्यम्य शिरः कृन्तति कस्यचित् ।
कालस्य बलमेतावद्विपरीतार्थदर्शनम् ॥ ४० ॥

1321

जानन्नपि नरो दैवात्प्रकरोति विगर्हितम् ।
न कर्म कस्यचिल्लोके गर्हितं रोचते कृतम् ॥ ४१ ॥

1322

मा तात संपदामग्रमारूढोस्मीति विश्वसीः ।
दूरारूढपरिभ्रंशविनिपातो हि दारुणः ॥ ४२ ॥

1323

कितवा यं प्रशंसन्ति यं प्रशंसन्ति चारणाः ।
यं प्रशंसन्ति बन्धक्यः स पार्थ पुरुषाधमः ॥ ४३ ॥

1324

राजानो यं प्रशंसन्ति यं प्रशंसन्ति च द्विजाः ।
साधवो यं प्रशंसन्ति स पार्थ पुरुषोत्तमः ॥ ४४ ॥

1325

प्रज्ञागुप्तशरीरस्य किं करिष्यन्ति संहताः ।
गृहीतच्छत्रहस्तस्य वारिधारा इवारयः ॥ ४५ ॥

1326

बहूनामप्यसाराणां समवायो हि दारुणः ।
तृणैर्विधीयते रज्जुर्बध्यन्ते दन्तिनश्च तैः ॥ ४६ ॥

1327

ताडितोपि दुरुक्तोपि दण्डितोपि महीभुजा ।
न चिन्तयति यः पापं स भृत्योर्हो महीभुजाम् ॥ ४७ ॥

1328

योनाहूतः समभ्येति द्वारे तिष्ठति सर्वदा ।
पृष्टः सत्यं मितं ब्रूते स भृत्योर्हो महीभुजाम् ॥ ४८ ॥

1329

सालसं मुखरं क्रूरं स्तब्धं व्यसनिनं शठम् ।
असंतुष्टमभक्तं च त्यजेद्भृत्यं नराधिपः ॥ ४९ ॥

1330

रिक्ताः कर्मणि पटवस्तृप्तास्त्वलसा भवन्ति ये भृत्याः ।
तेषां जलौकसामिव पूर्णानां रिक्तता कार्या ॥ ५० ॥

1331

क्रूरं व्यसनिनं लुब्धमप्रगल्भमथाकुलम् ।
मूर्खमन्यायकर्तारं नाधिपत्ये नियोजयेत् ॥ ५१ ॥

1332

नियोगिभिर्विना राज्यं नास्ति भूपे हि केवलम् ।
तस्मादमी विधातव्या रक्षितव्याः प्रयत्नतः ॥ ५२ ॥

1333

वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो जपहोमपरायणः ।
आशीर्वादपरो नित्यमेष राज्ञः पुरोहितः ॥ ५३ ॥

1334

क्रमागतो हितमतिः सर्वभावपरीक्षकः ।
धीरो यथोक्तवादी च दूत एवंविधो मतः ॥ ५४ ॥

1335

प्रवीणो वाक्पटुर्धीमान्स्वामिभक्तश्च नित्यशः ।
अलुब्धः सत्यवादी च भाण्डागारिक इष्यते ॥ ५५ ॥

1336

मेधावी वाक्पटुर्धीरो लघुहस्तो जितेन्द्रियः ।
परशास्त्रपरिज्ञाता एष लेखक उच्यते ॥ ५६ ॥

1337

इङ्गिताकारतत्त्वज्ञो बलवान्प्रियदर्शनः ।
समयज्ञः स्वामिभक्तः प्रतीहारः स उच्यते ॥ ५७

1338

शूरोर्थशास्त्रनिपुणः कृतशस्त्रकर्मा
संग्रामकेलिचतुरश्चतुरङ्गयुक्तः ।
भर्तुर्निदेशवशगोभिमतः स्वतन्त्रे
सेनापतिर्नरपतेर्विजयागमाय ॥ ५८ ॥

1339

काणाः कुब्जाश्च षण्ढाश्च तथा वृद्धाश्च पङ्गवः ।
एते चान्तःपुरे नित्यं नियोक्तव्याः क्षमाभृता ॥ ५९ ॥

1340

पक्वान्नमिव राजेन्द्र सर्वसाधारणाः स्त्रियः ।
परोक्षे च समक्षे च न तासां विश्वसेत्सुधीः ॥ ६० ॥

1341

सूक्ष्मेभ्योपि प्रसङ्गेभ्यः स्त्रियो रक्ष्या हि सर्वदा ।
द्वयोर्हि कुलयोः शोकमावहेयुररक्षिताः ॥ ६१ ॥

1342

महिष्या हृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया ।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ॥ ६२ ॥

1343

धर्मशास्त्रार्थकुशलाः कुलीनाः सत्यवादिनः ।
समाः शत्रौ च मित्रे च नृपतेः स्युः सभासदः ॥ ६३ ॥

1344

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा
वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम् ।

नासौ धर्मो यत्र न चास्ति सत्यं
न तत्सत्यं यच्छलेनानुविद्धम् ॥ ६४ ॥

1345

सभा वा न प्रवेष्टव्या वक्तव्यं वा समञ्जसम् ।
अब्रुवन्विब्रुवन्वापि नरो भवति किल्बिषी ॥ ६५ ॥

1346

तस्मात्सभ्यः सभां गत्वा रागद्वेषविवर्जितः ।
वचस्तथाविधं ब्रूयाद्यथा न नरकं व्रजेत् ॥ ६६ ॥

1347

माता पिता गुरुर्भ्राता भार्या पुत्रः पुरोहितः ।
नादण्ड्यो नाम राज्ञोस्ति स्वधर्मे यो न तिष्ठति ॥ ६७ ॥

1348

अवध्यो ब्राह्मणो बालः स्त्री तपस्वी च रोगवान् ।
क्रियते व्यङ्गता ह्येषु ततो दोषैर्न लिप्यते ॥ ६८ ॥

1349

न तु हन्यान्महीपालो दूतं कस्यचिदापदि ।
दूतहन्ता तु नरकमाविशेत्सचिवैः सह ॥ ६९ ॥

1350

विशोधय महीपाल मन्त्रिशालामशेषतः ।
अयुक्तो नार्हति स्थातुमस्यां मन्त्ररहस्यवित् ॥ ७० ॥

1351

मन्त्रतन्त्रार्पितप्रीतिर्देशकालोचितस्थितिः ।
यश्च राज्ञि भवेद्रक्तः सोमात्यः पृथिवीपतेः ॥ ७१ ॥

1352

अन्तःसारैरकुटिलैः सुस्निग्धैः सुपरीक्षितैः ।
मन्त्रिभिर्धार्यते राज्यं सुस्तम्भैरिव मन्दिरम् ॥ ७२ ॥

1353

नरपतिहितकर्ता द्वेष्यतां याति लोके
जनपदहितकर्ता त्यज्यते पार्थिवेन्द्रैः ।

इति महति विरोधे वर्तमाने समाने
नृपतिजनपदानां दुर्लभः कार्यकर्ता ॥ ७३ ॥

1354

षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रश्चतुष्कर्णः स्थिरो भवेत् ।
द्विकर्णस्य तु मन्त्रस्य ब्रह्माप्यन्तं न गच्छति ॥ ७४ ॥

1355

एकं हन्यान्न वा हन्यादिषुर्मुक्तो धनुष्मता ।
बुद्धिर्बुद्धिमतोत्सृष्टा हन्ति राष्ट्रं सराजकम् ॥ ७५ ॥

1356

न तच्छस्त्रैर्न नागेन्द्रैर्न हयैर्न च पत्तिभिः ।
कार्यं संसिद्धिमभ्येति यथा बुद्ध्या प्रसाधितम् ॥ ७६ ॥

1357

दुर्योधनः समर्थोपि दुर्मन्त्री प्रलयं गतः ।
राज्यमेकश्चकारोच्चैः सुमन्त्री चन्द्रगुप्तकः ॥ ७७ ॥

1358

अशृण्वन्नपि बोद्धव्यो मन्त्रिभिः पृथिवीपतिः ।
यथा स्वदोषनाशाय विदुरेणाम्बिकासुतः ॥ ७८ ॥

1359

पृष्टो ब्रूते न सत्यं तं परिणामे सुखावहम् ।
मन्त्री चेत्प्रियवक्ता स्यात्केवलं स रिपुः स्मृतः ॥ ७९ ॥

1360

सुलभाः पुरुषा राजन्सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥ ८० ॥

1361

दुर्गाणि राज्ञा कार्याणि सजलानि दृढानि च ।
द्रव्यमन्नं च तेष्वेव स्थापनीयं प्रयत्नतः ॥ ८१ ॥

1362

दुर्गं बहुविधं ज्ञेयं पर्वतस्य जलस्य च ।
प्राकारस्य वनस्यापि भूमेरपि भवेत्क्वचित् ॥ ८२ ॥

1363

न गजानां सहस्रेण न लक्षेण च वाजिनाम् ।
तथा सिद्ध्यन्ति कार्याणि यथा दुर्गप्रभावतः ॥ ८३ ॥

1364

विषहीनो यथा नागो मदहीनो यथा गजः ।
सर्वेषां वश्यतां याति दुर्गहीनस्तथा नृपः ॥ ८४ ॥

1365

शतमेकोपि संधत्ते प्राकारस्थो धनुर्धरः ।
तस्माद्दुर्गं प्रशंसन्ति नीतिशास्त्रविदो जनाः ॥ ८५ ॥

1366

त्रिविधाः पुरुषा राजन्नुत्तमाधममध्यमाः ।
नियोजयेद्यथावत्तांस्त्रिविधेष्वपि कर्मसु ॥ ८६ ॥

1367

तुल्यार्थं तुल्यसामर्थ्यं मर्मज्ञं व्यवसायिनम् ।
अर्धराज्यहरं भृत्यं यो न हन्यात्स हन्यते ॥ ८७ ॥

1368

निर्विशेषं यदा राजा समं भृत्येषु तिष्ठति ।
तत्रोद्यमसमर्थानामुत्साहः परिहीयते ॥ ८८ ॥

1369

प्रसादो निष्फलो यस्य क्रोधो यस्य निरर्थकः ।
न तं भर्तारमिच्छन्ति वृद्धं पतिमिवाङ्गनाः ॥ ८९ ॥

1370

त्यजेत्स्वामिनमत्युग्रमत्युग्रात्कृपणं त्यजेत् ।
कृपणादविशेषज्ञं तस्माच्च कृतनाशनम् ॥ ९० ॥

1371

अविवेकिनि भूपाले नश्यन्ति गुणिनां गुणाः ।
प्रवासरसिके कान्ते यथा साध्व्याः स्तनोन्नतिः ॥ ९१ ॥

1372

किंशुके किं शुकः कुर्यात्फलितेपि बुभुक्षितः ।
अदातरि समृद्धेपि किं कुर्युरुपजीविनः ॥ ९२ ॥

1373

सेवया धनमिच्छद्भिः सेवकैः पश्य यत्कृतम् ।
स्वातन्त्र्यं यच्छरीरस्य मूढैस्तदपि हारितम् ॥ ९३ ॥

1374

वरं वनं वरं भैक्ष्यं वरं भारोपजीवनम् ।
पुंसां विवेकमुक्तानां सेवया न धनार्जनम् ॥ ९४ ॥

1375

जीवन्तोपि मृताः पञ्च व्यासेन परिकीर्तिताः ।
दरिद्रो व्याधितो मूर्खः प्रवासी नित्यसेवकः ॥ ९५ ॥

1376

न कश्चिच्चण्डकोपानामात्मीयो नाम भूभुजाम् ।
होतारमपि जुह्वन्तं दहत्येव हि पावकः ॥ ९६ ॥

1377

गृध्राकारोपि सेव्यः स्याद्धंसाकारैः सभासदैः ।
हंसाकारोपि संत्याज्यो गृध्राकारैः सभासदैः ॥ ९७ ॥

1378

चक्रं सेव्यं नृपः सेव्यो मा नृपश्चक्रवर्जितः ।
पश्य चक्रस्य माहात्म्यं मृत्पिण्डः पात्रतां गतः ॥ ९८ ॥

1379

गन्तव्यं राजकुलं द्रष्टव्या राजपूजिता लोकाः ।
यद्यपि न भवन्त्यर्थास्तथाप्यनर्था विलीयन्ते ॥ ९९ ॥

1380

अत्यासन्ना विनाशाय दूरतश्चाफलप्रदाः ।
मध्यभावेन सेव्यन्ते राजा वह्निर्गुरुस्त्रियः ॥ १०० ॥

1381

आसन्नमेव नृपतिर्भजते मनुष्यं
विद्याविहीनमकुलीनमसंगतं वा ।
प्रायेण भूमिपतयः प्रमदा लताश्च
यः पार्श्वतो भवति तं परिवेष्टयन्ति ॥ १०१ ॥

1382

यस्मिन्नेवाधिकं चक्षुरारोपयति पार्थिवः ।
कुलीनो वाकुलीनो वा स श्रियो भाजनं भवेत् ॥ १०२ ॥

1383

धवलान्यातपत्राणि वाजिनश्च मनोरमाः ।
सदा मत्ताश्च मातङ्गाः प्रसन्ने सति भूपतौ ॥ १०३ ॥

1384

राजमातरि देव्यां च कुमारे मुख्यमन्त्रिणि ।
पुरोहिते प्रतीहारे वर्तितव्यं नृपे यथा ॥ १०४ ॥

1385

द्विजा अपि न गच्छन्ति तां गतिं नैव योगिनः ।
स्वाम्यर्थे संत्यजन्प्राणान्यां गतिं याति सेवकः ॥ १०५ ॥

1386

राजा तुष्टोपि भृत्यानां मानमात्रं प्रयच्छति ।
ते तु संमानिता ह्येनं प्राणैरप्युपकुर्वते ॥ १०६ ॥

1387

सारासारपरिच्छेत्ता स्वामी भृत्यस्य दुर्लभः ।
अनुकूलः शुचिर्दक्षः प्रभोर्भृत्योपि दुर्लभः ॥ १०७ ॥

1388

अतितेजस्व्यपि राजा पानासक्तो न साधयत्यर्थान् ।
तृणमपि दग्धुं शक्तो न वाडवाग्निः पिबन्ननिशम् ॥ १०८ ॥

1389

पानमक्षास्तथा नार्यो मृगया गीतवादिते ।
एतानि युक्त्या सेवेत प्रसङ्गो ह्यत्र दोषवान् ॥ १०९ ॥

1390

नृपः कामासक्तो न गणयति कार्यं न च हितं
यथेष्टं स्वच्छन्दं चरति किल मत्तो गज इव ।
ततो मानाध्मातः पतति तु यदा शोकगहने
तदामात्ये दोषान्क्षिपति न निजं वेत्त्यविनयम् ॥११०॥

1391

गुणवदगुणवद्वा कुर्वता कार्यजातं
परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन ।
अतिरभसकृतानां कर्मणामा विपत्ते-
र्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः ॥ १११ ॥

1392

आयाच्चतुर्थभागेन व्ययकर्म प्रवर्तयेत् ।
प्रभूततैलदीपो हि चिरं भद्राणि पश्यति ॥ ११२ ॥

1393

अर्थानामर्जनं कार्यं वर्धनं रक्षणं तथा ।
भक्ष्यमाणो निरादायः सुमेरुरपि हीयते ॥११३ ॥

1394

कर्मणा मनसा वाचा चक्षुषा च चतुर्विधम् ।
प्रसादयति लोकं यस्तं लोकोनुप्रसीदति ॥ ११४ ॥

1395

संभोजनं संकथनं संप्रश्नोथ समागमः ।
ज्ञातिभिः सह कार्याणि न विरोधः कदाचन ॥ ११५ ॥

1396

संगतिः श्रेयसी राजन्विगुणेष्वपि बन्धुषु ।
तुषैरपि परिभ्रष्टा न प्ररोहन्ति तण्डुलाः ॥ ११६ ॥

1397

मृदोः परिभवो नित्यं वैरं तीक्ष्णस्य नित्यशः ।
उत्सृज्यैतद्भयं तस्मान्मध्यां वृत्तिं समाश्रयेत् ॥ ११७ ॥

1398

अबुद्धिमाश्रितानां च क्षन्तव्यमपराधिनाम् ।
नहि सर्वत्र पाण्डित्यं सुलभं पुरुषे क्वचित् ॥ ११८ ॥

1399

तेजस्विनि क्षमोपेते नातिकार्कश्यमाचरेत् ।
अतिनिर्मथनादग्निश्चन्दनादपि जायते ॥ ११९ ॥

1400

किमप्यसाध्यं महतां सिद्धिमेति लघीयसाम् ।
प्रदीपो भूमिगेहान्तर्ध्वान्तं हन्ति न भानुमान् ॥ १२० ॥

1401

अरावप्युचितं कार्यमातिथ्यं गृहमागते ।
छेत्तुः पार्श्वगतां छायां नोपसंहरते द्रुमः ॥ १२१ ॥

1402

हन्तुं मेषोपसरति मृगेन्द्रः संकुचत्यपि ।
बुद्धिमन्तः सहन्ते तन्निधाय हृदि किंचन ॥ १२२ ॥

1403

व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं
भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः ।
प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथाविधा-
नसंवृताङ्गान्निशिता इवेषवः ॥ १२३ ॥

1404

कोहं कौ देशकालौ समविषमगुणाः केरयः के सहायाः
का शक्तिः कोभ्युपायः फलमिह च कियत्कीदृशी दैवसंपत् ।

संपत्तौ को निबन्धः प्रतिहतवचनस्योत्तरं किं नु मे स्या-
दित्येवं कार्यसिद्धावविहितमनसो नावहास्या भवन्ति ॥१२४॥

1405

धर्मः प्रागेव चिन्त्यः सचिवगतिमती सर्वदालोकनीये
प्रच्छाद्यौ रागरोषौ मृदुकठिनतरौ योजनीयौ च काले ।
ज्ञेयं लोकानुवृत्तं वरचरनयनैर्मण्डलं वीक्षणीय-
मात्मा यत्नेन रक्ष्यो रणशिरसि पुनः सोपि नापेक्षणीयः॥ १२५ ॥

1406

यशस्करे कर्मणि मित्रसंग्रहे
प्रियासु नारीष्वधनेषु बन्धुषु ।
क्रतौ विवाहे व्यसने रिपुक्षये
धनव्ययस्तेषु न गण्यते बुधैः ॥ १२६ ॥

1407

स्वाम्यमात्यश्च राष्ट्रं च कोशो दुर्गं बलं सुहृत् ।
एतावदुच्यते राज्यं सत्त्वबुद्धिव्यपाश्रयम् ॥ १२७ ॥

1408

संधिविग्रहयानानि संस्थितिः संभयस्तथा ।
द्वैधीभावश्च भूपानां षड्गुणाः परिकीर्तिताः ॥ १२८ ॥

1409

उत्साहस्य प्रभोर्मन्त्रस्यैवं शक्तित्रयं जगुः ।
आत्मनः सुहृदश्चैव तन्मित्रस्योदयास्त्रयः ॥ १२९ ॥

1410

सामदाने भेददण्डावित्युपायचतुष्टयम् ।
हस्त्यश्वरथपादातं सेनाङ्गं स्याच्चतुष्टयम् ॥ १३० ॥

1411

दुष्टाविनीतशत्रूणां भयकृद्बन्धुसंनिभम् ।
शस्त्रधारणमोजस्यं रक्षोविद्युद्व्यपहम् ॥ १३१ ॥

1412

वर्षानिलरजोघर्महिमादीनां निवारणम् ।
राज्यलक्ष्म्या गृहं धन्यं चक्षुष्यं छत्रधारणम् ॥ १३२ ॥

1413

चामरं श्रीकरं दिव्यं राजशोभाकरं परम् ।
सिंहासनं सुखैश्वर्यकरं लोकानुरञ्जनम् ॥ १३३ ॥

1414

सुमनोवररत्नानां धारणं दिव्यरूपकृत् ।
पापालक्ष्मीप्रशमनं चन्दनाद्यनुलेपनम् ॥ १३४ ॥

1415

स्नानं नाम मनःप्रसादजननं दुःस्वप्नविध्वंसनं
शौचस्यायतनं मलप्रकषणं संवर्धनं तेजसः ।
रूपोद्द्योतकरं गदप्रशमनं कामस्य चाप्यायनं
नारीणां च मनोहरं श्रमहरं स्नाने दशैते गुणाः ॥१३५॥

1416

ताम्बूलं मुखरोगनाशनिपुणं संवर्धनं तेजसो
नित्यं जाठरवह्निवृद्धिजननं दुर्गन्धदोषापहम् ।
वक्त्रालंकरणं प्रहर्षजननं विद्वन्नृपाग्रे रणे
कामस्यायतनं समुद्भवकरं लक्ष्म्याः सुखस्यास्पदम् ॥१३६॥

1417

देवतातिथिविप्राणां पूजनं पापनाशनम् ।
लोकत्रयेपि शुभकृद्दानं धर्मयशस्करम् ॥ १३७ ॥

1418

माणिक्यं तरणेस्तथातिविमलं मुक्ताफलं शीतगो-
र्मोहेयस्य च विद्रुमं मरकतं सौम्यस्य रागोत्तमम् ।
देवेज्यस्य च पुष्परागमुदितं शुक्रस्य वज्रं शने-
र्नीलं निर्मलमन्ययोश्च गदिते गोमेदवैदूर्यके ॥ १३८ ॥

1419

सुतभृत्यसुहृद्भिरिस्वामिसद्गुरुदैवते ।
एकैकोत्तरतो वृद्ध्या श्रीकाराः पत्रमूर्धनि ॥ १३९ ॥
एते राजनीतिभ्यः स्मृतिभ्यो भारताद्रामायणाच्च ।

---

## अथ नीतिः ॥ ७६ ॥

1420

अनुगन्तुं सतां वर्त्म कृत्स्नं यदि न शक्यते ।
स्वल्पमप्यनुगन्तव्यं मार्गस्थो नावसीदति ॥ १ ॥

1421

प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत नरश्चरितमात्मनः ।
किं नु मे पशुभिस्तुल्यं किं नु सत्पुरुषैरिति ॥ २ ॥

1422

सद्भिरेव सहासीत सद्भिः कुर्वीत संगतिम् ।
सद्भिर्विवादं मैत्रीं च नासद्भिः किंचिदाचरेत् ॥ ३ ॥

1423

न द्विषन्ति न याचन्ते परनिन्दां न कुर्वते ।
अनाहूता न चायान्ति तेनाश्मानोपि देवताः ॥ ४ ॥

1424

पठतो नास्ति मूर्खत्वं जपतो नास्ति पातकम् ।
मौनिनः कलहो नास्ति न भयं चास्ति जाग्रतः ॥ ५ ॥

1425

गतेपि वयसि ग्राह्या विद्या सर्वात्मना बुधैः ।
यद्यपि स्यान्न फलदा सुलभा सान्यजन्मनि ॥ ६ ॥

1426

यदीच्छसि वशीकर्तुं जगदेकेन कर्मणा ।
परापवादसस्येभ्यो गां चरन्तीं निवारय ॥ ७ ॥

1427

वाङ्माधुर्यान्नान्यदस्ति प्रियत्वं
वाक्पारुष्याच्चोपकारोपि नेष्टः ।
किं तद्द्रव्यं कोकिलेनोपनीतं
को वा लोके गर्दभस्यापराधः ॥ ८ ॥

1428

यस्य चाप्रियमन्विच्छेत्तस्य कुर्यात्सदा प्रियम् ।
व्याधा मृगवधं कर्तुं गीतं गायन्ति सुस्वरम् ॥ ९ ॥

1429

प्रहरिष्यन्प्रियं ब्रूयात्प्रहृत्यापि प्रियोत्तरम् ।
अपि चास्य शिरश्छित्त्वा रुद्याच्छोचेत्तथापि च ॥ १० ॥

1430

अनागतविधातारमप्रमत्तमकोपनम् ।
स्थिरारम्भमदीनं च नरं श्रीरुपतिष्ठते ॥ ११ ॥

1431

सुमन्त्रिते सुविक्रान्ते सुकृते सुविचारिते ।
प्रारम्भे कृतबुद्धीनां सिद्धिरव्यभिचारिणी ॥ १२ ॥

1432

नालसाः प्राप्नुवन्त्यर्थान्न शठा न च मायिनः ।
न च लोकरवाद्भीता न च शश्वत्प्रतीक्षिणः ॥ १३ ॥

1433

नोदन्वानर्थितामेति स चाम्भोभिः प्रपूर्यते ।
आत्मा तु पात्रतां नेयः पात्रमायान्ति संपदः ॥ १४ ॥

1434

सर्वथा स्वहितमाचरणीयं
किं करिष्यति जनो बहुजल्पः ।
विद्यते नहि स कश्चिदुपायः
सर्वलोकपरितोषकरो यः ॥ १५ ॥

1435

काकतालीययोगेन यदनात्मवति क्षणम् ।
करोति प्रणयं लक्ष्मीस्तदस्याः स्त्रीत्वचापलम् ॥ १६ ॥

1436

योयमर्थं प्रार्थयते तदर्थं घटते च यः ।
अवश्यं तदवाप्नोति न चेच्छ्रान्तो निवर्तते ॥ १७ ॥

1437

केचिदज्ञानतो नष्टाः केचिन्नष्टाः प्रमादतः ।
केचिज्ज्ञानावलेपेन केचिन्नष्टैस्तु नाशिताः ॥ १८ ॥

1438

मित्रस्वजनबन्धूनां बुद्धेर्धैर्यस्य चात्मनः ।
आपन्निकषपाषाणे नरो जानाति सारताम् ॥ १९ ॥

1439

दुष्टैरपि निजैरेव प्रावृतं सर्वमुत्तमम् ।
वृतं जीर्णाम्बरेणापि हट्टकर्पटमर्घति ॥ २० ॥

1440

चिन्तनीया हि विपदामादावेव प्रतिक्रिया ।
न कूपखननं युक्तं प्रदीप्ते वह्निना गृहे ॥ २१ ॥

1441

वरं दारिद्र्यमन्यायप्रभवाद्विभवादिह ।
कृशताभिमता देहे पीनता न तु शोफतः ॥ २२ ॥

1442

अपरीक्ष्य न कर्तव्यं कर्तव्यं सुपरीक्षितम् ।
पश्चाद्भवति संतापो ब्राह्मण्या नकुले यथा ॥ २३ ॥

1443

दिवा निरीक्ष्य वक्तव्यं रात्रौ नैव च नैव च ।
संचरन्ति महाधूर्ता वटे वररुचिर्यथा ॥ २४ ॥

1444

स्त्री विनश्यति रूपेण ब्राह्मणो राजसेवया ।
गावो दूरप्रचारेण हिरण्यं लाभलिप्सया ॥ २५ ॥

1445

अतिदानाद्बलिर्बद्धो नष्टो मानात्सुयोधनः ।
विनष्टो रावणो लौल्यादति सर्वत्र वर्जयेत् ॥ २६ ॥

1446

धनमस्तीति वाणिज्यं किंचिदस्तीति कर्षणम् ।
सेवा न किंचिदस्तीति नाहमस्मीति साहसम् ॥ २७ ॥

1447

स्पृशन्नपि गजो हन्ति जिघ्रन्नपि भुजंगमः ।
हसन्नपि नृपो हन्ति मानयन्नपि दुर्जनः ॥ २८ ॥

1448

जानन्ति पशवो गन्धाद्वेदाज्जानन्ति वाडवाः ।
चराज्जानन्ति राजानश्चक्षुर्भ्यामितरे जनाः ॥ २९ ॥

1449

सपक्षो लभते काको वृक्षस्य विविधं फलम् ॥
पक्षहीनो मृगेन्द्रोपि भूमिसंस्थो निरीक्षते ॥ ३० ॥

1450

अलब्ध्वापि फलं राज्ञः संश्रिता यान्ति संपदाम् ।
महाद्रुमसमीपस्थं पश्य नीलं वनस्पतिम् ॥ ३१ ॥

1451

सर्वंसहा ये ऋजवः प्रतिज्ञातार्थपालकाः ।
परोपकारिणः सेव्या निर्धना अपि ते नराः ॥ ३२ ॥

1452

युक्तियुक्तं प्रगृह्णीयाद्बालादपि विचक्षणः ।
रवेरविषये वस्तु किं न दीपः प्रकाशयेत् ॥ ३३ ॥

1453

कठिनं वा मधुरं वा प्रस्तुतवचनं मनोहारि ।
वामे गर्दभनादश्चित्तप्रीत्यै प्रयाणेषु ॥ ३४ ॥

1454

वृथा वृष्टिः समुद्रेषु वृथा तृप्तस्य भोजनम् ।
वृथा दानं समर्थस्य वृथा शूरे विभूषणम् ॥ ३५ ॥

1455

अजायुद्धमृषिश्राद्धं प्रत्यूषे मेघडम्बरः ।
दंपत्योः कलहश्चैव परिणामे न किंचन ॥ ३६ ॥

1456

सप्तैतानि न पूर्यन्ते पूर्यमाणान्यपि क्वचित् ।
ब्राह्मणोग्निर्यमो राजा पयोधिरुदरं गृहम् ॥ ३७ ॥

1457

वस्त्रं गां च बहुक्षीरां जलपात्रमुपानहौ ।
औषधं बीजमाहारं संक्रीणीत यथाप्नुयात् ॥ ३८ ॥

1458

अर्थनाशं मनस्तापं गृहे दुश्चरितानि च ।
वञ्चनं चापमानं च मतिमान्न प्रकाशयेत् ॥ ३९ ॥

1459

अवृत्तिकं त्यजेद्देशं वृत्तिं सोपद्रवां त्यजेत् ।
त्यजेन्मायाविनं मित्रं धनं प्राणहरं त्यजेत् ॥ ४० ॥

1460

सौहृदेन परित्यक्तं निःस्नेहं खलवत्त्यजेत् ।
सोदरं भ्रातरमपि किमुतान्यं पृथग्जनम् ॥ ४१ ॥

1461

यन्निमित्तं भवेच्छोकस्त्रासो वा दुःखमेव वा ।
आयासो वा यतोमूलस्तदेकाङ्गमपि त्यजेत् ॥ ४२ ॥

1462

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् ।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ॥ ४३ ॥

1463

चलत्येकेन पादेन तिष्ठत्येकेन पण्डितः ।
नासमीक्ष्य परं स्थानं पूर्वमायतनं त्यजेत् ॥ ४४ ॥

1464

न गणस्याग्रतो गच्छेत्सिद्धे कार्ये समं फलम् ।
यदि कार्यविपत्तिः स्यान्मुखरस्तत्र हन्यते ॥ ४५ ॥

1465

पञ्च यत्र न विद्यन्ते न तत्र दिवसं वसेत् ।
धनिकः श्रोत्रियो राजा नदी वैद्यस्तु पञ्चमः ॥ ४६ ॥

1466

अनायके न वस्तव्यं न वसेद्बहुनायके ।
स्त्रीनायके न वस्तव्यं न वसेद्बालनायके ॥ ४७ ॥

1467

सर्वे यत्र विनेतारः सर्वे पण्डितमानिनः ।
सर्वे महत्त्वमिच्छन्ति तद्वृन्दमवसीदति ॥ ४८ ॥

1468

घटं भिन्द्यात्पटं छिन्द्यात्कुर्यात्किंचिदथाद्भुतम् ।
येन केनाप्युपायेन नाविज्ञातः पुरे वसेत् ॥ ४९ ॥

1469

विवादो धनसंबन्धो याचनं स्त्रीषु संगतिः ।
आदानमग्रस्थायित्वं मैत्रीभङ्गस्य हेतवः ॥ ५० ॥

1470

नहीदृशं संवननं त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
दया मैत्री च भूतेषु दानं च मधुरा च वाक् ॥ ५१ ॥

1471

दर्शितानि कलत्राणि गृहे भुक्तमशङ्कितम् ।
कथितानि रहस्यानि सौहृदं किमतः परम् ॥ ५२ ॥

1472

न मातरि न दारेषु न सोदर्येषु बन्धुषु ।
विश्रम्भस्तादृशः पुंसां यादृङ्मित्रे निरन्तरे ॥ ५३ ॥

1473

शोकारातिभयत्राणं प्रीतिविश्रम्भभाजनम् ।
केन रत्नमिदं सृष्टं मित्रमित्यक्षरद्वयम् ॥ ५४ ॥

1474

दुःखेन श्लिष्यते भिन्नं श्लिष्टं दुःखेन भिद्यते ।
भिन्नश्लिष्टा तु या प्रीतिः सा दुःखैकप्रदायिनी ॥ ५५ ॥

1475

ययोरेव समं वित्तं ययोरेव समं कुलम् ।
तयोर्मैत्री विवाहश्च न तु पुष्टविपुष्टयोः ॥ ५६ ॥

1476

चिबुके यस्य लोमानि न वक्षसि न गल्लयोः ।
तेन सख्यं न कुर्वीत यदि निर्मानुषं जगत् ॥ ५७ ॥

1477

दाने तपसि शौर्ये च यस्य न प्रथितं यशः ।
विद्यायामर्थलाभे वा तस्य जन्म निरर्थकम् ॥ ५८ ॥

1478

परोपकारशून्यस्य धिङ्मनुष्यस्य जीवितम् ।
जीवन्तु पशवो येषां चर्माप्युपकरिष्यति ॥ ५९ ॥

1479

तरवः किं न जीवन्ति भस्त्राः किं न श्वसन्ति च ।
न खादन्ति न मेहन्ति किं ग्रामपशवोपरे ॥ ६० ॥

1480

पन्नगाः सन्ति बहुशो भेकभक्षणतत्पराः ।
स एकः शेषनागो हि भूभारधरणक्षमः ॥ ६१ ॥

1481

यज्जीव्यते क्षणमपि प्रथितैर्मनुष्यै-
र्विज्ञानविक्रमयशोभिरभग्नमानम् ।
तन्नाम जीवितफलं प्रवदन्ति सन्तः
काकोपि जीवति चिरं च बलिं च भुङ्क्ते ॥ ६२॥

1482

किं तेन जातु जातेन मातुर्यौवनहारिणा ।
आरोहति न यः स्वस्य वंशस्याग्रे ध्वजो यथा ॥ ६३ ॥

1483

अजातमृतमूर्खेभ्यो मृताजातौ सुतौ वरम् ।
यतस्तौ स्वल्पदुःखाय यावज्जीवं जडो दहेत् ॥ ६४ ॥

1484

न पुत्रः पितरं द्वेष्टि स्वभावात्स्वस्य रेतसः ।
यः पुत्रः पितरं द्वेष्टि तं विद्यादन्यरेतसम् ॥ ६५ ॥

1485

किं कुलेन विशालेन शीलमेवात्र कारणम् ।
कृमयः किं न जायन्ते कुसुमेषु सुगन्धिषु ॥ ६६ ॥

1486

न पुत्रत्वेन पूज्यन्ते गुणैरासाद्यते पदम् ।
रवेर्व्यापारमादत्ते प्रदीपो न पुनः शनिः ॥ ६७ ॥

1487

उत्तमा आत्मना ख्याताः पितुः ख्याताश्च मध्यमाः ।
अधमा मातुलैः ख्याताः श्वशुरैश्चाधमाधमाः ॥ ६८ ॥

1488

ज्येष्ठो भ्राता पितृसमो मृते पितरि सर्वदा ।
स ह्येषां वृत्तिदाता स्यात्स ह्येतान्परिपालयेत् ॥ ६९ ॥

1489

कनिष्ठास्तं नमस्येरन्सर्वे छन्दानुवर्तिनः ।
तमेव चोपजीव्येरन्यथैव पितरं तथा ॥ ७० ॥

1490

विभागेन समानास्ते पितुर्द्रव्यस्य केवलम् ।
तयोः पूर्वतरो यस्तु गुरुः स हि निगद्यते ॥ ७१ ॥

1491

ऋणशेषश्चाग्निशेषः शत्रुशेषस्तथैव च ।
पुनः पुनः प्रवर्तन्ते तस्माच्छेषं न कारयेत् ॥ ७२ ॥

1492

कुभोज्येन दिनं नष्टं कुकलत्रेण शर्वरी ।
कुपुत्रेण कुलं नष्टं तन्नष्टं यन्न दीयते ॥ ७३ ॥

1493

चतुरः सृजता पूर्वमुपायांस्तेन वेधसा ।
न सृष्टः पञ्चमः कोपि गृह्यन्ते येन योषितः ॥ ७४ ॥

1494

स्त्रियस्तु यः कामयते संनिकर्षं च गच्छति ॥
ईषत्प्रकुरुते सेवां तं तमिच्छन्ति योषितः ॥ ७५ ॥

1495

यदैव भर्ता जानीयान्मन्त्रमूलपरां स्त्रियम् ।
उद्विजेत तदैवास्याः सर्पाद्वेश्मगतादिव ॥ ७६ ॥

1496

बर्बरश्च तपस्वी स्याच्छूरश्चाप्यकृतव्रणः ।
मद्यपा स्त्री सती राजन्निति न श्रद्दधाम्यहम् ॥ ७७ ॥

1497

जल्पन्ति सार्धमन्येन पश्यन्त्यन्यं सविभ्रमम् ।
हृदयं चिन्तयन्त्यन्यं न स्त्रीणामेकतो रतिः ॥ ७८ ॥

1498

नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः ।
नान्तकः सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचना ॥ ७९ ॥

1499

रहो नास्ति क्षणो नास्ति नास्ति प्रार्थयिता नरः ।
तेन नारद नारीणां सतीत्वमुपजायते ॥ ८० ॥

1500

सा भार्या या प्रियं ब्रूते स पुत्रो यत्र निर्वृतिः ।
तन्मित्रं यत्र विश्वासः स देशो यत्र जीव्यते ॥ ८१ ॥

1501

लक्ष्म्या परिपूर्णोहं न भयं मेस्तीति मोहनिद्रैषा ।
परिपूर्णस्यैवेन्दोर्भवति भयं सिंहिकासूनोः ॥ ८२ ॥

1502

अतिपरिचयादवज्ञा संततगमनादनादरो भवति ।
लोकः प्रयागवासी कूपस्नानं समाचरति ॥ ८३ ॥

1503

व्रजत्यधोधो यात्युच्चैर्नरः स्वैरेव चेष्टितैः ।
खनितेव हि कूपस्य प्रासादस्येव कारकः ॥ ८४ ॥

एते नीतिशास्त्रेभ्यो भारताद्याणाक्यात्पञ्चाख्यानाच्च ।

1504

ब्राह्मे मुहूर्ते पुरुषस्त्यजेन्निद्रामतन्द्रितः ।
पद्मं प्रातः प्रबुद्धं हि श्रयति श्रीर्गुणाश्रयम् ॥ ८५ ॥

1505

नोत्तरस्यां प्रतीच्यां च कुर्वीत शयने शिरः ।
शय्याविपर्ययाद्भर्भो दितेः शक्रेण दारितः ॥ ८६ ॥

1506

न कुर्यात्परदारेच्छां विश्वासं स्त्रीषु वर्जयेत् ।
हतो दशास्यः सीतार्थी हतः पत्न्या विदूरथः ॥ ८७ ॥

1507

न मद्यव्यसनैः क्षीबः कुर्याद्वेतालविप्लवम् ।
वृष्णयो हि ययुः क्षीबास्तृणप्रहरणैः क्षयम् ॥ ८८ ॥

1508

दानं सत्त्वाश्रितं दद्यान्न पश्चात्तापवान्भवेत् ।
बलिनात्मार्पितो बन्धे दानशेषस्य शुद्धये ॥ ८९ ॥

1509

ब्राह्मणान्नावमन्येत ब्रह्मशापो हि दुःसहः ।
तक्षकाग्नौ गतः कोपाद्ब्राह्मणस्य परीक्षितः ॥ ९० ॥

1510

दम्भारम्भोद्भुरं कर्म न चरेदन्तनिष्फलम् ।
ब्राह्मण्यदम्भलब्धास्त्रविद्या कर्णस्य निष्फला ॥ ९१ ॥

1511

न स्त्रीजितः प्रमूढः स्याद्गाढरागवशीकृतः ।
पुत्रशोकाद्दशरथो जीवं जायाजितोत्यजत् ॥ ९२ ॥

1512

क्षिपेद्वाक्यशरान्घोरान्न पारुष्यविषप्लुतान् ।
वाक्पारुष्यरुषा चक्रे भीमः कुरुकुलक्षयम् ॥ ९३ ॥

1513

परेषां क्लेशदं कुर्यान्न पैशुन्यं प्रभोः प्रियम् ।
पैशुन्येन गतौ राहोश्चन्द्रार्कौ भक्षणीयताम् ॥ ९४ ॥

1514

कुर्यान्नीचजनाभ्यस्तां न याच्ञां मानहारिणीम् ।
बलिप्रार्थनया प्राप लघुतां पुरुषोत्तमः ॥ ९५ ॥

1515

वक्रैः क्रूरतरैर्लुब्धैर्न कुर्यात्प्रीतिसंगतिम् ।
वसिष्ठस्याहरद्धेनुं विश्वामित्रो निमन्त्रितः ॥ ९६ ॥

1516

तीव्रे तपसि लीनानामिन्द्रियाणां न विश्वसेत् ।
विश्वामित्रोपि सोत्कण्ठः कण्ठे जग्राह मेनकाम् ॥ ९७ ॥

1517

भक्तं रक्तं सदासक्तं निर्दोषं न परित्यजेत् ।
रामस्त्यक्त्वा सतीं सीतां शोकशल्याकुलोभवत् ॥ ९८ ॥

1518

न क्रोधयातुधानस्य भीमामिच्छेद्विधेयताम् ।
निपीतभ्रातृरुधिरः प्राप निन्दां वृकोदरः ॥ ९९ ॥

1519

वर्जयेदिन्द्रियजये निर्जने जननीमपि ।
पुत्रीकृतोपि प्रद्युम्नः कामितः शंबरस्त्रिया ॥ १०० ॥

1520

प्रभुप्रसादे विश्वासं न कुर्यात्स्वप्रसंनिभे ।
नन्देन मन्त्री निक्षिप्तः शकटालोपि बन्धने ॥ १०१ ॥

1521

न लोकायतवादेन नास्तिकः स्याददैवतः ।
हरिर्हिरण्यकशिपुं जघान स्तम्भनिर्गतः ॥ १०२ ॥

1522

अत्युच्चतपदारूढः पूज्यान्नैवापमानयेत् ।
नहुषः शक्रतां प्राप्य च्युतोगस्त्यावमाननात् ॥ १०३ ॥

1523

हितोपदेशं शृणुयात्कुर्वीत च यथोदितम् ।
विदुरोक्तमकृत्वाभूत्कौरवः शोकशल्यभाक् ॥ १०४ ॥

1524

न पुत्रायत्तमैश्वर्यं कुर्यादार्यः कथंचन ।
पुत्रार्पितप्रभुत्वोभूद्धृतराष्ट्रस्तृणोपमः ॥ १०५ ॥

1525

श्रुतिस्मृत्युक्तमाचारं न त्यजेत्साधुसेवितम् ।
दैत्यानां श्रीवियोगोभूत्सत्यधर्मक्रियामुचाम् ॥ १०६ ॥

1526

न कुर्यादभिचारोमवश्यादिकुहकक्रियाम् ।
लक्ष्मणेनेन्द्रजित्कृत्याभिचारसमये हतः ॥ १०७ ॥

1527

व्याकुलोपि विपत्पातैः स्मरेद्विष्णुं सदा हृदि ।
शरतल्पगतो भीष्मः सस्मार गरुडध्वजम् ॥ १०८ ॥
एते क्षेमेन्द्रस्य ।

1528

संदेहो वैष्णवे मार्गे न कार्योन्यैः कुदर्शनैः ।
रामप्रभावमद्यापि यतोब्धौ पश्य सेतुना ॥ १०९ ॥
शार्ङ्गधरस्य ।

---

## अथ मिश्रकनीतिः ॥ ७७ ॥

1529

मणिः शाणोल्लीढः समरविजयी हेतिनिहतो
मदक्षीणो नागः शरदि सरिदाश्यानपुलिना ।
कलाशेषश्चन्द्रः सुरतमृदिता बालवनिता
तनिम्ना शोभन्ते गलितविभवाश्चार्थिषु जनाः ॥ १ ॥

1530

शशी दिवसधूसरो गलितयौवना कामिनी
सरो विगतवारिजं मुखमनक्षरं स्वाकृतेः ।
प्रभुर्धनपरायणः सततदुर्गतः सज्जनो
नृपाङ्गणगतः खलो मनसि सप्त शल्यानि मे ॥ २ ॥
एतौ भर्तृहरेः ।

1531

अविधेयो भृत्यजनः शठानि मित्राण्यदायकः स्वामी ।
अविनयवती च भार्या मस्तकशूलानि चत्वारि ॥ ३ ॥

1532

शक्तिरहितोपि कुप्यति सेवासक्तोपि मानमुद्वहति ।
अधनोपि हि कामयते जानाति विधिर्विडम्बयितुम् ॥ ४ ॥

1533

दुर्मन्त्रान्नृपतिर्विनश्यति यतिः सङ्गात्सुतो लालना-
द्विप्रोनध्ययनात्कुलं कुतनयाच्छीलं खलोपासनात् ।
मैत्री चाप्रणयात्समृद्धिरनयात्स्नेहः प्रवासाभया-
त्स्त्रीर्मद्यादनवेक्षणादपि कृषिस्त्यागात्प्रमादाद्धनम् ॥ ५ ॥

1534

कोर्थान्प्राप्य न गर्वितो विषयिणः कस्यापदोस्तं गताः
स्त्रीभिः कस्य न खण्डितं भुवि मनः को नाम राज्ञां प्रियः ।
कः कालस्य न गोचरान्तरगतः कोर्थी गतो गौरवं
को वा दुर्जनवागुरानिपतितः क्षेमेण यातः पुमान् ॥ ६ ॥

1535

क्लीबे धैर्यं मद्यपे तत्त्वचिन्ता
सर्पे क्षान्तिः स्त्रीषु कामोपशान्तिः ।
काके शौचं द्यूतकारे च सत्यं
राजा मित्रं केन दृष्टं श्रुतं वा ॥ ७ ॥

1536

मांसं मृगाणां दशनौ गजानां
मृगद्विषां चर्म फलं द्रुमाणाम् ।
स्त्रीणां च रूपं च नृणां हिरण्य-
मेते गुणा वैरकरा भवन्ति ॥ ८ ॥

1537

स्तब्धस्य नश्यति यशो विषमस्य मैत्री
नष्टक्रियस्य कुलमर्थपरस्य धर्मः ।
विद्याफलं व्यसनिनः कृपणस्य सौख्यं
राज्यं प्रमत्तसचिवस्य नराधिपस्य ॥ ९ ॥

1538

शाठ्येन मित्रं कपटेन धर्मं
परोपतापेन समृद्धिभावम् ।
सुखेन विद्यां परुषेण नारीं
वाञ्छन्ति ये नूनमपण्डितास्ते ॥ १० ॥

1539

धातुवादेषु वित्ताशा मोक्षाशा कौलिके मते ।
जामातरि च पुत्राशा त्रयमेतन्निरर्थकम् ॥ ११ ॥

1540

किंशुकादपि गन्धाशा मांसाशा मशकादपि ।
कृपणादपि वित्ताशा वृथाशा तस्य दुर्मतेः ॥ १२ ॥

1541

राजा घृणी ब्राह्मणः सर्वभक्षः
स्त्री चावशा दुष्टबुद्धिः सहायः ।
प्रेष्यः प्रतीपोधिकृतः प्रमादी
त्याज्या इमे यश्च कृतं न वेत्ति ॥ १३ ॥

1542

वैद्यं पानरतं नटं कुपठितं स्वाध्यायहीनं द्विजं
योधं कापुरुषं हयं गतरयं मूर्खं परिव्राजकम् ।
राज्यं बालनृपं च मन्त्रिरहितं मित्रं छलान्वेषि य-
द्भार्यां यौवनगर्वितां पररतां मुञ्चन्ति ते पण्डिताः ॥ १४ ॥

1543

वृक्षं क्षीणफलं त्यजन्ति विहगाः शुष्कं सरः सारसा
निर्द्रव्यं पुरुषं त्यजन्ति गणिका भ्रष्टं नृपं मन्त्रिणः ।
पुष्पं पर्युषितं त्यजन्ति मधुपा दग्धं वनान्तं मृगाः
सर्वः कार्यवशाज्जनोनुरमते तत्कस्य को वल्लभः ॥ १५ ॥

1544

स्वफलनिचयः शाखाभङ्गं करोति वनस्पते-
र्गमनमलसं बर्हाटोपः करोति शिखण्डिनः ।

चतुरगमनो जात्योऽप्यश्वः स गौरिव वाह्यते
गुणवति जने प्रायेणैते गुणाः खलु दूषणम् ॥ १६ ॥

1545

त्यजति भयमकृतपापं सुमित्रमयशः प्रमादिनं विद्या ।
ह्रीः कामिनमलसं श्रीः क्रूरं स्त्री दुर्जनं लोकः ॥ १७ ॥

1546

द्वाविमौ पुरुषौ लोके परप्रत्ययकारकौ ।
स्त्रियः कामितकामिन्यो लोकः पूजितपूजकः ॥ १८ ॥

1547

द्वाविमौ पुरुषौ लोके सुखिनौ न कदाचन ।
यश्चाधनः कामयते यश्च कुप्यत्यनीश्वरः ॥ १९ ॥

1548

द्वाविमौ पुरुषौ लोके स्वर्गस्योपरि तिष्ठतः ।
प्रभुश्च क्षमया युक्तो दरिद्रश्च प्रदानवान् ॥ २० ॥

1549

द्वाविमौ पुरुषौ लोके शिरःशूलकरौ परौ ।
गृहस्थो यो निरारम्भो यतिश्च सपरिग्रहः ॥ २१ ॥

1550

द्वाविमौ पुरुषौ लोके न भूतौ न भविष्यतः ।
प्रार्थितो यश्च कुरुते यश्च नार्थयते परम् ॥ २२ ॥

1551

द्वाविमावम्भसि क्षेप्यौ गाढं बद्ध्वा गले शिलाम् ।
धनिनं चाप्रदातारं दरिद्रं चातपस्विनम् ॥ २३ ॥

1552

सन्तश्चेदमृतेन किं यदि खलस्तत्कालकूटेन किं
दातारो यदि कल्पशाखिभिरलं यद्यर्थिनः किं तृणैः ।
किं कर्पूरशलाकया यदि दृशः पन्थानमेति प्रिया
संसारेपि सतीन्द्रजालमपरं यद्यस्ति तेनापि किम् ॥ २४ ॥

1553

लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः
सत्यं चेत्तपसा च किं शुचि मनो यद्यस्ति तीर्थेन किम् ।
सौजन्यं यदि किं गुणैः सुमहिमा यद्यस्ति किं मण्डनैः
सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना ॥ २५ ॥

1554

मित्रं स्वच्छतया रिपुं नयबलैर्लुब्धं धनैरीश्वरं
कार्येण द्विजमादरेण युवतिं प्रेम्णातितीव्रं स्तवैः ।
बन्धुं क्षान्ततया गुरुं प्रणतिभिर्मूर्खं कथाभिर्बुधं
विद्याभी रसिकं रसेन सकलं शीलेन कुर्याद्वशम् ॥२६॥

केषामप्येते ।

1555

वाजी चारुगतिः शशाङ्कधवलं छत्रं प्रिया पृष्ठतः
प्रोत्तुङ्गस्तनमण्डला विजयिनो भृत्याः पुरः पञ्चषाः ।
ताम्बूलं प्रचुरं सखा सुचतुरः संपद्यते चेत्पथि
प्राहुस्तत्कटकप्रयाणमितरत्प्राणप्रयाणं बुधाः ॥ २७ ॥

कस्यापि ।

1556

जवो हि सप्तेः परमं विभूषणं
त्रपाङ्गनायाः कृशता तपस्विनः।
द्विजस्य विद्या नृपतेरपि क्षमा
पराक्रमः शस्त्रबलोपजीविनाम् । २८ ॥

पाण्डवनकुलस्य ।

1557

इन्दुं कैरविणीव कोकपटलीवाम्भोजिनीवल्लभं
मेघं चातकमण्डलीव मधुपश्रेणीव पुष्पाकरम् ।
माकन्दं पिकसुन्दरीव तरुणीवात्मेश्वरं प्रोषितं
चेतोवृत्तिरियं मम प्रियसखे त्वां द्रष्टुमुत्कण्ठते ॥ २९ ॥

1558

नित्यं ब्रह्म यथा स्मरन्ति मुनयो हंसा यथा मानसं
सानन्दाः स्फुटसङ्कीवनयुतां ध्यायन्ति रेवां गजाः।

युष्मद्दर्शनलालसाः प्रतिदिनं युष्मान्स्मरामो वयं
धन्यः कोपि स वासरोत्र भविता यत्रावयोः संगमः ॥३०॥

एतौ राघवचैतन्यश्रीचरणानाम्।

1559

वासः शुभ्रमृतुर्वसन्तसमयः पुष्पं शरन्मल्लिका
धानुष्कः कुसुमायुधः परिमलः कस्तूरिकास्त्रं धनुः ।
वाणी तर्करसोज्ज्वला प्रियतमा श्यामा वयो यौवनं
मार्गः शांभव एव पञ्चमलया गीतिः कविर्विल्हणः ॥३१॥

बिल्हणस्य।

---

## अथ गजप्रशंसा ॥ ७८ ॥

1560

यतो गजैर्विना राज्ञां राज्यशोभा न जायते ।
जयप्रतापौ सैन्यस्य रक्षा तस्मादिहोच्यते ॥ १ ॥

1561

पुरा स्वर्गे सुखेनासन्कामगाः खचरा गजाः ।
मुनिशापाद्गता भूमौ ततो जाता वनेचराः ॥ २ ॥

1562

भद्रो मन्दो मृगो मिश्रश्चतुर्धा जायते गजः ।
त्रयो युगत्रयेभूवन्मिश्राः कलियुगे गजाः ॥ ३ ॥

शार्ङ्गधरस्यैतौ।

1563

यतः सत्यं ततो धर्मो यतो धर्मस्ततो धनम् ।
यतो रूपं ततः शीलं यतो नागास्ततो जयः ॥ ४ ॥

1564

यद्वद्वनमसिंहं तु यद्वद्राष्ट्रमपार्थिवम् ।
यद्वच्छौर्यमशस्त्रं तु तद्वत्सैन्यमकुञ्जरम् ॥ ५ ॥

1565

प्राकारगोपुराट्टालकपाटोद्घाटनादिषु ।
भञ्जने मर्दने चैव नागा वज्रोपमाः स्मृताः ॥ ६ ॥

1566

शरजालाञ्चितमुखः कोन्यः शक्तः परो गजात् ।
हन्तुं प्राकारमुन्मथ्य रथाश्वनरकुञ्जरान् ॥ ७ ॥

1567

एकशक्तिप्रहारेण म्रियतेश्वो नरोपि हि ।
सहेन्महाप्रहाराणां शतं युद्धेषु वारणः ॥ ८ ॥

1568

क्रीडासु च नरेन्द्राणां जले पुष्पितपङ्कजे ।
क्षपयन्ति गजा हस्तैर्लग्नपुष्करपुष्करैः ॥ ९ ॥

1569

स्त्रियोवतारयन्त्येते मृण्मया इव निश्चलाः ।
नास्ति हस्तिसमो बन्धुर्नास्ति हस्तिसमः सखा ॥ १० ॥

पालकाप्यात् ।

1570

चीत्कारैः सर्वतोपि स्वपतिभटमनो मोदयन्तो मदाढ्याः
प्रौढाः संग्रामसीम्नि स्वबलबहुलतां बाढमाढौकमानाः ।
शुण्डादण्डप्रपातैः परममपि बलं कम्पयन्तः परेषां
येषां स्युर्वारणेन्द्रा भुवि विजयविधौ ते मता भूमिपालाः ॥ ११ ॥

1571

चलन्ति येषां न मतङ्गजेन्द्राः
पुरः प्रयाणे चलशैलतुल्याः ।
वाञ्छन्ति ते वैरिजयं कथं ते
राजेति शब्दं च कथं लभन्ते ॥ १२ ॥

1572

सेतुं संभेदयन्तो बलविकटभटप्रोन्नतिं त्रोटयन्तः
प्राकारं दारयन्तः परमनसि परां भीतिमुत्पादयन्तः ।

व्यूहं विद्रावयन्तः सुघनमपि वनं हेलयोत्पाटयन्तो
येषामाजौ गजेन्द्राः खलु धरणिभुजां तज्जयः सिद्ध एव ॥ १३॥

1573

रक्षन्ति पक्षं मुदिताः स्वकीयं
मथ्नन्ति सैन्यं कुपिताः परेषाम् ।
प्राणैरपीच्छन्ति हितं प्रभूणां
गजैः समानं क्व बलं बलीयः ॥ १४ ॥

1574

तावद्गर्जन्ति वीर्यात्परनिधनविधौ युद्धमध्येपि धीरा-
स्तावद्धावन्ति वेगं परमपि दधतः संमुखीनास्तुरंगाः ।
शूरारूढः सुसज्जो मदमुदितमना मानिमानं विधुन्व-
न्यावन्नायाति कोपात्कृतविविधरवाटोप एकोपि नागः ॥ १५ ॥

1575

सैन्योत्तारणतो धुनीषु सततं यो वारिबन्धायते
यो मथ्नन्परितः परोद्धतबलं युद्धेषु योधायते ।
यः स्वीयक्षितिनाथरक्षणविधौ प्रोच्चैकदुर्गायते
स प्राज्यो विजिगीषुभिर्गजगणः कैः पार्थिवैर्नार्थ्यते ॥ १६ ॥

1576

मातङ्गैरपि यैर्महीन्द्रभवनं पुण्याधिकं जन्यते
यैः श्यामैरपि सर्वलोकमहिता कीर्तिः सिता तन्यते ।
यैर्मत्तैरपि संगरे रिपुमदः शोषं समानीयते
तेमी भाग्यवतः प्रयान्ति पुरतः स्तम्बेरमा भूपतेः ॥ १७॥

एते गुणाकरस्य ।

## अथ भद्रलक्षणानि ।

1577

प्रतिमानेषु विपुलश्चारुपृष्ठायताननः ।
मुखे सुरभिनिःश्वासस्ताम्रजिह्वौष्ठतालुकः ॥ १८ ॥

1578

तथास्य तुल्यसंस्थानौ दन्तौ शुभ्रौ विशेषतः ।
मधुपिङ्गलनेत्रश्च महाकायो महाबलः ॥ १९ ॥

1579

पुरस्तादुच्छ्रितश्चापि पश्चादवनतोपि यः ।
धनुर्विनतवंशश्च समपादतलः शुभः ॥ २० ॥

1580

विंशत्या च नखैर्युक्तो योष्टादशभिरेव वा ।
विद्युद्वाग्निसिंहेभ्यो न बिभेत्यङ्कुशादपि ॥ २१ ।

1581

अन्वर्थवेदी शूरश्च क्षमावान्न च कर्कशः ।
कल्याणमेधास्तेजस्वी स भद्रः परिकीर्तितः ॥ २२ ॥

अथ मन्दलक्षणानि ।

1582

महाग्रीवो महावक्त्रो महाप्रोथो महोदरः ।
पीनानुवंशः सान्द्रत्वक्सुविभक्तमहाशिराः ॥ २३ ॥

1583

बहलैर्मृदुभिर्युक्तः स्निग्धैश्चैव तनूरुहैः ।
स्थिरैः स्थिराकृतितलैः पादैश्च पृथुभिः समैः ॥ २४ ॥

1584

स्थिरस्निग्धे विशाले च पीने चापि प्रकीर्तिते ।
विषाणे तस्य विद्वद्भिरोष्ठो दीर्घश्च लोमशः ॥ २५ ॥

1585

कूर्मसंस्थानगमनो मन्दो मन्दगतिक्रमः ।
संमील्य लोचने नित्यं निद्रान्ध इव गच्छति ॥ २६ ॥

1586

धीरोनुरक्तो हस्तिन्यां गतोद्वेगो जितश्रमः ।
निर्भयो मन्दबुद्धिश्च धृतिमान्मन्द उच्यते ॥ २७ ॥

## अथ मृगलक्षणानि ।

1587

तनुत्वक्कर्णपादो यस्तन्वास्यस्तनुमेहनः ।
तनुवंशोदरश्चैव तनुव्यक्ततनूरुहः ॥ २८ ॥

1588

दीर्घजिह्वाविषाणश्च दीर्घगात्रस्तथा च सः ।
प्रध्वस्तरोमकर्णत्वक्पुरस्ताच्चापि संवृतः ॥ २९ ॥

1589

निपाने गोचरस्थाने शय्यायां चाप्यनिर्वृतः ।
तूर्याभिभवशङ्की च नित्यमेवानवस्थितः ॥ ३० ॥

1590

ह्रस्वश्रवणलाङ्गूलो दीर्घं विक्रमते क्रमैः ।
पुनः पुनश्च विनदन्दुर्मतिश्चाभिधावति ॥ ३१ ॥

## अथ मिश्रलक्षणम् ।

1591

बह्वाशी बह्वलीकश्च दण्डपातेषु चाक्षमः ।
गच्छेत्प्रकृष्टवेगश्च भारं प्राप्यावसीदति ॥ ३२ ॥

1592

कृच्छ्राच्चाप्यायते नागः क्षिप्रं च परिहीयते ।
कटुम्ललवणैश्चैव रूक्षैश्चातुरतां व्रजेत् ॥ ३३ ॥

1593

नित्यं च सान्त्वयेदेनं न चैनमभितापयेत् ।
सर्वेषां लक्षणैः कैश्चिद्युक्तो मिश्रो भवेद्गजः ॥ ३४ ॥

## अथ गजप्रक्रिया ।

1594

एवं विधान्गजाञ्ज्ञात्वान्वनादानीय पार्थिवः ।
विनये शिष्यवत्कुर्यात्पुत्रवत्परिपालयेत् ॥ ३५ ॥

1595

शूरमारोहकं कुर्याद्वशगं च विशेषतः ।
शूरत्वं कातरत्वं च तदायत्तं गजे यतः ॥ ३६ ॥

1596

सज्जितः कल्पितः शूरः शूरारूढः प्रतापवान् ।
जयत्येकोपि मातङ्गः षट्सहस्राणि वाजिनाम् ॥ ३७ ॥

1597

शरतोमरचक्रैश्च गजस्कन्धे हता नराः ।
क्षणात्स्वर्गं प्रयान्त्येव तस्मात्स्वर्गोपमा गजाः ॥ ३८ ॥

एते पालकाप्याद् ।

---

## अथ तुरगप्रशंसा ॥ ७९ ॥

1598

पुरा सपक्षा हरयो विचेरुः खेचराः किल ।
गन्धर्वेभ्यः समुत्पन्नाः सदा स्वच्छन्दचारिणः ॥ १ ॥

1599

तेजोवाय्वम्बुदगणैर्लब्धैर्लक्षितलक्षणान् ।
वीक्ष्य शक्रो जगादेदं शालिहोत्रं महामुनिम् ॥ २ ॥

1600

छिन्धि पक्षानमीषां त्वं यथा स्युर्वाहनानि मे ।
इषीकास्त्रेण सोप्येषां पक्षांस्तत्प्रीतयेच्छिनत् ॥ ३ ॥

1601

ततः प्रसादितैस्तैस्तु प्रादाद्धरमिदं मुनिः ।
युष्मत्पक्षोपमो वेगश्चरणानां भविष्यति ॥ ४ ॥

1602

यूयं शक्रादिदेवानां वाहनत्वं गमिष्यथ ।
तथा भूमिपतीनां च गौरवेण समन्विताः ॥ ५ ॥

1603

यो राजा भवतां पुष्टिं खानपानादिभिः सदा ।
करिष्यति स सर्वत्र जयवादी भविष्यति ॥ ६ ॥

1604

अथागत्य भुवं राज्ञां गता वाहनतां हयाः ।
तेषां धर्मार्थकामांश्च साधयन्त्युपकारिणः ॥ ७ ॥

1605

श्रीमूलमण्डनं यस्य गृहे सन्ति न वाजिनः ।
गृहभित्तिषु तेनापि लेख्या दुरितशान्तये ॥ ८ ॥

1606

अश्वा यस्य जयस्तस्य यस्याश्वास्तस्य मेदिनी ।
अश्वा यस्य यशस्तस्य यस्याश्वास्तस्य काञ्चनम् ॥ ९ ॥

1607

निपत्य युधि वेगेन मिषतां सर्वधन्विनाम् ।
शत्रुं निहत्य यात्येकः शूरो वाजिप्रभावतः ॥१० ॥

1608

शस्त्रैर्निर्भिन्नदेहोपि भ्रान्तोपि गुरुभारतः ।
न मुञ्चति रणे नाथमतः कोन्यो हयात्सुहृत् ॥ ११ ॥

1609

दूरस्थोपि बली शत्रुर्न शेते रजनीष्वपि ।
तस्य भीत्या गृहे यस्य हरयो वेगवत्तराः ॥ १२ ॥

1610

न गजैर्न नरैः कार्यं सिद्धिमभ्येति भूभृताम् ।
तथा निमेषमात्रेण यथा वाहैः सुसाधितैः ॥ १३ ॥

शार्ङ्गधरस्यैते।

## अथाश्वानां सामान्यलक्षणानि ॥

1611

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां चैव लक्षणैः ।
ज्ञेया हयोत्तमास्तेषु पूर्वः पूर्वः शुभावहः ॥ १४ ॥

1612

प्रायेण ब्राह्मणः शुक्लः क्षत्रियो लोहितः स्मृतः ।
वैश्यः पीताभवर्णः स्यात्कृष्णवर्णश्चतुर्थकः ॥ १५ ॥

1613

पुष्पगन्धः सदा विप्रः क्षत्रियोगुरुगन्धकः ।
घृतगन्धो भवेद्वैश्यो मीनामोदी चतुर्थकः ॥ १६ ॥

1614

विवेकी सघृणो विप्रस्तेजस्वी क्षत्रियो बली ।
दुष्टभावस्तथा वैश्यः शूद्रो निःसत्त्वकातरः ॥ १७ ॥

1615

ब्राह्मणाः क्षेमकृत्येषु सिद्धिं गच्छन्ति वाजिनः ।
क्षत्रिया युद्धकार्येषु वैश्या द्रव्यार्जने सदा ॥ १८ ॥

1616

शूद्राश्चान्येषु कृत्येषु ज्ञात्वैवं वाजिनः सदा ।
आरोहेद्युक्तकार्येषु यदीच्छेच्छाश्वतीं श्रियम् ॥ १९ ॥

1617

सदा सुप्ता भवन्त्येते वाजिनो ये तु भूतले ।
जाग्रत्यायोधने प्राप्ते कर्करस्य च भक्षणे ॥ २० ॥

1618

सुलक्षणा महावेगाः सुसत्त्वाश्चातिघस्मराः ।
जितभ्रमा विनीता ये राजार्हास्ते हयाः स्मृताः ॥ २१ ॥

## अथ पृथगवयवलक्षणानि ।

1619

आताम्रौ पूजितावोष्ठौ लेलिहानौ मृदुत्वचौ ।
जिह्वा रक्ता च तन्वी च तालु रक्तं प्रशस्यते ॥ २२ ॥

1620

घनस्निग्धाः सुबद्धाश्च समा दन्ताः सुशोभनाः ।
नातिदीर्घौ पृथू नैव हनू वाहस्य शोभनौ ॥ २३ ॥

1621

अत्यन्तनिर्गते चैव सुबद्धे नैव चाविले ।
प्रशस्ते वाजिनां नेत्रे मध्वाभे कालतारके ॥ २४ ॥

1622

स्वावर्तं च विशालं च ललाटं वाजिनां शुभम् ।
शस्तं शिरः समं वृत्तमावर्तद्वयभूषितम् ॥ २५ ॥

1623

ह्रस्वता कर्णयोः शस्ता तीक्ष्णता तनुता तथा ।
सुदृढां कुञ्चितां दीर्घां धन्यां ग्रीवां विदुर्बुधाः ॥ २६ ॥

1624

केसरं च जटाहीनं मृदु दीर्घं प्रशस्यते ।
अनावर्तो दृढश्चैव स्कन्धो वाहस्य पूजितः ॥ २७ ॥

1625

उरो विशालं शस्तं च कक्षे दीर्घोन्नते शुभे ।
ऊरू वृत्तौ समौ बाहू गूढं जानु प्रशस्यते ॥ २८ ॥

1626

अवक्रे मांसहीने च वाजिजङ्घे सुशोभने ।
कूर्चं समं सुसंधि स्याद्ग्रन्थिव्रणविवर्जितम् ॥ २९ ॥

1627

दृढमण्डूकिका कृष्णा वर्तुलाः पृथुलाः खुराः ।
पार्श्वावभ्युन्नतौ दीर्घौ सुदृढौ च समौ शुभौ ॥ ३० ॥

1628

अवलम्बि सुवृत्तं च जठरं वाजिनां शुभम् ।
नातिदीर्घं समं पृष्ठं किंचिच्च विनतं शुभम् ॥ ३१ ॥

एते शालिहोत्रस्य ।

1629

पीना कटिः सुवृत्तश्च पश्चाद्भागः पृथुः शुभः ।
मृदुस्निग्धायतैर्युक्तं वालैः पुच्छं प्रशस्यते ॥ ३२ ॥

1630

वृषणौ च समौ वृत्तौ बिल्वमात्रौ विलोमशौ ।
कृष्णवर्णविहीनं च ह्रस्वं मेहनमिष्यते ॥ ३३ ॥

## अथाश्वाङ्गमानलक्षणानि ।

1631

ऊर्ध्वं त्रीहित्रयं मानमङ्गुलस्य निगद्यते ।
हस्तोपि हि समाख्यातश्चतुर्विंशद्भिरङ्गुलैः ॥ ३४ ॥

1632

द्वाविंशदङ्गुलं वक्त्रमुत्तमाश्वस्य कीर्तितम् ।
अङ्गुलद्वयहीनं तु मुखं स्यान्मध्यवाजिनः ॥ ३५ ॥

1633

ततोपि द्व्यङ्गुलं न्यूनं कनिष्ठस्य मुखं स्मृतम् ।
ग्रीवोत्तमस्य वाहस्य षट्पञ्चाशन्मिताङ्गुलैः ॥ ३६ ॥

1634

चत्वारिंशत्षडधिका मध्यमाश्वस्य कीर्तिता ।
षट्त्रिंदशङ्गुलैर्ग्रीवा हीनाश्वस्य प्रकीर्तिता ॥ ३७ ॥

1635

उरः पृष्ठं कटिश्चैव मुखतुल्यं समादिशेत् ।
कर्णौ सप्ताङ्गुलौ प्रोक्तौ तालुकं च षडङ्गुलम् ॥ ३८ ॥

1636

सूक्ष्मो ऋजुः पुच्छदण्डः कथितो विंशदङ्गुलः ।
द्वाविंशदङ्गुलोत्सेधे जङ्घे चैवोत्तमे स्मृते ॥ ३९ ॥

1637

अष्टादश तथा मध्ये हीने चैव चतुर्दश ।
सप्ताङ्गुलः खुरः प्रोक्त उत्तमाश्वस्य पण्डितैः ॥ ४० ॥

1638

षडङ्गुलो भवेन्मध्यः कनिष्ठः पञ्चसंमितः ।
चतुर्हस्तेन विख्यात उत्सेधेन हयोत्तमः ॥ ४१ ॥

1639

अर्धहस्तेन हीनस्तु भवेन्मध्यस्तुरङ्गमः ।
ततो हस्तेन हीनश्च हीन एव स्मृतो हयः ॥ ४२ ॥

1640

पञ्चहस्तप्रमाणेन दैर्घ्यमुत्तमवाजिनः ।
चतुर्भिर्मध्यमं प्रोक्तं त्रिभिः सार्धैस्तथाधमम् ॥ ४३ ॥

1641

अपाङ्गात्पुच्छमूलं तु तिर्यगश्वं प्रमाणयेत् ।
खुरान्तात्ककुदं यावदूर्ध्वमानेन बुद्धिमान् ॥ ४४ ॥

## अथ हयानां शुभलक्षणानि ।

1642

अथातः संप्रवक्ष्यामि लक्षणानि हि वाजिनाम् ।
शुभानि वर्णैरावर्तैस्तानि विद्याद्विचारतः ॥ ४५ ॥

1643

सर्वश्वेतो हयो यस्तु श्यामैकश्रवणो भवेत् ।
स वाजी वाजिमेधार्हः श्यामकर्णः प्रकीर्तितः ॥ ४६ ॥

1644

यस्य पादाः सिताः सर्वे तथा वक्त्रं च मध्यतः ।
कल्याणपञ्चकः प्रोक्तः सदा कल्याणकृच्च सः ॥ ४७ ॥

1645

यस्य पादाः सिताः सर्वे पुच्छं वक्षो मुखं तथा ।
मूर्धजाश्च सिता यस्य तं विद्यादष्टमङ्गलम् ॥ ४८ ॥

1646

मुखे चन्द्रकसंवीतो जम्बूफलसमाकृतिः ।
श्वेतपादः स विज्ञेयो मल्लिकाक्षः सुपूजितः ॥ ४९ ॥

1647

कृष्णो वाजी भवेद्यः स कृष्णतालुर्न दुष्यति ।
कुत्सितावर्तकर्णोपि पञ्चकल्याणकः शुभः ॥ ५० ॥

## अथ शुभावर्ताः

1648

एको ललाटे द्वौ मूर्ध्नि द्वौद्वौ पार्श्वोपपार्श्वयोः ।
द्वौ च वक्षसि विज्ञेयौ प्रयाणे चैक एव तु ॥ ५१ ॥

1649

ध्रुवावर्ता दश प्रोक्ता वाजिनः शुभकारकाः ।
प्रयाणे मारुतो भाले वह्निर्वक्षसि चाश्विनौ ॥ ५२ ॥

1650

सूर्याचन्द्रमसौ मूर्ध्नि रन्ध्रे स्कन्दगजाननौ ।
उपरन्ध्रे हरीशौ च दशावर्ता अतः शुभाः ॥ ५३ ॥

1651

त्रयो यस्य ललाटस्था आवर्ता अधरोत्तराः ।
निश्रेणी सा परिज्ञेया वाजिवृद्धिकरी परा ॥ ५४ ॥

1652

अनेनैव प्रकारेण त्रयो ग्रीवाश्रिताः शुभाः ।
ललाटे युगलावर्तौ चन्द्रार्कौ शुभकारकौ ॥ ५५ ॥

1653

कण्ठे चिन्तामणिर्ज्ञेयश्चिन्तितार्थप्रदः सदा ।
आवर्तः पृष्ठवंशे यः स सूर्याख्यः शुभः स्मृतः ॥ ५६ ॥

नकुलस्यैते ।

## अथाशुभलक्षणानि ।

1654

चत्वारोप्यसिताः पादाः सर्वश्वेतस्य वाजिनः ।
भवन्ति यस्य स त्याज्यो यमदूतः सुदूरतः ॥ ५७ ॥

1655

अन्यवर्णं शिरो यस्य पुच्छं वा यस्य वाजिनः ।
पुच्छेन शिरसा वापि नानावर्णः स निन्दितः ॥ ५८ ॥

1656

हीनदन्तोधिकश्चैव कराली कृष्णतालुकः ।
कुह्वालो मुशली शृङ्गी षडेते स्वामिघातकाः ॥ ५९ ॥

1657

व्याघ्राभश्च स्तनी चैव द्विखुरः ककुदी तथा ।
एकाण्डश्चैव जाताण्डो वाहाः पापाः प्रकीर्तिताः ॥ ६० ॥

1658

पञ्चभिः सप्तभिर्दन्तैर्वाहौ हीनाधिकौ स्मृतौ ।
कराली चाधरैर्दन्तैश्छाद्यन्ते यस्य चोत्तराः ॥ ६१ ॥

1659

कृष्णं तालु भवेद्यस्य स भवेत्कृष्णतालुकः ।
कुह्वालश्चोत्तरैर्दन्तैश्छाद्यन्ते यस्य चाधराः ॥ ६२ ॥

1660

सितैकचरणः पुष्पहीनस्तु मुशली स्मृतः ।
कालाभावर्तकः कर्णदेशे यस्य स शृङ्गिकः ॥ ६३ ॥

1661

व्याघ्राभो व्याघ्रवर्णः स्यात्स्तनयुक्तः स्तनी स्मृतः ।
द्विखुरं गोखुराकारैः खुरैर्विद्याद्विचक्षणः ॥ ६४ ॥

1662

आवर्तः ककुदे यस्य ककुदी स उदाहृतः ।
मुष्केणैकेन युक्तस्तु हयस्त्वेकाण्डसंज्ञितः ॥ ६५ ॥

1663

अण्डाभ्यां लोमशाभ्यां तु जाताण्डो न हितः स्मृतः ।
भस्माभवक्रपुच्छं च कृष्णनीलं परित्यजेत्
निन्द्यः केवलकृष्णस्तु सर्वश्वेतस्तु पूजितः ॥ ६६ ॥

अथ दुरावर्ताः ।

1664

पुच्छे जानुनि कक्षायां मेढ्रे गुह्ये हनौ हृदि ।
भ्रूदेशे नेत्रपरितः कर्णग्रीवादयस्तथा ॥ ६७ ॥

1665

अधरोष्ठे च घोणायां गण्डयोश्चिबुके तथा ।
मुष्के नाभौ त्रिके कुक्षावावर्तास्त्वतिनिन्दिताः ॥ ६८ ॥

शार्ङ्गधरस्यैती ।

## अथाश्वानां शुभाशुभचेष्टितम् ।

1666

यैर्बुधाः कथयन्त्याशु शुभं वा यदि वाशुभम् ।
स्वामिनो वाजिनां चिह्नैस्तद्विज्ञेयं विचक्षणैः ॥ ६९ ॥

1667

यः संबद्धो हयो रावमूर्ध्ववक्त्रः करोति च ।
खुराग्रेणालिखन्भूमिं स शंसति रणे जयम् ॥ ७० ॥

1668

यः करोत्यसकृन्मूत्रं पुरीषं वाश्रुमोचनम् ।
स शंसति पराभूतिमत्यन्तं यश्च दुर्मनाः ॥ ७१ ॥

1669

निष्कारणं निशान्ते यो हेषारावं करोत्यपि ।
परचक्रागमाशंसी स विज्ञेयो विचक्षणैः ॥ ७२ ॥

1670

पुलकाङ्कितपुच्छो यो जायते यस्य घोटकः ।
स शंसति स्थिरस्यापि द्रुतं तस्य प्रयाणकम् ॥ ७३ ॥

1671

स्फुलिङ्गा यस्य दृश्यन्ते पुच्छतोश्वस्य वह्निजाः ।
निर्गच्छन्तः प्रभोर्नाशं स शंसति निशागमे ॥ ७४ ॥

1672

अश्वशालां समासाद्य यदान्तर्मधुमक्षिकाः ।
मधुजालं प्रबध्नन्ति म्रियन्तेश्वास्तदा ध्रुवम् ॥ ७५ ॥

1673

सरटं वारयेद्यत्नात्प्रविशन्तं हयालये ।
मन्दुराग्रे तथा धार्यो रक्तवक्त्रो महाकपिः ॥ ७६ ॥
नकुलस्यैते ।

## अथाश्वानां जन्मदेशाः ।

1674

अथाश्वानां जन्मदेशान्प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ।
उत्तमानां च मध्यानां हीनानां यत्र संभवः ॥ ७७ ॥

1675

उत्तमास्ताजिकाः प्रोक्ताः पारसीकाः समुद्रजाः ।
कोक्काणाखतलाणाश्च तथा सौराष्ट्रजा हयाः ॥ ७८ ॥

## अथ मध्यमाः ।

1676

उरोजाताश्च कीराश्च तुरुष्कारट्टजाश्च ये ।
टक्कजाः सैन्धवा मध्याः स्थलजातास्तथा हयाः ॥ ७९ ॥

## अथ हीनाः ।

1677

शाम्भलाश्चार्जुलाश्चैव तथा सारस्वता हयाः ।
अधमाष्टाङ्गणाः सर्वे ये च प्राग्दक्षिणोद्भवाः ॥ ८० ॥

## अथाश्ववाहनविधिः ।

1678

अथातः संप्रवक्ष्यामि हयारोहणमुत्तमम् ।
येन विज्ञातमात्रेण रेवन्तः प्रियतां व्रजेत् ॥ ८१ ॥

1679

रूपावर्तगतिच्छायाः सत्त्वं वर्णो वयो बलम् ।
वेगहीनस्य वाहस्य सर्वमेतन्निरर्थकम् ॥ ८२ ॥

1680

तस्माद्वेगयुतं वाहं तरुणं पुष्टविग्रहम् ।
वाहयेद्वाहकः सज्ज्स्तुरंगं सान्त्वयन्मुहुः ॥ ८३ ॥

1681

सान्द्रां सुकठिनां चैव पाषाणोदकसंयुताम् ।
तृणकाष्ठयुतां चैव रङ्गभूमिं विवर्जयेत् ॥ ८४ ॥

1682

समा च विपुला चैव किंचित्पांशुसमन्विता ।
एकान्ते विजने चैव रङ्गभूमिः प्रशस्यते ॥ ८५ ॥

1683

स्थूलश्च क्रोधनो मूर्खो भीतोत्सुकचलासनः ।
अस्थानदण्डपाती यो वाजी तस्य न धावति ॥ ८६ ॥

1684

दृढासनोश्वतत्त्वज्ञः प्राज्ञः सत्त्वबलोत्तरः ।
सुस्थानदण्डपाती च सोद्यमो वाहकः स्मृतः ॥ ८७ ॥

1685

चलकिसलयपादः कर्णमध्यैकदृष्टि-
र्न चलति कटिदेशे स्वासने संस्थितश्च ।
हयहृदयमतिज्ञः स्थानदण्डावपाती
स खलु तुरगयोक्ता पूज्यते पार्थिवेन्द्रैः ॥ ८८ ॥

1686

ब्राह्मणं भक्तिदानेन सौम्येन क्षत्रियं तथा ।
वैश्यं शब्देन दण्डेन शूद्रं दण्डेन वाहयेत् ॥ ८९ ॥

1687

हृषिते स्खलिते भीते तथा चोन्मार्गगामिनि ।
कुपिते भ्रान्तचित्ते च षट्सु दण्डं निपातयेत् ॥ ९० ॥

1688

हृषिते स्कन्धमुद्दिष्टं स्खलिते जघनान्तरम् ।
भीते वक्षःस्थलं हन्याद्वक्रं चोन्मार्गगामिनि ॥ ९१ ॥

1689

कुपिते पुच्छसंस्थानं भ्रान्ते जानुद्वयं तथा ।
सर्वस्य प्राप्तदण्डस्य दण्डमेकं निपातयेत् ॥ ९२ ॥

1690

अस्थाने ताडितो वाजी बहून्दोषानवाप्नुयात् ।
तावद्भवन्ति ते दोषा यावज्जीवत्यसौ हयः ॥ ९३ ॥

1691

अवाहिता विनश्यन्ति सर्वकर्मक्षमा अपि ।
कृशा व्याधिपरीताङ्गा जायन्तेत्यन्तवाहनात् ॥ ९४ ॥

1692

पञ्च धाराः प्रवक्ष्यामि ऋषिभिर्याः प्रकीर्तिताः ।
प्रथमा विक्रमा धारा द्वितीया पुलका स्मृता ॥ ९५ ॥

1693

तृतीया पूर्णकण्ठी च चतुर्थी त्वरिता स्मृता ।
पञ्चमी ताडिता षष्ठी निरालम्बा प्रकीर्तिता ॥ ९६ ॥

1694

विक्रमा गतिरित्युक्ता चतुष्पादा प्लुता स्मृता ।
मुखपादसमायुक्ता पूर्णकण्ठी च सा भवेत् ॥ ९७ ॥

1695

स्वेच्छया त्वरिता धारा ताडिता चैव पञ्चमी ।
षष्ठी चैव तु या धारा स्वर्गलोकेषु तिष्ठति ॥ ९८ ॥

1696

या संख्या रोमकूपाणां वाहकस्य हयस्य च ।
तावद्वर्षान्वसेत्स्वर्गे हयपृष्ठे हतो नरः ॥ ९९ ॥

1697

यं लोकं वाजिपृष्ठेषु हता गच्छन्ति मानवाः ।
तं लोकं नाधिगच्छन्ति वडवासु हताश्च ये ॥ १०० ॥

## अथ वाजिनां वयोज्ञानायुर्ज्ञाने ।

1698

दन्तोद्भेदं प्रवक्ष्यामि वाजिनां मुख्यलक्षणम् ।
येन विज्ञातमात्रेण वयोज्ञानं प्रतीयते ॥ १०१ ॥

1699

षड्भिर्दन्तैः सितामैर्भवति हयशिशुस्तैः कषायैर्ईरब्दः
संदंशैर्मध्यमान्त्यैः पतितसमुदितैस्त्रिश्चतुःपञ्चवर्षः ।
संदंशानुक्रमेण त्रिकसमगुणिताः कालिकापीतशुक्लाः
काचं माक्षीकशङ्खावटुचलनमतश्चावपातं च विद्धि ॥ १०२ ॥

1700

लघुत्वं मातृदोषेण पितृदोषेण मन्दता ।
दौर्बल्यं स्वामिदोषेण स्वदोषो नास्ति वाजिनाम् ॥१०३॥

1701

महाघोणा महाकाया महोरस्का महास्वनाः ।
स्निग्धाङ्गाः सर्वदा ये च तेषामायुर्भवेद्बहु ॥ १०४ ॥

1702

कर्णाग्रे पीडिते येषां सिन्दूराभस्य दर्शनम् ।
शोणितस्य भवेत्क्षिप्रं ते वाहाश्चिरजीविनः ॥ १०५ ॥

1703

स्निग्धा दीर्घाश्च बह्व्यश्च प्रोथस्था यस्य वाजिनः ।
भवन्ति विपुला रेखास्तं विद्याच्चिरजीविनम् ॥ १०६ ॥

1704

नभो जिघ्रन्ति ये वाहा भास्करार्पितदृष्टयः ।
पृथुकुक्षिकटीकक्षाः सुनिद्राश्चिरजीविनः ॥ १०७ ॥

1705

न विष्किरन्ति ये ग्रासं सुभक्षा ह्रस्वमेहनाः ।
महाशिरोललाटाश्च ते वाहाश्चिरजीविनः ॥ १०८ ॥

1706

अर्धप्रोथस्थिता रेखा दृश्यन्ते यस्य वाजिनः ।
तस्य मृत्युः समुद्दिष्टो दशमं प्राप्य वत्सरम् ॥ १०९ ॥

1707

त्र्यङ्गुलायां दशार्धेन वर्षाणां तस्य जीवितम् ।
जीवेच्चयोदशाब्दानि यस्य स्याच्चतुरङ्गुला ॥ ११० ॥

1708

विनतः पूर्वकायेन स्थूलजानुश्च यो हयः ।
भूनाक्षिकूटः स्तब्धाक्षः स्वल्पायुः स प्रकीर्तितः ॥ १११॥
जयदत्तस्यैते ।

1709

समाषष्टिर्द्विघ्ना मनुजकरिणां पञ्च च निशा
हयानां द्वात्रिंशत्खरकरभयोः पञ्चककृतिः ।
विरूपं तच्चायुर्वृषमहिषयोर्द्वादश शुनः
स्मृतं छागादीनां दशकसहिताः षट् च परमम् ॥ ११२ ॥
कस्यापि ।

## अथौषधानि वाजिनां कृते ।

1710

व्योषाजाजिविडङ्गहिङ्गुकुटजत्वक्केतकीसैन्धवं
श्यामासर्षपदीप्यकाद्दशगुणं मांसं रसोनात्समम् ।
संधायाम्लरसैर्लभेत सततं यो विद्युदाख्यामिमां
सप्तिः सप्तगुणाधिको द्विदशनः स स्यादपास्यामयान् ॥ ११३ ॥
विजुलीनकुलस्य ।

1711

दूर्वा घृतं यवानीरं शिशिरं सर्वदा शुभम् ।
हरीतकी हिता नित्यं लवणं त्रिदिनान्तरे ॥ ११४ ॥

## अथ परीक्षाश्वानाम् ।

1712

असितखुरचतुष्कः श्यामलग्रन्थिपादः
स्रवति करसमीपे मूत्रधारां सवेगाम् ।

दशनचलखलीनः कुक्कुटस्कन्धबन्धः
किटिवरकठिनोरुर्दूरगः स्यात्तुरङ्गः ॥ ११५ ॥

1713

विकसदसितनेत्रः स्निग्धगम्भीरहेष-
स्त्वरितचतुरगामी वायुवेगः सुसत्त्वः ।
सघनविपुलकायो भर्तुरादेशवर्ती
समरविजयसंपत्कारकः स्यात्तुरङ्गः ॥ ११६ ॥

शार्ङ्गधरस्यैते ।

---

## अथ धनुर्वेदः ॥ ८० ॥

1714

ईश्वरोक्ताद्धनुर्वेदाद्व्यासस्यापि सुभाषितात् ।
पदान्याकृष्य रचितो ग्रन्थः संक्षेपतो मया ॥ १ ॥

1715

विना शार्ङ्गधरं नान्यो धनुर्वेदार्थतत्त्ववित् ।
यतः स्वप्ने निशि प्राप्ता शिवात्तत्त्वविचारणा ॥ २ ॥

1716

अतः संदेहदोलायां रोपणीयं न मानसम् ।
मन्येस्मिञ्शापचतुरैर्वीरचिन्तामणौ क्वचित् ॥ ३ ॥

1717

यस्याभ्यासप्रसादेन निष्पद्यन्ते धनुर्धराः ।
जेतारः परसैन्यानां तस्याभ्यासो विधीयताम् ॥ ४ ॥

1718

एकोपि यत्र नगरे प्रसिद्धः स्याद्धनुर्धरः ।
ततो यान्त्यरयो दूरं मृगाः सिंहगृहादिव ॥ ५ ॥

### अथ धनुर्धारणविधिः ।

1719

आचार्येण धनुर्देयं ब्राह्मणे सुपरीक्षिते ।
लुब्धे धूर्ते कृतघ्ने च मन्दबुद्धौ न दीयते ॥ ६ ॥

1720

ब्राह्मणाय धनुर्देयं खड्गं वै क्षत्रियाय च ।
वैश्याय दापयेत्कुन्तं गदां शूद्रस्य दापयेत् ॥ ७ ॥

1721

धनुश्चक्रं च कुन्तं च खड्गं च च्छुरिका गदा ।
सप्तमं बाहुयुद्धं स्यादेवं युद्धानि सप्तधा ॥ ८ ॥

1722

आचार्यः सप्तयुद्धः स्याच्चतुर्युद्धस्तु भार्गवः ।
द्वाभ्यां चैव भवेद्योध एकेन गणको भवेत् ॥ ९ ॥

1723

हस्तः पुनर्वसुः पुष्यो रोहिणी चोत्तरात्रयम् ।
अनुराधाश्विनी चैव रेवती दशमी तथा ॥ १० ॥

1724

जन्मस्थे च तृतीये च षष्ठे वै सप्तमे तथा ।
दशमैकादशे चन्द्रे सर्वकर्माणि कारयेत् ॥ ११ ॥

1725

तृतीया पञ्चमी चैव सप्तमी दशमी तथा ।
त्रयोदशी द्वादशी च तिथयस्तु शुभा मताः ॥ १२ ॥

1726

सूर्यवारः शुक्रवारो गुरुवारस्तथैव च ।
एतद्वारत्रयं धन्यं प्रारम्भे शस्त्रकर्मणाम् ॥ १३ ॥

1727

एभिर्दिनैस्तु शिष्याय गुरुः शस्त्राणि दापयेत् ।
संतर्प्य दानहोमाभ्यां सुरान्वेदविधानतः ॥ १४ ॥

1728

ब्राह्मणान्भोजयेत्तत्र कुमारीश्चाप्यनेकशः ।
तापसानर्चयेद्भक्त्या ये चान्ये शिवयोगिनः ॥ १५ ॥

1729

अन्नपानादिभिश्चैव वस्त्रालंकारभूषणैः ।
गन्धमाल्यैर्विचित्रैश्च गुरुं तत्र प्रपूजयेत् ॥ १६ ॥

1730

कृतोपवासः शिष्यस्तु मृगाजिनपरिग्रहः ।
बद्धाञ्जलिपुटस्तत्र याचयेद्गुरुतो धनुः ॥ १७ ॥

1731

अङ्गन्यासस्ततः कार्यः शिवोक्तः सिद्धिमिच्छता ।
आचार्येण च शिष्यस्य पापघ्नो विघ्ननाशनः ॥ १८ ॥

1732

शिखास्थाने न्यसेदीशं बाहुयुग्मे च केशवम् ।
ब्रह्माणं नाभिकूपे तु जङ्घयोश्च गणाधिपम् ॥ १९ ॥

1733

ॐ ह्रीं शिखास्थाने शंकराय नमः ।
ॐ ह्रीं बाह्वोः केशवाय नमः ।
ॐ ह्रीं नाभिमध्ये ब्रह्मणे नमः ।
ॐ ह्रीं जङ्घयोर्गणपतये नमः ।

1734

ईदृशं कारयेन्न्यासं येन श्रेयो भविष्यति ।
अन्येपि दुष्टमन्त्रेण न हिंसन्ति कदाचन ॥ २० ॥

1735

शिष्याय मानुषं चापं धनुर्मन्त्राभिमन्त्रितम् ।
काण्डात्काण्डाभिमन्त्रेण दद्याद्वेदविधानतः ॥ २१ ॥

1736

प्रथमं पुष्पवेधं च फलहीनेन पत्त्रिणा ।
ततः फलयुतेनैव मत्स्यवेधं च कारयेत् ॥ २२ ॥

1737

मांसवेधं ततः कुर्यादेवं वेधो भवेत्त्रिधा ।
एतैर्वेधैः कृतैः पुंसां शराः स्युः सर्वसाधकाः ॥ २३ ॥

1738

वेधने चैव मांसस्य शरपातो यदा भवेत् ।
पूर्वदिग्भागमाश्रित्य तदा स्याद्विजयी सुखी ॥ २४ ॥

1739

दक्षिणे कलहो घोरो विदेशगमनं पुनः ।
पश्चिमे धनधान्यं च सर्वं चैवोत्तरे शुभम् ॥ २५ ॥

1740

ऐशान्यां पतनं दुष्टं विदिशोन्याश्च शोभनाः ।
हर्षपुष्टिकराश्चैव सिद्धिदाः शस्त्रकर्मणि ॥ २६ ॥

1741

एवं वेधत्रयं कुर्याच्छङ्खदुन्दुभिनिःस्वनैः ।
ततः प्रणम्य गुरवे धनुर्बाणान्निवेदयेत् ॥ २७ ॥

## अथ चापप्रमाणम् ।

1742

प्रथमं यौगिकं चापं युद्धचापं द्वितीयकम् ।
निजबाहुबलान्मानात्किंचिदूनं शुभं धनुः ॥ २८ ॥

1743

वरं प्राणाधिको धन्वी न तु प्राणाधिकं धनुः ।
धनुषा पीड्यमानस्तु धन्वी लक्ष्यं न पश्यति ॥ २९ ॥

1744

अतो निजबलोन्मानं चापं स्याच्छुभकारकम् ।
देवानामुत्तमं चापं ततो न्यूनं च मानवम् ॥ ३० ॥

1745

अर्धपञ्चमहस्तं तु श्रेष्ठं चापं प्रकीर्तितम् ।
तद्विज्ञेयं धनुर्दिव्यं शंकरेण धृतं पुरा ॥ ३१ ॥

1746

तस्मात्परशुरामेण ततो द्रोणेन धारितम् ।
द्रोणाद्गृहीतं पार्थेन ततः सात्यकिना धृतम् ॥ ३२ ॥

1747

कृते युगे महादेवस्त्रेतायां चापि राघवः ।
द्वापरे द्रोणविप्रश्च दैवं चापमधारयत् ॥ ३३ ॥

1748

चतुर्विंशाङ्गुलो हस्तश्चतुर्हस्तं धनुः स्मृतम् ।
तद्धवेन्मानवं चापं सर्वलक्षणसंयुतम् ॥ ३४ ॥

1749

त्रिपर्व पञ्चपर्वं च सप्तपर्वं प्रकीर्तितम् ।
नवपर्वं च कोदण्डं चतुर्धा शुभकारकम् ॥ ३५ ॥

1750

चतुःपर्वं च षट्पर्वं अष्टपर्वं विवर्जयेत् ।
केषांचिच्च भवेच्चापं वितस्तिनवसंमितम् ॥ ३६ ॥

1751

अतिजीर्णमपक्वं च ज्ञातिधृष्टं तथैव च ।
दग्धं छिद्रं न कर्तव्यं बाह्याभ्यन्तरहस्तकम् ॥ ३७ ॥

1752

गुणहीनं गुणाक्रान्तं काण्डदोषसमन्वितम् ।
गलग्रन्थि न कर्तव्यं तलमध्ये तथैव च ॥ ३८ ॥

1753

अपक्वं भङ्गमायाति अतिजीर्णं तु कर्कशम् ।
ज्ञातिघृष्टं तु सोद्वेगं कलहो बान्धवैः सह ॥ ३९ ॥

1754

दग्धेन दह्यते वेश्म छिद्रं युद्धविनाशनम् ।
बाह्ये लक्ष्यं न लभ्येत तथैवाभ्यन्तरेपि वा ॥ ४० ॥

1755

हीने तु संधिते बाणे संग्रामे भङ्गकारकम् ।
आक्रान्ते तु पुनः क्वापि न लक्ष्यं प्राप्यते दृढम् ॥ ४१ ॥

1756
गलग्रन्थि तलग्रन्थि धनहानिकरं धनुः ।
एभिर्दोषैर्विनिर्मुक्तं सर्वकार्यकरं स्मृतम् ॥ ४२ ॥

1757
शार्ङ्गं पुनर्धनुर्देव्यं विष्णोः परममायुधम् ।
वितस्तिसप्तसंमानं निर्मितं विश्वकर्मणा ॥ ४३ ॥

1758
न च स्वर्गे न पाताले न भूमौ कस्यचित्करे ।
तद्धनुर्वशमायाति मुक्त्वैकं पुरुषोत्तमम् ॥ ४४ ॥

1759
पौरुषेयं तु यच्छार्ङ्गं बहुवत्सरशोषितम् ।
वितस्तिभिः सार्धषड्भिर्मितं सर्वार्थसाधनम् ॥ ४५ ॥

1760
प्रायो योग्यं धनुः शार्ङ्गं गजारोहाश्वसादिनाम् ।
रथिनां च पदातीनां वांशं चापं प्रकीर्तितम् ॥ ४६ ॥

## अथ गुणलक्षणानि ।

1761
गुणानां लक्षणं वक्ष्ये यादृशं कारयेद्गुणम् ।
पट्टसूत्रो गुणः कार्यः कनिष्ठामानसंमितः ॥ ४७ ॥

1762
धनुःप्रमाणो निःसन्धिः शुद्धैस्त्रिगुणतन्तुभिः ।
वर्तितः स्याद्गुणः श्लक्ष्णः सर्वकर्मसहो युधि ॥ ४८ ॥

1763
अभावे पट्टसूत्रस्य हारिणी स्नायुरिष्यते ।
गुणार्थमथवा ग्राह्याः स्नायवो महिषीगवाम् ॥ ४९ ॥

1764
तत्कालहतगोकर्णचर्मणा छागलेन वा ।
निर्लोम्ना तन्तुरूपेण कुर्याद्वा गुणमुत्तमम् ॥ ५० ॥

1765

पञ्चविंशत्वचा कार्यो गुणस्तु स्थावरो दृढः ।
षट्सूत्रेण संनद्धः सर्वकर्मसहो युधि ॥ ५१ ॥

1766

प्राप्ते भाद्रपदे मासि त्वगर्कस्य प्रशस्यते ।
तस्यास्तत्र गुणः कार्यः पवित्रः स्थावरो दृढः ॥ ५२ ॥

1767

वृत्तार्कसूत्रतन्तूनां हस्तास्त्वष्टादश स्मृताः ।
सद्वृत्तं त्रिगुणं कार्यं प्रमाणोयं गुणे स्मृतः ॥ ५३ ॥

## अथ शरलक्षणानि ।

1768

अतः परं प्रवक्ष्यामि शराणां लक्षणं शुभम् ।
स्थूलं न चातिसूक्ष्मं च न पक्वं न कुभूमिजम् ।
हीनग्रन्थिविदीर्णं च वर्जयेदीदृशं शरम् ॥ ५४ ॥

1769

पूर्णग्रन्थि सुपक्वं च पाण्डुरं समयाहृतम् ।
कठिनं वर्तुलं काण्डं गृह्णीयात्सुप्रदेशजम् ॥ ५५ ॥

1770

द्वौ हस्तौ मुष्टिहीनौ तु दैर्घ्ये स्थौल्ये कनिष्ठिका ।
विधेया शरमानेषु यन्त्रेष्वाकर्षयेत्ततः ॥ ५६ ॥

1771

कङ्कहंसशशादानां मत्स्यादक्रौञ्चकेकिनाम् ।
गृध्राणां कुक्कुटानां च पक्षा एतेषु शोभनाः ॥ ५७ ॥

1772

एकैकस्य शरस्यैव चतुष्पक्षाणि योजयेत् ।
षडङ्गुलप्रमाणेन पक्षच्छेदं च कारयेत् ॥ ५८ ॥

1773

दशाङ्गुलमिताः पक्षाः शार्ङ्गचापस्य मार्गणे ।
योज्या दृढाश्चतुःसंख्याः संनद्धाः स्नायुतन्तुभिः ॥ ५९ ॥

1774

शराश्च त्रिविधा ज्ञेयाः स्त्री पुमांश्च नपुंसकः ।
अग्रे स्थूलो भवेन्नारी पश्चात्स्थूलो भवेत्पुमान् ॥ ६० ॥

1775

समं नपुंसकं ज्ञेयं तल्लक्ष्यार्थं प्रशस्यते ।
दूरापातं युवत्या च पुरुषो भेदयेद्दृढम् ॥ ६१ ॥

## अथ फललक्षणानि ।

1776

फलं तु शुद्धलोहस्य सुधारं तीक्ष्णमक्षतम् ।
योजयेद्व्रणलेपेन शरे पक्षानुमानतः ॥ ६२ ॥

1777

आरामुखं क्षुरप्रं च गोपुच्छं चार्धचन्द्रकम् ।
सूचीमुखं च भल्लं च वत्सदन्तं द्विभल्लकम् ॥ ६३ ॥

1778

कर्णिकं काकतुण्डं च तथान्यान्यप्यनेकशः ।
फलानि देशदेशेषु भवन्ति बहुरूपतः ॥ ६४ ॥

1779

आरामुखेन वै चर्म क्षुरप्रेण च कार्मुकम् ।
सूचीमुखेन कवचमर्धचन्द्रेण मस्तकम् ॥ ६५ ॥

1780

भल्लेन हृदयं वेध्यं द्विभल्लेन गुणः शरः ।
लोहं च काकतुण्डेन लक्ष्यं गोपुच्छकेन च ॥ ६६ ॥

1781

अन्यद्गोपुच्छकं ज्ञेयं शुद्धकाष्ठविनिर्मितम् ।
मुखे च लोहकण्टेन वेध्यं त्र्यङ्गुलसंमितम् ॥ ६७ ॥

## अथ फलपायनम् ।

1782

फलस्य पायनं वक्ष्ये दिव्यौषधिविलेपनैः ।
येन दुर्भेद्यवर्माणि भेदयेत्तरुपर्णवत् ॥ ६८ ॥

1783

पिप्पली सैन्धवं कुष्ठं गोमूत्रेण तु पेषयेत् ।
अनेन लेपयेच्छस्त्रं लिप्तं चाग्नौ प्रतापयेत् ॥ ६९ ॥

1784

अविशीतमनाविद्धं पीतनष्टं तथौषधम् ।
ततो निर्वापितं तैले लोहं तत्र विशिष्यते ॥ ७० ॥

1785

पञ्चभिर्लवणैः पिष्टैर्मधुसिक्तैः ससर्षपैः ।
एभिः प्रलेपयेच्छस्त्रं लिप्तं चाग्नौ प्रतापयेत् ॥ ७१ ॥

1786

शिखिग्रीवानुवर्णाभं तप्तपीतं तथौषधम् ।
ततस्तु विमलं तोयं पाययेच्छस्त्रमुत्तमम् ॥ ७२ ॥

## अथ नाराचनालीकौ ।

1787

सर्वलोहास्तु ये बाणा नाराचास्ते प्रकीर्तिताः ।
पञ्चभिः पृथुलैः पक्षैर्युक्ताः सिद्ध्यन्ति कस्यचित् ॥ ७३ ॥

1788

नालीका लघवो बाणा नलयन्त्रेण नोदिताः ।
अत्युच्चदूरपातेषु दुर्गयुद्धेषु ते मताः ॥ ७४ ॥

## अथ स्थानमुष्ट्याकर्षणलक्षणानि ।

1789

स्थानान्यष्टौ विधेयानि योजने भिन्नकर्मणाम् ।
मुष्टयः पञ्च समाख्याता व्यायाः पञ्च प्रकीर्तिताः ॥ ७५ ॥

1790

अग्रतो वामपादं च दक्षिणं जानु कुञ्चितम् ।
आलीढं तु प्रकर्तव्यं हस्तद्वयसविस्तरम् ॥ ७६ ॥

1791

प्रत्यालीढं तु कर्तव्यं सव्यं चैवानुकुञ्चितम् ।
दक्षिणं च पुरस्तद्वद्दूरपाते विशिष्यते ॥ ७७ ॥

1792

पादौ सुविस्तरौ कार्यौ समौ हस्तप्रमाणतः ।
विशाखस्थानकं ज्ञेयं कूटलक्ष्यस्य वेधने ॥ ७८ ॥

1793

समपादे समौ पादौ निष्कम्पौ च सुसंगतौ ।
असमे च पुरो वामो हस्तमात्रे नतं वपुः ॥ ७९ ॥

1794

आकुञ्चितोरू द्वौ यत्र जानुभ्यां धरणिं गतौ ।
दर्दुरक्रममित्याहुः स्थानकं दृढभेदने ॥ ८० ॥

1795

सव्यं जानु गतं भूमौ दक्षिणं च सकुञ्चितम् ।
अग्रतो यत्र दातव्यं तं विद्याद्गरुडक्रमम् ॥ ८१ ॥

1796

पद्मासनं प्रसिद्धं तु उपविश्य यथाक्रमम् ।
धन्विनां तत्तु विज्ञेयं स्थानकं शुभलक्षणम् ॥ ८२ ॥

अथ गुणमुष्टयः ।

1797

पताका वज्रमुष्टिश्च सिंहकर्णी तथैव च ।
मत्सरी काकतुण्डी च योजनीया यथाक्रमम् ॥ ८३ ॥

1798

दीर्घा तु तर्जनी यत्र आश्रिताङ्गुष्ठमूलकम् ।
पताका सा च विज्ञेया नलिका दूरमोक्षणे ॥ ८४ ॥

1799

तर्जनी मध्यमामध्यमङ्गुष्ठो विशते यदि ।
वज्रमुष्टिस्तु सा ज्ञेया स्थूले नाराचमोक्षणे ॥ ८५ ॥

1800

अङ्गुष्ठनखमूले तु तर्जन्यग्रं सुसंस्थितम् ।
मत्सरी सा च विज्ञेया चित्रलक्ष्यस्य वेधने ॥ ८६ ॥

1801

अङ्गुष्ठाग्रे तु तर्जन्या मुखं यत्र निवेशितम् ।
काकतुण्डी च विज्ञेया सूक्ष्मलक्ष्येषु योजिता ॥ ८७ ॥

## अथ धनुर्मुष्टिसंधानम् ।

1802

संधानं त्रिविधं प्रोक्तमध ऊर्ध्वं समं तथा ।
योजयेत्त्रिप्रकारं हि कार्येष्वपि यथाक्रमम् ॥ ८८ ॥

1803

अधश्च दूरपातित्वं समे लक्ष्यं सुनिश्चितम् ।
दृढस्फोटं प्रकुर्वीत ऊर्ध्वसंस्थानयोगतः ॥ ८९ ॥

## अथ व्यायाः ।

1804

कैशिकः केशमूले चेच्छरः भृङ्गे च सात्त्विकः ।
श्रवणे वत्सकर्णश्च ग्रीवायां भरतो भवेत् ॥ ९० ॥

1805

अंसके स्कन्धनामा च व्यायाः पञ्च प्रकीर्तिताः ।
कैशिकश्चित्रयुद्धेषु अधोलक्ष्येषु सात्त्विकः ॥ ९१ ॥

1806

वत्सकर्णः स विज्ञेयो भरतो दृढभेदने ।
दृढभेदे च दूरे च स्कन्धनामानमुद्दिशेत् ॥ ९२ ॥

## अथ लक्ष्यम् ।

1807

लक्ष्यं चतुर्विधं ज्ञेयं स्थिरं चैव चलं तथा ।
वेधयेत्त्रिप्रकारं तु स्थिरवेधी स उच्यते ॥ ९३ ॥

1808

आत्मानं सुस्थिरं कृत्वा लक्ष्यं चैव स्थिरं बुधः ।
वेधयेच्चित्रप्रकारं तु स्थिरवेधी स उच्यते ॥ ९४ ॥

1809

चलं तु वेधयेद्यस्तु आत्मना स्थिरसंस्थितः ।
चललक्ष्यं तु तत्प्रोक्तमाचार्येण सुधीमता ॥ ९५ ॥

1810

धन्वी तु चलते यत्र स्थिरलक्ष्ये समाहितः ।
चलाचलं भवेत्तत्र अप्रमेयमनिन्दितम् ॥ ९६ ॥

1811

उभावेव चलौ यत्र लक्ष्यं चापि धनुर्धरः ।
तद्विज्ञेयं द्वयचलं भ्रमेणैव हि साध्यते ॥ ९७ ॥

1812

भ्रमेणास्खलितं लक्ष्यं दूरं च बहुभेदनम् ।
भ्रमेण कठिना मुष्टिः शीघ्रसंधानमाप्यते ॥ ९८ ॥

1813

भ्रमेण चित्रयोधित्वं भ्रमेण प्राप्यते जयः ।
तस्माद्गुरुसमक्षं हि भ्रमः कार्यो विजानता ॥ ९९ ॥

1814

प्रथमं वामहस्तेन यः भ्रमं कुरुते नरः ।
तस्य चापक्रियासिद्धिरचिरादेव जायते ॥ १०० ॥

1815

वामहस्ते तु संसिद्धे पश्चाद्दक्षिणमारभेत् ।
उभाभ्यां च भ्रमं कुर्याच्चारावैश्च शरैस्तथा ॥ १०१ ॥

1816

वामेनैव भ्रमं कुर्यात्सुसिद्धे दक्षिणे करे ।
विशाखेनासमेनैव तथा व्याये च कौशिके ॥ १०२ ॥

1817

उदिते भास्करे लक्ष्यं पश्चिमायां निवेशयेत् ।
अपराह्णे च कर्तव्यं लक्ष्यं पूर्वदिगाश्रितम् ॥ १०३ ॥

1818

उत्तरेण सदा कार्यं प्राणस्य न विरोधकम् ।
संग्रामेण विना कार्यं न लक्ष्यं दक्षिणामुखम् ॥ १०४ ॥

1819

षष्टिधन्वन्तरे लक्ष्यं ज्येष्ठलक्ष्यं प्रकीर्तितम् ।
चत्वारिंशन्मध्यमं च विंशतिश्च कनिष्ठकम् ॥ १०५ ॥

1820

शराणां कथितं ह्येतन्नाराचानामथोच्यते ।
चत्वारिंशच्च त्रिंशच्च षोडशैव भवेत्ततः ॥ १०६ ॥

1821

चतुःशतैश्च काण्डानां यो हि लक्ष्यं विसर्जयेत् ।
सूर्योदये चास्तमये स ज्येष्ठो धन्विनां भवेत् ॥ १०७ ॥

1822

त्रिंशतैर्मध्यमश्चैव द्विशताभ्यां कनिष्ठकः ।
लक्ष्यं च पुरुषोन्मानं कुर्याच्चन्द्रकसंयुतम् ॥ १०८ ॥

1823

ऊर्ध्ववेधी भवेज्ज्येष्ठो नाभिवेधी च मध्यमः ।
यः पादवेधी लक्ष्यस्य स कनिष्ठो मतो मया ॥ १०९ ॥

## अथानध्यायः ।

1824

अष्टमी च अमावास्या वर्जनीया चतुर्दशी ।
पूर्णिमार्धदिनं यावन्निषिद्धा सर्वकर्मसु ॥ ११० ॥

1825

अकाले गर्जिते देवे दुर्दिनं वाथवा भवेत् ।
पूर्वकाण्डहतं लक्ष्यमनध्यायं प्रचक्षते ॥ १११ ॥

1826
श्रमं च कुर्वतस्तत्र भुजंगो यदि दृश्यते ।
अथवा भज्यते चापं यदैव श्रमकर्मणि ॥ ११२ ॥

1827
वृत्त्यते वा गुणो यत्र प्रथमे बाणमोक्षणे ।
श्रमं तत्र न कुर्वीत शस्त्रे मतिमतां वरः ॥ ११३ ॥

## अथ श्रमक्रिया ।

1828
क्रियाकलापान्वक्ष्यामि श्रमसाध्याञ्शुचिष्मताम् ।
येषां विज्ञानमात्रेण सिद्धिर्भवति नान्यथा ॥ ११४ ॥

1829
प्रथमं चापमारोप्य चूलिकां बन्धयेत्ततः ।
स्थानकं तु ततः कृत्वा बाणोपरि करं न्यसेत् ॥ ११५ ॥

1830
तुलनं धनुषश्चैव कर्तव्यं वामपाणिना ।
आदानं च ततः कृत्वा संधानं च ततः परम् ॥ ११६ ॥

1831
सकृदाकृष्टचापेन भूमिवेधं तु कारयेत् ।
नमस्कुर्याच्छिवं विघ्नराजं गुरुधनुःशरान् ॥ ११७ ॥

1832
याचितव्या गुरोराज्ञा बाणस्याकर्षणं प्रति ।
प्राणवायुं प्रयत्नेन बाणेन सह पूरयेत् ॥ ११८ ॥

1833
कुम्भकेन स्थिरं कृत्वा हुंकारेण विसर्जयेत् ।
इत्यभ्यासक्रिया कार्या धन्विना सिद्धिमिच्छता ॥ ११९ ॥

1834
षण्मासात्सिद्ध्यते मुष्टिः शराः संवत्सरेण तु ।
नाराचास्तस्य सिद्ध्यन्ति यस्य तुष्टो महेश्वरः ॥ १२० ॥

1835

पुष्पवद्धारयेद्बाणं सर्पवत्पीडयेद्धनुः ।
धनवच्चिन्तयेल्लक्ष्यं यदीच्छेत्सिद्धिमात्मनः ॥ १२१ ॥

1836

क्रियामिच्छन्ति आचार्या दूरमिच्छन्ति भार्गवाः ।
राजानो दृष्टिमिच्छन्ति लक्ष्यमिच्छन्ति चेतरे ॥ १२२ ॥

1837

जनानां रञ्जनं येन लक्ष्यघातात्प्रजायते ।
हीनेनापीषुणा तस्मात्प्रशस्तं लक्ष्यवेधनम् ॥ १२३ ॥

## अथ लक्ष्यास्खलनविधिः ।

1838

विशाखस्थानके स्थित्वा समसंधानमाचरेत् ।
गोपुच्छमुखबाणेन सिंहकर्ण्या च मुष्टिना ॥ १२४ ॥

1839

आकर्षेत्कैशिकव्याये न शिखां चालयेत्ततः ।
पूर्वापरौ समौ कार्यौ समांसौ निश्चलौ करौ ॥ १२५ ॥

1840

चक्षुषी स्पन्दयेन्नैव दृष्टिं लक्ष्ये नियोजयेत् ।
मुष्टिनाच्छादितं लक्ष्यं शरस्याग्रे नियोजयेत् ॥ १२६ ॥

1841

मनो दृष्टिगतं ज्ञात्वा ततः काण्डं विसर्जयेत् ।
स्खलत्येवं कदाचिन्न लक्ष्ये योधो जितश्रमः ॥ १२७ ॥

## अथ शीघ्रसंधानम् ।

1842

आदानं चैव तूणीरात्संधानं कर्षणं तथा ।
क्षेपणं च त्वरायुक्तो बाणस्य कुरुते तु यः ।
नित्याभ्यासवशात्तस्य शीघ्रसंधानता भवेत् ॥ १२८ ॥

## अथ दूरपातित्वम् ।

1843

प्रत्यालीढे कृते स्थाने अधःसंधानमाचरेत् ।
मुष्टया पताकया बाणं स्त्रीचिह्नं दूरपातनम् ॥ १२९ ॥

## अथ दृढप्रहारिता ।

1844

दर्दुरक्रममास्थाय ऊर्ध्वसंधानमाचरेत् ।
स्कन्धव्यायेन वज्रस्य मुष्टया पुंमार्गणेन च ।
अत्यन्तसौष्ठवाद्बाह्वोर्जायते दृढवेधिता ॥ १३० ॥

## अथ हीनगतयः ।

1845

सूचीमुखा मीनपुच्छा भ्रमरी च तृतीयका ।
शराणां गतयस्तिस्रः प्रशस्ताः कथिता बुधैः ॥ १३१ ॥

1846

सूचीमुखगतिस्तस्य सायकस्य प्रजायते ।
पत्रं विलोमितं यस्य अथवा हीनपत्रकम् ॥ १३२ ॥

1847

कर्कशेन तु चापेन यः कृष्टो हीनमुष्टिना ।
मत्स्यपुच्छा गतिस्तस्य सायकस्य प्रकीर्तिता १३३ ॥

1848

भ्रमरी कथिता ह्येषा विद्वद्भिः भ्रमकर्मणि ।
ऋजुत्वेन विना याति क्षेप्यमाणस्तु सायकः ॥ १३४ ॥

## अथ बाणानां लक्ष्यस्खलनगतयः ।

1849

वामगा दक्षगा चैव ऊर्ध्वगाधोगमा तथा ।
चतस्रो गतयः प्रोक्ता बाणस्खलनहेतवः ॥ १३५ ॥

1850
कम्पते गुणमुष्टिस्तु मार्गणस्य हि पृष्ठतः ।
संमुखी स्याद्धनुर्मुष्टिस्तदा वामे गतिर्भवेत् ॥ १३६ ॥

1851
ग्रहणं शिथिलं यस्य ऋजुत्वेन विवर्जितम् ।
पार्श्वे तु दक्षिणं याति सायकस्य न संशयः ॥ १३७ ॥

1852
ऊर्ध्वं याति चापमुष्टिर्गुणमुष्टिरधो भवेत् ।
स मुक्तो मार्गणो लक्ष्याद्दूरं याति न संशयः ॥ १३८ ॥

1853
मोक्षणे चैव बाणस्य चापमुष्टिरधो भवेत् ।
गुणमुष्टिर्भवेदूर्ध्वं तदाधोगामिनी गतिः ॥ १३९ ॥

अथ शुद्धगतयः ।

1854
लक्ष्यबाणाग्रदृष्टीनां संगतिस्तु यदा भवेत् ।
तदानीमुज्झितो बाणो लक्ष्यान्न स्खलति ध्रुवम् ॥ १४० ॥

1855
निर्दोषः शब्दहीनश्च सममुष्टिद्वयोज्झितः ।
भिनत्ति दृढवेध्यानि सायको नास्ति संशयः ॥ १४१ ॥

1856
स्वाकृष्टस्तेजितो यश्च सुशुद्धो गाढमुक्तितः ।
नरनागाश्वकायेषु न स तिष्ठति मार्गणः ॥ १४२ ॥

1857
यस्य तृणसमा बाणा यस्येन्धनसमं धनुः ।
यस्य प्राणसमा मौर्वी स धन्वी धन्विनां वरः ॥ १४३ ॥

अथ दृढचतुष्कम् ।

1858
अयश्चर्म घटश्चैव मृत्पिण्डं च चतुष्टयम् ।
यो भिनत्ति हि तस्येषुर्वज्रेणापि न धार्यते ॥ १४४ ॥

1859

सार्धाङ्गुलप्रमाणेन लोहपात्राणि कारयेत् ।
तानि भित्त्वैकबाणेन दृढघाती भवेन्नरः ॥ १४५ ॥

1860

चतुर्विंशतिचर्माणि भिनत्त्येकेषुणा नरः ।
तस्य बाणो गजेन्द्रस्य कायं निर्भिद्य गच्छति ॥ १४६ ॥

1861

भ्राम्यज्जले घटो वेद्धुयश्चक्रे मृत्पिण्डकं तथा ।
भ्रमन्तं वेधयेद्यस्तु दृढभेदी स उच्यते ॥ १४७ ॥

1862

अयस्तु काकतुण्डेन चर्म आरामुखेन हि ।
मृत्पिण्डं च घटं चैव विध्येत्सूचीमुखेन हि ॥ १४८ ॥

## अथ चित्रविधिः ।

1863

बाणभङ्गं करावर्तं काष्ठच्छेदनमेव च ।
बिन्दुकं गोलकयुगं यो वेत्ति स जयी भवेत् ॥ १४९ ॥

1864

लक्ष्यस्थाने धृतं काण्डं ससुखं छेदयेत्ततः ।
किंचिन्मुष्टिं विधाय स्वां तिर्यङ्मिफलिकेषुणा ॥ १५० ॥

1865

संमुखं वा समायान्तं तिर्यक्छायं तमम्बरे ।
शरं शरेण यश्छिन्द्याद्बाणच्छेदी स जायते ॥ १५१ ॥

## अथ वराटिकावर्तः ।

1866

काष्ठेश्वकेशं संयम्य तत्र बद्ध्वा वराटिकाम् ।
हस्तेन भ्राम्यमाणां च यो हन्ति स धनुर्धरः ॥ १५२ ॥

## अथ काष्ठच्छेदनम् ।

1867

लक्ष्यस्थाने न्यसेत्काष्ठं सार्द्रं गोपुच्छसंनिभम् ।
यश्छिन्द्यात्तं क्षुरप्रेण काष्ठच्छेत्ता स जायते ॥१९३॥

## अथ बिन्दुकम् ।

1868

लक्ष्ये बिन्दुं न्यसेच्छुभ्रं शुभ्रबन्धूकपुष्पवत् ।
हन्ति तं बिन्दुकं यस्तु चित्रयोधी स जायते ॥ १९४ ॥

## अथ गोलकयुगचित्रविधिः ।

1869

काष्ठगोलयुगं क्षिप्तं दूरमूर्ध्वपुरःस्थितैः ।
अप्राप्तधारं पृष्ठेन गच्छेत्पुच्छमुखेन हि ॥ १९५ ॥

1870

यो हन्ति शरयुग्मेन शीघ्रसंधानयोगतः ।
स स्याद्धनुर्भृतां श्रेष्ठः पूजितः सर्वपार्थिवैः ॥ १९६ ॥

## अथ धावल्लक्ष्यम् ।

1871

रथस्थेन गजस्थेन हयस्थेन च पत्तिना ।
धावता वै भ्रमः कार्यो लक्ष्यं हन्तुं सुनिश्चितम् ॥१९७॥

## अथ शब्दवेधित्वम् ।

1872

लक्ष्यस्थाने न्यसेत्कांस्यपात्रं हस्तद्वयान्तरे ।
ताडयेच्छर्कराभिस्तच्छब्दः संजायते यथा ॥ १९८॥

1873

यत्रैवोत्पद्यते शब्दस्तं सम्यक्तत्र चिन्तयेत् ।
कर्णेन्द्रियमनोयोगाल्लक्ष्यंनिश्चयतां नयेत् ॥ १९९ ॥

1874

पुनः शर्करया तच्च ताडयेच्छब्दहेतवे ।
पुनर्निश्चयतां नेयं शब्दस्थानानुसारतः ॥ १६० ॥

1875

ततः किंचित्कृतं दूरे नित्यं नित्यं विधानतः ।
लक्ष्यं समभ्यसेद्भ्रान्ते शब्दव्यधनहेतवे ॥ १६१ ॥

1876

ततो बाणेन हन्यात्तदवधानेन तीक्ष्णधीः ।
एतच्च दुष्करं कर्म भाग्यैः कस्यापि सिद्ध्यति ॥ १६२ ॥

अथास्त्रविधिः ।

1877

एवं श्रमविधिं कुर्याद्यावत्सिद्धिः प्रजायते ।
श्रमे सिद्धे च वर्षासु नैव ग्राह्यं धनुः करे ॥ १६३ ॥

1878

पूर्वाभ्यासस्य शस्त्राणामविस्मरणहेतवे ।
मासद्वयं श्रमं कुर्यात्प्रतिवर्षं शरदृतौ ॥ १६४ ॥

1879

जाते वाश्वयुजे मासि नवमीदेवतादिने ।
पूजयेदीश्वरं चण्डीं गुरुं शस्त्राणि वाजिनः ॥ १६५ ॥

1880

विप्रेभ्यो दक्षिणां दत्त्वा कुमारीर्भोजयेत्ततः ।
देव्यै पशुबलिं दत्त्वा हृष्टो वादित्रमङ्गलैः ॥ १६६ ॥

1881

ततस्तु साधयेन्मन्त्रान्वेदोक्तांश्चागमोदितान् ।
अस्त्राणां कर्मसिद्ध्यर्थं जपहोमविधानतः ॥ १६७ ॥

1882

ब्राह्मं नारायणं शैवमैन्द्रं वायव्यवारुणे ।
आग्नेयं चापरास्त्राणि गुरुदत्तानि साधयेत् ॥ १६८ ॥

1883

मनोवाक्कर्मभिर्भाव्यं लब्धास्त्रेण शुचिष्मता ।
अपात्रमसमर्थं च घ्नन्त्यस्त्राणि कुपूरुषम् ॥ १६९ ॥

1884

प्रयोगं चोपसंहारं यो वेत्ति स धनुर्धरः ।
सामान्ये कर्मणि प्राज्ञो नैवास्त्राणि प्रयोजयेत् ॥ १७० ॥

## अथ शस्त्रवारणम् ।

1885

हस्तार्के लाङ्गलीकन्दं गृहीत्वा तस्य लेपतः ।
शूरस्यापि रणे पुंसो दर्पं हरति सत्वरः ॥ १७१ ॥

1886

गृहीतं योगनक्षत्रैरपामार्गस्य मूलकम् ।
लेपमात्रेण वीराणां सर्वशस्त्रनिवारणम् ॥ १७२ ॥

1887

अधःपुष्पी शङ्खपुष्पी लज्जालुर्गिरिकर्णिका ।
नीलिनी सहदेवा च पुत्रमार्जारिका तथा ॥ १७३ ॥

1888

विष्णुक्रान्ता च सर्वासां जटा ग्राह्या रवेर्दिने ।
बद्धा भुजे विलेपाद्वा काये शस्त्रौघवारिका ॥ १७४ ॥

1889

सर्पव्याघ्रादिसत्त्वानां भूतादीनां न जायते ।
भीतिस्तस्य स्थिता यस्य मातरोष्टौ शरीरके ॥ १७५ ॥

1890

गृहीतं हस्तनक्षत्रे चूर्णं छुच्छुन्दरीभवम् ।
तत्प्रभावाद्रजः पुंसः संमुखो नैति निश्चितम् ॥ १७६ ॥

1891

छुच्छुन्दरीश्रीफलपुष्पचूर्णै-
रालिप्तगात्रस्य नरस्य दूरात् ।

आघ्राय गन्धं द्विरदोत्तिमत्तो
मदं त्यजेत्केसरिणो यथोग्रम् ॥ १७७ ॥

1892

श्वेताद्रिकर्णिकामूलं पाणिस्थं वारयेद्गजम् ।
श्वेतकण्टारिकामूलं व्याघ्रादीनां भयं हरेत् ॥ १७८ ॥

1893

पुष्यार्कोत्पाटिते मूले पाठाया मुखसंस्थिते ।
देहे स्फुटति नो तीक्ष्णं मण्डलाग्रं रणे नृणाम् ॥ १७९ ॥

1894

गन्धार्या उत्तरं मूलं मुखस्थं संमुखागतम् ।
शस्त्रौघं वारयत्येव पुष्यार्के विधिना धृतम् ॥ १८० ॥

1895

शुभ्रायाः शरपुङ्खाया जटानीलीजटाथवा ।
भुजे शिरसि वक्त्रे वा स्थिता शस्त्रनिवारिका ।
भूपाहिचौरभीतिघ्नी गृहीता पुष्यभास्करे ॥ १८१ ॥

अथ संग्रामविधिः ।

1896

प्रथमं क्रियते स्नानं शुक्लवस्त्रावृतो भवेत् ।
मङ्गल्यगीतसंयुक्तो देवविप्रांश्च पूजयेत् ॥ १८२ ॥

1897

क्षेत्रपालस्य नाम्ना च बलिं दद्याद्दिशो दश ।
शस्त्राणि चापि संपूज्य रक्षामन्त्रं स्मरेत्ततः ॥ १८३ ॥

1898

ॐ शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके ।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च ॥ १८४ ॥

1899

प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे ।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ॥ १८९ ॥

1900

सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते ।
यानि चात्यन्तघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम् ॥ १९६ ॥

1901

खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेम्बिके ।
करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान्रक्ष सर्वतः ॥ १८७ ॥

1902

दिव्यौषधीनां लेपं च रक्षाबन्धं च कारयेत् ।
किंचिद्भुक्त्वा च पीत्वा च ततः संनाहमाचरेत् ॥ १८८ ॥

1903

सेनापतिं गजारोहानन्यांश्च सुभटांस्तथा ।
मुख्यानन्यानपि धनैर्वस्त्रैश्च परितोषयेत् ॥ १८९ ॥

1904

पूर्वं सारथिमारोप्य रथे सज्जेत्ततः स्वयम् ।
योजयेद्वाजिनः शुद्धान्सुसंतुष्टाञ्जितश्रमान् ॥ १९० ॥

1905

रथे च धारयेद्भद्रं कार्मुकाणां चतुष्टयम् ।
चतुःशतानि बाणानां तूणीरे च प्रयोजयेत् ॥ १९१ ॥

1906

खड्गं चर्म गदां शक्तिं परिघं मुद्गरं तथा ।
नाराचं परशुं कुन्तं पट्टिशादींश्च धारयेत् ॥ १९२ ॥

1907

न रथा न गजा यस्य सोध्वमेव समारुहेत् ।
कटिबद्धैकतूणीरः खड्गशक्तिधनुर्युतः ॥ १९३ ॥

1908

ततोर्जुनस्य नामानि विष्णुस्मरणपूर्वकम् ।
जपेत्ततः प्रतिष्ठेत चतुरङ्गबलैर्युतः ॥ १९४ ॥

1909

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः ।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥ १९५ ॥

1910

अर्जुनः फाल्गुनः पार्थः किरीटी श्वेतवाहनः ।
बीभत्सुर्विजयी कृष्णः सव्यसाची धनंजयः ॥ १९६ ॥

## अथाक्षौहिणीसंख्या ।

1911

खं तथा स्वरवस्विन्दुनेत्रैरक्षौहिणी मता ।
अक्षौहिण्यां संप्रदिष्टा रथानां वर्मधारिणाम् ।
संख्या गणिततत्त्वज्ञैः सहस्राण्येकविंशतिः ॥ १९७ ॥

1912

उपर्यष्टौ शतान्याहुस्तथा भूयश्च सप्ततिः ।
गजानां तु परीमाणमेतदेव विनिर्दिशेत् ॥ १९८ ॥

1913

ज्ञेयं लक्षं पदातीनां सहस्राणि तथा नव ।
शतानि त्रीणि पञ्चाशच्छूराणां शस्त्रधारिणाम् ॥ १९९ ॥

1914

पञ्चषष्टिसहस्राणि तथाश्वानां शतानि च ।
दशोत्तराणि षट् प्राहुः संख्यातत्त्वविदो जनाः ॥ २०० ॥

## अथ महाक्षौहिणी ।

1915

खद्वयं निधिवेदाक्षिचन्द्राक्ष्यग्निहिमांशुभिः ।
महाक्षौहिणिका प्रोक्ता संख्या गणितकोविदैः ॥२०१ ॥

1916

कोटचस्त्रयोदश प्रोक्ता लक्षाणामेकविंशतिः ।
चतुर्विंशत्सहस्राणि तथा नवशतानि च ॥ २०२ ॥

1917

महाक्षौहिणिकां प्राहुरिमां तत्त्वविदो जनाः ।
महाक्षौहिणिकायां तु रथाः कोटिमिताः स्मृताः ।
सप्तत्रिंशच्च लक्षाणि गीयन्ते तत्त्ववेदिभिः ॥ २०३ ॥

1918

द्वादशैव सहस्राणि चत्वार्येव शतानि च ।
प्रोक्तानि नवतिस्तद्वदेवमेव मतंगजाः ॥ २०४ ॥

1919

अश्वाश्चतुष्कोटिमिता लक्षाण्येकादशैव च ।
सप्तत्रिंशत्सहस्राणि तथा शतचतुष्टयम् ॥ २०५ ॥

1920

सप्ततिश्चैव संख्याताः प्रोच्यन्ते पत्तयस्ततः ।
षट्कोटचोशीतिलक्षाणि पञ्चाधिकमितानि च ॥ २०६ ॥

1921

द्विषष्टि च सहस्राणि तथा शतचतुष्टयम् ।
पञ्चाशदिति संख्यासा महाक्षौहिणिका बुधैः ॥ २०७ ॥

अथ व्यूहाविधिः ।

1922

मुखे रथा गजाः पृष्ठे तत्पृष्ठे च पदातयः ।
पार्श्वयोश्च हयाः कार्या व्यूहस्यायं विधिः स्मृतः ॥२०८॥

1923

अर्धचन्द्रं च चक्रं च शकटं मकरं तथा ।
कमलं श्रेणिकां गुल्मं व्यूहानेवं प्रकल्पयेत् ॥ २०९ ॥

## अथ युद्धविधिः ।

1924

ये राजपुत्राः सामन्ता आप्ताः सेवकजातयः ।
तान्सर्वानात्मनः पार्श्वे रक्षायै स्थापयेन्नृपः ॥ २१० ॥

1925

यस्मिन्कुले यः पुरुषः प्रधानः
स सर्वयत्नेन हि रक्षणीयः ।
तस्मिन्विनष्टे किल सारभूते
न नाभिभङ्गे ह्यरका वहन्ति ॥ २११ ॥

1926

क्षत्रसारभृतं शूरं शस्त्रज्ञमनुरागि चेत् ।
अपि स्वल्पं श्रिये सैन्यं वृथेयं मुण्डमण्डली ॥ २१२ ॥

1927

अपि पञ्चशतं शूरा मृद्नन्ति महतीं चमूम् ।
अथवा पञ्च षट् सप्त विजयन्तेनिवर्तिनः ॥ ॥ २१३ ॥

1928

धनुःसंगतिसंशुद्धा वाजिनो मुखदुर्बलाः ।
आकर्णपलिता योधाः संग्रामे जयवादिनः ॥ २१४ ॥

1929

परस्परानुरक्ता ये योधाः शार्ङ्गधनुर्धराः ।
युद्धज्ञास्तुरगारूढास्ते जयन्ति रणे रिपून् ॥ २१५ ॥

1930

एकः कापुरुषो दीर्णो दारयेन्महतीं चमूम् ।
तं दीर्णमनु दीर्यन्ते योधाः शूरतमा अपि ॥ २१६ ॥

1931

दुर्निवारतरा चैव प्रभग्ना महती चमूः ।
अपामिव महावेगस्त्रस्ता मृगगणा इव ॥ २१७ ॥

1932

यस्तु भग्नेषु सैन्येषु विद्रुतेषु निवर्तते ।
पदे पदेश्वमेधस्य लभते फलमक्षयम् ॥ २१८ ॥

1933

द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदिनौ ।
परिव्राड्योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः ॥ २१९ ॥

1934

यत्र यत्र हतः शूरः शत्रुभिः परिवेष्टितः ।
अक्षयं लभते लोकं यदि क्लीबं न भाषते ॥ २२० ॥

1935

मूर्छितं नैव विकलं नाशस्त्रं नान्ययोधिनम् ।
पलायमानं शरणं गतं चैव न हिंसयेत् ॥ २२१ ॥

1936

भीरुः पलायमानोपि नान्वेष्टव्यो बलीयसा ।
कदाचिच्छूरतां याति मरणे कृतनिश्चयः ॥ २२२ ॥

1937

संभृत्य महतीं सेनां चतुरङ्गां महीपतिः ।
व्यूहयित्वायतः शूरान्स्थापयेज्जयलिप्सया ॥ २२३ ॥

1938

अल्पायां वा महत्यां वा सेनायामिति निश्चयः ।
हर्षो योधगणस्यैको जयलक्षणमुच्यते ॥ २२४ ॥

1939

अन्वेतं वायवो यान्ति पृष्ठे भानुर्वयांसि च ।
अनुप्लवन्ते मेघाश्च यस्य तस्य रणे जयः ॥ २२५ ॥

1940

अपूर्णे नैव मर्तव्यं संपूर्णे नैव जीवति ।
तस्माद्धैर्यं विधातव्यं हन्तव्या परवाहिनी ॥ २२६ ॥

1941

जिते लक्ष्मीर्मृते स्वर्गः कीर्तिश्च धरणीतले ।
तस्माद्धैर्यं विधातव्यं हन्तव्या परवाहिनी ॥ २२७ ॥

एते शिवधनुर्वेदस्य भगवतो व्यासस्य च।

---

# अथ गान्धर्वशास्त्रम् ॥ ८९ ॥

1942

प्रणम्य सर्वदेवेशं शिवं ब्रह्मादिकांस्तथा ।
गान्धर्वशास्त्रसंक्षेपः सारतोयं मयोच्यते ॥ १ ॥

1943

यदुक्तं ब्रह्मणः स्थानं ब्रह्मग्रन्थिश्च यो मतः ।
तन्मध्ये संस्थितः प्राणः प्राणाद्वह्निसमुद्भवः ॥ २ ॥

1944

वह्निमारुतसंयोगान्नादः समुपजायते ।
न नादेन विना गीतं न नादेन विना स्वरः ।
न नादेन विना नृत्यं तस्मान्नादात्मकं जगत् ॥ ३ ॥

1945

पवनाज्जायते नादो नादतः स्वरसंभवः ।
स्वरात्संजायते रागः स रागो जनरञ्जकः ॥ ४ ॥

1946

पदस्थः स्वरसंघातस्तालेन सुमितस्तथा ।
प्रयुक्तश्चावधानेन गान्धर्वमभिधीयते ॥ ५ ॥

1947

तदेतन्नारदादिभ्यो दत्तमादौ स्वयंभुवा ।
नारदेन ततो नादः पृथिव्यामवतारितः ॥ ६ ॥

1948

मृगो वेत्ति शिशुर्वेत्ति वेत्ति गीतरसं फणी ।
यतो गीते विलीनाः स्युः सर्वथा चित्तवृत्तिभिः ॥ ७ ॥

1949

अपि ब्रह्मपरानन्दादिदमप्यधिकं ध्रुवम् ।
जहार नारदादीनां चित्तानि कथमन्यथा ॥ ८ ॥

## अथ सुगीतलक्षणानि ।

1950

सुस्वरं सरसं चैव सरागं मधुराक्षरम् ।
सालंकारप्रमाणं च षड्विधं गीतलक्षणम् ॥ ९ ॥

1951

स्वरेण पदसंयुक्तं छन्दसा च सुसंयुतम् ।
सुमात्रं च सुतालं च सुगीतं तेन भण्यते ॥ १० ॥

## अथ वाग्गेयकारकलक्षणानि ।

1952

वाङ्मातुरुच्यते गेयं धातुरित्यभिधीयते ।
वाचा गेयं च कुरुते यः स वाग्गेयकारकः ॥ ११ ॥

1953

शब्दानुशासनज्ञानमभिधानप्रवीणता ।
गणच्छन्दोनुवेदित्वमलंकारेषु कौशलम् ॥ १२ ॥

1954

तौर्यत्रितयचातुर्यं हृद्यशारीरपालिता ।
लयतालकलाज्ञानं विवेकोनेककाकुषु ॥ १३ ॥

1955

देशीरागेषु विज्ञत्वं वाक्पटुत्वं सभाजयः ।
इति वाग्गेयकारस्य गुणाः प्रतिनिरूपिताः ॥ १४ ॥

1956

अधमो मातुकारश्च धातुकारश्च मध्यमः ।
धातुमातुक्रियाकार उत्तमः परिकीर्तितः ॥ १५ ॥

1957

अधमो लक्षणज्ञः स्यान्मध्यमो लक्ष्यमाचरेत् ।
लक्ष्यलक्षणसंयुक्त उत्तमः परिकीर्तितः ॥ १६ ॥

अथ शिष्यकारः ।

1958

त्वरितः शिष्यको यस्तु सुकण्ठो मधुरस्वरः ।
रागतालसमोपेतः शिष्यकारः स उच्यते ॥ १७ ॥

अथ गायनलक्षणानि ।

1959

प्रबन्धगात्रनिष्णातो विविधालापकारकः ।
रागरागाङ्गभाषाङ्गक्रियाङ्गोपाङ्गकोविदः ।
गायनो गीतशास्त्रज्ञैर्भण्यते सर्वसंमतः ॥ १८ ॥

अथ गायनदोषाः ।

1960

कम्पितं भीतमुद्दृष्टमव्यक्तमनुनासिकम् ।
काकस्वरं शिरःस्थं च तथा स्थानविवर्जितम् ॥ १९ ॥

1961

विस्वरं विरसं चैव विश्लिष्टं विषमाहतम् ।
व्याकुलं तालहीनं च गातुर्दोषाश्चतुर्दश ॥ २० ॥

अथ सालगसूडः ।

1962

हिमवत्कन्यकाप्रीत्या देवदेवेन शंभुना ।
शुद्धरागान्विनिष्पीड्य सरसं सालगं कृतम् ॥ २१ ॥

1963

शुद्धरागसमुत्पन्नं छायालिङ्गमनोहरम् ।
अबलाबालगोपालक्षितिपालैस्तु गीयते ॥ २२ ॥

1964

आद्यो ध्रुवस्ततो मण्ठः प्रतिमण्ठो निसारुकः ।
अडतालस्ततो राग एकताली च संमता ॥ २३ ॥

अथैतेषु पूर्वं ध्रुवकलक्षणानि ।

1965

न विवेकं विना ज्ञानं ध्यानं नात्मरसं विना ।
श्रद्धया न विना दानं गीतं न ध्रुवकं विना ॥ २४ ॥

1966

उत्तमः षट्पदः प्रोक्तो मध्यमः पञ्चभिस्तथा ।
कनिष्ठस्तु चतुर्भिः स्यादेवं स्युर्ध्रुवकास्त्रिधा ॥ २५ ॥

1967

एकधातुर्द्विखण्डः स्याद्यत्रोद्ग्राहस्ततः परम् ।
तृतीयं किंचिदुच्चं स्यात्खण्डं गमकशोभनम् ॥ २६ ॥

1968

ततो द्विखण्ड आभोगस्तृतीयं तस्य खण्डकम् ।
उच्चं गमकयुक्तं वा स्वनाम्ना चाङ्कितं तु तत् ॥ २७ ॥

1969

उद्ग्राहस्याद्यखण्डे च न्यासः स ध्रुवको मतः ।
एवं हि षट्पदः प्रोक्त उत्तमो ध्रुवको बुधैः ॥ २८ ॥

1970

पञ्चपादस्य तूद्ग्राहे पादयुग्मं प्रशस्यते ।
तृतीयं चोपखण्ड स्याद्भिरभ्यस्तमिदं त्रयम् ॥ २९ ॥

1971

आभोगश्चैकखण्डः स्याद्भितीयं चोच्चखण्डकम् ।
तुल्यनामाङ्कितं चैतदिति मध्यमलक्षणम् ॥ ३० ॥

1972

चतुष्पादस्य तूद्ग्राहे पदैकं स्यात्ततः पदम् ।
किंचिदुच्चं द्वितीयं स्याद्भिरभ्यस्तमिदं द्वयम् ॥ ३१ ॥

1973

आभोगे च पदैकं स्यात्किंचिदुच्चं द्वितीयकम् ।
प्रभुनामाङ्कितं चैतत्कनिष्ठस्येति लक्षणम् ॥ ३२ ॥

1974

षण्णां पदानां वा वर्णनियमो वा द्वयोर्भवेत् ।
पदयोर्वर्णनियमो ध्रुवाणां हि द्विधा गतिः ॥ ३३ ॥

1975

पदद्वये यदा वर्णनियमः क्रियते बुधैः ।
तदा पदानि चान्यानि भवन्ति नियमं विना ॥ ३४ ॥

1976

एकादशाक्षरात्पादादेकैकाक्षरवर्धितैः ।
खण्डैर्ध्रुवाः षोडश स्युः षड्विंशत्यक्षरावधि ॥ ३५ ॥

1977

रसतालादिवर्णैश्च ध्रुवाणां लक्षणं शुभम् ।
प्रोक्तं रागार्णवे सर्वं संक्षेपादिह कथ्यते ॥ ३६ ॥

## अथ षोडशध्रुवाणां नामानि ।

1978

जयन्तः शेखरोत्साहौ ततो मधुरनिर्मलौ ।
कुन्तलः कमलश्चारो नन्दनश्चन्द्रशेखरः ॥ ३७ ॥

1979

कामदो विजयाख्यश्च कंदर्पजयमङ्गलौ ।
तिलको ललितश्चेति ध्रुवाः षोडश कीर्तिताः ॥ ३८ ॥

1980

आदितालो जयन्तः स्याच्छृङ्गाररससंयुतः ।
रुद्रसंख्याक्षरपदैरायुर्वृद्धिकरः परः ।
एक एव लघुर्यस्मिन्नादितालः स कथ्यते ॥ ३९ ॥

स यथा ।

1981

द्वादशाक्षरपादोन्यो भोगैकफलकृत्प्रभोः ।
हंसके च रसे वीरे गीयते शेखराह्वयः ।
लघुर्गुरुर्लघुर्यत्र स तालो हंसकः स्मृतः ॥४० ॥

स यथा ।ऽ।

1982

उत्साहः स्याद्रसे हास्ये ताले कन्दुकसंज्ञके ।
वंशाभिवृद्धिकृत्पादस्त्रयोदशमिताक्षरः ।
लघुद्वयं विरामान्तं ताले कन्दुकसंज्ञके ॥ ४१ ॥

स यथा ।।।ऽ

1983

गार्ग्यतालेन गीयेत कारुण्ये मधुरो ध्रुवः ।
अङ्गिर्द्विसप्तभिर्वर्णैरानन्दफलदः सदा ।
चतुर्द्रुतो विरामान्तस्तालोयं गार्ग्यसंज्ञकः ॥ ४२ ॥

स यथा ००००।ऽ

1984

क्रीडाताले ध्रुवः स स्यात्पक्षैर्वर्णाङ्गिनिर्मलः ।
शृङ्गाररससंयुक्तः श्रोतुस्तेजोभिवर्धनः ।
एक एव प्लुतो यस्मिन्क्रीडाताल: स कथ्यते ॥ ४३ ॥

स यथा । ऽ

1985

वर्णैः षोडशभिः पादः कुन्तलो लघुशेखरे ।
इष्टार्थदः शौर्यदः स्यादद्भुताख्यरसान्वितः ।
लघुर्गुरुर्भवेद्यत्र स भवेल्लघुशेखरः ॥ ४४ ॥

स यथा । ऽ

1986

वर्णैश्च सप्तदशभिरङ्गिः शृङ्गारके रसे ।
कमलो मलयाख्ये वै ह्यायुर्वृद्धिकरः परः ।
मलयाख्ये भवेत्ताले गुरुर्लघुरतो गुरुः ॥ ४५ ॥

स यथा ऽ।ऽ

1987

चारोष्टादशवर्णाङ्घ्रिर्यशोहर्षप्रदो ध्रुवः ।
फणिभाषायुतो वीररसे कन्दुकतालके ।
लघुद्वयं विरामान्तं ताले कन्दुकसंज्ञके ॥ ४६ ॥

स यथा ।।। ऽ

1988

नन्दद्वयेन्दुवर्णाङ्घ्रिर्नन्दनः सर्वसिद्धिदः ।
पूर्णः शृङ्गारवीराभ्यां कन्दुके च विधीयते ।
लघुद्वयं विरामान्तं ताले कन्दुकसंज्ञके ॥ ४७ ॥

1989

स यथा ।।। ऽ

कल्याणदो भवेद्वीरे ध्रुवकश्चन्द्रशेखरः ।
द्विदिग्वर्णपदं यत्र त्रिपुटे च विधीयते ।
द्रुतद्वन्द्वं लघुद्वन्द्वं ताले त्रिपुटसंज्ञके ॥ ४८ ॥

स यथा ०० ॥

1990

एकविंशतिवर्णाङ्घ्रिर्भवेच्छृङ्गारके रसे ।
कामदोभीष्टदः पुसां ताले तुरगलीलके ।
- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - ॥ ४९ ॥

स यथा

1991

विजयाख्यो ध्रुवः स स्याद्द्वाविंशत्यक्षराङ्घ्रिकः ।
संनिपातेन संयुक्तः शृङ्गारेभीष्टदो रसे ।
एक एव गुरुर्यत्र संनिपातः स कथ्यते ॥ ५० ॥

स यथा ऽ

1992

त्रयोविंशतिवर्णाङ्घ्रिर्ध्रुवः कंदर्पसंज्ञितः ।
वीरे वा करुणे वा स्यात्खण्डताले विधीयते ।
द्रुतमेकं भवेद्यत्र तालोयं खण्डसंज्ञितः ॥ ५१ ॥

स यथा ०

1993

द्विघ्नद्वादशवर्णाङ्घ्रिस्ताले वै झम्पके भवेत् ।
वीरशृङ्गाररसयोर्जयकृज्जयमङ्गलः ।
द्रुतद्वयं विरामान्तं लघुनैकेन झम्पकः ॥ ९२ ॥

स यथा ०० । ऽ ।

1994

पञ्चविंशाक्षरैः पादो यस्यासौ तिलकाह्वयः ।
ताले चाचपुटे ज्ञेयो वीरे वाप्यद्रुतेपि वा ।
ताले चाचपुटे ज्ञेयं गुरुर्लघुयुगं गुरुः ॥ ९३ ॥

स यथा ऽ ॥ ऽ

1995

यः षड्विंशतिवर्णाङ्घ्रिः स स्यात्सर्वार्थसिद्धिदः ।
ललितश्चञ्चपुटाख्ये ताले शृङ्गारपोषकः ।
ताले चञ्चपुटे ज्ञेयं गुरुद्वन्द्वं लघुप्लुते ॥ ९४ ॥

स यथा ऽऽ ॥ ऽ

## अथ मण्ठकलक्षणानि ।

1996

उद्ग्राहो ध्रुपदश्च स्यादाभोगस्तदनन्तरम् ।
नियमस्त्रिविधो ज्ञेयो मण्ठकस्य विचक्षणैः ॥ ९५ ॥

1997

जयप्रियः कलापश्च कमलः सुन्दरस्तथा ।
वल्लभो मङ्गलश्चेति षडेते मण्ठका मताः ॥ ९६ ॥

1998

लघुर्गुरुर्लघुर्यत्र स तालो हंसकः स्मृतः ।
तालश्चायं रसे वीरे कर्तव्यो जयमण्ठके ॥ ९७ ॥

हंसकतालः । ऽ ।

1999

रङ्गताले च विज्ञेयो लघुश्चैको गुरुद्वयम् ।
कलापो मण्डकस्तेन रसे रौद्राभिधानके ॥ ५८ ॥

रङ्गतालः । ऽऽ

2000

लघुद्वयं गुरुश्चैकस्तालोयं दर्पणः स्मृतः ।
अस्मिंस्ताले रसः शान्तः कमलो मण्डको भवेत् ॥ ५९ ॥

दर्पणतालः ॥ ऽ

2001

गुरुद्वन्द्वं लघुद्वन्द्वं ताले त्रिपुटसंज्ञके ।
सुन्दरो गीयते तेन वीरे चाप्यद्भुते रसे ॥ ६० ॥

त्रिपुटतालः ऽऽ ॥

2002

मलयाख्ये भवेत्ताले गुरुर्लघुरतो गुरुः ।
वल्लभो मण्डको ज्ञेयस्तालेस्मिन्करुणे रसे ॥ ६१ ॥

मलयतालः ऽ।ऽ

2003

गुरुर्लघुद्वयं यत्र भृङ्गतालः स कथ्यते ।
मङ्गलो मण्डको ज्ञेयो रसे चाद्भुतसंज्ञके ॥ ६२ ॥

भृङ्गतालः ऽ ॥

अथ प्रतिमण्डकलक्षणानि ।

2004

तारश्चाप्यमरश्चैव विचारः कुन्दसंज्ञकः ।
चत्वारः कथिता ह्येते प्रतिमण्डास्तु शंभुना ॥ ६३ ॥

2005

विरामान्तं द्रुतद्वन्द्वं गुरुश्चैकस्ततः परम् ।
सुरङ्गताले गातव्यस्तारश्च प्रतिमण्डकः ॥ ६४ ॥

सुरङ्गतालः । ऽ ०० ऽ

2006

गुरुरेको भवेद्यत्र संनिपातः स कथ्यते ।
अमरः प्रतिमण्ठोसौ विद्वद्भिस्तेन गीयते ॥ ६५ ॥

संनिपातः ऽ

2007

लघुद्वयं विरामान्तं ताले कन्दुकसंज्ञके ।
विचारो गीयते तेन विलम्बश्च लयो भवेत् ॥ ६६ ॥

कन्दुकः ।।।ऽ

2008

द्रुतमेकं भवेद्यत्र स तालः खण्डसंज्ञितः ।
द्रुतलयेन गातव्यः कुन्दश्च प्रतिमण्ठकः ॥ ६७ ॥

खण्डतालः ०

## अथ निःसारुकलक्षणानि ।

2009

कान्तारः समराख्यश्च वैकुण्ठो वाञ्छितस्तथा ।
विशालश्च तथा नन्दः षोढा निःसारुको भवेत् ॥ ६८ ॥

2010

लघुद्वयं विरामान्तं ताले कन्दुकनामनि ।
द्रुतलयेन गातव्यः कान्तारो भवति स्फुटम् ॥ ६९ ॥

कन्दुकः ।।। ऽ

2011

लघुद्वयं विरामान्तं ताले कन्दुकनामनि ।
समरो गीयते तेन मध्यमश्च लयो भवेत् ॥ ७० ॥

कन्दुकः ।।। ऽ

2012

द्रुतद्वन्द्वं गुरुद्वन्द्वं भवेत्ताले मुकुन्दके ।
अनेन गेयो वैकुण्ठो ह्यो निःसारुको भवेत् ॥ ७१ ॥

मुकुन्दः ०० ऽऽ

2013

लघुत्रयं द्रुतद्वन्द्वं ताले शरभलीलके ।
अयं निःसारुको ज्ञेयो वाञ्छितो वाञ्छितप्रदः ॥ ७२ ॥

शरभलीलः ।।। ००

2014

लघुत्रयं विरामान्तं ताले द्वितीयसंज्ञके ।
अनेनैव हि तालेन विशालश्च निसारुकः ॥ ७३ ॥

द्वितीयः ।।।। ऽ

2015

प्लुतमेकं भवेद्यत्र क्रीडातालः स कथ्यते ।
अनेन गीयते नन्दो नित्यं निःसारुकोत्तमः ॥ ७४ ॥

क्रीडातालः ।ऽ

## अथ अडतालल्क्षणानि ।

2016

शङ्खः कीलश्च विजयश्चारो निःशङ्क एव च ।
मकरन्दः परो ज्ञेय अडतालश्च षड्विधः ॥ ७५ ॥

2017

लघुर्गुरुश्च भवति लघुशेखरतालके ।
शङ्खो जमरतालश्च गीयते तेन कोविदैः ॥ ७६ ॥

लघुशेखरः । ऽ

2018

द्रुतद्वयं विरामान्तं लघुनैकेन संयुतम् ।
झम्पतालो भवेत्तेन गेयः शान्तो बुधोत्तमैः ॥ ७७ ॥

झम्पतालः ०० । ऽ ।

2019

द्रुतद्वयं विरामान्तं ताले तुरगलीलके ।
विजयो गीयते तेन गीतनृत्यविशारदैः ॥ ७८ ॥

तुरगलीलः ०० । ऽ

2020

उमा तिलकताले तु द्रुतौ लघुगुरू स्मृतौ ।
चाराख्यस्त्वडतालः स्याद्विद्विद्भिस्तेन गीयते ॥ ७९ ॥

उमातिलकः ०० । ऽ

2021

प्लुतमेकं द्रुतौ द्वौ च वनमालिनि तालके ।
निःशङ्कस्त्वडतालः स्याद्बुधैस्तेनैव गीयते ॥ ८० ॥

वनमाली । ऽ ००

2022

राजतालाभिधाने तु लघुर्द्रुतौ लघुस्ततः ।
अनेन तु समायुक्तो मकरन्दोऽतालकः ॥ ८१ ॥

राजतालः । ०० ।

## अथ रासकलक्षणानि ।

2023

चतुर्धा रासकः प्रोक्तो गीतवादित्रकोविदैः ।
विनोदो वरदो नन्दः कम्बुजश्चेति कीर्तितः ॥ ८२ ॥

2024

एक एव लघुर्यत्र आदितालः स कथ्यते ।
विनोदे रासकस्तेन श्रोतृणां च सुखावहः ॥ ८३ ॥

आदितालः ।

2025

लघुर्द्रुतौ गुरुर्यत्र तालोयं गजलीलकः ।
वरदो रासकस्तेन श्रोतृणां च सुखावहः ॥ ८४ ॥

गजलीलकः । ००ऽ

2026

प्लुतश्च गुरुरेकत्र तालो विद्याधरः स्मृतः ।
यत्रासौ रासको नन्दो गीयतेऽभ्युदयः शुभः ॥ ८५ ॥

विद्याधरः ।ऽ ऽ

2027

राजविनोदताले स्याद्गुरुद्वन्द्वमथ प्लुतः ।
रासकः कम्बुजस्तेन गीयते गीतकोविदैः ॥ ८६ ॥

राजविनोदः ऽऽ।ऽ

## अथ एकतालीलक्षणानि ।

2028

एकताली त्रिधा प्रोक्ता गीतवाद्यविशारदैः ।
रामा च चन्द्रिका तद्वद्विपुलेत्यथ लक्षणम् ॥ ८७ ॥

2029

द्रुतमेकं भवेद्यत्र तालोयं खण्डसंज्ञितः ।
रामा तेनैकताली तु गीयते गायनोत्तमैः ॥ ८८ ॥

खण्डतालः ०

2030

गुरुद्वयं भवेद्यत्र तालो ललितसंज्ञकः ।
चन्द्रिका चैकताली स्यात्तेन सौभाग्यदायिनी ॥ ८९ ॥

ललितः ऽऽ

2031

कोकिलाप्रियताले वै द्रुतत्रयमुदाहृतम् ।
विपुला चैकताली स्यात्तेन गीतज्ञसंमता ॥ ९० ॥

कोकिलाप्रियः ०००

2032

जयन्तश्च तथोत्साहो नन्दनश्चन्द्रशेखरः ।
कामदो विजयाख्यश्च कंदर्पजयमङ्गलौ ।
अष्टौ ध्रुवाः समाख्याता राजयोग्याः सदा बुधैः ॥ ९१ ॥

## अथ शुद्धसूडगीतनामानि ।

2033

एलाकरणढेकीभिर्वर्तन्या डूमडेन च ।
लम्भरासैकतालीभिः शुद्धसूडोष्टभिः स्मृतः ॥ ९२ ॥

2034

शुद्धसूडोन्यदेशेषु गीयते विरलैः क्वचित् ।
अतो न विस्तरो लोके दक्षिणेषु च गीयते ॥ ९३ ॥

## अथ रूपकम् ।

2035

उद्ग्राहश्चान्यधातुः स्याद्ध्रुवकश्चान्यधातुकः ।
मेलापकोन्यधातुः स्यादाभोगश्चान्यधातुकः ।
चतुर्धातुकमेतद्धि रूपकं कीर्त्यते बुधैः ॥ ९४ ॥

## अथ गमकम् ।

2036

स्फुरितं कम्पितं लीनं स्तिमितान्दोलितावपि ।
आहतं त्रिकभिन्नं च गमकं सप्तधा स्मृतम् ॥ ९५ ॥

## अथ प्रत्यन्तरम् ।

2037

उद्दिष्टं वस्तु रागादौ किंचिदाधिक्यचिन्तितम् ।
तद्धातुमातुनिष्पन्नं प्रत्यन्तरमितीरितम् ॥ ९६ ॥

2038

पूर्वरूपकसंसिद्धच्छायासंस्कृतरूपकम् ।
तत्स्थानप्रोच्चनीचं च खल्लोत्तारं प्रकीर्तितम् ॥ ९७ ॥

## अथ स्वरादिकथनम् ।

2039

सामवेदात्स्वरा जाताः स्वरेभ्यो ग्रामसंभवः ।
ग्रामेभ्यो जातयो जाता जातिभ्यो रागसंभवः ।
देशीरागास्त एवैते विख्याता देशरूढितः ॥ ९८ ॥

2040

ग्रामरागोद्भवा भाषा भाषाभ्यश्च विभाषिकाः ।
विभाषाभ्योपि संजातास्तथैवान्तरभाषिकाः ॥ ९९ ॥

2041

सप्तस्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्छनास्त्वेकविंशतिः ।
द्वाविंशतिश्च श्रुतय एतेभ्यो रागसंभवः ॥ १०० ॥

2042

षड्जर्षभकगान्धारमध्यपञ्चमधैवताः ।
निषादश्चेत्यमी सप्त तन्त्रीकण्ठोत्थिताः स्वराः ॥ १०१ ॥

2043

षड्जादयः स्वराः सप्त ग्रामौ च षड्जमध्यमौ ।
केचिद्गान्धारमप्याहुः स तु नेहास्ति भूतले ॥ १०२ ॥

2044

चतुर्दशैव श्रुतयस्तावन्मात्राश्च मूर्छनाः ।
गीयन्ते मानवैर्भूमावन्यास्तु त्रिदशालये ॥ १०३ ॥

2045

स्वयं यो राजते नादः स स्वरः परिकीर्तितः ।
स्वरैश्च निखिलं व्याप्तं तद्विज्ञेयं पृथक्पृथक् ॥ १०४ ॥

2046

उच्चैर्निषादगान्धारौ नीचैर्ऋषभधैवतौ ।
शेषास्तु स्वरिता ज्ञेयाः षड्जमध्यमपञ्चमाः ॥ १०५ ॥

2047

षड्जं वदेन्मयूरो हि ऋषभं चातको वदेत् ।
अजा वदति गान्धारं क्रौञ्चो वदति मध्यमम् ॥ १०६ ॥

2048

पुष्पसाधारणे काले कोकिलः पञ्चमं वदेत् ।
दर्दुरो धैवतं चैव निषादं च वदेद्गजः ॥ १०७ ॥

2049

हास्यशृङ्गारयोः कार्यौ स्वरौ पञ्चममध्यमौ ।
षड्जर्षभौ तथा ज्ञेयौ वीररौद्राद्भुते रसे ॥ १०८ ॥

2050

गान्धारश्च निषादश्च कर्तव्यौ करुणारसे ।
धैवतश्चैव कर्तव्यो बीभत्से सभयानके ॥ १०९ ॥

2051

चतुःश्रुतिस्त्रिःश्रुतिश्च द्विःश्रुतिश्च चतुःश्रुतिः ।
चतुःश्रुतिस्त्रिःश्रुतिश्च द्विःश्रुतिश्चेति ते स्वराः ॥ ११० ॥

अथ षट्त्रिंशत्प्रवर्तकरागा उच्यन्ते ।

2052

भैरवः पञ्चमो नाटो मल्लारो गौडमालवः ।
देशाखश्चेति षड्रागाः प्रोच्यन्ते लोकविश्रुताः ॥ १११ ॥

2053

वङ्गपालो गुणकरी मध्यमादिर्वसन्तकः ।
धनश्रीश्चेति पञ्चैते रागा भैरवसंश्रयाः ॥ ११२ ॥

2054

ललितो गुर्जरी देशी वराटी रामकृत्तथा ।
मता रागार्णवे रागाः पञ्चैते पञ्चमाश्रयाः ॥ ११३ ॥

2055

नटनारायणः पूर्वं गन्धारः सालगस्तथा ।
ततः केदारकर्णाटौ पञ्चैते नाटसंश्रयाः ॥ ११४ ॥

2056

मेघो मल्लारिका मालकौशिकः प्रतिमञ्जरी ।
आसावरी च पञ्चैते रागा मल्लारसंश्रयाः ॥ ११५ ॥

2057

हिन्दोलस्त्रिगुणा धानी गौडी कोलाहलस्तथा ।
पञ्चैते गौडनामानं रागमाश्रित्य संश्रिताः ॥ ११६ ॥

2058

भूपाली हरिपालश्च कामोदी धोरणिस्तथा ।
विलावली च पञ्चैते रागा देशाखसंश्रयाः ॥ ११७ ॥

2059

अन्ये च बहवो रागा जाता देशविशेषतः ।
मारूप्रभृतयो लोके ते च तद्देशिकाः स्मृताः ॥ ११८ ॥

2060

न रागाणां न तालानामन्तः कुत्रापि विद्यते ।
संतोषाय शिवस्यैते गेया बुधजनैः सदा ॥ ११९ ॥

2061

यथा नयति कैलासं नगं गानसरस्वती ।
तथा नयति कैलासं न गङ्गा न सरस्वती ॥ १२० ॥

अथ गणाः ।

2062

म्यरस्तजभ्नगैर्लान्तैरेभिर्दशभिरक्षरैः ।
समस्तं वाङ्मयं व्याप्तं त्रैलोक्यमिव विष्णुना ॥ १२१ ॥

2063

सानुस्वारो विसर्गान्तो दीर्घो युक्तपरश्च यः ।
वा पादान्तस्त्वसौ ग्वक्रो ज्ञेयोन्यो मातृको लृजुः॥१२२॥

2064

मस्त्रिगुरुस्त्रिलघुश्च नकारो
भादिगुरुस्तत आदिलघुर्यः ।
जो गुरुमध्यगतो र लमध्यः
सोन्तगुरुः कथितोन्तलघुस्तः ॥ १२३ ॥

2065

मो भूमिः श्रियमातनोति य जलं वृद्धिं र वह्निर्मूर्तिं
सो वायुः परदेशदूरगमनं त व्योम शून्यं फलम् ।
जः सूर्यो रुजमादधाति विपुलां भेन्दुर्यशो निर्मलं
नो नाकः सुखमच्युतं फलमिदं प्राहुर्गणानां पृथक् ॥१२४॥

## अथ वर्णप्रस्तारः ।

2066

पादे सर्वगुरावाद्यालघुं न्यस्य गुरोरधः ।
यथोपरि तथा शेषं भूयः कुर्यादमुं विधिम् ॥ १२५ ॥

2067

ऊने दद्याद्गुरूनेव यावत्सर्वलघुर्भवेत् ।
प्रस्तारोयं समाख्यातश्छन्दोविचितिवेदिभिः ॥ १२६ ॥

## अथ लघुगुरुप्लुतद्रुतलक्षणानि ।

2068

लघुः शुद्धो गुरुर्वक्र उभाभ्यां च प्लुतो भवेत् ।
द्रुतस्तु बिन्दुरूपः स्यादिति सर्वत्र निश्चयः ॥ १२७ ॥

2069

एकमात्रो लघुः प्रोक्तो द्विमात्रश्च गुरुः स्मृतः ।
प्लुतस्त्रिमातृको ज्ञेयो द्रुतः स्यादर्धमातृकः ॥ १२८ ॥

2070

लघोर्गुरोः प्लुतस्यापि भवेत्तालः पृथक्पृथक् ।
मिलितानामपि भवेत्प्रस्तारस्तस्य कथ्यते ॥ १२९ ॥

## अथ तालप्रस्तारः ।

2071

ताले पादस्थिता मात्रा गणयेल्लघुरूपिकाः ।
तावतीभिस्तु मात्राभिः प्रस्तारो निखिलो भवेत् ॥ १३० ॥

2072

ताले पादस्थिते मूलादाद्यादीनमथो लिखेत् ।
तच्च मध्याद्वयं ज्ञेयं तत्पृष्ठे स्याद्यथोपरि ॥ १३१ ॥

2073

मध्यं पृष्ठाश्रितैः सार्धं मात्राभिर्गणयेद्बुधः ।
मध्यस्थाये च विलिखेन्मात्राः पूरणहेतवे ॥ १३२ ॥

2074

पूरणाय विधिश्चैष पूर्वं स्थूलास्ततः कृशाः ।
बहुमात्रो भवेत्स्थूलस्ततो हीनः कृशो भवेत् ॥ १३३ ॥

2075

द्रुतस्तु न भवेन्मूलमन्ये मूलाह्वया मताः ।
एवं पुनःपुनः कुर्याद्यावत्सर्वद्रुतो भवेत् ॥ १३४ ॥

## अथ संगीतलक्षणापहारः ।

2076

गीते वाद्ये च नृत्ये च शक्तिः साधारणो गुणः ।
सा चेदस्ति किमन्येन दूषणेन गुणेन च ॥ १३५ ॥

## अथ गायनार्थमौषधानि कथ्यन्ते ।

2077

गुडूच्यपामार्गविडङ्गशङ्खिनी-
वचाभयाकुष्ठशतावरीसमाः ।
घृतेन लीढाः प्रकरोति मानवं
त्रिभिर्दिनैर्गीतसहस्रधारिणम् ॥ १३६ ॥

2078

देवदालीदलोद्भूतरसो मधुघृतान्वितः ।
पीतः पथ्याशिनः कुर्याद्गीते मुखरतां भृशम् ॥ १३७ ॥

2079

वासा ब्राह्मी वचा कुष्ठं पिप्पली मधु सैन्धवम् ।
सप्तरात्रप्रयोगेण किंनरैः सह गीयते ॥ १३८ ॥

2080

वृद्धदारुकमूलं हि यो लिहेन्मधुसर्पिषा ।
सप्ताहं क्षीरयूषाशी किंनरैः सह गीयते ॥ १३९ ॥

2081

बीजपूरदलं जातीपत्रं जम्बीरजं तथा ।
एलाधान्याकलाजांश्च पिप्पल्या सह चूर्णयेत् ॥
मधुना चावलीढं तु कण्ठं सुस्वरतां नयेत् ॥ १४० ॥

एते रागार्णवाच्छन्दःशास्त्रेभ्य आयुर्वेदाच्च ।

# अथ वृक्षायुर्वेदः ॥ ८२ ॥

## उपवनविनोदः ।

2082

पुंसां सर्वसुखैकसाधनफलाः सौन्दर्यगर्वोद्धुर-
क्रीडालोलविलासिनीजनमनःस्फीतप्रमोदावहाः ।
गुञ्जद्भृङ्गविनिद्रपङ्कजभरस्फारोल्लसद्दीर्घिका-
युक्ताः सन्ति गृहेषु यस्य विपुलारामाः स पृथ्वीपतिः ॥ १ ॥

2083

नवं वयो हारि वपुर्वराङ्गना
सखा कलावित्कलवल्गकीस्वनः ।
धनं हि सर्वं विफलं सुखैषिणो
विना विहारोपवनानि भूपतेः ॥ २ ॥

2084

शास्त्राणि तावदवलोक्य मया मुनीना-
मर्थः स एव गदितः परमार्थयुक्त्या ।
एनं विलोक्य निखिलं च विचारयन्तः
सन्तः स्वभावसरला मुदमाप्नुवन्तु ॥ ३ ॥

## अथ तरुमहिमा ।

2085

बहुभिर्बत किं जातैः पुत्रैर्धर्मार्थवर्जितैः ।
वरमेकः पथि तरुर्यत्र विश्रमते जनः ॥ ४ ॥

2086

दशकूपसमा वापी दशवापीसमो ह्रदः ।
दशह्रदसमः पुत्रो दशपुत्रसमो द्रुमः ॥ ५ ॥

2087

क्रीडारामं तु यः कुर्यादुद्दामफलसंयुतम् ।
स गच्छेच्छंकरपुरं वसेत्तत्र युगत्रयम् ॥ ६ ॥

2088
एतत्सर्वं परिज्ञाय वृक्षारोपं समारभेत् ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां द्रुमेभ्यः साधनं यतः ॥ ७ ॥

2089
यावद्दिनानि तुलसी रोपिता यद्गृहे वसेत् ।
तावद्वर्षसहस्राणि वैकुण्ठे स महीयते ॥ ८ ॥

2090
यस्तु संरोपयेद्बिल्वं शंकरप्रीतिकारकम् ।
तत्कुलेपि सदा लक्ष्मीः संतिष्ठेत्पुत्रपौत्रिकी ॥ ९ ॥

2091
एवमेव हि योश्वत्थं रोपयेद्विधिना नरः ।
यत्र कुत्रापि वा स्थाने गच्छेत्स भवनं हरेः ॥ १० ॥

2092
तेनेष्टा बहवो यज्ञास्तेन दत्ता वसुंधरा ।
स सदा ब्रह्मचारी स्याद्येन धात्री प्ररोपिता ॥ ११ ॥

2093
वटवृक्षद्वयं मर्त्यो रोपयेद्यो यथाविधि ।
शिवलोके वसेत्सोपि सेवितस्त्वप्सरोगणैः ॥ १२ ॥

2094
निम्बत्रयं समारोप्य नरो धर्मविचक्षणः ।
सूर्यलोकं समासाद्य वसेदब्दायुतत्रयम् ॥ १३ ॥

2095
चतुर्णां प्लक्षवृक्षाणां रोपणान्नात्र संशयः ।
राजसूयस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ १४ ॥

2096
पञ्चाम्रान्रोपयेद्यस्तु मार्गेषूपवनेषु च ।
भूतान्भविष्यान्पुरुषांस्तारयेत्स चतुर्दश ॥ १५ ॥

2097

शिरीषशाखिनां षण्णां यः कुर्यात्प्रतिरोपणम् ।
गारुडं लोकमासाद्य मोदते देववत्सदा ॥ १६ ॥

2098

पलाशशाखिनः सप्त रोपयेदेकमेव वा ।
ब्रह्मलोकमवाप्नोति पूज्यते चामरोत्तमः ॥ १७ ॥

2099

उदुम्बरद्रुमानष्टौ रोपयेत्स्वयमेव यः ।
प्रेरयेद्रोपणायापि चन्द्रलोके स मोदते ॥ १८ ॥

2100

पार्वती तोषिता तेन स भवेच्च निरामयः ।
पूजिता देवताः सर्वा मधूको येन रोपितः ॥ १९ ॥

2101

क्षीरिकाकदलीद्राक्षाप्रियालपनसान्वितान् ।
तरून्संरोप्य नो दुःखी जायते सप्तजन्मसु ॥ २० ॥

2102

अज्ञानाज्ज्ञानतो वापि जम्बूर्येन प्ररोपिता ।
गृहेपि स वसन्नित्यमतिधर्मेण युज्यते ॥ २१ ॥

2103

अन्यानपि तरून्रोप्य फलपुष्पोपयोगिनः ।
रत्नधेनुसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ २२ ॥

2104

अश्वत्थमेकं पिचुमन्दमेकं
न्यग्रोधमेकं दश चिञ्चिणीकाः ।
कपित्थबिल्वामलकत्रयं च
पञ्चाम्रवापी नरकं न पश्येत् ॥ २३ ॥

## अथ निवासासन्नतरुशुभाशुभलक्षणानि ।

2105

गृहस्य पूर्वदिग्भागे न्यग्रोधः सर्वकामिकः ।
उदुम्बरस्तथा याम्ये वारुण्यां पिप्पलः शुभः ।
प्लक्षश्चोत्तरतो धन्यो विपरीतांस्तु वर्जयेत् ॥ २४ ॥

2106

वर्जयेत्पूर्वतोश्वत्थं प्लक्षं दक्षिणतो गृहात् ।
पश्चिमे चैव न्यग्रोधं तथोदुम्बरमुत्तरे ॥ २५ ॥

2107

देवदानवगन्धर्वाः किंनरोरगराक्षसाः ।
पशुपक्षिमनुष्याश्च संश्रयन्ति सदा तरून् ॥ २६ ॥

2108

सर्वेषां वृक्षजातीनां छाया वर्ज्या गृहे सदा ।
अपि सौवर्णिकं वृक्षं गृहद्वारे न रोपयेत् ॥ २७ ॥

2109

बदरी कदली चैव दाडिमी बीजपूरकम् ।
प्ररोहति गृहे यस्य तद्गृहं न प्ररोहति ॥ २८ ॥

2110

पलाशाः काञ्चनाराश्च तथा श्लेष्मातकार्जुनाः ।
करञ्जाश्चेत्यमी वृक्षा न रोप्याः सुखिना गृहे ॥ २९ ॥

2111

आसन्नाः कण्टकिनो रिपुभयदाः क्षीरिणोर्थनाशाय ।
फलिनः प्रजाक्षयकरा दारूण्यपि वर्जयेत्तेषाम् ॥ ३० ॥

2112

नीलीं हरिद्रां च नरः सदोत्वा
पुत्रैर्धनैश्च क्षयमभ्युपेयात् ।

एतास्तु सर्वाः स्वयमेव जाता-
श्छिन्द्याद्वृषीणां वचनाद्विधिज्ञः ॥ ३१ ॥

2113

न कुर्युर्याम्यनैर्ऋत्यामेयेष्वपि हि वाटिकाम् ।
अन्यथा कलहोद्वेगौ कटं वा लभते भृशम् ॥ ३२ ॥

2114

तस्माद्राज्ञां हि शुभदं पुत्रसंनिधिवर्धनम् ।
पश्चिमोत्तरपूर्वेषु भवेदुपवनं कृतम् ॥ ३३ ॥

## अथ भूमिनिरूपणम् ।

2115

जाङ्गलानूपसामान्यस्वभावापि च मेदिनी ।
भेदैः सा भिद्यते षड्भिर्वर्णतो रसतस्तथा ॥ ३४ ॥

2116

असितविपाण्डुश्यामललोहितसितपीतरोचिषः क्रमशः ।
मधुराम्ललवणतिक्तककटुककषाया भुवो रसतः ॥ ३५ ॥

2117

विषपाषाणवल्मीकबिलदुष्टा तथोषरा ।
दूरोदका शर्करिला तरुभ्यो न हिता मही ॥ ३६ ॥

2118

इन्द्रनीलशुकपक्षकोमला
शङ्खकुन्दकुमुदेन्दुसंनिभा ।
तप्तकाञ्चनविकासिचम्पक-
स्पर्धिनी वसुमती प्रशस्यते ॥ ३७ ॥

2119

समा समासन्नजला हरित्तरुतृणाङ्कुरा ।
तस्यां सर्वे यथास्थानं प्ररोहन्ति महीरुहाः ॥ ३८ ॥

2120

न जाङ्गला न चानूपा भूमिः साधारणा शुभा ।
तस्यां सर्वेपि तरवः प्ररोहन्ति न संशयः ॥ ३९ ॥

2121

पनसलकुचतालीवंशजम्बीरजम्बू-
तिलकवटकदम्बाम्रातखर्जूरपूगाः ।
कदलितिनिशमृद्वीकेतकीनालिकेर-
प्रभृतय इति चान्ये प्रायशोनूपजाः स्युः ॥ ४० ॥

2122

बीजपूरकपुंनागचम्पकाम्रातिमुक्तकाः ।
प्रियङ्गुदाडिमाद्याश्च साधारणसमुद्भवाः ॥ ४१ ॥

2123

निधिदेवमहीपानां प्रभावाद्यातियत्नतः ।
असात्म्यभूमिसंपन्ना अपि सिध्यन्ति पादपाः ॥ ४२ ॥

## अथ पादपविवक्षा ।

2124

वनस्पतिद्रुमलतागुल्माः पादपजातयः ।
बीजात्काण्डात्तथा कन्दात्तज्जन्म त्रिविधं विदुः ॥ ४३ ॥

2125

ते वनस्पतयः प्रोक्ता विना पुष्पैः फलन्ति ये ।
द्रुमाश्च ते निगदिताः सह पुष्पैः फलन्ति ये ॥ ४४ ॥

2126

प्रसरन्ति प्रतानैर्यास्ता लताः परिकीर्तिताः ।
बहुस्तम्बा विटपिनो ये ते गुल्माः प्रकीर्तिताः ॥ ४५ ॥

2127

जम्बूचम्पकपुंनागनागकेसरचिञ्चिणी ।
कपित्थबदरीबिल्वकुम्भकारीप्रियङ्गवः ॥ ४६ ॥

2128

पनसाम्रमधूकाद्या करमर्दाश्च बीजजाः ।
ताम्बूली सिन्दुवारश्च तगराद्याश्च काण्डजाः ॥ ४७ ॥

2129

पाटलादाडिमीप्लक्षकरवीरवटादयः ।
मल्लिकोदुम्बरः कुन्दो बीजकाण्डोद्भवा मताः ॥ ४८ ॥

2130

कुङ्कुमार्द्ररसोनालुकन्दाः कन्दसमुद्भवाः ।
एलापद्मोत्पलादीनि बीजकन्दोद्भवानि तु ॥ ४९ ॥

## अथ बीजोप्तिविधिः ।

2131

सम्यक्कृष्टे समे क्षेत्रे माषानुप्त्वा तिलांस्तथा ।
सुनिष्पन्नानपनयेत्तत्र बीजोप्तिरिष्यते ॥ ५० ॥

2132

अथर्तुपक्वात्फलतोवशोषिता-
न्विकृष्य बीजं पयसा निषिच्य ।
विशोषितं पञ्चदिनानि सर्पिषा
विडङ्गमिश्रेण च धूपयेत्ततः ॥ ५१ ॥

2133

क्षीरनिषिक्तं बीजं बृहतीतिलभस्मसार्पिषा लिप्तम् ।
गोमयमृदितमथोप्तं सद्यो जायेत धूपितं वसया ॥ ५२ ॥

2134

पयसि निषिक्तं बीजं गोमयपरिमर्दितं विशोष्य ततः ।
माक्षिकविडङ्गचूर्णैर्बहुशो मृदितं प्रजायेत ॥ ५३ ॥

2135

जम्बूपनसचूतानां सरलं लकुचस्य च ।
क्षीरसिक्तं वपेद्बीजं घृतगोविड्विडङ्गवत् ॥ ५४ ॥

2136

शुचिः स्नातो बिभ्रद्वसनममलं पूजितसुरो
गुरुं नत्वा दत्त्वा वसु वसुमतीं वा गुणवते ।
स्वयं बीजान्यादौ वपति कतिचिद्वास्तुपुरुषं
मनस्यन्तः कृत्वा तदनु परितोन्यः परिजनः ॥ ९५ ॥

2137

बीजधानीं तृणास्तीर्णां कृत्वा सिञ्चेत्पयोम्बुना ।
जाताङ्कुरां च सलिलैर्निस्तृणां शोषमानयेत् ॥ ९६ ॥

## अथ रोपणविधानम् ।

2138

अयथाविहितानां यन्मनोज्ञतासंपदौ न स्तः ।
कथयाम्यतस्तरूणां रोपविधानं यथोद्दिष्टम् ॥ ९७ ॥

2139

ध्रुवमृदुमूलविशाखागुरुभं श्रवणस्तथाश्विनी हस्तः ।
उक्तानि दिव्यदृग्भिः पादपसंरोपणे भानि ॥ ९८ ॥

2140

हस्तप्रमाणान्पयसा सुसिक्ता-
न्संक्रामयेन्मूलवतः समृत्कान् ।
सर्पिर्मधूशीरविडङ्गलिप्ता-
न्बिले निदध्याच्च करीषयुक्ते ॥ ९९ ॥

2141

अवालुकाश्लक्ष्णमृदा पूरिते गर्तशोधनम् ।
कोदण्डार्धमिते खाते जलसिक्ते वपेत्तरुम् ।
कदलीक्षीरिणौ रोप्यौ मूले दत्त्वा तु गोमयम् ॥ ६० ॥

2142

रम्भायाः सुपरिणतैः फलैर्विलिप्तां
संशुष्कां भुवि निहितां पलालरज्जुम् ।

शुद्धायामुपरि तृणेन गाढगुप्ता-
मासिञ्चेदबहुजलैर्बहून्यहानि ॥ ६१ ॥

2143

सा रज्जुस्तदनु तमालनीलभासो
बिभ्राणानरुणरुचोऽङ्कुरान्प्रसूते ।
भूयस्तानुपचितपल्लकाण्डमूला-
नारोप्य प्रथितविधानतो निषिञ्चेत् ॥ ६२ ॥

2144

आषाढे श्रावणे मासि बीजावपनरोपणे ।
ग्रीष्मादन्यत्र वल्लीनां केचिदिच्छन्ति रोपणम् ॥ ६३ ॥

2145

मण्डपनन्द्यावर्त्तस्वस्तिकचतुरस्रसर्वतोभद्रैः ।
वीथीनिकुञ्जपुञ्जकविन्यासैः पादपा रोप्याः ॥ ६४ ॥

2146

दशविंशतिषोडशभिस्तु करै-
रधरोत्तरमध्यकृतान्तरकान् ।
द्वित्रितुरिभिरन्तरितान्क्रमश-
स्तृणपादपगुल्मभृतश्च वपेत् ॥ ६५

2147

सान्द्ररोपणमवृद्धिकारणं
वातभीतिरतिदूररोपणात् ।
भिन्नवर्गरचनाल्पपीडना
नैव युक्तिरियमेव शस्यते ॥ ६६ ॥

2148

कुसुमं फलमप्युपभोगसहं
फलिनो हि न यस्य दलन्ति शिखाः ।

कुसुमेन विनैव फलन्ति च ये
न भवन्ति शुभास्त इहापनसाः ॥ ६७ ॥

2149

मातुलुङ्गरजनी सकण्टकः
किंशुकश्च गिरिकर्णिका सिता ।
तिन्तिडीकविफलाक्षनीलिका
कोविदार इति भीतिदो गणः ॥ ६८ ॥

2150

फलिन्यशोकपुंनागशिरीषा निम्बचम्पकाः ।
मङ्गल्याः प्रथमं रोप्या भल्लातश्च गदापहः ॥ ६९ ॥

2151

पूर्वस्यां करमर्दवंशविटपाः पारावता दक्षिणे
कौबेर्यां बदरी कपित्थतरवो धात्री च पश्चाच्छिवा ।
अन्ये चोत्तममध्यमाधमशिखा रोप्याः स्ववर्गैः समं
कृत्वा चान्तरकं यथायथममी पत्त्रैरुपर्यस्पृशः ॥ ७० ॥

## अथ निषेचनविधिः ।

2152

सर्वस्यापि नवोप्तस्य सायंप्रातर्निषेचनम् ।
शीतातपसमीरेभ्यो रक्षेच्च सुविधानतः ॥ ७१ ॥

2153

हेमन्ते शिशिरे देयं जलं चैकान्तरे दिने ।
वसन्ते प्रत्यहं ग्रीष्मे सायंप्रातर्निषेचनम् ॥ ७२ ॥

2154

वर्षासु च शरत्काले यदा वृष्टिर्न दृश्यते ।
तदा देयं जलं तज्ज्ञैरालवाले महीरुहाम् ॥ ७३ ॥

2155
वारिणा यावता यस्य मूले सौहित्यमिष्यते ।
तावत्तस्य तरोर्देयं किं घटार्थविवक्षया ॥ ७४ ॥

2156
आलवाले स्थितं तोयं शोषं न भजते यदा ।
अजीर्णं तद्विजानीयान्न देयं तादृशे जलम् ॥ ७५ ॥

2157
समीपजातं यत्नेन तृणगुल्मलतादिकम् ।
स्फोटनीयं विधिज्ञेन द्रुमाणां वृद्धिमिच्छता ॥ ७६ ॥

## अथ द्रुमरक्षा ।

2158
नीहाराच्चण्डवाताच्च धूमाद्वैश्वानरादपि ।
जालकारात्प्रयत्नेन रक्षणीयाः क्षमारुहाः ॥ ७७ ॥

2159
पङ्क्तिमध्ये तु क्षुफला बाह्ये तत्परतोपरे ।
वृक्षाः कार्या युता वृत्या सा चापि परिखायुता ॥ ७८ ॥

2160
विद्युदाहतवृक्षस्य भूतिमादाय सर्वतः ।
रक्षार्थं विकिरेदेषां तया न हिमबाधनम् ।
दीप्तोप्यग्निः शमं याति वज्रदग्धद्रुभस्मना ॥ ७९ ॥

2161
सितशाल्योदनं दध्ना सैन्धवेन युतं वने ।
क्षेपणीयं च परितो गराणां वृष्टिवारणम् ॥ ८० ॥

2162
शलभाखुपतङ्गानां पिपील्यादेर्भये सति ।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा मन्त्रं पत्रे ततो लिखेत् ॥ ८१ ॥

मन्त्रः । ॐ स्वस्ति किष्किन्धास्थितप्रकटपराक्रमान्तर्हितार्कमण्डलोपजीवितस्य श्रीहनूमानाज्ञापयति मूषकपतङ्गपिपीलिकाशलभकरभान्बककीटगन्धिकानिवर्हैर्न स्थातव्यम् । आज्ञामतिक्रममाणस्य शरीरनिग्रहः समावर्तयति । तस्य वानरसिंहस्य क्रममाणस्य सागरम् । कक्षान्तरगतो वायुर्जीमूत इव नर्दति ॥ हुं फट् नमः ॥

2163

पत्रे मनुं समालिख्य जप्त्वा तं निखनेद्भुवि ।
क्षेत्रे कीटपतङ्गाखुपिपील्यादिर्विनश्यति ॥ ८२ ॥

## अथोपवनप्रक्रिया ।

2164

घनप्रवालस्थगितातपानि
विकीर्णपुष्पाणि समीरणेन ।
गृहाणि कुर्यादतिमुक्तकानां
लताभिरालोलमधुव्रताभिः ॥ ८३ ॥

2165

स्थानेष्वपरेषु तथा पादपयुगलेषु मिथुनसंवाह्याः ।
शाखावलम्बिनीभिर्दोलाः कार्या लताभिश्च ॥ ८४ ॥

2166

तरुविटपलतानिकुञ्जरम्या
विरचितकंदरसानुगण्डशैला ।
विविधमणिगुहा विचित्रधातुः
क्वचिदपि पर्वतिका विहारहेतुः ॥ ८५ ॥

2167

केकानिनादसुभगाः सदासंत्रासिताहयः ।
ताण्डवेन तदुद्देशान्मण्डयन्ति शिखण्डिनः ॥ ८६ ॥

2168

मन्त्रः। विलम्बिनो यत्र तटद्रुमा वपु-
र्विलोकयन्ति प्रसवेक्षणैरिव ।
समं दिशन्तः कलहंसभूषणा
क्वचिद्भवेत्पुष्करिणी मनोरमा ॥ ८७ ॥

2169

निर्यादःसलिलां सुखावतरणां तीरेषु पुष्पद्रुमां
कूजद्दक्षविहंगमां सतरणीमत्यायतां दीर्घिकाम् ।
कुर्यात्तत्र समुल्लसत्कमलिनीपत्राङ्कुरश्यामलां
श्यामालोचनमल्लिकां विदधतीं नीलोत्पलानि क्वचित् ॥८८॥

2170

उपवनमिव वारिमध्यमग्नं
विमलतया प्रतिबिम्बितं दधाना ।
शशिकरनिकरेण पूरितेव
क्वचिदुपनेयपयाः सुखाय वापी ॥ ८९ ॥

2171

मध्ये तस्मिञ्शशिरशिखरिस्पर्धि वेश्म प्रवातं
गूढोपान्तं सुरभिकुसुमैः शाखिभिर्नम्रशाखैः ।
स्थाने स्थाने स्फटिकधवलं मण्डपं मण्डनार्हं
कुर्यात्कस्मिन्नपि च कदलीमन्दिरं मन्दवायु ॥ ९० ॥

2172

क्वचिदपि कूपं कुर्यादुपवनदेशे सुमृष्टसलिलभरम् ।
संसिक्तसकलविटपं बद्धं पाषाणसंचयैः परितः ॥ ९१ ॥

2173

अञ्जनमुस्तोशीरैः सनागकोशातकामलकचूर्णैः ।
कतकफलसमायुक्तैः कूपे योगः प्रदातव्यः ॥ ९२ ॥

2174

कलुषं कटुकं लवणं विरसं
सलिलं यदि वाशुभगन्धि भवेत् ।
तदनेन भवत्यमलं सुरसं
ससुगन्धि गुणैरपरैश्च युतम् ॥ ९३ ॥

## अथ कूपार्थं भूमिपरीक्षा ।

2175

पातालादूर्ध्वगमाः शिराः प्रसर्पन्ति सर्वतो दिक्षु ।
नीरस्य भूमिमध्ये ज्ञात्वा ताः कल्पयेत्कूपम् ॥ ९४ ॥

2176

यदि वेतसोम्बुरहिते देशे हस्तैस्त्रिभिस्ततः पश्चात् ।
सार्धे पुरुषे तोयं वहति शिरा पश्चिमा तत्र ॥ ९५ ॥

2177

चिह्नमपि चार्धपुरुषे मण्डूकः पाण्डुरो हि मृत्पीता ।
पुटभेदकश्च तस्मिन्पाषाणे भवति बहुतोयः ॥ ९६ ॥

2178

जम्बूवृक्षस्य प्राग्वल्मीको यदि भवेत्समीपस्थः ।
तस्माद्दक्षिणपार्श्वे सलिलं पुरुषद्वये साधु ॥ ९७ ॥

2179

अर्धपुरुषे च मत्स्यः पारावतसंनिभश्च पाषाणः ।
मृद्भवति तत्र नीला दीर्घं कालं च बहुतोयम् ॥ ९८ ॥

2180

वल्मीकोपमिनायां निर्गुण्डयां दक्षिणे करत्रयोन्माने ।
पुरुषद्वयेन पादे भवति जलं स्वादु चाशोष्यम् ॥ ९९ ॥

2181

रोहितमत्स्योर्धनरे मृत्कपिला पाण्डुरा ततः परतः ।
सिकताश्च शर्कराश्च क्रमेण परतो भवत्यम्भः ॥ १०० ॥

2182

पूर्वेण यदि बदर्या वल्मीको दृश्यते जलं पश्चात् ।
पुरुषैस्त्रिभिरादेश्यं श्वेता गृहगोधिकार्धनरे ॥ १०१ ॥

2183

सफला वा बदरी चेद्दिश्यपरस्यां जलं ततो भवति ।
पुरुषत्रये सपादे भवति परं दुन्दुभेश्चिह्नम् ॥ १०२ ॥

2184

काकोदुम्बरिकायां वल्मीको दृश्यते शिरा तस्मिन् ।
पुरुषत्रये सपादे पश्चिमदिक्स्था च सा वहति ॥ १०३ ॥

2185

आपाण्डुरा च मृत्स्ना गोरसवर्णश्च भवति पाषाणः ।
पुरुषार्धे कुमुदनिभो दृष्टिपथं मूषको याति ॥ १०४ ॥

2186

आसन्नो वल्मीको दक्षिणपार्श्वे त्रिभीतस्य ।
अध्यर्धे भवति शिरा पुरुषे ज्ञेया दिशि प्राच्याम् ॥१०५॥

2187

तस्यैव पश्चिमायां वल्मीको यदि भवेद्बस्ते ।
तत्रोदग्भवति शिरा चतुर्भिरर्धाधिकैः पुरुषैः ॥ १०६ ॥

2188

श्वेतो विश्वंभरकः प्रथमे पुरुषे तु कुङ्कुमाभोऽसा ।
अपरस्यां दिशि च शिरा नश्यति वर्षत्रयेतीते ॥ १०७ ॥

2189

सकुशः सित एतस्यां वल्मीको यत्र कोविदारस्य ।
मध्ये तयोर्नरैरर्धपञ्चमैस्तोयमक्षोभ्यम् ॥ १०८ ॥

2190

प्रथमपुरुषे भुजंगः कमलोदरसंनिभा मही रक्ता ।
कुरुविन्दकपाषाणा चिह्नान्येतानि वाच्यानि ॥ १०९ ॥

2191

सर्वेषां वृक्षाणामधःस्थितं दर्दुरं यदा पश्येत् ।
तस्माद्धस्ते तोयं चतुर्भिरर्धाधिकैः पुरुषैः ॥ ११० ॥

2192

उत्तरतश्च मधूकादहिनिलयः पश्चिमोत्तरे तोयम् ।
परिहृत्य पञ्चहस्तानर्धाष्टमपौरुषं वाच्यम् ॥ १११ ॥

2193

अहिराजः पुरुषेस्मिन्धूम्रा धात्री कुलत्थवर्णोदमा ।
माहेन्द्री वहति शिरा भवति सफेनं सदा तोयम् ॥११२॥

2194

सर्पावासः पश्चाद्यदा कदम्बस्य दक्षिणेन जलम् ।
पुरतो हस्तत्रितयात्षड्भिः पुरुषैस्तुरीयैनैः ॥ ११३ ॥

2195

वल्मीकसंवृतो यदि तालो वा भवति नालिकेरी वा ।
पश्चात्षड्भिर्हस्तैर्नरैश्चतुर्भिः शिरा यस्य ॥ ११४ ॥

2196

अरिमातकस्य वामे बदरी वा दृश्यतेहिनिलयो वा ।
षड्भिरुदग्वास्य करैः सार्धं पुरुषत्रये तोयम् ॥ ११५ ॥

2197

कूर्मः प्रथमे पुरुषे पाषाणो धूसरः ससिकता मृद् ।
आदौ शिरा च याम्यां पूर्वोत्तरतो द्वितीया च ॥ ११६ ॥

2198

जलरहिते यदि देशे चिह्नान्यनूपजानि दृश्यन्ते ।
वीरणदूर्वा हरिता यत्र हि तस्मिञ्जलं पुरुषे ॥ ११७ ॥

2199

तिलकाम्रातकवरुणकभल्लातकबिल्वनिन्दुकाङ्कोलाः ।
पिण्डीरशिरीषाञ्जनपरूषका वञ्जुलातिबलाः ॥ ११८ ॥

2200

एतैर्यदि सुस्निग्धैर्वल्मीकैः परिवृतास्ततस्तोयम् ।
हस्तैस्त्रिभिरुत्तरतश्चतुर्भिरर्धेन च नरस्य ॥ ११९ ॥

2201

अतृणे सतृणा यस्मिन्सतृणे तृणवर्जिता मही यत्र ।
तस्मिञ्शिरा प्रदिष्टा वक्तव्यं वा धनं तत्र ॥ १२० ॥

2202

कण्टक्यकण्टकानां व्यत्यासेम्भस्त्रिभिः करैः पश्चात् ।
खात्वा पुरुषत्रितयं त्रिभागयुक्तं धनं वा स्यात् ॥ १२१ ॥

2203

वृक्षस्यैका शाखा यदि विनता भवति पाण्डुरा वा स्यात् ।
विज्ञातव्यं शाखाग्रतले नीरं त्रिपुरुषं तु ॥ १२२ ॥

2204

फलकुसुमविकारो यस्य तस्य पूर्वे शिरा त्रिभिर्हस्तैः ।
भवति पुरुषैश्चतुर्भिः पाषाणाधः क्षितिः पीता ॥ १२३ ॥

2205

यदि कण्टकहीना स्यान्निर्दिग्धिका शुभ्रपुष्पसंयुक्ता ।
तस्यास्तलेम्बु वाच्यं त्रिभिर्नरैरर्धपुरुषे वा ॥ १२४ ॥

2206

खर्जूरी द्विशिरस्का यत्र भवेज्जलविवर्जिते देशे ।
तस्याः पश्चिमभागे निर्देश्यं त्रिपूरुषैर्वारि ॥ १२५ ॥

2207

यदि भवति कर्णिकारः सितकुसुमः स्यात्पलाशवृक्षो वा ।
सव्येन तत्र हस्तद्वयेम्बु पुरुषत्रये भवति ॥ १२६ ॥

2208

ऊष्मा यस्यां धान्यां धूमो वा तत्र वारि नरयुगले ।
निर्देष्टव्या च शिरा महता वारिप्रवाहेण ॥ १२७ ॥

2209

यस्मिन्क्षेत्रोद्देशे जातं शस्यं विनाशमुपयाति ।
स्निग्धमतिपाण्डुरं वा महाशिरा नरयुगे तत्र ॥ १२८ ॥

2210

मरुदेशे भवति शिरा यथा तथातः परं प्रवक्ष्यामि ।
ग्रीवा करभाणामिव भूतलसंस्था शिरा याति ॥ १२९ ॥

2211

पूर्वोत्तरेण पीलोर्यदि वल्मीको जलं भवति पश्चात् ।
उत्तरगमना च शिरा विज्ञेया पञ्चभिः पुरुषैः ॥ १३० ॥

2212

चिह्नं दर्दुर आदौ मृत्कपिला तत्परं भवेद्धरिता ।
भवति च पुरुषे वाहमा तस्य तले वारि निर्देश्यम् ॥१३१॥

2213

बदरीरोहितवृक्षौ संपृक्तौ चेद्विनापि वल्मीकात् ।
हस्तत्रयेम्बु पश्चात्षोडशभिर्मानवैर्भवति ॥ १३२ ॥

2214

सुरसं जलमादौ दक्षिणे शिरा वहति चोत्तरेणान्या ।
पिष्टनिभः पाषाणो मृच्छ्वेता वृश्चिकोर्धनरे ॥ १३३ ॥

2215

सकरीरा चेद्वदरी त्रिभिः करैः पश्चिमेन तत्राम्भः ।
अष्टादशभिः पुरुषैरैशानी बहुजला च शिरा ॥ १३४ ॥

2216

ककुभकरीरावेकत्र संयुतौ ककुभबिल्वौ वा ।
हस्तत्रयेम्बु पश्चान्नरैर्भवत्येकविंशत्या ॥ १३५ ॥

2217

वल्मीकमूर्धनि यदा दूर्वा दर्भाश्च पाण्डुराः सन्ति ।
कूपो मध्ये देयो जलमत्र नरैकविंशत्या ॥ १३६ ॥

2218

ग्रन्थिप्रचुरा यस्मिञ्शमी भवेदुत्तरेण वल्मीकः ।
पश्चात्पञ्चकरान्ते शतार्धसंख्यैर्नरैः सलिलम् ॥ १३७ ॥

2219

जम्बू त्रिवृता श्यामा शिशुमारी शारिवा शिवा दूर्वा ।
वीरुधयो वाराही ज्योतिष्मती गरुडवेगा च ॥ १३८ ॥

2220

सूकरिका माषलता व्याघ्रपदा चेति यद्यहेर्निलये ।
वल्मीकादुत्तरतः करैस्त्रिपुरुषागतं तोयम् ॥ १३९ ॥

2221

एतदनूपे वाच्यं जाङ्गलभूमौ च पञ्चभिः पुरुषैः ।
एतैरेव निमित्तैर्मरुभूमावष्टभिः कथयेत् ॥ १४० ॥

2222

एकनिभा यत्र मही तृणतरुवल्मीकगुल्मपरिहीना ।
तस्यां यत्र विकारो भवति धरित्र्यां जलं तत्र ॥ १४१ ॥

2223

हस्तो मघानुराधापुष्यधनिष्ठोत्तराश्च रोहिण्यः ।
शतभिषगित्यारम्भे कूपानां शस्यते भगणः ॥ १४२ ॥

2224

आग्नेये यदि कोणे ग्रामस्य पुरस्य वा भवति कूपः ।
नित्यं स करोति भयं दाहं च समानुषं प्रायः ॥ १४३ ॥

2225

नैर्ऋतकोणे बालक्षयं च वनिताक्षयं च वायव्ये ।
दिश्यैशान्यां भीतिः शेषास्तु शुभावहाः कूपाः ॥ १४४ ॥

2226

या मेदिनी काशकुशैश्च युक्ता
नीला च मृद्यत्र सशर्करा च ।

तस्यां प्रणीतं सुरसं च तोयं
कृष्णाथवा यत्र च तिक्तमृत्स्ना ॥ १४५ ॥

2227

सशर्कराभा तु मही कषायं
क्षारं धरित्री कपिला करोति ।
आपाण्डुरायां लवणं प्रदिष्ट-
मिष्टं पयो नीलवसुंधरायाम् ॥ १४६ ॥

## अथ पोषणविधिः ।

2228

फलकुसुमसंपदुचिता रोपणतो भवति केवलान्न यतः ।
पोषणविधिमथ संमतमनोकहानामतो वक्ष्ये ॥ १४७ ॥

2229

खर्जूरबिल्वलकुचाः सितसर्षपेण
पिण्याकतश्च तुषवारिवशेन चाम्राः ।
ऐरावता निचुलपत्रजलोक्षणेन
सव्रीहिमांससलिलेन च यान्ति वृद्धिम् ॥ १४८ ॥

2230

प्राचीनामलकतरोः प्रिया हि माषाः
क्षीराम्भो हितमिह बालतिन्दुकानाम् ।
प्रीयन्ते यवरजसा च नालिकेराः
सर्वेषां भवति रुचिर्हि निम्नभूमौ ॥ १४९ ॥

2231

कुरङ्गकिटिसारङ्गशृगालाश्वादिमेदसा ।
क्वथितेन सदुग्धेन पञ्चपल्लववारिणा ।
कृतसेको भवेदाशु सहकारोतिसौरभः ॥ १५० ॥

2232

घृतकुणपवचावराहविष्ठा-
सलिलमतीव सुखाय दाडिमानाम् ।

क्वथितमथ कुलत्थचूर्णकं वा
जलमपि वृद्धिकरं सदा शफर्याः ॥ १५१ ॥

2233

यस्त्रिफलाशफरीघृतलिप्तो
धूपित आद्यफलत्रयधूपैः ।
आमफलैरिह दाडिमशाखी
तालफलानि विडम्बयतीव ॥ १५२ ॥

2234

दधिमस्तुकाम्लिकसुराबदरी-
तिलमेथिकाकुणपसीधुपयः ।
फलिनीकदम्बकरिकेसरका-
न्कुरुते सुगन्धिबहुपुष्पयुतान् ॥ १५३ ॥

2235

प्रियङ्गुगुञ्जाफलनिम्बपिप्पली-
वचाहरिद्रातिलसर्षपैः समैः ।
घृताश्वकर्णाम्बु विलोड्य पाययेत्
सचम्पके नागतरौ सुवृद्धिदम् ॥ १५४ ॥

2236

सिक्ताम्भोभिः पललतुषयोः कुक्कुटानां पुरीषं
मूले दत्त्वा सकुसुमफला गोस्तनी वृद्धिमेति ।
स्कन्धन्यस्तैः पनसतरवोप्याशु पालालभारै-
र्मूलादग्रं दधति च वचावारिसिक्ताः फलानि ॥ १५५ ॥

2237

सार्पिर्गुडक्षीरमधूपचारं
दत्त्वा निषिक्तौ च कपित्थबिल्वौ ।
पीयूषकल्पान्यतिमांसलानि
फलान्यनस्थीनि सदा दधाते ॥ १५६ ॥

2238

कोशातकीदलशिफाकथितामिषाम्भः-
संसेचनाद्य सुकणारजसा च युक्तः ।
लब्धोपचारमथ धूपजलाभिषिक्तः
शोभां बिभर्त्ति नितरां कुसुमैर्मधूकः ॥ १५७ ॥

2239

तिलयष्टिमधुकमधुभिर्मिश्रितजलसेकतर्पिता बदरी ।
कुणपैरुपचितमूला फलति फलं शर्करामधुरम् ॥ १५८ ॥

2240

अजैडकासूकरविड्विडङ्ग-
किण्वोपचारेण च बीजपूरः ।
भूयोश्वमूत्राविलवारिसिक्तः
फलानि धत्ते सुबहूनि शश्वत् ॥ १५९ ॥

2241

वृश्चिककण्टकविद्धाः सुरभीघृतधूपिता हि निखिललताः ।
मूषककोलवसाभिः संसिक्ताः स्युः फलैर्नम्राः ॥ १६० ॥

2242

सुरभिजलनिषेकतो निदाघे
कुणपजलेन च केतकी निषिक्ता ।
जलधरसमये सुगन्धसूची-
चयनिचितानि बिभर्ति पल्लवानि ॥ १६१ ॥

2243

यस्य कस्यापि पुष्पस्य सौरभेणाधिवासितान् ।
मृत्तिकाशकलान्मूले वृक्षाणां बहलान्क्षिपेत् ॥ १६२ ॥

2244

कुष्ठपत्रसुरामुस्तातगरोशीरचूर्णकैः ।
मिश्रितेनाम्भसा सेकान्मासं सौरभसंभवः ॥ १६३ ॥

2245

कुल्माषदन्तिदन्तानां चूर्णयुक्तपङ्कसंभवा ।
प्रत्यहं पुप्पिताम्भोजमण्डिता पद्मिनी भवेत् ॥ १६४ ॥

2246

सिद्धार्थः कदलीदलानि शफरी विट्क्षीरमार्जारयो-
रेतेषां समभागमाज्यसहितं चूर्णं तरुभ्यो हितम् ।
दत्तं धूपविलेपनोपचरणैराप्यायनं रोगह-
च्छाखाः पल्लवयत्यलं मधुकरव्यालोलपुष्पच्छदाः ॥ १६५ ॥

2247

धूपो घृतस्य समृद्धो यववारिसेको
नित्यं च दुग्धसलिलैः कुणपाम्बुभिर्वा ।
लेपो विडङ्गतिलकल्ककृतः शिशूनां
वृद्धिं करोति परमां खलु भूरुहाणाम् ॥ १६६ ॥

2248

भृङ्गोल्लक्काथतोयेन मिश्रितं घृतमाक्षिकम् ।
वसा किटिकुरङ्गाणामेतैः सिक्ता महीरुहाः ॥ १६७ ॥

2249

सिद्धार्थकफलोपेताः सर्वदा फलशोभिताः ।
जायन्ते पुष्पपत्राढ्याः सच्छाया रोगवर्जिताः ॥ १६८ ॥

2250

यष्टीमधूकपुष्पाणि सिता कुष्ठं समाक्षिकम् ।
निक्षिप्य गुलिकाः कृत्वा मूले सर्वत्र निक्षिपेत् ॥ १६९ ॥

2251

दुग्धसेकं च वृक्षस्य यस्य कुर्याद्विचक्षणः ।
फलं सुनिश्चितं तस्य मधुरं जायते भृशम् ॥ ॥ १७० ॥

## अथ कुणपजलम् ।

2252

कुरङ्गकिटिमत्स्यानां मेषच्छागलखड्गिनाम् ।
मांसं ग्राह्यं यथालाभं मेदोमज्जावसास्तथा ॥ १७१ ॥

2253

तान्सर्वानेकतः कृत्वा वह्नौ नीरेण पाचयेत् ।
संपक्वं हि क्षिपेद्भाण्डे तत्र दुग्धं च निक्षिपेत् ॥ १७२ ॥

2254

चूर्णीकृत्य खलिर्देया तिलानां माक्षिकं तथा ।
स्विन्नांश्च सरसान्माषांस्तत्र दद्याद्घृतं तथा ॥ १७३ ॥

2255

उष्णं जलं क्षिपेत्तत्र मात्रा नास्तीह कस्यचित् ।
पक्षैकं स्थापिते भाण्डे कोष्णस्थाने मनीषिणा ।
कुणपस्तु भवेदेव तरूणां पुष्टिकारकः ॥ १७४ ॥

## अथ तरुचिकित्सा ।

2256

नराणामिव वृक्षाणां वातपित्तकफाद्रदाः ।
संभवन्ति निरूप्यातः कुर्यात्तद्दोषनाशनम् ॥ १७५ ॥

2257

कीटजग्धेग्निसंदुष्टे वातभग्नेशनिक्षते ।
वृक्षे छेदोपचारादिपीडिते च पृथक्क्रिया ॥ १७६ ॥

2258

कृशो दीर्घो लघू रूक्षो निद्राहीनोल्पचेतनः ।
न धत्ते फलपुष्पाणि वातप्रकृतिकस्तरुः ॥ १७७ ॥

2259

आतपासहनः पाण्डुः शाखाहीनो मुहुर्यदि ।
अकालफलपाकी स्याच्छाखी पित्तात्मकः कृशः ॥ १७८ ॥

2260

स्निग्धशाखादलः शाखी सम्यक्पुष्पफलोज्ज्वलः ।
लतापरीतगात्रस्तु कफवान्परिमण्डलः ॥ १७९ ॥

2261

कटुतिक्तकषायरसैः पवनः पित्तं कटूष्णलवणाम्लैः ।
स्निग्धमधुराम्ललवणैः श्लेष्मा कोपं प्रयाति तरोः ॥ १८० ॥

2262

सुस्निग्धैः पिशितरसैः प्रयाति वातः
सुस्निग्धैर्मधुरहिमैर्जलैश्च पित्तम् ।
कट्वम्लैरहिमजलैः कषायरूक्षैः
श्लेष्मापि क्रमविहितैः प्रयाति नाशम् ॥ १८१ ॥

2263

रौक्ष्यं ग्रन्थिः कुटिलता वातादृक्षस्य जायते ।
गोविड्लोध्रवसाकुणपजलैस्तज्जयो भवेत् ॥ १८२ ॥

2264

दोषैर्यस्य विना प्रवालकुसुमम्लानिर्विरूढं वपु-
र्मूले तस्य तरोर्भवन्ति कृमयो यत्नाच्च तानुद्धरेत् ।
गोमूत्राज्यविडङ्गसर्षपतिलैर्लिप्तः प्रनष्टैस्ततः
सिक्तः क्षीरजलैरुदेति सहसा धूपैश्च धूपायितः ॥ १८३ ॥

2265

करञ्जारग्वधारिष्टसप्तपर्णत्वचाकृतः ।
उपचारः क्रिमिहरो मूत्रमुस्तविडङ्गवान् ॥ १८४ ॥

2266

कुणपजलपयोनिषिक्तमूलः
सरसिजकन्दविलिप्तसर्वगात्रः ।
तरुरनलहतो बिभर्ति भूयो
मरकतरङ्गहरिन्ति पल्लवानि ॥ १८५ ॥

2267

प्लक्षार्कोदुम्बरत्वग्घृतमधुमधुरोच्छिष्टदुर्ग्धैर्विलिप्तः
स्तम्भैरुत्तम्भ्य रज्ज्वा परिकलितवपुः पूरितः प्लक्षमृद्भिः ।

सिक्तः क्षीरेण भूयो जलभरिततलश्वण्डवातादिभग्नः
स्वस्थो भूत्वाङ्घ्रिपायी कुसुमफलभराण्यातनोति प्रकामम् ॥१८६॥

2268

वृक्षस्याशनिदग्धस्य जीवनं शृणु भेषजम् ।
घनोशीरमधूकैश्च मुद्गा माषा यवास्तिलाः ॥ १८७ ॥

2269

पिष्टाः क्षीराम्बुसंयुक्तैः सेचयेत्तमभीक्ष्णशः ।
स सेकाप्यायितः शीघ्रं प्रकृतिस्थो भविष्यति ॥ १८८ ॥

2270

जनयित्वा फलकुसुमं यः पुनरुपयाति वन्ध्यतां शाखी ।
स क्षीरैः कुणपजलैर्भूयः सिक्तः फलत्येव ॥ १८९ ॥

2271

असेकतोत्यन्तनिषेकतश्च
शाखाविशोषं फलिनो निरूप्य ।
सप्ताहमात्रं शृतमेव सर्पि-
र्विडङ्गदुग्धाम्बु निषेचनीयम् ॥ १९० ॥

2272

उन्निद्रता मत्स्यसगन्धिता च
प्रवालहानिः सपिपीलिकात्वम् ।
त्वग्भ्रंशनाद्वारिकृतादजीर्णा-
त्तरोर्भवेत्तत्र चिकित्सनीयम् ॥ १९१ ॥

2273

तन्मूलशूलं परशुप्रहारै-
र्विस्रावितं दोषरसं निहत्य ।
क्षौद्राज्यजन्तुघ्नतिलैः प्रलिप्तं
मृत्पूरितं दुग्धजलैर्निषिञ्चेत् ॥ १९२ ॥

2274

शर्करातिलगोक्षीरवारिसेकात्तथा तरोः ।
शोषः शाम्यति वृक्षस्य लेपधूपोपचारतः ॥ १९३ ॥

2275

प्रियङ्गुवरकर्कारीवेतसार्जुनवल्कलैः ।
क्षीरसिद्धैर्विलिप्तानां स्रावः शाम्यति शाखिनाम् ॥ १९४ ॥

## अथ विचित्रकरणम् ।

2276

वृक्षायुर्वेदफलं मनोहरं शाश्वतः सिद्धम् ।
नानाविधानचित्रं चित्रीकरणं प्रवक्ष्यामि ॥ १९५ ॥

2277

सुरभिसुमनोलब्धामोदां निधाय च मृत्तिकां
धवखदिरयोः क्वाथाम्भोभिः सुगन्धिभिरुक्षणात् ।
मलयजरजोलेपाद्भूपद्मृतस्य च भूरुहां
व्रजति कुसुमं निर्गन्धानामतीव सुगन्धताम् ॥ १९६ ॥

2278

यवतिलनिशापलाशैरुपचितमूला तदम्बुसिक्ता च ।
ज्वलदनलोपममसकृत्कर्पासी तूलकं सूते ॥ १९७ ॥

2279

शाल्मलीत्वग्निशानीलीत्रिफलाकुष्ठसीधुभिः ।
सकृल्लेपोपचारेण शुकपक्षनिभं भवेत् ॥ १९८ ॥

2280

मञ्जिष्ठातिलयवपीतसारसारै-
र्जीवन्तीदलसहितैर्मनःशिलाजैः ।
गोजाविप्रचुरपयःपृतैर्विलिप्ता
कर्पासी प्रसवति तूलकं खनीलम् ॥ १९९ ॥

2281

संपक्वेक्षुरसविदारिकन्दकविलिप्तमूलभागस्य ।
सिक्तस्येक्षुरसेन च तरोरकाले भवेत्कुसुमम् ॥ २०० ॥

2282

तिलखलिविडङ्गगोमयविलोडितेक्षुरससेचितस्य तरोः ।
फलकुसुममकालभवं मनोहरं फलति लोकस्य ॥ २०१ ॥

2283

मधुयष्टिसिताकुष्ठमधुपुष्पविनिर्मितैः ।
मोदकैश्छादिते मूले निरस्थि स्यात्फलं तरोः ॥ २०२ ॥

2284

मधुककुसुमगुञ्जाशर्करोदुम्बराज्यं
समधु निहितमन्तः काण्डमुत्कीर्य बद्ध्वा ।
उपरि च परिलिप्तं वत्सविड्भिस्तरूणां
जनयति फलमेतत्स्वादुसेकादनस्थि ॥ २०३ ॥

2285

तत्कालनिहतस्योच्चैश्छागस्य स्कन्धचर्मणा ।
बद्धायां वृक्षशाखायां फलपाको न जायते ॥ २०४ ॥

2286

करिवरमृदितवलीमुखनलकैर्मूलेषु कीलितस्य तरोः ।
संवत्सरं च यावत्फलितस्य फलानि जायन्ते ॥ २०५ ॥

2287

बद्ध्वा चर्मतृणाभ्यां विडङ्गमधुदुग्धलेपितोल्लिख्य ।
शाखा पयोम्बुसेकाच्चिरमपि पक्वं फलं धत्ते ॥ २०६ ॥

2288

मीनकोलवसामांसदुग्धसेकेन धूपतः ।
सर्वबीजानि साश्चर्यमुत्तिष्ठन्ति फलन्ति च ॥ २०७ ॥

2289

भल्लोल्लतैलसूकरशिशुमारवसासु भावितं बीजम् ।
सद्यो रोहति निहितं भूमौ करकाम्भसा सिक्तम् ॥२०८॥

2290

बीजमाम्रादिवृक्षाणां पक्वं मीनफलाम्बुनि ।
भल्लोल्लतैलदुग्धाज्ये निहितं बृहती भवेत् ॥ २०९ ॥

2291

भस्मन्यामेलितं शुष्कमुप्तमुद्विद्यते सह ।
फलेनाशेषलोकस्य कृतकौतुकमञ्जसा ॥ २१० ॥

2292

एकविंशतिवारेण कुक्कुटस्यासृजोक्षितम् ।
तत्क्षणाद्दाडिमीबीजं वर्धते फलति ध्रुवम् ॥ २११ ॥

2293

मत्स्यकोलवसामांसचणकक्षारभावितम् ।
यस्य कस्यापि वा बीजं ध्रुवं पुष्पफलं भवेत् ॥ २१२ ॥

2294

स्कन्धतः समन्ततः सूकरास्थिभिर्दृढम् ।
कीलितो न संशयं नाशमेत्यनोकहः ॥ २१३ ॥

2295

कुलत्थक्काथतोयेन तरुः पुष्पफलं त्यजेत् ।
किंशुकार्जुनतर्कारीलवणाम्बूक्षणेन च ॥ २१४ ॥

2296

नानावर्णैर्घटितं कन्दं कुमुदस्य सूत्रसंघटितम् ।
घृतमधुविलिप्तमुप्तं सूते कुसुमं तथावर्णम् ॥ २१५ ॥

2297

माहिषकरीषमूत्रैर्मृदितविशुष्कं दिनानि यत्सप्त ।
कुमुदफलबीजमुप्तं जनयति करवीरविटपं तत् ॥ २१६ ॥

2298

कूष्माण्डवार्ताकपटोलकादि-
बीजं वसाभावितमुप्तसिक्तम् ।
विशोधितायां भुवि सर्वकालं
फलान्यनस्थीनि महान्ति धत्ते ॥ २१७ ॥

2299

वार्ताकबीजं घृतमाक्षिकार्क-
विशोषितं गोमयलिप्तरन्ध्रे ।
बालस्य कूष्माण्डफलस्य तप्तं
पक्वाद्गृहीतं फलितं महत्स्यात् ॥ २१८ ॥

2300

मन्दारद्रुमरन्ध्रे या कौष्माण्डी निर्गता लता ।
मृद्वोमयघृते तस्मिन्सिक्ते फलति सा सदा ॥ २१९ ॥

2301

सूकरासृग्वसासिक्तमङ्कोल्लतैलभावितम् ।
एरण्डबीजं कारञ्जीफलं सूतेतिकौतुकम् ॥ २२० ॥

2302

खरतुरगविण्निवेशिततापितया या शलाकया मूले ।
तिर्यग्विद्धा कदली फलति फलं करिकराकारम् ॥२२१॥

2303

कोलशोणितमेदोभ्यामङ्कोल्लक्वथितेन च ।
सिञ्चिता कदली सूते दाडिमीफलमुत्तमम् ॥ २२२ ॥

2304

नरमांसवसारक्तदन्तिदन्तविचूर्णितैः ।
मिश्रितेनाम्भसा सिक्ता रम्भा चूतफला भवेत् ॥ २२३ ॥

2305

अङ्कोल्लक्वथितं स्विन्नं नृमांसं छागदुग्धयुक् ।
पिण्याकसहितं मूले सहकारस्य निक्षिपेत् ॥ २२४ ॥

2306

द्राक्षावल्लीसमाकारः सहकारः सदाफलः ।
जायते निश्चितं धत्ते सर्वेषामद्भुतं यदि ॥ २२५ ॥

2307

शशकूर्मासृग्मध्ये बहुभावितमाम्रजं बीजम् ।
रूढं सिक्तं दुग्धैः फलति फलं सर्वकालेषु ॥ २२६ ॥

2308

कृमिरिपुयवयष्टीमधुगुडदुग्धविलेपनेन निम्बतरुः ।
भवति जलदुग्धसिक्तः स्वभावतिक्तोपि मधुरफलः ॥२२७॥

2309

बीजं नरपलाङ्कोलतैलस्विन्नं शुभं सदा ।
उद्गच्छति मृदा पूर्णमम्भःसिक्तं करे क्षणात् ॥ २२८ ॥

2310

अङ्कोलतैलभावितमुषितं गोशकृति कुमुदकन्दमलम् ।
करकाम्बुकर्दमभूते कलशे कुसुमं समुद्गहति ॥ २२९ ॥

2311

गोकोलास्थिकरीषैस्तु दग्धे गर्ते विशोधिते ।
उप्तं च वालुकापूर्णे मूलकं गर्तवद्भवेत् ॥ २३० ॥

2312

इष्टकचिते समन्तात्पुरुषनिखातेवटे तरुर्जातः ।
वामन एव हि धत्ते फलकुसुमं सर्वकालमिति ॥ २३१ ॥

## अथान्नादिनिष्पत्तिज्ञानम् ।

2313

फलकुसुमपत्रवृद्धिं वनस्पतीनां विलोक्य विज्ञेयम् ।
सुलभत्वं द्रव्याणां निष्पत्तिश्चापि सस्यानाम् ॥ २३२ ॥

2314

न्यग्रोधेन तु यवकास्तिन्दुकवृद्ध्या च षष्टिको भवति ।
अश्वत्थेन ज्ञेया निष्पत्तिः सर्वसस्यानाम् ॥ २३३ ॥

2315

जम्बूभिः स्थलमाषाः शिरीषवृद्ध्या च मुद्गनिष्पत्तिः ।
गोधूमाश्च मधूकैर्यववृद्धिः सप्तपर्णेन ॥ २३४ ॥

2316

करिणश्च हस्तिकर्णैर्निर्देश्या वाजिनोश्वकर्णेन ।
गावश्च पाटलाभिः कदलीभिरजाविकं भवति ॥ २३५ ॥

2317

आम्रैः क्षेमं भल्लातकैर्भयं पीलुभिस्तथारोग्यम् ।
खदिरशमीभ्यां दुर्भिक्षमर्जुनैः शोभना वृष्टिः ॥ २३६ ॥

2318

पिचुमन्दनागकुसुमैः सुभिक्षमथ मारुतः कपित्थेन ।
निचुलेनावृष्टिभयं व्याधिभयं भवति कुटजेन ॥ २३७ ॥

एते नानावृक्षायुर्वेदशास्त्रेभ्यः ।

---

# अथ शकुनज्ञानम् ॥ ८३ ॥

2319

दृष्ट्वा शास्त्रसमूहाननुभवसिद्धिं च लोकतः कृत्वा ।
आरभ्यते मयेदं शकुनज्ञानं सतामर्थे ॥ १ ॥

2320

ये जन्मादिशुभाशुभं विवृणते कालावधि प्राणिनां
यैर्व्याप्तं निखिलं जगत्त्रयमिदं येभ्यो विना किंचन ।
ज्ञानं भूतभविष्यभाविविषयं विज्ञायते न स्फुटं
विश्वोन्मेषकरा जयन्ति शकुना अभ्यासभास्वत्प्रभाः ॥ २ ॥

2321

लाभं हानिं विदधति मुदं दुःखमेकान्तरौद्र-
मायुर्दीर्घं मरणमथवा सर्वकामार्थसिद्धिम् ।
ये संग्रामे विजयमतुलं भङ्गदा ये च वक्तुं
तेषां भावं क इह शकुनानां प्रगल्भोस्ति मर्त्यः ॥ ३ ॥

## अथ शकुनविवृतिः ।

2322

त्रिविधमिह भवति शकुनं क्षैत्रिकमागन्तु जाङ्गिकं चान्यत् ।
कृत्वाधिवासनाद्यं यदीक्ष्यते क्षैत्रिकं तत्स्यात् ॥ ४ ॥

2323

स्थानस्थानां शकुनं यदि कस्माद्दिग्विभागतो भवति ।
शान्तप्रदीप्तभेदाद्व्यक्तफलं प्रथितमागन्तु ॥ ५ ॥

2324

सव्यापसव्यसंमुखपृष्ठेषु ग्राम्यवन्यसत्त्वानाम् ।
शकुनं स्वरगतिचेष्टाभावैः पथि जाङ्गिकं नाम ॥ ६ ॥

2325

पोतकी पिङ्गला काको जम्बुकी भषणस्तथा ।
पञ्चैतान्युत्तमान्याहुः शकुनानि मुनीश्वराः ॥ ७ ॥

2326

चत्वारि प्राक्तनान्याहुर्दुर्विज्ञेयानि तत्त्वतः ।
सुबोधो भषणस्तेषु तेन पूर्वं स कथ्यते ॥ ८ ॥

2327

पृच्छाशकुनं वच्मि श्वानं मुक्त्वात्र नान्यसत्त्वस्य ।
प्रकटं सुलभं च यतो नैवंविधमस्ति किंचिदपि ॥ ९ ॥

## अथ क्षैत्रिकशकुनम् ।

2328

अथोच्यते श्वानरुतस्य सारं
सारं समस्तेष्वपि शाकुनेषु ।
विस्पष्टचेष्टं शुभलक्षणं च
शुभाशुभं प्राक्तनकर्मपाकम् ॥ १० ॥

2329

विमर्शकः शाकुनशास्त्रदक्षो
विशुद्धबुद्धिः सततामियुक्तः ।
यथार्थवादी शुचिरिङ्गितज्ञो
भवेदिहाचार्यपदाधिकारी ॥ ११ ॥

2330

श्वश्वानभल्लुभषणाः कौलेयककपिलजागरूकाश्च ।
मण्डलकुक्कुरयक्षाः शुनकः सरमासुतस्याह्वाः ॥ १२ ॥

2331

श्वेता द्विजाः क्षत्रियकाश्च रक्ताः
पीताश्च वैश्या असिताश्च शूद्राः ।
विमिश्रवर्णाः शुनकास्तथेह
भवन्ति नानाविधकारुसंज्ञाः ॥ १३ ॥

2332

स्वस्वजातेस्तु पृच्छायां प्रष्टव्या इति केचन ।
सत्यं ब्रूते यथा कृष्णस्तथान्ये न मुनेर्मतम् ॥ १४ ॥

2333

आचार्यमानीय शुभेह्नि कार्यं
पैष्टं श्वयुग्मं शुचिरर्चयित्वा ।
क्षीरेण भोज्यं भषणस्य तुष्टचै
दद्यात्कुमारीशिशुबान्धवेभ्यः ॥ १५ ॥

2334

सर्वाङ्गकृष्णः परिपूर्णकायः
शान्तो विरोगस्तरुणो बलिष्ठः ।
अवामभागानतपुच्छचेष्टो
बिभर्ति शूद्रो नखविंशतिं यः ॥ १६ ॥

2335

तं सारमेयं पुरुषोधिवास्य
विश्वास्य धृत्वा स्रपयेद्दिनान्ते ।
शुक्लाम्बरस्तां रजनीं व्रती स्या-
द्बलेन कुर्यात्सकलं समन्त्रम् ॥ १७ ॥

## अधिवासनम् ।

2336

मन्त्रः । ॐ शुनकोत्तमास्मिन्कर्मणि मया
धिवासितोसि सत्यं ब्रूहि स्वाहा ।
इत्यात्महस्तं शुनकस्य शिरसि धृत्वाभिमन्त्रयेत् ।

2337

ततः प्रभाते नवगोमयेन
त्रिहस्तमात्रं चतुरस्रकं च ।
शुचौ मनोज्ञे विजने विदध्या-
द्धरातले मण्डलकं विशुद्धे ॥ १८ ॥

2338

गौर इन्द्रोरुणो वह्निर्यमः क्रव्याच्च मेचकौ ।
शुभ्रः पाशी च हरितो वायुश्चित्रो धनेश्वरः ॥ १९ ॥

2339

विशदः शम्भुरित्येते कार्या अष्टदलाम्बुजे ।
पिष्टातकमयाः सर्वे निजकाष्ठां समाश्रिताः ॥ २० ॥

2340

पृष्ट्वाचार्यं तु तत्पूजां कुर्यात्पुष्पादिभिस्तथा ।
प्रणवाद्यैर्नमोन्तैश्च मन्त्रैस्तन्नामनिर्मितैः ॥ २१ ॥

2341

यक्षोर्चनीयो विधिनात्र मध्ये
पैष्टं श्वयुग्मं च ततः कुमार्या ।
पक्वेन देयश्चरुणोपहारै-
र्घृतप्लुतोभ्यर्चितदेवताभ्यः ॥ २२ ॥

2342

हविः समुद्धृत्य चरोस्तथान्य-
त्कुर्याच्च पिण्डं शुनकार्थमत्र ।
ततस्तु पूजां विदधीत मध्ये
यक्षस्य मन्त्रैर्निखिलैरमीभिः ॥ २३ ॥

2343

मन्त्राः । ॐ मण्डलाय स्वाहा । इति चन्दनम् ।
ॐ भल्लुकाय स्वाहा । इति पुष्पम् ।
ॐ कपिलाय स्वाहा । इत्यक्षतान् ।
ॐ यक्षाय स्वाहा । इति धूपम् ।
ॐ विनते स्वाहा । इति दीपम् ।
ॐ ऋतुकालाभिगामिने स्वाहा।इति फलम् ।

ॐ बलिभोजनाय स्वाहा । इति नैवेद्यम् ।
ॐ स्वामिभक्ताय स्वाहा । इत्यर्घ्यम् ।
इति मध्ये मण्डलस्य यक्षपूजा ।

2344

तत आनीय शुनकं स्वच्छं कृत्वा निजं करम् ।
निधाय मस्तके तस्य मन्त्रमेनं ततो जपेत् ॥ २४ ॥

2345

मन्त्रः । ॐ कृतज्ञ एह्येहि ॐ रात्रिजागर एह्येहि
ॐ दिव्यज्ञानिन् एह्येहि ॐ प्रत्यक्षवचन एह्येहि
ॐ अहिजिह्वाय एह्येहि ॐ स्वल्पप्रिय एह्येहि इम-
मर्घं गृहाण सत्यं ब्रूहि ब्रूहि सत्यं स्वाहा ।
इति शुनकाभिमन्त्रणम् ।

2346

ततो नरो निजं कार्यं निधाय हृदयेखिलम् ।
हविःपिण्डं समादाय मन्त्रं जप्त्वावनौ न्यसेत् ॥ २५ ॥

2347

मन्त्रः । ॐ नमो भगवते शुनकोत्तमाय महाशकुन-
गम्भीरशब्दाय प्रजापतये ऋतुकालाभिगा-
मिन् शीघ्रमेह्येहि बलिं गृहाण मम चिन्तितं
कार्यं सत्यं ब्रूहि ब्रूहि ॐ हुं फट् स्वाहा ।
इति बलिनिवेदनम् ।

2348

अब्दायनर्तुष्वथ मासपक्ष-
दिनानि कार्येष्यवधौ विदध्यात् ।
हीनावधिर्येन भवत्यसत्यः
सर्वोपि लोके शकुनो गृहीतः ॥ २६ ॥

2349

एवंविधे भावि न वेति चित्ते
निवेश्य कार्यं भषणं विमुञ्चेत् ।

संभक्ष्य पिण्डं स्थिरतां गतस्य
चेष्टादिकं तस्य निरूपणीयम् ॥ २७ ॥

अथ भूपतित्वप्रश्नचेष्टाः ।

2350
कण्डूयमानः खलु दक्षिणेन
हस्तेन भालं भषणो ददाति ।
प्रभाविनम्रीकृतराजचक्रं
राज्याभिषेके वरपट्टबन्धम् ॥ २८ ॥

2351
करेण कण्डूयति दक्षिणेन
यक्षो यदा वामकरं तदानीम् ।
प्रभूतमातङ्गघटासमृद्धं
ब्रूते समन्तात्पृथिवीपतित्वम् ॥ २९ ॥

2352
उद्घाटयेद्दक्षिणमक्षि यक्षो
हस्तेन मृद्नात्यथ दक्षिणेन ।
यस्याभिषेके स भवेत्स्वशक्त्या
क्षितीशलक्षेक्षितपादपद्मः ॥ ३० ॥

2353
कौलेयको दक्षिणकर्णदेशं
करेण कण्डूयति दक्षिणेन ।
यदा तदा जल्पति गीतवाद्य-
विनोदयुक्तं पृथिवीपतित्वम् ॥ ३१ ॥

2354
कण्डूयते दक्षिणपाणिना चे-
त्स सारमेयो वदनं तदानीम् ।
भक्तैः प्रभूतैः सह भूमिपालै-
र्भोज्यानि भक्ष्याणि चिरं भवन्ति ॥ ३२ ॥

2355

वक्षोथ कण्डूयति दक्षिणेन
श्वा पाणिपादेन भवेत्तदानीम् ।
तुरंगमातङ्गमहिष्यजादि-
वादित्रसंपत्सहितं नृपत्वम् ॥ ३३ ॥

2356

यदा दक्षिणपादस्य नखैर्लिखति मण्डली ।
जठरं स्वं तदा तस्य लाभं वक्ति महत्तरम् ॥ ३४ ॥

2357

पश्यति जिघ्रति विलिखति कण्डूयति कृषति मार्ष्टि परिलेढि ।
दक्षिणतोथ वलित्वा दक्षिणमङ्गं शुभं ख्यातम् ॥ ३५ ॥

2358

दक्षिणकटेन शेते दक्षिणचरणेन मूत्रयत्यथवा ।
उपविशति दक्षिणेन च पार्श्वेन श्वा शिवं शंसन् ॥ ३६ ॥

2359

मेहति शुभप्रदेशे श्रयते शान्तां दिशं प्रदेशं च ।
अधिरोहति शय्यासनवेदिप्रासादहर्म्याणि ॥ ३७ ॥

2360

दक्षिणं चेष्टितं तस्य ज्ञेयं सर्वं शुभावहम् ।
वामा गतिर्वामचेष्टा सर्वानर्थाय केवलम् ॥ ३८ ॥

2361

जृम्भणवमनपलायनचिन्ता निद्राङ्गभङ्गतनुकम्पौ ।
मूर्धश्रवणविधूननतनुचर्वणकासहिक्काश्च ॥ ३९ ॥

2362

भस्मोद्धूलनलोठनखननाक्रन्दनभक्ष्यपरिहाराः ।
रोदननेत्रनिमीलनदृषदाग्रहभास्करालोकाः ॥ ४० ॥

2363

दीप्तदिगाश्रयभीतिविश्रामोक्षादिकं च यद्दीप्तम् ।
निन्द्यं शान्तप्रभे दीप्तप्रभे भयं हन्ति ॥ ४१ ॥

2364

दिक्चेष्टितस्थानगतिस्वराद्याः
पञ्चेह दीप्ताः खलु पञ्च शान्ताः ।
अन्येष्वपीमे शकुनेषु भूम्ना
निमित्तविद्भिः परिभावनीयाः ॥ ४२ ॥

2365

भवन्त्यवामा यदि वामतश्च
चेष्टाः समस्ता न गुणो न दोषः ।
कौलेयको यास्त्वधिकाः करोति
फलं तदुत्थं प्रतिपादनीयम् ॥ ४३ ॥

2366

महोदयं पञ्चविधेन पुंसां
शान्तेन राज्यं वितरत्यवश्यम् ।
पञ्चप्रकारेण पुनस्तदेव
दीप्तेन यक्षो हरति प्रसह्य ॥ ४४ ॥

## अथ कन्यार्थं वरप्रश्नः ।

2367

वरस्य कन्यावरणोद्यतस्य
कुमारिकायाः पतिमर्थयन्त्याः ।
आख्यायतेन्योन्यपरीक्षणाय
क्रमेण चेष्टा सरमाद्भुतस्य ॥ ४५ ॥

2368

कौलेयके दक्षिणचेष्टिते स्या-
त्कन्या विवाह्या न तु वामचेष्टे ।
शुन्या समं केलिरते सुखेन
तयोढया सार्धमहानि यान्ति ॥ ४६ ॥

2369

श्वा चेद्वरस्याभिमुखं समेति
तदा न कन्या किल सा विवाह्या ।
यक्षः समाजिघ्रति यश्च शुन्या
योनिं स कन्यां क्षतयोनिमाह ॥ ४७ ॥

## अथ वरार्थं कन्याप्रश्नः ।

2370

प्रश्ने वरार्थे विहिते कुमार्या
स्याद्वामचेष्टो शुभदो न चान्यः ।
मूत्रं च शुन्या उपरि प्रकुर्व-
न्ब्रूते सपत्नीं भषणो भवित्रीम् ॥ ४८ ॥

2371

मूत्रं निजं लेढि दिशं च वामां
प्रयाति तस्यां दयितोनुरागी ।
संमार्जयन्वामकरेण जिह्वां
ब्रवीति भोगप्रियतां वरस्य ॥ ४९ ॥

## अथ वर्षाप्रश्नः ।

2372

वर्षानिमित्तं शुनकोत्तमस्य
चेष्टा विशिष्टा विधिनोपदिष्टाः ।
याः शाकुनज्ञानविशारदैस्ताः
शृण्वन्तु शिष्टाः परमार्थपुष्टाः ॥ ५० ॥

2373

वर्षानिमित्तं शुनकोत्तमस्य
चेष्टाः प्रशस्ताः खलु दक्षिणा याः ।
शान्ताश्च या दीप्ततमा न शस्ता
न वामचेष्टाः शुनकस्य नूनम् ॥ ५१ ॥

2374

उद्घाटच चेद्दक्षिणमक्षि लीढे
नाभिं स्वकीयामथवाधिरूढः ।
शेते गृहस्योपरि जागरूक-
स्तदाम्बुदोम्बु क्षिपति प्रभूतम् ॥ ५२ ॥

2375

जृम्भां प्रकुर्वन्गगनं विलोक्य
यो जागरूकः कुरुतेभ्रुपातम् ।
स जल्पति प्रावृषमम्बुपूर-
प्लुतावनिं सर्वसमृद्धिसस्याम् ॥ ५३ ॥

2376

निर्गत्य तोयादधिरुह्य पालीं
कौलेयकश्चेद्विधुनोति कायम् ।
तन्निश्चितं प्रावृषमम्बुकाले
कृषीवलप्रीतिकरीं करोति ॥ ५४ ॥

2377

उच्चं प्रदेशं भषणोधिरुह्य
भषत्यभीक्ष्णं रविमीक्षमाणः ।
यदा तदानीमचिरेण वृष्टि-
रम्भोदमुक्ता भवति प्रभूता ॥ ५५ ॥

अथ राज्ञोः शुनकयुगेन जयपराभवः ।

2378

युद्धोद्यतयो राज्ञोः शुनकाभ्यां जयपराजयप्रभः ।
कर्तव्यो विद्वद्भिस्तज्ज्ञाश्चेष्टास्तु कथ्यन्ते ॥ ५६ ॥

2379

युद्धार्थिनोर्नाम युगेन राज्ञोः
पृथक्पृथक्पक्षयुगं प्रकल्प्य ।

मुञ्चेत्ततो यो बलिमत्ति जित्वा
मध्यात्तयोस्तस्य जयो नृपस्य ॥ ५७ ॥

2380

यद्यादद्याते च बलिं मिलित्वा
स्नेहान्वितौ भक्षयतो यदोभौ ।
जयार्थिनोः स्याच्नृपयोस्तदानी-
मन्योन्यसंधानविधानबुद्धिः ॥ ५८ ॥

2381

यन्नामकः श्वा प्रपलायनेच्छु-
र्ज्ञेयः स सत्रास इतीङ्गितज्ञैः ।
यन्नामधेयः पुनरस्तशङ्को
न तस्य राज्ञो भयमस्ति चित्ते ॥ ५९ ॥

2382

मुञ्चतो घुरघुरारवं यदा
वाञ्छतो न खलु खादितुं बलिम् ।
मण्डलीकृतनिजास्पदाश्रयौ
वैरमेव न तदा भवेद्रणम् ॥ ६० ॥

2383

श्वानावुभावप्यभिभूय साक्षा-
द्यदा परोभ्राति बलाद्बलिं चेत् ।
ध्रुवं तदान्यो नृपतिर्बलिष्ठ-
स्तौ भूपती जेतुमुपैति तूर्णम् ॥ ६१ ॥

2384

मध्याह्नयोरेकतरेण येन
शुना गृहीतो बलिरात्मशक्त्या ।
आच्छिद्य भुङ्क्ते भषणस्तृतीय-
स्तस्यापरस्तत्र भवत्यरातिः ॥ ६२ ॥

2385

मध्यात्तयोर्मण्डलयोस्तु येन
नैवेद्यमेकेन गृहीतमुक्तम् ।
भुङ्क्ते तृतीयः प्रणयेन तस्य
मिलत्यकस्माद्युधि तत्र मित्रम् ॥ ६३ ॥

2386

समभृतोर्यद्यविकारभावा-
त्समं तृतीयेन शुना तदन्नम् ।
श्वानौ तदानीं समुपैत्यवश्यं
राज्ञोस्तयोः संधिविधायि मित्रम् ॥ ६४ ॥

अथैकेन शुनकेन राज्ञोः संग्रामप्रश्नः ।

2387

ध्रुवं जयोस्तीति यदा तु पृष्टे
राज्ञोर्द्वयोर्बुद्धिमता यथावत् ।
श्वानस्तु चेष्टां प्रकरोति शान्तां
युद्धं भवेत्तन्नृपयोरवश्यम् ॥ ६५ ॥

2388

दिक्स्थानचेष्टानिनदैः प्रशान्तै-
र्यथोत्तरं संगतवृद्धिकारी ।
चतुर्भिरेतैर्यदि शान्तदीप्ति-
स्तदा न संधिर्न च संपरायः ॥ ६६ ॥

2389

प्रदक्षिणादुत्तरमप्रदक्षिणं
यदा तदा संधिरनन्तरं रणात् ।
करोति यक्षो यदि तुष्यति क्रमा-
त्तदा तु संधिः प्रथमं रणं ततः ॥ ६७ ॥

2390

यक्षो भषन्नम्बरमीक्षमाणः
कर्णौ धुनोत्युत्पतति प्रधावन् ।
यो वापसर्पत्यथ सव्यगत्या
स सांपरायप्रशमाय राज्ञोः ॥ ६८ ॥

अथासंग्रामप्रश्नः ।

2391

राज्ञो रणं नैव भविष्यतीति
प्रश्ने कृते यद्यशुभा भवन्ति ।
चेष्टाः समस्ताः सरमाद्भुतस्य
भवेत्तदानीं समरोतिघोरः ॥ ६९ ॥

2392

शुना निमित्तद्वितयं विरुद्धं
शान्तं च दीप्तं च कृतं यदि स्यात् ।
मध्यात्तयोर्निष्फलमादिभूतं
फलान्वितं पश्चिममामनन्ति ॥ ७० ॥

अथैकेन शुनकेनैव राज्ञो जयप्रश्नः ।

2393

जयाय यक्षः कृतशान्तचेष्टः
प्रदीप्तचेष्टस्तु पराजयाय ।
लोकान्ध्रुवं लोभयते नरेशं
सवाहनामात्यपदातिदेशम् ॥ ७१ ॥

अथ संधिप्रश्नः ।

2394

प्रशस्तचित्ते शुनि शान्तचेष्टे
संधिर्भवेद्युद्धसमुद्यतस्य ।

पराङ्मुखे वाथ पलायमानं
भङ्गो भवेन्नैव भवेत्तु संधिः ॥ ७२ ॥

अथ युद्धप्रश्नः ।

2395

दिक्स्थानचेष्टानिनदैः प्रदीप्तो
जयाय युद्धे नियमेन योद्धुः ।
स एव शान्तः समरे करोति
बन्धं वधं तस्य पराजयं च ॥ ७३ ॥

अथ विविधप्रश्नः ।

2396

शुभस्वरो यः शुभचेष्टितः श्वा
करोति मूत्रं च शुभप्रदेशे ।
ईदात्यसावुद्यमिनां हृदिस्थं
निःसंशयं धान्यधनादिलाभम् ॥ ७४ ॥

2397

उपस्थितः प्राक्तपुण्यपाका-
त्पुरःस्थितो दक्षिणपाणिना स्वम् ।
शिरः स्पृशेद्दक्षिणचेष्टितो वा
यो मण्डलो मण्डललाभदोसौ ॥ ७५ ॥

2398

उच्छ्वासहिक्काशयनाङ्गभङ्ग-
विष्ठावमिश्वासविजृम्भणानि ।
वक्रं शुनोर्धोन्मिषितां च दृष्टिं
ब्रूते प्रशंसन्ति च वामचेष्टम् ॥ ७६ ॥

2399

संमूत्रयञ्श्वा रमणीयदेशे
चेष्टामवामां ललितां प्रकुर्वन् ।

स्याद्गर्भवत्याः सुतजन्महेतु-
श्चेष्टाश्च कन्याजननाय वामाः ॥ ७७

2400

विष्ठावमिश्वासविजृम्भणानि
प्रस्वापकासाङ्गविमोटनानि ।
यद्याचरत्याशु तदा करोति
श्वा गर्भवत्याः खलु गर्भपातम् ॥ ७८ ॥

2401

दिक्स्थानचेष्टानिनदैः प्रशान्तैः
प्रश्नेषु सौम्येषु शुभानुकारी ।
चतुर्भिरेतैस्तु भवेत्प्रदीप्तैः
प्रश्नेषु दीप्तेषु शुभाय यक्षः ॥ ७९ ॥

## अथ रोगिप्रश्नः ।

2402

पृष्टे निमित्ते श्रवणे विधूते
संकोच्य गात्राण्यखिलानि शेते ।
कौलेयकश्चेत्तदुपैति रोगी
परेतनाथावसथं क्षणेन ॥ ८० ॥

2403

अवामभागेन यदा वलित्वा
श्वा पृष्ठकण्डूतिमपाकरोति ।
तदह्नि तत्रैव कृतान्तगेहे
रोगाभिभूतो नियतं प्रयाति ॥ ८१ ॥

2404

पुनःपुनर्दक्षिणमूरुभागं
लिहन्दिनैः पञ्चभिराह मृत्युम् ।

यमक्षये तत्क्षणमेव यक्षः
क्षिपत्यवश्यं जठरावलेहान् ॥ ८२ ॥

2405

वामाङ्गे वामचेष्टाश्च रोगिप्रभे शुभावहाः ।
उच्चस्थानाभयो हर्षो मूत्रस्रावः शुभः स्मृतः ॥ ८३ ॥

## अथागन्तुकशकुनम् ।

तत्र प्राक्शुनकस्य शुभचेष्टितानि ।

2406

स्थानस्थितस्य यस्य श्वा देहं जिघ्रति लाभदः ।
क्रयाणके मूत्रयति भषणो लाभदायकः ॥ ८४ ॥

2407

दक्षिणेनाङ्घ्रिणा कर्णं विलिखन्वृद्धिसूचकः ।
भषणो विलिखंश्चक्षुः प्रतिभूः प्रियसंगमे ॥ ८५ ॥

2408

उच्छीर्षे पदकं कृत्वा यदि शेते शुनस्तदा ।
आगच्छद्वल्लभं वक्ति तद्वेश्मन्यचिरादपि ॥ ८६ ॥

2409

द्वारप्रदेशे जघनं निघर्ष-
न्पूजार्हपान्थागमनाय यक्षः ।
करोति तत्रोपविशंश्च पुंसां
सङ्गं जनेनाभिमतेन सार्धम् ॥ ८७ ॥

2410

लिप्तपूरितचतुष्कविशेषे
प्राङ्गणे च निवहेत्सरमाजः ।
संपदं प्रवितरत्यतिबह्वीं
तत्खनन्पुनरनर्थकरोसौ ॥ ८८ ॥

2411

संमार्जनीं च कर्पासं सणकं सूर्पकङ्कतौ ।
गृहीत्वा संमुखेभ्येति तद्गृहं पूर्यते धनैः ॥ ८९ ॥

2412

वसुंधरायाः कमपि प्रदेशं
मूर्ध्ना स्पृशन्यद्यवलोकते श्वा ।
ध्रुवं तदा तत्र महानिधान-
मस्तीति सिद्धैः कथितं रहस्यम् ॥ ९० ॥

2413

विवाहार्थे शुभः शुन्या विधत्ते प्रस्रवं यदि ।
तदा विवाह्या तु कन्या शुभा सौख्यार्थभाग्भवेत् ॥ ९१ ॥

2414

दक्षिणाङ्गं यदा यक्षः स्पृशेद्दक्षिणपाणिना ।
तदा ऋद्धिं विवाहार्थे विधत्ते चिन्तिताधिकम् ॥ ९२ ॥

2415

हृष्टास्यं भषणं प्रेक्ष्य क्रीडन्तं कान्तया सह ।
विवाह्यते कुमारी या सा सौख्यं लभते तराम् ॥ ९३ ॥

2416

चन्द्रार्कौ प्रेक्ष्य वर्षासु रौत्यूर्ध्ववदनो यदि ।
सप्तरात्राद्वारिपूरं पतिष्यति वदत्यदः ॥ ९४ ॥

2417

नीरतीर्थे तटस्थश्चेदङ्गं कम्पयते शुनः ।
तत्र देशे घनां मेघवृष्टिं वदति भाविनीम् ॥ ९५ ॥

अथ शुनकस्याशुभचेष्टितानि ।

2418

गच्छतां दक्षिणे यक्षो वामः प्रविशतां भवेत् ।
कार्षुकाणां स आख्याति कृषिकर्म विधत्त मा ॥ ९६ ॥

2419

दिनकराभिमुखो दिवसात्यये
कृतरवः खलु कर्षुकभीतये ।
पवनदिग्वदनस्तु निशामुखे
भवति चौरसमीरणभीतिदः ॥ ९७ ॥

2420

उदङ्मुखो वक्ति भषन्निशीथे
द्विजोपपीडां मरणं गवां च ।
कुमारिकादूषणगर्भपात-
वह्नीन्निशान्ते शिवदिङ्मुखः स्यात् ॥ ९८ ॥

2421

प्रातर्दिनेशाभिमुखोग्निदिग्मुखो
भषन्विधत्तेनलचोरभीतिम् ।
दिनस्य मध्येनलमृत्युभीतिं
सरक्तपातं कलहं दिनान्ते ॥ ९९ ॥

2422

भषन्दिनेशाभिमुखः प्रभाते
यामस्य मध्ये नृपनाशनाय ।
वर्चो विमुञ्चन्यदि दृश्यते श्वा
सिद्धेपि कार्ये तदुपद्रवः स्यात् ॥ १०० ॥

2423

ऊर्ध्वानना भास्करसंमुखीनाः
श्वानो रुवन्तो महते भयाय ।
एवं हि संध्यासमयेन्यदा तु
निर्वासकाः स्युर्नगरस्य तस्य ॥ १०१ ॥

2424

मत्ताः शरद्दतौ श्वानो रुवन्ति किल तेनिशम् ।
तदा न दूषणं तेषामन्यदा तु न शोभनाः ॥ १०२ ॥

2425

ग्रामं निशायां खरसारमेयाः
शून्यं विधातुं सहिता रुवन्ति ।
ग्रामे भषित्वा भषणाः श्मशाने
रुवन्ति नाशाय च मुख्यपुंसः ॥ १०३ ॥

2426

निष्कारणं यः प्रपलायते श्वा
विरौति वा वारिणि योवतीर्य ।
मृताङ्गरक्तास्थिमुखो रुगार्त-
गेहं विशेद्यः स च मृत्युमाह ॥ १०४ ॥

2427

खनत्यगारं यदि सारमेयः
कुड्ये तदा स्यात्खलु संधिपातः ।
गोष्ठप्रदेशे यदि गोपहारो
धान्यस्य भूमिं यदि धान्यलाभः ॥ १०५ ॥

2428

यदि श्वा निजपुंश्चिह्नं पाणिग्रहणकर्मणि ।
लेढि गौरीसमाप्यूढा कलङ्क्यति सा कुलम् ॥ १०६ ॥

2429

कृत्वा शिरो द्वारि बहिर्वपुश्चे-
च्छ्वा रौति दीर्घं गृहिणीं प्रपश्यन् ।
तद्रोगदो वक्ति च बन्धकीं तां
बहिर्मुखोभ्यन्तरकायभागः ॥ १०७ ॥

2430

खनित्वोपरि गेहस्य पुरीषं कुरुते यदि ।
जारस्यागमनं वक्ति पार्श्वाद्धनिकयोषितः ॥ १०८ ॥

2431

गृहे प्रविश्य चेदन्नं विक्षिपेत्कथयत्यदः ।
गृहिणी ते तदाप्यर्थं जारस्यैतद्विचारय ॥ १०९ ॥

2432

तूलिकोच्छीर्षके नित्यं यदि सेवति मण्डलः ।
जारप्रवेशस्तद्गेहे जायते निशि सर्वदा ॥ ११० ॥

2433

मुसलोलूखले सूर्पे सणं खट्वां च कुक्कुरः ।
दत्त्वा शीर्षे स्वपति चेज्जारमाख्याति तद्गृहे ॥ १११ ॥

2434

जृम्भां कृत्वा नभः प्रेक्ष्य मुञ्चत्यभ्रूणि रौति वा ।
स्थाने तस्मिन्निदं ज्ञेयं विद्युत्पातो भविष्यति ॥ ११२ ॥

2435

यदि श्वा पललं कृत्वा मुखे नीरं विगाहते ।
संग्रामो वह्निना सर्वं दह्यते कथयत्यदः ॥ ११३ ॥

2436

गृहीत्वा गोमयं गेहे विशन्गोहरणाय सः ।
आत्मानं दशनैः खादन्स्थानं शून्यं करोति सः ॥ ११४ ॥

2437

सूर्योदये गृहोर्ध्वं च वह्निभीत्यै रुवन्भवेत् ।
स श्वा विवादाय भवेदासनादौ पुरीषकृत् ॥ ११५ ॥

2438

भुंजद्वयं जिघ्रति सारमेयः
पुंसो भवेत्तस्करवैरियोगः ।
मांसास्थिभक्ष्याणि च भस्ममध्ये
स्याद्रोपयन्नग्निभयं प्रभूतम् ॥ ११६ ॥

2439

भषन्नभीक्ष्णं भवनस्थितानां-
मावेष्टनं चेत्कुरुते कदाचित् ।
कौलेयकोवश्यमुपस्थितं त-
ज्ज्ञेयं भयं बन्धनसंप्रवृत्तम् ॥ ११७ ॥

2440

यस्य प्रातः सुस्थितस्य श्वद्वयं बहवोथवा ।
कुर्वन्ति युद्धमीशाने तस्य स्याद्वैरिभिः सह ॥ ११८ ॥

2441

चतुष्पथे राजमार्गे गोवत्सां कामयेच्छुनिः ।
तत्र भीतिं समाख्याति स मासेनैव वैरिणाम् ॥ ११९ ॥

2442

विशन्नस्थिमुखो गेहे स्वामिपुत्रादिमृत्यवे ।
क्रीडते शयने सार्धं तस्य सौख्यं प्रयच्छति ॥ १२० ॥

## अथ शिवारुतम् ।

2443

अष्टदिशो रवियोगाज्ज्वलिता धूमान्विता छाया ।
सजला कर्दमधात्र्यौ भस्मितदग्धे परिज्ञेयाः ॥ १२१ ॥

2444

प्रत्येकमेकं सततं सुमेरोः
प्रदक्षिणाभ्यांगमनक्रमेण ।
दिवारजन्योः प्रहराष्टकेन
प्रतापयत्युष्णकरो दिशोष्टौ ॥ १२२ ॥

2445

न शिवाय शिवा रटति भास्वद्दग्धासु तिसृषु काष्ठासु ।
पञ्चसु शान्तासु भवत्येवं शास्त्रादृतः पन्थाः ॥ १२३ ॥

2446

दिशि ज्वलन्त्यां मरणं प्रदिष्टं
संधुक्षितायां सकलार्थनाशः ।
छायाजलाकर्दमितासु दिक्षु
जयो धरित्र्यां कथितोर्थलाभः ॥ १२४ ॥

2447

स्याद्भस्मितायां न भयं न हानि-
रङ्गारितायां स्वजनक्षयः स्यात् ।
रात्रौ शिवायाः स्वरजः प्रभावो
यथा भवेदह्नयपि तद्विधः स्यात् ॥ १२५ ॥

2448

अतीव सौख्यशुभदा याम्या निशि भवेच्छिवा ।
पूर्वस्यां तत्पुराध्यक्षमन्यं कुर्यादहर्मुखे ॥ १२६ ॥

2449

अस्ते शिवा पश्चिमायां परचक्रभयाय सा ।
शुभा कुबेरदिग्यस्ते यामान्तः शून्यकारिणी ॥ १२७ ॥

2450

अभ्रमध्ये कृतरवा शिवा युद्धप्रपञ्चकृत् ।
शिवासप्तस्वरा ग्राह्या बहुशब्दाश्च निष्फलाः ॥ १२८ ॥

2451

धनं मित्रं प्रियं भोगं सुखं राज्यं जयं क्रमात् ।
एकादौ सप्तपर्यन्ते शब्दे शान्तदिशां फलम् ॥ १२९ ॥

2452

रुजं शोकं भयं हानिं चौर्यं वह्निं मृतिं क्रमात् ।
कुर्वन्त्येकादिसप्तान्ता दीप्तदिक्षु शिवारवाः ॥ १३० ॥

2453

दिनानि त्रीणि वा पञ्च सप्त वा कुरुते स्वनम् ।
यद्ग्रामनिकटे दीप्ता शिवा तन्नाशयत्यपि ॥ १३१ ॥

2454

दिक्ष्वारटन्ती सकलासु रौद्रं
भ्राम्यत्यखिन्ना परितः पुरं चेत् ।
शृगालजाया खलु तद्ब्रवीति
युद्धं महत्तत्र महाभिघातम् ॥ १३२ ॥

2455

फेफे हूहू भुभूश्चैव हाउहाउ हहस्तथा ।
एतान्पञ्च स्वरान्ब्रूते सर्वदिक्संगता शिवा ॥ १३३ ॥

2456

फेफे नगरनाशाय हूहू सर्वसुखप्रदा ।
भुभूश्च विड्वरं ब्रूते हाउहाउ महाभयम् ॥ १३४ ॥

2457

हहश्च नृपनाशाय मिश्रैर्मिश्रफलं भवेत् ।
पुरासन्ने फलं शीघ्रं फलं दूरे चिरेण च ॥ १३५ ॥

अथ फेरुशब्दाः ।

2458

उज्जाडिते यदा ग्रामे गच्छतां दक्षिणस्वराः ।
शृगालास्तं पुनः स्थानं कथयन्ति करस्थितम् ॥ १३६ ॥

2459

स्थानस्थानां चतुर्दिक्षु समकालविराविणः ।
दुष्टभीतिं समाख्यन्ति सर्वथा चाशुभा दिने ॥ १३७ ॥

2460

सर्वासु दिक्षु फेरूणां शिवारुतवदादिशेत् ।
एको रवः सदा निन्द्यः सोपि भीतस्य शान्तिदः ॥ १३८ ॥

2461

बन्धाय धावतां शब्दो युध्यतां कन्दलाय च ।
शुभाय हृष्टफेरूणां दिक्षु शान्तासु वा रवः ॥ १३९ ॥

अथ कौशिकः ।

2462

रात्रौ गृहस्योपरि भाषमाणो
दुःखाय घूकः सुतमृत्यवे वा ।
गृहस्थनाशाय च सप्तरात्रा-
न्नाशाय राज्ञो द्विगुणानुबन्धी ॥ १४० ॥

2463

व्यहं गृहद्वारि रुवत्युलूके
हरन्ति चौरा द्रविणं प्रसह्य ।
तस्मिन्प्रदेशे निशि मांसयुक्त-
स्तद्दोषनाशाय बलिः प्रदेयः ॥ १४१ ॥

2464

संध्याकाले रुवन्भूमौ प्रवेशे वेश्मनोथवा ।
दृष्टो रोगप्रदो घूकः सोप्यार्तानां भयापहः ॥ १४२ ॥

2465

घूघूशब्दः सदा शान्तो गुरुलुग्लुश्च तादृशः ।
अन्ये शब्दास्तु घूकानां निन्दिताः सर्वदा स्मृताः ॥ १४३ ॥

2466

शान्तायां दिशि वृक्षेषु ग्रामदूरे च शब्दितः ।
घूकः स्यात्सर्वलोकानामृद्धिवृद्धिसुखार्थकृत् ॥ १४४ ॥

## अथ पिङ्गला ।

2467

गृहोपरि गृहद्वारे पिङ्गला रौति यस्य च ।
म्रियते तस्य गेहान्तर्न शुभा तेन सा स्मृता ॥ १४५ ॥

2468

शान्तायां दिशि वृक्षेषु शुभेषु यदि पिङ्गला ।
रौति भूम्यम्बुतत्त्वाभ्यां तदा तत्र शुभं भवेत् ॥ १४६ ॥

2469

पृथिव्यां कीचिकीचीति चीलिचीली जलोद्भवा ।
शब्दितं शुभकृज्ज्ञेयं पिङ्गलाया न चापरम् ॥ १४७ ॥

## अथ काकस्य शुभचेष्टितानि ।

2470

पृष्ठे पुरो वा नवगोमयस्थो
वटादिषु क्षीरतरुष्वपीह ।

स्थितो रुवन्भोजनपानमिष्टं
विष्ठां च कुर्वन्वितरत्यवश्यम् ॥ १४८ ॥

2471

अन्नादिवर्जं फलपुष्पमांस-
मत्स्यादिभिः पूर्णमुखः सदैव ।
स्याद्दृष्टमात्रोभिमतार्थसिद्धयै
मृष्टान्नभोज्याय मुदे च काकः ॥ १४९ ॥

2472

गोवृषदुर्वातरुगोमयेषु
तुण्डं विघर्षन्नवलोकितोग्रे ।
आहारमन्यस्य मुखे ददाति
ददाति भोज्यं बलिभुग्विचित्रम् ॥ १५० ॥

2473

धान्यं पयो वा दधि वाप्यवाप्य
विरौति पश्यन्निधिलाभकारी ।
करोति लाभं पुरतः स दृष्टो
यस्यास्ति वक्त्रे तृणमप्यशुष्कम् ॥ १५१ ॥

2474

शान्तामैन्द्रीं ककुभं प्राप्य रुवन्वायसः कुरुते ।
हेम्नः सुहृदश्वाग्निं शाल्यन्नगुडाशनाग्निं च ॥ १५२ ॥

2475

आग्नेय्यामनलाजीविकयुवतिप्रवरधातुलाभश्च ।
याम्ये माषकुलत्थं भोज्यं गान्धर्विकैर्योगः ॥ १५३ ॥

2476

नैर्ऋत्यां दूताश्वोपकरणदधिपललतैलभोज्याग्निः ।
वारुण्यां वा मांससुरासवधान्यसमुद्ररत्नाग्निः ॥ १५४ ॥

2477

मारुत्यां शस्त्रसरोजवस्त्रवल्लीफलाशनाग्निश्च ।
कौबेर्यां परमान्नाशनं तुरंगाम्बरप्राप्तिः ॥ १५५ ॥

2478

ऐशान्यां संप्राप्निर्घृतपूर्णानां भवेदनडुहश्च ।
एवं फलं गृहपतेर्गृहपृष्ठसमाश्रिते भवति ॥ १५६ ॥

2479

क्रांक्रामिति क्षेमविधौ विरावः
कींकीमितीष्टाशनपानहेतुः ।
करोति क्रूंक्रूमिति चार्थलाभं
कंकंध्वनिः काञ्चनलाभमाह ॥ १५७ ॥

2480

यत्का इति त्रिस्तदनु द्विरेत-
च्छब्दद्वयं स्यान्महते फलाय ।
कामिस्ययं वाहनमासनं च
ददाति हर्षं कुरुकर्वितीदम् ॥ १५८ ॥

## अथाशुभचेष्टितानि ।

2481

ऐन्द्र्यां दिगवलोकितसूर्याभिमुखो गृहे गृहिणः ।
राजभयं चौरभयं वधकलहः पशुभयं च स्यात् ॥१५९॥

2482

गोपुच्छवल्मीककृतास्पदश्च
काको भवेत्सर्पभयस्य हेतुः ।
स्यान्मृत्यवेङ्गारचितास्थिसंस्थः
काकः प्रकुर्वन्कचचर्वणं च ॥ १६० ॥

2483

वल्लीवरत्राकचशुष्ककाष्ठ-
वर्मास्थिजीर्णाम्बरवल्कलानि ।
अङ्गाररक्तोल्मुककर्पराणि
दृष्ट्वा वदेत्काकमुखे भयाय ॥ १६१ ॥

2484

अत्रस्तो निजपक्षैस्तुण्डविघातैर्जनानभिभवन्तः ।
कुर्वन्ति शत्रुवृद्धिं निशि विरुतवन्तो जनविनाशम् ॥ १६२॥

2485

शीर्षे नरस्योपविष्टः काको मृत्याद्यनर्थदः ।
स्थितो जनापवादं वा शोकं वा कुरुते स्त्रियाः ॥ १६३॥

2486

दीप्तोद्विग्नो विटपे विकुट्टयन्वाह्निकुद्विधुतपक्षः ।
भञ्जन्नस्थि च चञ्चा यदि विरुवत्यस्थिभङ्गाय ॥ १६४॥

2487

विड्गोमये न्यस्यति यस्य मूर्ध्नि
तस्यानलत्रासरुजौ भवेताम् ।
यस्यास्थिखण्डं विसृजत्यसौ तु
प्रयाति तूर्णं नगरीं यमस्य ॥ १६५ ॥

2488

मध्येदिनं वेश्मनि यस्य काको
विरौति रौद्रं विधुनोति चाङ्गम् ।
हरन्ति चौरा द्रविणानि तस्य
ध्रुवं तथान्यो भवति प्रमादः ॥ १६६ ॥

2489

छायासु लाभं भुवि भूमिलाभं
विघ्नं जले स्रावणि कार्यनाशम् ।
करोति काको विरुवन्नरस्य
प्रस्थापितः स्थानगतस्य चापि ॥ १६७ ॥

2490

क्रींक्रीमितीष्टार्थविनाशनाय
ज्वलज्वलेत्यग्निभयाय शब्दः ।
किंकीति कोकाविति यः कथंचि-
न्मुहुर्मुहुः स्यात्समतो वधाय ॥ १६८ ॥

2491

आहारदोषाय च काकदीति
स्यादाकुटानि ध्वनितं रणाय ।
केकेध्वनिष्ठा कुवती किकी च
त्रयं त्विदं स्यात्पुरदूषणाय ॥ १६९ ॥

2492

स्यात्कलिः करकरध्वनौ नृणां
जायते कणकणध्वनौ ज्वरः ।
आव्रजेत्कुलुकुलुध्वनौ प्रियः
सौदनं कटकटध्वनौ दधि ॥ १७० ॥

2493

इदं त्विहोत्पातयुगं पृथिव्यां
महाभयं शाकुनिका वदन्ति ।
यद्वायसो मैथुनसंनिविष्टो
दृश्येत यद्वा धवलः कदाचित् ॥ १७१ ॥

2494

निष्कारणं संमिलिता रुवन्तो
यामेन्ननाशाय भवन्ति काकाः ।
रोधं च चक्राकृतयो वदन्ति
सव्यापसव्यभ्रमणाद्भयं च ॥ १७२ ॥

2495

यः स्नाति धूल्यांम्बु विलोक्य रौति
वृष्टिं समाशंसति वायसोसौ ।
जलस्थलस्थानविपर्ययेण
वर्षासु वृष्टिं भयमन्यदा तु ॥ १७३ ॥

2496

वैशाखे निरुपहते वृक्षे नीडः सुभिक्षफलदायी ।
निन्दितकण्टकशुष्केष्वसुभिक्षभयानि तद्देशे ॥ १७४ ॥

2497

काकस्य वृष्टिहेतोर्नीडं दिक्षु प्रशस्यते तिसृषु ।
दुर्भिक्षमरणहेतुर्भवति सयाम्येषु कोणेषु ॥ १७५ ॥

2498

मूर्ध्नि तरोर्बहु वर्षति मध्ये मध्यं न वर्षति स्कन्धे ।
जाते काककुलाये शुष्कतरौ वर्षति न जातु ॥ १७६ ॥

2499

भूमौ लग्नमहीरुहवल्मीकश्वभ्रकोटरतटेषु ।
काकोलस्य कुलायं जातं देशस्य नाशाय ॥ १७७ ॥

2500

द्वित्रिचतुःशावत्वं सुभिक्षदं पञ्चभिर्नृपान्यत्वम् ।
अण्डावकिरणमेकाण्डताप्रसूतिश्च न शिवाय ॥ १७८ ॥

अथ पोतकी ।

2501

स्थानस्थितानां सूर्यास्ते प्राच्यां कुर्यादुमा ध्वनिम् ।
नृपप्रसादं कुरुते शान्तेतिथ्यागमाय च ॥ १७९ ॥

2502

दीप्ते तु ध्वनिता दुर्गा सा किंचिद्रक्तहानये ।
उदयेस्ते दक्षिणस्यां ग्रामात्सा क्षेमलाभदा ॥ १८० ॥

2503

शुभा सदैव कौर्बेर्यामध्वान्स्थापयत्यलम् ।
सैवाग्नेय्यां सदा भीत्यै वायव्यां दुःखिनः शुभा ॥ १८१ ॥

2504

सुखिनश्चाशुभा किंचित्पाण्डवी ध्वनिता सती ।
ब्रह्मस्थाने च मध्याह्ने कलिघातमहादिकृत् ॥ १८२ ॥

2505

गेहान्तर्ध्वनिता भीत्यै पदे तु स्वामिमृत्यवे ।
शय्यायां महिलाकष्टं दुर्गायाः कुरुते रवः ॥ १८३ ॥

2506

पालने बालकष्टाय गृहमध्ये विजायते ।
शून्यकुञ्जवनद्वारे समक्षा ध्वनिताऽनदा ॥ १८४ ॥

2507

यत्र तत्र स्थिताप्यन्यत्रासाच्छब्दपरायणा ।
शुभाशुभा वा विफला फलदा सा स्वभावजा ॥ १८५ ॥

2508

निर्योगिनः क्षत्रियस्य दुर्गा चेन्मस्तके विशेत् ।
पदप्रतिष्ठावश्यं स्याद्भूमिलाभः कुटुम्बिनः ॥ १८६ ॥

2509

करोति नीडं भुवि चेद्वराही
समान्यपत्यानि विजायते वा ।
समुद्भवद्भानुमयूखवह्नौ
जाज्वल्यते तज्जयती समस्ता ॥ १८७ ॥

2510

द्वारादिदेशेषु गृहेषु यस्य
प्रत्यक्षरूपा कुरुते कुलायम् ।
अम्भोधरो वर्षति चेत्तथापि
तच्छून्यतां याति च भिद्यते च ॥ १८८ ॥

2511

गर्ते सरिद्रोधसि वा वराही
शावानयुग्मानपि चेत्प्रसूते ।
नाम्भोधरो मुञ्चति तावदम्भो
यावत्समुद्रीय न ते व्रजन्ति ॥ १८९ ॥

2512

प्रासादशैलद्रुमकोटरेषु
तुङ्गेषु चान्येषु विधाय नीडम् ।
प्रसूयते यद्यसमैरपत्यैः
श्यामा तदाम्भो भवति प्रभूतम् ॥ १९० ॥

## अथ तित्तिरिखरशशसर्पाः ।

2513

ग्रामे पुरे वा दिशि दीपितायां
स्थानस्थितानामरुणोदये चेत् ।
उद्वेगदायी निशि सर्वदिक्षु
करोति शून्यं ध्वनिराशुगस्य ॥ १९१ ॥

2514

बारुण्यां ध्वनितोस्ते तु तित्तिरिश्चौरभीतिदः ।
सभये भीतिहन्ता च ध्रुवं मध्येदिनं ध्वनिः ॥ १९२ ॥

2515

धाटीभयं स ऐशाने सर्वदिक्षु न शोभनः ।
स्थानस्थितस्यैककालं सर्वदा सर्वथा त्यजेत् ॥ १९३ ॥

2516

कृष्यारम्भदिने क्षेत्रं प्रविष्टस्याथ तित्तिरेः ।
प्राच्यां रुतं सर्वभीत्यै प्रतीच्यां भीतिसंभवः ॥ १९४ ॥

2517

उदीच्यां सस्यनिष्पत्तिर्याम्यां निष्पत्तिनाशनम् ।
गृहान्निर्गच्छतां वामे शुभं क्षेत्रे च दक्षिणम् ॥ १९५ ॥

2518

स्थानस्थस्य प्रयातुर्वा तित्तिरिर्ध्वनितस्तदा ।
खरस्य रटिते ग्राह्यं चेष्टा चास्य शुभा हिता ॥ १९६ ॥

2519

केदारपाल्यां गेहे वा शशको दृश्यते यदि ।
महासुभिक्षं जानीयाद्गीतानां चापि निर्भयम् ॥ १९७ ॥

2520

आषाढे शशका दृष्टा स्थानस्थाने सुभिक्षदाः ।
चतुष्पदादिनाशाय तल्लब्ध्यै शशदर्शनम् ॥ १९८ ॥

2521

केदारगाहसमये कृष्णसर्पो विलोक्यते ।
चेत्पलाशद्रुमारूढः सुभिक्षं च वदेत्तदा ॥ १९९ ॥

## अथ लट्वा ।

2522

पूर्वस्मिन्दिवसे दृष्टा लट्वा क्षेत्रे फलानना ।
क्षेत्रं प्रविष्टा कुरुते फलदां प्रचुरां कृषिम् ॥ २०० ॥

2523

सैव क्षेत्राद्विनिर्याता मूषिकोपद्रवाय सा ।
दृष्टा मूषिकशङ्कायै लट्वा कृषिप्रयोजने ॥ २०१ ॥

## अथ कीरायिका ।

2524

समर्घता विक्रयो वा प्रभो घुलुघुलारवात् ।
नियोगिनां सदापि स्याल्लाभः करकरारवः ॥ २०२ ॥

2525

निर्वेदाय नृपद्वारं गन्तुर्घुलुघुलारवः ।
कार्षुकाणां यवातस्य सिद्ध्यै करकरारवः ॥ २०३ ॥

2526

निरुपद्रवनिष्पत्त्यै क्षेत्रमध्ये सदैव हि ।
दुर्भिक्षाय च तत्रैव भवेद्घुलुघुलारवः ॥ २०४ ॥

2527

धान्यस्य राशौ निष्पन्ने सा चेद्घुलुघुलायते ।
तद्धान्यं धनिको नैव गृह्णाति परकीयवत् ॥ २०५ ॥

2528

संग्रहे तृणकाष्ठानां सा चेद्घुलुघुलायते ।
तन्न ग्राह्यं गृह्यते चेत्प्रदीपनभयाय तत् ॥ २०६ ॥

2529

भीतानां परचक्रेपि प्रसृते वा भवेद्यदि ।
तस्या घुलुघुलारावस्तदा निस्तारयेद्ध्रुवम् ॥ २०७ ॥

## अथ पल्ली ।

2530

पल्ली भुजेपसव्येथ मस्तके स्वामिमोदिनी ।
पतन्ती कुरुते वामे लाभं हानिकरी करे ॥ २०८ ॥

2531

करे च दक्षिणे व्याधिं हृदि राज्यादिलाभदा ।
पृष्ठे चोपद्रवं हन्त्युदरे मिष्टान्नभोजनम् ॥ २०९ ॥

2532

अङ्गं दक्षिणमारुह्य वामेनोत्तरति स्फुटम् ।
तदा हानिकरी ज्ञेया व्यत्ययेन तु लाभदा ॥ २१० ॥

2533

नाभौ पुत्रफलं दत्ते कटौ गुह्ये च रोगकृत् ।
जानुयुग्मे सुखं सूते पादयोश्च महाभयम् ॥ २११ ॥

2534

चरणादूर्ध्वगीभूय यद्यारोहति मस्तकम् ।
राज्यं राज्यं तदा दत्ते पल्ली श्वेता विशेषतः ॥ २१२ ॥

2535

चिन्तिताभ्यधिकं लाभं स्थिता भोजनभाजने ।
सर्वमेतत्फलं दत्ते वहन्तीनाडिकां श्रिता ॥ २१३ ॥

2536

स्त्रीलाभं रतिलाभाद्युद्धं युद्धात्समागमं सङ्गात् ।
भक्षाल्लाभं निगदती पल्ली छत्रीस्वना नेष्टा ॥ २१४ ॥

2537

पतिता मस्तके यस्य चिरं तिष्ठति पल्लिका ।
मरणं तस्य झटिति तत्रोत्तीर्णेपि कष्टदा ॥ २१५ ॥

2538

पल्लिकाया गृहद्वारे स्वरोतिथिसमागम् ।
कुरुते स्वस्थचित्तस्य पृष्ठे चोरभयं स्वरः ॥ २१६ ॥

2539

दुग्धस्थाल्युपरिस्था गिरोलिका चतुष्पदस्य नाशाय ।
सर्वासु दिक्षु शब्दस्तासां लोकस्य नाशाय ॥ २१७ ॥

## अथ वृश्चिकः ।

2540

दीपोत्सवे दैववशाद्यदि विद्ध्यति वृश्चिकः ।
तद्वर्षे तस्य चोद्वेगधनमानादिहानिदम् ॥ २१८ ॥

2541

वृश्चिको वस्तुमध्ये वा कुर्वतां वस्तुविक्रयम् ।
महार्घतां सदा तस्य वस्तुनः कथयत्यदः ॥ २१९ ॥

## अथाङ्गस्फुरणम् ।

2542

दक्षिणमङ्गं पुंसः स्त्रियाश्च वामं शुभावहं स्फुरितम् ।
नीचोच्चमध्यमात्रः फलति च गात्रोचितः स्पन्दः ॥ २२० ॥

2543

धनवृद्धिरन्त्रकम्पे नाभिस्पन्दः स्वदेशनाशाय ।
पृष्ठे पराजयाय स्फुरणं हृदयस्य विजयाय ॥ २२१ ॥

2544

प्रियसंगमाय बाह्वोः कम्पो हत्कमलसंभवो भीत्यै ।
मूर्ध्नि स्फुरिते राज्यं लभते सीमन्तिनीमक्ष्णोः ॥ २२२ ॥

2545

वामस्याधःस्फुरणमसकृत्संगरे भङ्गहेतु-
स्तस्यैवोर्ध्वं हरति नितरां मानसं दुःखजालम् ।
नेत्रोपान्ते हरति च धनं नेत्रकोणे च बन्धुं
सव्ये चैतत्फलमविकलं व्यत्ययं चापसव्ये ॥ २२३ ॥

## अथ संकीर्णशकुनानि ।

2546

नीचैरवरोहन्तस्तारा यान्तः प्रदक्षिणावर्त्ताः ।
घ्नन्ति भयं भीतानां कृष्णाः सर्पाश्च मार्जाराः ॥ २२४ ॥

2547

पूर्णाननाः समृद्धौ मार्जारभुजंगमादयोपि ये क्रूराः ।
किं पुनरपरे शकुनाः शस्तं चेष्टादिकं येषाम् ॥ २२५ ॥

2548

गर्भगृहे शय्यादौ देहल्यामाज्यकुम्भमुख्येषु ।
चुल्हीगृहमूर्धादिषु न शुभा निन्द्यप्रदेशे च ॥ २२६ ॥

2549

नेष्टो गृहोपविष्टश्छत्रासनवाहनादिसंस्थो वा ।
नेष्टः शिरसि विमुञ्चन्वर्चः पाण्डुः कपोतस्तु ॥ २२७ ॥

2550

पिङ्गलाफेरुजम्बुक्यो वृको घूकोह्नि शब्दितः ।
निशि तित्तिरिशब्दाश्च जगदुद्वासहेतवः ॥ २२८ ॥

2551

परस्य योनिं गच्छन्तो नृखरावपहाय देशभङ्गाय ।
सर्वस्यापि हि जगतः प्रकृतिस्था विकृतिरुत्पातः ॥ २२९ ॥

2552

उद्वासयितुं वेश्मनि सरघाः कुर्वन्ति यन्मधुच्छत्रम् ।
दुर्गा करोति नीडं कुर्युर्वल्मीकमुपदीकाः ॥ २३० ॥

2553

ग्रामोद्वासनहेतोर्ग्रामे नगरे तु तत्पतिवधाय ।
प्रविशन्ति सिंहभल्लुकगोमायुतरक्षुमुख्यास्तु ॥ २३१ ॥

2554

देशोदयाय प्रतिमप्रभावा
वनौषधीनामधिका फलर्धिः ।

निकामवर्षित्वमथाम्बुदानां
धर्मप्रवृत्तिश्च सुराजता च ॥ २३२ ॥

## अथ जाङ्घिकशकुनं प्रस्थितानाम् ।

2555
अश्विनीमैत्ररेवत्यो मृगो मूलं पुनर्वसुः ।
पुष्यो ज्येष्ठा तथा हस्तः प्रस्थाने श्रेष्ठ उच्यते ॥ २३३ ॥

2556
प्रीतोवदातवेषः कृतमङ्गल्यः प्रणम्य गुरुदेवान् ।
अप्रतिरथं जपित्वा शुभे मुहूर्ते प्रतिष्ठेत ॥ २३४ ॥

2557
अर्जुनः फाल्गुनः पार्थः किरीटी श्वेतवाहनः ।
बीभत्सुर्विजयी कृष्णः सव्यसाची धनंजयः ॥ २३५ ॥

2558
या वहति तत्र समये नाडी पादं तमग्रतः कृत्वा ।
अन्तःप्राणे प्रविशति यायाद्दैनयिकवेषेण ॥ २३६ ॥

2559
योजनशेषे नगराद्ग्रामात्क्रोशान्तरे पथि त्याज्यम् ।
कल्याणं वाञ्छद्भिः पथिकैर्गीतं च हास्यं च ॥ २३७ ॥

2560
मुण्डनवपनविकर्तनतैलाभ्यङ्गाश्रुमोक्षमुख्यानि ।
मैथुनमद्यदुरोदरकलहानपि वर्जयेत्तदहः ॥ २३८ ॥

2561
संताद्य कमपि परुषं विप्रानवमान्य बालमाहत्य ।
निर्भर्त्स्य योषितो वा प्रयाति नायाति पुनरत्र ॥ २३९ ॥

2562
अतः सुस्थितचित्तेन प्रस्थातव्यं शुभे दिने ।
स्मृत्वा क्षेमंकरीं देवीं पश्यता शकुनाञ्शुभान् ॥ २४० ॥

2563

दधिदूर्वाक्षतपल्लवशङ्खश्रीखण्डरत्नकुसुमानि ।
आदर्शामिषमृत्स्नागोमयगोरोचनायुधमधूनि ॥ २४१ ॥

2564

अम्भःकुम्भाम्भोरुहचामरभृङ्गारहेमरूप्याणि ।
फलताम्बूलवराम्बरमदिरामीनाज्यभोज्यानि ॥२४२ ॥

2565

आशीर्वादमुखा स्त्री मन्त्रमुखो ब्राह्मणः प्रियवाक् ।
कुशलं पृच्छन्नतिथिः प्रियसुहृदानन्दपरिपूर्णः ॥ २४३ ॥

2566

शीतः सुरभिर्विरजाः प्रदक्षिणं मारुतः शनैः सर्पन् ।
एते प्रयाणकाले चित्ताभीष्टं परं कुर्युः ॥ २४४ ॥

(चतुर्भिः कलापकम्)

2567

सिद्ध्यै यातुरविघ्नं श्रुतिपथजाताः प्रयाणसमकालम् ।
नान्दीमङ्गलतूर्यप्रास्थानिकशङ्खनिर्घोषः ॥ २४५ ॥

2568

आरूढस्वामिकोश्वः स्याद्वित्तचिन्तितसिद्धये ।
सर्वेषां सुरतक्रीडा दृष्टादौ भोगलब्धये ॥ २४६ ॥

2569

सद्यःप्रसूता सुरभी सवत्साः कामधेनवः ।
रश्मिबद्धो वृषः श्रेष्ठो द्वौ चेदत्यन्ततः शुभौ ॥ २४७ ॥

2570

दृष्टः श्रुतो वा भूपालश्चाश्वः केकी करी वृषः ।
प्रस्थाने वा प्रवेशे वा सर्वसिद्धिकराः स्मृताः ॥ २४८ ॥

2571

वामं रोदनमाहुः शस्तं यदि रोदिता न दृश्यः स्यात् ।
शंसन्ति ज्ञेष्यांणां तोरणरुदितां च संसिद्ध्यै ॥ २४९ ॥

2572

सिद्धयै केनचिदुक्तं पृष्ठे गच्छेति पुरत एहीति ।
मागाः क्व यासि तिष्ठेत्येवं रूपं निषेधाय ॥ २५० ॥

2573

दृष्टः शवः प्रवासे रोदनबन्धः प्रियाणि साधयति ।
धत्ते स तु प्रवेशे दीर्घरुजं दीर्घनिद्रां वा ॥ २५१ ॥

2574

दीनक्षपणोन्मत्तप्रव्राजकविकृतवेषहीनाङ्गाः ।
न शुभाः शुभास्तु सर्वे यतयो भिक्षोल्लसत्पात्राः ॥ २५२ ॥

2575

पिष्टान्नमशुभं सर्वं भृष्टं धान्यं न सिद्धये ।
सिद्धमन्नं सर्वसिद्धयै कथितं कष्टहेतवे ॥ २५३ ॥

2576

आर्तद्रुतस्वरज्ञा विभिन्नदीनप्रभिन्नलघुरौद्राः ।
निन्द्याः शुभास्तु शब्दाः प्रमुदितपरिपूर्णदृढशान्ताः ॥२५४॥

2577

संहारबीजबहुलः केनचिदुक्ता प्रशस्यते नाशीः ।
गमने यद्वत्साक्षाच्चक्षः क्षपयति विपक्षं ते ॥ २५५ ॥

2578

उत्पाताय च काव्ये दुरुपश्रुतिरभिनये च नाट्यानाम् ।
स्वस्थानामपि यद्वद्वस्ता धारा धरित्रीति ॥ २५६ ॥

2579

मार्जारमहिषयुद्धं स्तनितं गृहदाहबन्धुकलहाद्यम् ।
विद्युद्घात्यादुर्दिनमयात्रिकं सूतके द्वे च ॥ २५७ ॥

2580

प्रतिसूर्यदर्शनोल्कापपातकेतुप्रबोधनिर्घाताः ।
वृष्टिः करकापातः पुंसां प्रस्थानविघ्नाय ॥ २५८ ॥

2581

क्षोभपलायनभङ्गस्खलनविपर्यासभङ्गवेगादि ।
यन्मुख्यवाहनानां तदपि निषेधाय गमनस्य ॥ २५९ ॥

2582

निन्द्यानि लोहशृङ्खलभस्मेन्धनरज्जुरिक्तभाण्डानि ।
कर्पासकेशविष्ठास्थीनि गुडवर्मलवणानि ॥ २६० ॥

2583

तक्रवसातृणकर्परपिण्याकाङ्गारभुजगमार्जाराः ।
निन्द्या मुण्डा मलिनास्तैलं रिपुमहिषगर्दभारूढाः ॥२६१॥

## अथ शकुनविचारः ।

2584

स्थानं गतिस्तथा चेष्टा स्वरो दिगिति पञ्चधा ।
विचार्याः शकुनास्तत्र बलवन्तो यथोत्तरे ॥ २६२ ॥

2585

क्रोशादन्तर्बली तस्मादूर्ध्वं मन्दफलस्ततः ।
न जातः सर्वथा यस्य शकुनः स्यात्स मृत्यवे ॥ २६३ ॥

2586

शकुनः शकुनं दत्त्वा दीप्तां यदि दिशं व्रजेत् ।
तदा तस्यैव पञ्चत्वं तत्फलं पथिकस्य न ॥ २६४ ॥

2587

आसन्ने फलमासन्नं दूरगे दूरगं फलम् ।
मिश्रं तु मिश्रे शकुने फलमाहुर्मनीषिणः ॥ २६५ ॥

2588

गृहभित्तिवप्रकूटाद्यन्तरे शकुनं भवेत् ।
दृश्यते चेदर्धफलमदृष्टमफलं विदुः ॥ २६६ ॥

2589

रोगार्तः क्षुधितो भीतो वननीडादिसङ्गवान् ।
न ग्राह्यः शकुनः सीमाशैलाद्यन्तरितः शुभः ॥ २६७ ॥

2590

प्राणायामाष्टकं कुर्यादाद्ये द्विगुणितं द्वये ।
तृतीये शकुने दुष्टे तद्दिनं गमनं त्यजेत् ॥ २६८ ॥

2591

स्पष्टचेष्टः शुभः श्वानो निर्भीको निकटस्थितः ।
सर्वथा सिद्धये ग्राह्यः शकुनः स्पष्टदर्शनः ॥ २६९ ॥

2592

शुभः प्रागशुभः पश्चादशुभः प्राक्शुभस्ततः ।
पाश्चात्यः फलदोवश्यं शकुनः सर्वकर्मसु ॥ २७० ॥

2593

समकालं सजातीया वामदक्षिणराविणः ।
शकुनास्तोरणासंज्ञाः सिद्धिं कुर्युर्गमागमे ॥ २७१ ॥

2594

नरस्यात्यन्तिके कार्ये जाते दुःशकुनं भवेत् ।
यदा तदा जपेत्तत्र मन्त्रं सुशकुनाप्तये ॥ २७२ ॥

2595

मन्त्रः । ॐ भगवत्या भद्रकाल्या भट्टपुत्रस्तु कुर्कुटः ।
कृप्रसादतः कार्यां स मे स्याच्छकुनं नरः ।
ॐ अस्तु अस्तु अस्तु ॥ २७३ ॥

2596

मन्त्रमिति सप्त जप्त्वा स्थाने तस्मिन्विशेत्क्षणं यावत् ।
मन्त्रप्रभावजातं सुशकुनमालोक्य गच्छेत ॥ २७४ ॥

## अथ जाङ्घिकशकुनेषु शुभचेष्टितानि ।

2597

वामां दिशं दक्षिणभूमिभागा-
द्गच्छन्प्रयाणे भषणः प्रशस्तः ।
वामप्रदेशात्स पुनः प्रवेशे
प्रशस्यते दक्षिणभागगामी ॥ २७५ ॥

2598

जाते प्रवेशे भवति प्रशस्ता
शून्या गतिः श्वानविपर्येण ।

न चेष्टितं प्रत्युभयोर्विशेषः
शुनीशुनोरत्र च कश्चिदस्ति ॥ २७६ ॥

2599

मूत्रं विधायाभिमुखं प्रयाति
यो जागरूकः शुभदः स पुंसाम् ।
कार्येषु सर्वेष्वपि सर्वकालं
न मूत्रयन्ती शुनकी प्रशस्ता ॥ २७७ ॥

2600

गजाश्वशय्यासनशाद्वलेषु
छत्रध्वजोलूखलसुद्रुमेषु ।
कुम्भेष्टकासंचयमाचरेषु
पर्याणमृत्पुष्पफलादिकेषु ॥ २७८ ॥

2601

व्रजेत्पुरस्ताद्यदि मूत्रयित्वा
सदैव तत्सिध्यति कार्यमिष्टम् ।
मृष्टान्नभोज्यं नवगोमये स्या-
न्मूत्रेण शुष्केपि च शुष्कभोज्यम् ॥ २७९ ॥
(द्वाभ्यां युग्मम्)

2602

आयाति हृष्टोभिमुखो यदि श्वा
क्रीडां प्रकुर्वन्विलुठंस्तथाग्रे ।
शीघ्रं तदानीं ध्रुवमध्वगानां
भवेत्प्रभूतो धनधान्यलाभः ॥ २८० ॥

2603

नृणां प्रयाणे भवनागमे वा
श्वानो रमन्ते यदि सप्रमोदाः ।
तदिष्टकार्येपि भवेत्प्रमोदः
समागमश्च स्वजनैः समं स्यात् ॥ २८१ ॥

2604

स्थित्वोन्नते श्वा यदि तु प्रदेशे
पादेन कण्डूयति दक्षिणेन ।
शिरःप्रदेशं नियतं नरस्य
तद्वित्तलाभं विदधाति सद्यः ॥ २८२ ॥

2605

उच्चात्प्रदेशादवतीर्य निम्नं
यो याति वामोथ सुखप्रदोसौ ।
निम्नप्रदेशात्पुनरुच्चदेशं
यक्षो व्रजन्दक्षिणगोपि शस्तः ॥ २८३ ॥

2606

मानवावयवपूरिताननो
वीक्षितो भवति भूमिलाभकृत् ।
स्यात्पुनः स्वरसनाप्रचालना-
न्मण्डलो विपुलभूतिलाभदः ॥ २८४ ॥

2607

अन्नादिविष्ठानवगोमयानि
न वा विधुन्वन्वदने सदैव ।
वामोपसव्योप्यवलोक्यमानो
मनोरथं पूरयते ध्रुवश्च ॥ २८५ ॥

2608

गवा सह क्रीडति चेत्तदानीं
प्रयोजनं सिध्यति यद्यदिष्टम् ।
ग्रामप्रदेशे पुरतश्च मूत्रय-
न्भवत्यभीष्टशनलब्धये श्वा ॥ २८६ ॥

2609

यक्षः पुरस्तादवनिं विलिख्य
यातुर्मुखं पश्यति चेत्तदानीम् ।

तत्रैव देशे द्रविणस्य लाभं
ब्रवीति कार्यं नहि संशयोत्र ॥ २८७ ॥

2610

वामेन गच्छन्पथिकेन सार्धं
ददाति रम्यां रमणीं धनेन ।
व्रजंस्तु मार्गं सह दक्षिणेन
कौलेयकस्तस्करभीतिमाह ॥ २८८ ॥

2611

आदाय पत्रं त्वरितं यदि श्वा
दूर्वां नवां वा नवगोमयं वा ।
प्रयाति यातुः पुरतस्तदानीं
राजप्रसादं नियतं ब्रवीति ॥ २८९ ॥

2612

यक्षो हरिद्रामिषगैरिकाद्यैः
पूर्णाननो वक्ति सुवर्णलाभम् ।
दृष्टिं पुनः पत्रफलाङ्कुरेषु
चिरं ददानो निधिलाभकारी ॥ २९० ॥

2613

फलं गृहीत्वा सहसा निवासं
यक्षो विशञ्जल्पति पुत्रलाभम् ।
योभ्येति हृष्टोभिमुखः प्रयातुः
शीघ्रं स कुर्याद्धनधान्यलाभम् ॥ २९१ ॥

2614

यः पल्लवैः क्रीडति वृक्षमूलं
तथेक्षते यः स ददाति सौख्यम् ।
रक्ताक्षवक्त्रोभिमुखोभ्युपैति
यो मण्डलः सोवनिलाभमाह ॥ २९२ ॥

2615
युद्धं विधातुं चलितस्य मध्या-
त्सैन्यद्वयस्यानुपदस्य यत्र ।
कौलेयको मूत्रयते ध्वजादा-
वसंशयं तस्य भवेज्जयश्रीः ॥ २९३ ॥

2616
योद्धव्यमद्यैव मयेति यातुः
प्रावेशिकं स्याच्छुभदं निमित्तम् ।
दिनान्तरे यस्तु नरो युयुत्सुः
क्षेमंकरं यात्रिकमेव तस्य ॥ २९४ ॥

2617
रोगार्दिते भेषजसंप्रयोगे
युद्धोद्यमे नष्टविलोकने च ।
दुर्गप्रवेशे च शुनः प्रशस्ता
तारागतिः संनिहिते भये वा ॥ २९५ ॥

2618
तिष्ठतां प्रचलतां च नराणां
मंदिरे प्रविशतां च समस्तम् ।
दक्षिणं भषणचेष्टितमिष्टं
वामकं पुनरुशन्ति विदुष्टम् ॥ २९६ ॥

2619
खादति किंचन दृष्टिगतश्चे-
द्यच्छति तद्विविधं बहुभोज्यम् ।
धूताशिरा उत नामितपुच्छो
यो भषणः स निषेधति भोज्यम् ॥ २९७ ॥

अथाशुभचेष्टितानि ।

2620
बलेन वामो यदि नीयते श्वा
कष्टात्तदल्पं विदधाति लाभम् ।

खनन्धरित्रीमसुखावहः स्या-
द्वैवात्पुनः स्यादनिवृत्तिहेतुः ॥ २९८ ॥

2621

स्थानान्तरं बिभ्रदुपानहौ चे-
त्प्रयाति तद्द्रव्यहरस्तदा स्यात् ।
आस्ते पुरस्तात्सह याति चेच्छ्वा
ददात्युपानद्वदनस्तथार्थम् ॥ २९९ ॥

2622

आर्द्रकीकसमुखः पुरतश्चे-
द्दृश्यते भवति तच्छुभदः श्वा ।
चर्म शुष्कमथवास्थि विशुष्कं
बिभ्रदेष मरणं विदधाति ॥ ३०० ॥

2623

केशाश्मभस्मोल्मुकजीर्णवस्त्रा-
ण्यङ्गाररज्ज्विन्धनकर्पराणि ।
वक्त्रे समासाद्य च याति यातु-
र्दृग्गोचरे भूरिभयावहः श्वा ॥ ३०१ ॥

2624

दीर्घपादः पथि स्थित्वा रोदिति श्वा प्रवासिनः ।
तत्कुटुम्बं रोदयते मार्गं लिखति वित्तदः ॥ ३०२ ॥

2625

निविशत्यर्धमार्गे चेत्तदा ग्रामान्तरे स्थितिः ।
भवति श्वा लुठति चेन्मार्गाभ्येणेह कष्टदः ॥ ३०३ ॥

2626

दक्षिणे निजपक्षघ्नो वामे स्त्रीपक्षहानिकृत् ।
पृष्ठे च गृहदुःखाय जायते लुठनं शुनः ॥ ३०४ ॥

2627

अत्यन्तकण्डूतिपरो नराणां
विरोधकारी शुनकः सदैव ।

स्यादूर्ध्वपादः शुनकः शकानः
सिद्धिप्रदः कार्यविधौ विदुष्टे ॥ ३०५ ॥

2628

प्रस्थातुरग्रे यदि सारमेयः
कार्यं सपुच्छं श्रवणं धुनोति ।
ध्रुवं तदा तत्र दृढप्रहारा
हरन्ति चोरा द्रविणं क्षणेन ॥ ३०६ ॥

2629

अङ्गारशूलाश्मपलालकेश-
विस्तीर्णविट्चर्ममृतेषु दृष्टः ।
श्वा मूत्रयन्यच्छति कार्यनाशं
दारिद्र्यमृत्युप्रमुखानन्यर्थान् ॥ ३०७ ॥

2630

विण्मांसभक्षादिकपूर्णवक्त्रो
भयार्दितः श्वा यदि कम्पमानः ।
पराङ्मुखो याति तदाध्वगानां
नश्यन्ति सिद्धान्यपि वाञ्छितानि ॥ ३०८ ॥

2631

विजृम्भते लेढि च नासिकायं
यः स्वाङ्गभङ्गं भषणः करोति ।
स लाभहानिं प्रकरोति पुंसो
मृत्युप्रदः श्वान्तरलङ्घनेन ॥ ३०९ ॥

2632

वामेन यदि दक्षिणमङ्गं
दक्षिणेन भषणो यदि वामम् ।
स स्पृशत्यभिमतो न कदाचि-
त्तत्प्रयोजनविधौ क्वचनापि ॥ ३१० ॥

2633

विधूतकर्णे शुनि चेत्पुरस्ता-
त्पान्थो विशेद्वेश्म तदा समस्तम् ।
प्रत्यागतोर्थं समुपार्ज्य पापा-
स्तं राजकीयाः पुरुषा हरन्ति ॥ ३११ ॥

2634

दक्षिणगः प्रथमं तदनु स्या-
द्वामगतिर्व्रजतामशितुं श्वा ।
वेश्मनि यत्र नरैस्तु तदन्नं
दूरतरं विषवत्त्यजनीयम् ॥ ३१२ ॥

## अथ शिवा ।

2635

प्रायः प्रमाणमेता वामरवा संपदे शिवा गन्तुः ।
नेष्टा दक्षिणशब्दा तत्र विशेषस्तु दिग्जनितः ॥ ३१३ ॥

2636

भानुयुक्ता दिशो निन्द्यास्तिस्रो दीप्ता शिवारुते ।
दग्धाः प्रज्वलिता धूम्राः शेषाः पञ्च शुभा मताः ॥ ३१४ ॥

2637

वधं बन्धं रुजं ब्रूते शिवा दीप्ते दिशात्रये ।
लाभं क्षेमं जयं राज्यं सौख्यं दिक्पञ्चके शुभे ॥ ३१५ ॥

2638

वामेपसव्ये पुरतोपि पृष्ठे
पुंसः शिवा जल्पति यत्र यत्र ।
आयान्ति चोराः प्रथमे विरावे
द्वयोर्भवेत्तस्करदर्शनं च ॥ ३१६ ॥

2639

नृपातिरोषागमनं तृतीये
तुर्ये क्षितिः पञ्चमकेर्थलाभः ।

वाणिज्यसेवादिफलाय षष्ठे
श्रीः सप्तमे स्याद्विफलोष्टमेषु ॥ ३१७ ॥

2640

यात्रास्वपि वामरवा शिवा शिवा शान्तदिक्षु नान्यासु ।
दक्षिणरवापि शान्ते शस्ता शास्त्रप्रमाणेन ॥ ३१८ ॥

2641

वामा प्रदीप्ते ककुभः प्रदेशे
लाभं तदा हीनमुपाददाति ।
शिवा रटन्ती पथि दक्षिणे तु
क्षिपत्यनर्थान्बहुसंकटेषु ॥ ३१९ ॥

2642

अध्यास्य शान्तां ककुभं शृगाली
नरस्य वामा यदि रारटीति ।
तदर्थलाभं वितरत्यवश्य-
मर्थक्षयं दक्षिणतो रटन्ती ॥ ३२० ॥

2643

दक्षिणतः प्रथमं यदि पश्चा-
द्वामगता पथिकस्य शृगाली ।
फेत्कुरुते कुरुते तदवश्यं
क्षेमधनाप्तिगृहागमनानि ॥ ३२१ ॥

2644

कार्यान्तरेष्वप्यनुगम्यमाना
श्रेयःप्रदा शान्तदिशि प्रदिष्टा ।
शिवा प्रदीप्ते तु दिशः प्रदेशे
समारटन्ती महते भयाय ॥ ३२२ ॥

2645

भयोद्यमे दीप्तदिशि प्रदीप्तै-
र्नादैर्नृणां हन्ति महान्ति देवी ।

भयानि सर्वाण्यपि शान्तनादा
शान्तस्थिता सैव भयाय भूम्ने ॥ ३२३ ॥

2646

यदा च नद्युत्तरणे नराणां
शब्दं शृगाली कुरुते कदाचित् ।
तटद्वये तत्परिरक्षणीयं
भयं महद्भावि जलेचरेभ्यः ॥ ३२४ ॥

## अथ फेरवः ।

2647

यात्रायां गच्छतां वामाः स्वनिताः फेरवः शुभाः ।
निषेधयन्ति ते यात्रां शृगाला दक्षिणारवाः ॥ ३२५ ॥

2648

शान्तासु दिक्षु फेरूणां हृष्टः शब्दः प्रशस्यते ।
एको रवः सदा निन्द्यः सोप्यार्तानां भयापहः ॥ ३२६ ॥

2649

गतिर्वामा प्रयाणे तु प्रवेशे दक्षिणा शुभा ।
तत्रस्थो न विलम्बेत शस्तः सर्वत्र जम्बुकः ॥ ३२७ ॥

## अथोलूकपिङ्गले ।

2650

अथ घूकस्वरो वामे यात्रायां गच्छतः शुभः ।
दक्षिणे मृतये किंचिद्दुष्टं दर्शनमस्य हि ॥ ३२८ ॥

2651

कौशिको दक्षिणो भूत्वा पश्चाद्ग्रामस्वरो यदि ।
कष्टं विधाय मृत्यन्तं निर्वाणे कार्यसाधकः ॥ ३२९ ॥

2652

करोति हुंहुं शुगिति ध्वनिं यो
नेष्टो न दुष्टः स यतो रतार्थी ।

चलश्चलः स्यात्कलहाय शब्दः
किकीति दीप्तो गुरुरुग्लुशान्तः ॥ ३३० ॥

2653

पृष्टे च वामे विदधाति शब्दः
समीहितं पान्थजनस्य रात्रौ ।
विशेषतो वायसवैरिशब्दो
दुष्टः प्रदिष्टोहनि सर्वदिक्षु ॥ ३३१ ॥

2654

पिङ्गला वामनिनदा प्रयाणे शान्तादिक्स्थिता ।
प्रशस्ता विपरीता च कष्टोद्वेगौ ददाति सा ॥ ३३२ ॥

2655

पूर्वं दक्षिणशब्दा स्यात्ततो वामस्वरा यदि ।
अतीव कष्टं दत्त्वा निर्वाणे कार्यसाधिका ॥ ३३३ ॥

## अथ काकः ।

2656

आगन्तौ जाङ्घिके चैव सर्वे काकाः समाः स्मृताः ।
क्षेत्रजे शकुने ग्राह्यः काकोलस्तेषु सर्वदा ॥ ३३४ ॥

2657

कार्याकार्येषु काकोलः प्रशस्तः स्याद्यथा किल ।
न तथा वायसा ज्ञेया ग्राह्यास्तु तदभावतः ॥ ३३५ ॥

2658

दक्षिणदेशे शब्दं कुर्वन्गच्छंश्च दक्षिणेनैव ।
काकः शुभः प्रयाणे शुभः प्रवेशे तु विपरीतः ॥ ३३६ ॥

2659

वामेन गत्वा विनिवृत्य मार्गे
काको यदा दक्षिणभागगः स्यात् ।
यातुः करोतीहितकार्यसिद्धिं
क्षेमं च शीघ्रं पुनराममं च ॥ ३३७ ॥

2660

कृत्वा रवं यः पुरतः प्रयाति
पुरःस्थितो यो मृदमादधाति ।
कण्डूयते यश्च शिरोङ्घ्रिणासौ
पुंसां तदाभीष्टफलं ददाति ॥ ३३८ ॥

2661

स्तम्भे गजानां नियतं गजाग्निं
गजाधिरूढः पृथिवीपतित्वम् ।
तुरंगमे वाहनभूमिलाभं
करोति काको विजयं ध्वजे च ॥ ३३९ ॥

2662

प्रशान्तनादः शिखरे तरूणां
स्त्रीसङ्गसौख्यं करटोभिधत्ते ।
धान्यादिकूटेषु तथान्नलाभं
गोपृष्ठगो गोवनिताधनाप्तिम् ॥ ३४० ॥

2663

अन्नादिविष्ठापिशितादिभिर्यः
पूर्णाननोभीष्टफलप्रदोसौ ।
मन्त्रादिसिद्धैश्च वणिगादिलाभे
शस्तो विवाहादिविधौ च काकः ॥ ३४१ ॥

2664

चिह्नध्वजच्छत्रकृताधिरोहः
समुद्यतं शत्रुबलं प्रपश्यन् ।
आजौ जयं जल्पति भूमिपानां
कृतस्वनः क्षीरतरौ च काकः॥ ३४२ ॥

2665

क्रांक्रामिति क्रीमिति योषिदाप्त्यै
योगाय कोंकोमिति शब्दितं स्यात् ।

अपत्यलाभः कुकु इत्यनेन
गन्तुः फलं केंकक इत्यनेन ॥ ३४३ ॥

2666

क्रौंक्रोमितीदं शुभलाभकारी
क्रुंक्रुं निनादः प्रियसंगमाय ।
मित्रागमे स्यात्क इतीदृशं च
करोति काको वदति स्वतुष्ट्या ॥ ३४४ ॥

2667

क्षेमं विधत्ते करभस्य पृष्ठे
खरस्य पृष्ठेरिभयं वधं च ।
क्रोडस्य पृष्ठे धनमर्थलाभं
तस्यैव पृष्ठे घनपङ्कलिप्ते ॥ ३४५ ॥

2668

सद्यो ज्वरं सैरिकपृष्ठसंस्थो
मृताङ्गसंस्थो मरणं करोति ।
कार्यक्षतिं रिक्तघटाश्मसंस्थः
काकः कलिं काष्ठनिविष्टदृष्टः ॥ ३४६ ॥

2669

प्रयाति वामे यदि पृष्ठदेशे
कृतारवस्तद्रुधिरभुतिः स्यात् ।
वल्लीवरत्रादिवसां गृहीत्वा
प्रयाति वामे स हि सर्पभीत्यै ॥ ३४७ ॥

2670

नदीतटे वाथ रटन्नटव्यां
खरस्वरो व्याघ्रभयाय गन्तुः ।
नैवातुरः क्वापि मतो हिताय
न हृष्टपुष्टः क्वचिदेव दुष्टः ॥ ३४८ ॥

2671

तुण्डेन पुच्छं विलिखन्खरेण
स्वरेण यो रौति निरीक्षतेर्कम् ।
एकेन पादेन तथोपविष्टो
ब्रूते स बन्धं पुरतो जनस्य ॥ ३४९ ॥

2672

यात्रोद्यमे सैन्यवधाय काको
दृष्टो रथेभाश्वनृमस्तकेषु ।
आयाति यस्याभिमुखो बलस्य
युद्धोद्यमे तस्य पराजयः स्यात् ॥ ३५० ॥

2673

क्राक्रा इति क्रोरिति च द्विरुक्तं
क्रूंक्रूमिति क्रो कुकुहूरितीदम् ।
रुतं प्रदिष्टं मरणाय पुंसां
गन्तुर्विनाशं कुरुते त्ववश्यम् ॥ ३५१ ॥

2674

क्रीं क्रीमिति क्रोमिति च त्रयोमी
क्रां क्रामिति द्वौ चरणौ रणाय ।
का का इतीदं च विघातकारी
स्यात्का इतीदं विफलं सदैव ॥ ३५२ ॥

## अथ पोतकी ।

2675

ग्रामाद्बहिर्व्रजित्वा स्तोकान्तरदूरमार्गमध्यास्य ।
उच्चार्य स्वस्त्ययनं विष्णुं तार्क्ष्यं च संस्मृत्य ।
तत्रावलोक्य दिनकरमुच्चार्य किरीटिनोभिधानानि ।
नामानि कृष्णिकायाः प्रोक्त्वा नत्वा च तां पश्येत् ॥३५३॥

(युग्मम्)

अर्जुनः फाल्गुनः पार्थ इति पूर्वोक्तनामानि ।

2676

श्यामा कृष्णा शकुनिः सितपक्षा पोतकी कुमारी त्वम् ।
दुर्गा देवी चटका धनुर्धरी पाण्डवी च वराही त्वम् ॥३५४॥

2677

पान्थजननी तथोमा ब्रह्मसुता शकुनदेवता त्वमसि ।
प्रत्यक्षा भव भगवति नमोस्तु ते देहि मे सिद्धिम् ॥ ३५५ ॥

## अथ पोतकीशकुनविचारः ।

2678

दिक्कालस्वरचेष्टाभावगतिस्थानकार्यसंप्रश्नान् ।
यो वेत्ति शान्तदीप्तांस्तत्रास्ते शाकुनं ज्ञानम् ॥ ३५६ ॥

2679

भस्मितदग्धज्वलितालिङ्गितधूमान्विता विमुच्य पञ्चैताः ।
शेषा दिशः प्रशान्ताः कालो विष्ट्यादिनिर्मुक्तः ॥ ३५७ ॥

2680

शान्तो भौमेपि रवौ दहनानिलगगनजाः स्वरा दीप्ताः ।
चेष्टाः शुभाः प्रसन्ना भावः शोकादिनिर्मुक्तः ॥ ३५८ ॥

2681

वक्रादिदोषरहिता ऋज्वी तारागतिः प्रशस्ता स्यात् ।
तरुतोरणादि शान्तं स्थानं दीप्तं कपोतादि ॥ ३५९ ॥

2682

कार्यं च शान्तदीप्तं ज्ञात्वा विद्वान्विचारयेत्सर्वम् ।
शान्ते शान्तं ग्राह्यं दीप्ते दीप्तं च गृह्णीयात् ॥ ३६० ॥

2683

चिलि भूलि रवौ भौमे चि कुरुतिः कूचीति निस्वनावाप्यौ ।
कितुरिति तैजसः स्यात्स्खलिता नादाश्च ये केचित् ॥ ३६१ ॥

2684

चिवीति रवौ मारुतः स्याच्चुलिकुलिनादश्च तादृशः कथितः ।
आम्बरमाहुश्चिरिरिति चिकुरिति पञ्च विद्वांसः ॥ ३६२ ॥

2685

लाभदश्चिलचिलीति निनादः
शूलिशूलिनिनदोपि तथैव ।
कूचिकूचिइति वापि जलार्थे
व्याहृतौ चिकुरिति स्वर उक्तः ॥३६३॥

2686

कीतुकीतुइति यो मधुरोसौ
कामदस्तु निनदः स्खलिताख्यः ।
स्याद्भयाय नियमेन चिचीति
निःस्वनाश्चिलिकुनाद इहापि ॥ ३६४ ॥

2687

कष्टदश्चिरिचिरीति विराव-
श्चीकुचीकु इति दैन्यविधायि ।
एवमीदृशफला दश नादाः
प्रस्फुटा निगदिता भगवत्या ॥ ३६५ ॥

2688

दर्शनचेष्टास्वरगतिभक्ष्यग्रहणेष्वधिकमधिकं स्यात् ।
क्रमशो बलमेतेषां समुदायः सकलफलहेतुः ॥ ३६६ ॥

2689

वामादक्षिणगमना या सा तारा निगद्यते पुरतः ।
दक्षिणतो वामं या याता सा कीर्त्यते वामा ॥ ३६७ ॥

2690

वामो विभागो निजपक्षनामा
विपक्षनामाङ्कितदक्षिणः स्यात् ।
वामे शुभं पूर्वमुदीक्षितायां
यद्दक्षिणे हन्ति विलोकिता सा ॥ ३६८ ॥

2691

वामविरावा वामे स्थिता प्रशस्ता गता तारा ।
दक्षिणरवापि पक्षे स्थिता न शस्ता गता वामा ॥ ३६९ ॥

2692

सुखदुःखहर्षशोकप्रभृति यदाप्नोति दैवतः शकुनिः ।
सावस्था पक्षे स्वा ज्ञेया त्वन्यत्र शत्रूणाम् ॥ ३७० ॥

2693

त्वरितं याती त्वरितं पूर्णं च समीहितं जनयेत् ।
मध्यफला सविलम्बा हीनफला सुचिरगमनासु ॥ ३७१ ॥

## अथ पोतकीदर्शनम् ।

2694

अविकृतकृतभौमरवा सुस्थानस्था सुचेष्टिता वामे ।
यात्रासु दृष्टमात्रा दुर्गा दुर्गाणि तारयति ॥ ३७२ ॥

2695

दृष्टा प्रागुपविष्टा शान्तरवानन्तरं गता तारा ।
सुचिरस्थानकृतस्थितिरभिमतफलदायिनी दुर्गा ॥ ३७३ ॥

2696

उन्नतदक्षिणपक्षा भक्ष्यमुखी विहितपार्थिवनिनादा ।
तारा तरुमधिगच्छति तद्यच्छति वाञ्छितादधिकम् ॥ ३७४ ॥

2697

अग्रेसरी कुमारी तत्पृष्ठे पुङ्गवो यदा तारः ।
सिद्धिस्तदोत्तमा स्याद्दृष्टाप्यादौ वरा दुर्गा ॥ ३७५ ॥

2698

एकापि पञ्चशान्ता तारा वाञ्छाप्रदे शुभासीना ।
लाभ उभाभ्यामधिकस्तिस्रो राज्याय यात्रायाम् ॥ ३७६ ॥

2699

क्षेत्रे ग्रामो ग्रामे नगरं नगरे तु मण्डलावाप्तिः ।
तस्यामुर्वीत्येवं यो लाभो राज्यमाहुस्तम् ॥ ३७७ ॥

2700

नीचैर्यान्ती नीचं फलमधमाद्या चिरेण वा दिशति ।
मध्येन मध्यमात्रं तूर्णं पूर्णं शिरःसीम्नि ॥ ३७८ ॥

2701

आदौ दर्शयति नतिं यान्ती यान्ती समुन्नतिं धत्ते ।
अनुकूलापि वराही चिरेण तुच्छं फलं धत्ते ॥ ३७९ ॥

2702

उच्चैरुड्डीयमाना नतिमन्ते वहति या तु गच्छन्ती ।
यच्चिरलभ्यमथाल्पं तत्सा बहु यच्छति त्वरितम् ॥ ३८० ॥

2703

वामे विधाय शब्दं यात्यनुकूला करोति च विरावम् ।
वामा ततोपि भूत्वा रौति तदा बहुफला देवी ॥ ३८१ ॥

2704

वामे विहितविचारा तारा भूत्वा करोति शब्दं या ।
सा विनिहत्य गतेः फलमाद्यरवोत्थं फलं धत्ते ॥ ३८२ ॥

2705

या याति मौनिनी वा प्रदक्षिणं हव्यवामशब्दा वा ।
ऋज्वी शुभाय गमने वामा ग्रामप्रवेशे च ॥ ३८३ ॥

2706

यद्येका दक्षिणगा वामान्या तद्भयमुपेक्ष्याथ ।
अन्या गवेषणीया मिश्रत्वे फलविमिश्रत्वम् ॥ ३८४ ॥

2707

पृष्ठाभिमुखी पृष्ठे कार्यं नास्तीति संमुखी ब्रूते ।
तारा लाभाय पुरः पृष्ठे नष्टार्थलाभाय ॥ ३८५ ॥

2708

वामस्वरा समृद्धिं दक्षिणशब्दा निषेधमाचरति ।
संमुखशब्दानर्थं पृष्ठरवा वदति पृष्ठार्थम् ॥ ३८६ ॥

2709

उड्डीयोर्ध्वं गमने निपत्यवचना वधोन्मुखी शकुनिः ।
वामे यातुर्निधनं दिशति विपक्षे विपक्षस्य ॥ ३८७ ॥

2710

पक्षे भक्ष्यग्रहणं लाभाय विपक्षसंभवं हान्यै ।
पञ्चानामपि मुख्या भक्ष्याप्तिर्दर्शनादीनाम् ॥ ३८८ ॥

2711

संमुखमायान्ती वा पृष्ठरवा वा तिरोभवन्ती वा ।
अत्यन्तदुष्टचेष्टा या वा सा वारयेद्गमनम् ॥ ३८९ ॥

2712

चापच्युतेव गुलिका वियति जवाद्याति दूरदेशं या ।
तारा रणाय गन्तुर्वामा श्यामा तु मरणाय ॥ ३९० ॥

2713

मृगयुर्मृगयां गच्छन्मार्गे मार्गे विमार्गयन्दुर्गाम् ।
वामरवां तारां वा गृह्णीत मृगेषु दृष्टेषु ॥ ३९१ ॥

2714

स्थानीकृतेषु यदि वा दृग्गोचरमागतेषु वध्येषु ।
प्रावेशिकेन यायाद्व्याधः शकुनेन धाटिदस्तद्वत् ॥ ३९२ ॥

अथ हंसचारः ।

2715

एकत्र सार्थे व्रजतां बहूनां
तुल्येपि जाते शकुने फलानि ।
नानाप्रकाराणि भवन्ति येन
तं हंसचारं प्रविचारयामः ॥ ३९३ ॥

2716

शशाङ्कनाड्यामथवार्कनाड्या-
मन्तःशरीरे प्रविशन्त्युशन्ति ।
यशःसमृद्धिं कुशलं जयं च
निर्गच्छतः स्यात्फलवैपरीत्यम् ॥ ३९४ ॥

अथ शुभहंसचारः ।

2717

ऐन्दवी वहति नाडिका यदा
स्वेच्छया प्रविशति प्रभञ्जनः ।
पोतकी व्रजति दक्षिणा यदा
स्यात्तदा सकलमीप्सितं फलम् ॥ ३९५ ॥

2718

स्याद्यदि वामा श्यामा वायुरिडां विशति चेत्तदा तत्र ।
प्राक्तनशकुनात्किंचिन्न्यूनं भद्रं भवेन्नियतम् ॥ ३९६ ॥

2719

मारुते विशति दक्षिणनाडीं
दक्षिणा यदि गतिर्भगवत्याः ।
ईप्सितं फलमुशन्ति तदार्धं
निश्चयोत्र मुनिभिः कथितोयम् ॥ ३९७ ॥

2720

निःसरत्युदरतो यदीडया
मारुतो भगवती च दक्षिणा ।
अल्पकं शुभफलं भवेत्तदा
नात्र किंचिदविचारगोचरम् ॥ ३९८ ॥

अथाशुभसंचारः ।

2721

नाडिका वहति तापनी यदा
निःसरत्युदरतः समीरणः ।
अग्रदक्षिणगतिर्धनुर्धरी
स्यादनिष्टफलमव्ययं तदा ॥ ३९९ ॥

2722

वायुर्दक्षिणनाड्या निःसरत्युदरतः समीरणः ।
प्राक्तनशकुनान्न्यूनं किंचिदनिष्टं भवेत्तत्र ॥ ४०० ॥

2723

यदि वहति वामनाडीपवनो बहिरेति पोतकी वामा ।
अर्धमनिष्टं भवति प्रस्थितकार्ये तदा नित्यम् ॥ ४०१ ॥

2724

दक्षिणनाडी पूर्णा पवनेन गतिर्यदा च वामा स्यात् ।
अल्पकमशुभं भवति ध्रुवमिह नैवास्ति संदेहः ॥ ४०२ ॥

2725

तारा यान्ती सोमनाड्यां वहन्त्यां
शस्ता श्यामा शोभने कार्यभागे ।
संत्रासादौ शस्यते वैपरीत्या-
त्संमिश्रत्वे स्यात्फलं मिश्रमेव ॥ ४०३ ॥

2726

तेनैकस्मिन्नेव जाते निमित्ते
यादृग्येषां प्राणचारोऽभ्युदेति ।
तादृक्तेषां स्यात्फलं मानवानां
नैकाकारो हंसचारः क्वचित्तु ॥ ४०४ ॥

अथ तित्तिरिः ।

2727

यात्रायां तित्तिरिर्वामः स्वरः क्षेमाय शस्यते ।
स एव कन्यकाकार्ये दक्षिणो वरलब्धये ॥ ४०५ ॥

2728

वामः पूर्वं दक्षिणः स्यात्ततो यः
पश्चाद्वामश्चिन्तितार्थप्रदाता ।
स्थैर्यारम्भे लाभकृत्ये प्रवेशे
नष्टान्वेषे दक्षिणः श्रेष्ठकारी ॥ ४०६ ॥

2729

कृष्णतित्तिरिरितीह पतत्री
वृत्ततित्तिरिरिति प्रथितो यः ।
चातकः स्वररवो दधिमल्लो
गौरतित्तिरिसमाः शकुनेषु ॥ ४०७ ॥

अथ लट्वा ।

2730

लट्वा दक्षिणगमना यात्रायां वामगा प्रवेशे च ।
संमुखमायात्यग्रे न तस्य सौख्यादिदात्री सा ॥ ४०८ ॥

2731

पृष्ठादागच्छन्ती पृष्ठे सौख्यं करोत्युभयभागे ।
यदि शुध्यति तद्युग्मं विवाहयात्रे तदानिष्टे ॥ ४०९ ॥

2732

त्रासिता पक्षिणान्येन त्रासमाख्याति यायिनः ।
दृश्यते संमुखे तस्य वस्तु तद्वस्तुवृद्धिकृत् ॥ ४१० ॥

## अथ करायिका ।

2733

ग्रामादौ गच्छतां वामः शुभः करकरारवः ।
दक्षिणः करायिकायाः श्रेष्ठो घुलुघुलारवः ॥ ४११ ॥

2734

प्रवेशे स्याद्दक्षिणतः श्रिये करकरारवः ।
वामे घुलुघुलारावो वैपरीत्येन शस्यते ॥ ४१२ ॥

2735

प्रवेशे निर्गमे चैव दक्षिणे च गतिः शुभा ।
उभयत्रापि वामा तु मूढा स्याद्वधबन्धदा ॥ ४१३ ॥

2736

शब्दं कृत्वोड्डीयते या गत्वा वा कुरुते ध्वनिम् ।
शब्दायते तरौ वापि वामापि व्रजतां शुभा ॥ ४१४ ॥

2737

प्रवेशेल्पफला सैव ग्रामे घुलुघुला शुभा ।
बद्धस्य मुक्तये सद्यो मूढा घुलुघुलापि च ॥ ४१५ ॥

2738

बद्धस्य द्रव्यनिर्गत्यै तस्याः करकरारवः ।
वाणिज्यार्थं गच्छतां तु लाभदायी स एव हि ॥ ४१६ ॥

## अथ वृकः ।

2739

यात्रायामुच्चरन्वामश्चौरभीतिकरो वृकः ।
दक्षिणे कष्टकृत्सार्थे स्त्री यदि स्यात्तदर्तये ॥ ४१७ ॥

2740

वरस्य परिणीतस्य सवधूकस्य गच्छतः ।
यद्युत्तरन्ति च वृका निकटे पितृवेश्मनः ॥ ४१८ ॥

2741

पितृमातृविनाशाय समीपे श्वशुरौकसः ।
वधूश्वश्रूोः पुत्रपित्रोरेकवासनिवारकः ॥ ४१९ ॥
(युग्मम्)

2742

क्षेत्रे याताः कार्षुकस्य विना वृष्टिं तु ये वृकाः ।
क्षेत्रमध्ये लुठन्तश्च दुर्भिक्षानर्थसूचकाः ॥ ४२० ॥

2743

पूर्वं गृहीत्वा व्यापारं ग्रामं वा गच्छतो वृकः ।
प्रयाणपदवीं वामे प्रापयत्युत्तरं भृशम् ॥ ४२१ ॥

2744

चौरस्यान्यस्य वा पुंसः परार्थग्रहणाय चेत् ।
गच्छतो वा समुत्तीर्णः फलदाता भवेद्वृकः ॥ ४२२ ॥

2745

भवेद्वृकानां शकुनो दीप्ते कार्ये सुशोभनः ।
सर्वकार्याणि मङ्क्षु स्य साधयत्येव सर्वतः ॥ ४२३ ॥

अथ हरिणः ।

2746

विषमा हरिणा गौरा भाग्याद्यान्ति प्रदक्षिणम् ।
प्रस्थाने न शुभा वामाः सकृष्णास्तेपि शोभनाः ॥४२४॥

2747

उत्तीर्य दक्षिणे पूर्वं पश्चाद्यामेतिनिन्दिताः ।
कैश्चित्कृष्णो मृगश्चैकः कैश्चित्सर्वेपि नादृताः ॥ ४२५ ॥

2748

नेत्ररोगाय यद्येको वामगो मृगमध्यतः ।
लाभदः स स्वपक्षे चेदुत्तीर्य प्रविशेत्पयः ॥ ४२६ ॥

2749
खनत्युत्तीर्य भूमिं च निधानक्षितिलब्धये ।
स्वपक्षे परपक्षे तु शस्त्रपातादिभीतये ॥ ४२७ ॥

2750
उत्तीर्य पृष्ठतो याति वेष्टनं वा करोति चेत् ।
स्वस्थस्य वेष्टनप्राप्तिः सभयस्य भयं हरेत् ॥ ४२८ ॥

2751
घ्नन्तः भृङ्गैर्विषाणाभ्यामुद्वेगाय प्रवासिनः ।
खेलन्तः सुरते वापि कुर्वन्तः कार्यसिद्धये ॥ ४२९ ॥

2752
यद्युत्तरन्तस्त्रस्यन्ते तदा कार्यस्य नाशकाः ।
एको दक्षिणगो गौरो मूत्रकुद्यः स लाभदः ॥ ४३० ॥

2753
मृग्यो वा कृष्णसारो वा नोत्तरन्त्यः शुभावहाः ।
शुभकार्येषु दीप्ते च कार्ये ते शोभनाः स्मृताः ॥ ४३१ ॥

अथ नकुलः ।

2754
नकुलानामपि धन्यं विषमाणां दक्षिणं गतं यातुः ।
लोमाशिकापि श्रेष्ठा दर्शनतस्तारगश्चाषः ॥ ४३२ ॥

अथ मिश्रशकुनानि ।

2755
सर्वत्र हंससारसचकोरहारीतचक्रमिथुनानि ।
धन्यानि दर्शनरुतैः खञ्जनदात्यूहभासाश्च ॥ ४३३ ॥

2756
शशशरटकोलगोधाविषधरमार्जारकौशिका न शुभाः ।
मार्गे विलङ्घ्य यान्तो दीप्ते कार्ये च ते शुभदाः ॥ ४३४ ॥

2757
व्याधिवधबन्धशुल्कग्रहणेष्वन्वेषणे च नष्टस्य ।
प्रस्थानाद्विपरीतः शकुनः शस्तः प्रवेशे च ॥ ४३५ ॥

2758

अद्यतने योद्धव्ये शकुने विजयाय यात्रिकविरुद्धः ।
दिवसान्तरिते युद्धे क्षेमः प्रास्थानिकः शकुनः ॥४३६ ॥

## अथ क्षुतम् ।

2759

लाभकारि भवेदैन्द्र्यामाग्नेय्यां हानिकृत्तथा ।
यमालये मरणकृन्नैर्ऋत्यां दुःखकृत्क्षुतम् ॥ ४३७ ॥

2760

पश्चिमायां भवेल्लक्ष्मीः शुभवार्त्ता मरुद्दिशि ।
कौबेर्यां ध्रुवलाभः स्यादैशान्यां विजयो भवेत् ।
ब्रह्मस्थाने क्षुते जाते राज्यं निःसंशयं भवेत् ॥ ४३८ ॥

2761

वामविभागे सफलं न दक्षिणे पृष्ठतः शुभं तच्च ।
क्षुतमग्रेग्रे नियतं ददाति कष्टं तथा मरणम् ॥ ४३९ ॥

2762

पौनःपुनिकं व्यर्थं हठहास्यभयादिभिर्विडालस्य ।
श्वानस्य च मृत्युकरं पशुक्षुतं कष्टदं नियतम् ॥ ४४० ॥

2763

वस्तुविक्रयकर्तव्ये क्षुतं विक्रयवारकम् ।
लाभदं वस्तुनो ग्राहे तच्चेत्स्याद्व्यवसायिनाम् ॥४४१ ॥

2764

नष्टान्वेषे गच्छतां तु तच्च नष्टाप्तये भवेत् ।
नव्ये परिधृते वस्त्रे क्षुतं चेद्वस्त्रलाभदम् ॥ ४४२ ॥

2765

होमपूजाशनक्षेत्रधर्मान्ते चेद्भवेत्क्षुतम् ॥
सविशेषं तदा कार्यं पुनर्व्यावृत्त्य जायते ॥ ४४३ ॥

2766

क्षुतं प्रेतक्रियान्ते च पुनः प्रेतक्रियाकरम् ।
बलिनं रिपुमाख्याति क्षुतं रिपुविनिग्रहे ॥ ४४४ ॥

2767

वैद्यस्य गच्छतो रोगं क्षुतं हन्ति क्षणादपि ।
वैद्याह्वानाय दूतस्य गच्छतो रोगिमृत्युकृत् ॥ ४४५ ॥

2768

कर्षणान्वेषणे यातुः क्षुतं जलदवृष्टये ।
हेमादिभूषणे नव्ये विधृते भूषणाप्तये ॥ ४४६ ॥

2769

शुभादनन्तरं श्रेष्ठमशुभानन्तरं क्षुतम् ।
अशुभं सर्वकार्येषु तद्विचार्यं विचक्षणैः ॥ ४४७ ॥

## अथ दिशां स्वभावकथनम् ।

2770

उदयास्तौ मूलाख्यौ उत्तरयाम्यौ ध्रुवनिवासनामानौ ।
नैर्ऋतवायव्यौ च प्रमाणचरकाह्वयौ तेषाम् ॥ ४४८ ॥

2771

रूढे चैव भवेतामैशानाग्नेयकोणयोरभिधे ।
सहजं रविगतिजनितं चैषां द्वेधा प्रशान्तदीप्तत्वम् ॥४४९॥

2772

प्राच्यं दीप्तं मूलं स्वभावतस्तुच्छकार्यं च ।
रवियोगात्प्रकृतेरपि दीप्ततरा स्याद्दिगैशानी ॥ ४५० ॥

2773

एकान्तशान्तमेकं मन्यन्ते मानवा निवासाख्यम् ।
उष्णस्य च शीतस्य च नाशकरं कार्ययुग्मस्य ॥ ४५१ ॥

2774

प्रमाणं निष्प्रमाणानां प्रमाणं कुरुतेतराम् ।
पदस्थस्य पदावाप्तिर्नाशकृच्चरितं च तत् ॥ ४५२ ॥

2775

प्राप्य प्रमाणकोणं यद्यन्यस्थस्य जायते शकुनः ।
तस्याकस्मात्किंचित्सत्वरमुत्पद्यते कार्यम् ॥ ४५३ ॥

2776

न प्रारब्धं सिध्यति न प्रस्थानं प्रमाणमायाति ।
शकुने प्रमाणजाते विघटेत समागमे संधिः ॥ ४५४ ॥

2777

विघटितमर्थं घटयति संशयितं वस्तु साधयत्यचिरात् ।
प्रत्यानयति च नीतं प्रमाणकोणोदितः शकुनः ॥ ४५५ ॥

2778

प्रत्यूहोपहतानां दिङ्मूढानां मतिभ्रमार्तानाम् ।
प्रायः प्रमाणशकुनः साधीयान्कान्दिशीकानाम् ॥४५६ ॥

2779

पश्चिममूलं शान्तं स्वभावतस्त्वरितकार्यकृद्धीरम् ।
सुस्थिरकर्मकरं च प्रोद्दीप्तं स्याद्रवेर्योगात् ॥ ४५७ ॥

2780

रिक्तीकरोति पूर्णं रिक्तं पूर्णं करोति नियमेन ।
प्रायः स्वरूपदीप्तः शकुनश्चरकप्रदेशोत्थः ॥ ४५८ ॥

2781

उत्साहोज्झितमनसां राज्ञां परिमोषिणां जिगीषूणाम् ।
निरुपायोद्विग्नानां साधुश्चरके सदा शकुनः ॥ ४५९ ॥

2782

चौर्यावस्कन्दाहृतपरसंपत्संभृतप्रदेशानाम् ।
सद्यो रिक्तीकरणं चरकं शकुनं समुद्भूतम् ॥ ४६० ॥

2783

भूमिं गतोपि जीवति निगडैरपि संयतो विमुच्येत ।
युध्यन्ते संनद्धाः क्रोधान्धोदायुधा योधाः॥ ४६१ ॥

2784

धरोद्भवं तु शकुनं शुभस्योर्ध्वं शुभाय तत् ।
अशुभोर्ध्वं न भद्रं स्यात्सर्वत्रैषा विचारणा ॥ ४६२ ॥

2785

शकटारोपितभाण्डोप्युचलति नैव यातुकामोपि ।
ध्रुवदेशोत्थे शकुने किंत्वेकः प्रवसति स्वस्थः ॥ ४६३ ॥

2786

यस्योटजेपि वसतो ध्रुवं समासाद्य जायते शकुनः ।
मासार्धमस्य न चिरात्पुंसः सौधानि साधयति ॥ ४६४ ॥

2787

ग्रामारामामरगृहपरिखा वा यदि शाश्वतारम्भात् ।
सिद्धिं ध्रुवोत्थशकुनो नयति सुखोद्वाहमुख्यांश्च ॥ ४६५ ॥

2788

ईशानोत्थैः शकुनैश्चोरा ग्रामं प्रविश्य न लभन्ते ।
न च रोगार्तो जीवति स्वस्थोप्यस्वास्थ्यमाप्नोति ॥ ४६६ ॥

2789

ईशानोत्थैः शकुनैर्विशेषतः शूरमण्डलाक्रान्तैः ।
रिपुवेष्टित इव दूरं त्यक्त्वा स्थानं पलायेत ॥ ४६७ ॥

2790

पश्चिममूले शान्ते शकुनाः शान्ताः शुभावहाः सद्यः ।
प्राचीमूले च तथा शान्ताः परिणामसौख्यकराः ॥४६८ ॥

2791

यस्मिन्देशे यथा येषां प्रसिद्धं शकुनं किल ।
तस्मिन्देशे तथा तेषां फलदं नान्यतः क्वचित् ॥ ४६९ ॥

## अथ स्वरोदयः ।

2792

मर्त्यप्राक्तनपुण्यस्य पापस्य च फलप्रदम् ।
स्वरोदयं प्रवक्ष्यामि यं ज्ञात्वा नावसीदति ॥ ४७० ॥

2793

स्वरोदये शुभे जाते शकुनैः किं प्रयोजनम् ।
तस्मिंश्चाप्यशुभे जाते शकुनैः किं प्रयोजनम् ॥ ४७१ ॥

2794

इडा सोमस्य नाडी स्यात्पिङ्गला सूर्यनाडिका ।
इडा सौम्या भवेद्वामा पिङ्गलोग्रा च दक्षिणा ॥ ४७२ ॥

2795

हंसाभिधानः पवनो नाभिमूलात्समुत्थितः ।
नाडीमार्गेण जन्तूनां प्रकरोति गतागतम् ॥ ४७३ ॥

2796

इडया संचरन्वायुः सौम्ये कार्ये शुभः स्मृतः ।
पिङ्गलायां तथा दीप्ते द्वयोः क्वापि न शोभनः ॥ ४७४ ॥

2797

अध्ययनमित्रसङ्गप्रवेशयात्राविवाहदानेषु ।
शुभकार्येष्वखिलेष्वपि शस्तः सोमाध्वगः पवनः ॥ ४७५ ॥

2798

युद्धवादरतवस्तुविक्रय-
द्यूतभोजनभयोग्रकर्मसु ।
सूर्यमार्गगमनः समीरण-
स्तत्त्वदर्शिभिरतीव शस्यते ॥ ४७६ ॥

2799

शुभः स्यात्प्रविशन्नन्तर्मारुतो न तु निःसरन् ।
सौम्ये वा दीप्तकार्ये वा सर्वत्रैषा विचारणा ॥ ४७७ ॥

2800

यस्यां प्रवहति वायुर्नाडी सा जीवसंयुता गदिता ।
यस्यां नैष प्रवहति निर्जीवा सा समाख्याता ॥ ४७८ ॥

2801

दीप्ते कार्ये नाडी परदिशि निर्जीवितां सदा कुर्यात् ।
शान्ते च जीवसहितां ततस्तु सिध्यन्ति सर्वकार्याणि॥४७९॥

अथ पञ्चतत्त्वानि ।

2802

अम्भस्तत्त्वं भूमितत्त्वं च वायो-
स्तत्त्वं तेजस्तत्त्वमाकाशतत्त्वम् ।
पञ्चैतानि प्राणवायुं मिलित्वा
नाडीयुग्मे प्राणिनां संचरन्ति ॥ ४८० ॥

2803

नाभिं यावद्व्रजेन्मानो वारिणः षोडशाङ्गुलः ।
धरायाश्च भवेत्तद्वत्प्रमाणो द्वादशाङ्गुलः ॥ ४८१ ॥

2804

अष्टाङ्गुलस्य कथितो वायोर्मानो विचक्षणैः ।
चतुरङ्गुलमानं च तेजस्तत्त्वं निगद्यते ॥ ४८२ ॥

2805

द्व्यङ्गुलोन्मानमाकाशं कथितं तत्त्वदर्शिभिः ।
एतानि पञ्च तत्त्वानि नाडीयुग्मे विचारयेत् ॥ ४८३ ॥

2806

नीरस्याधो भूमेर्ऋज्वी वायोश्च तिर्यक्स्यात् ।
ऊर्ध्वं तेजःप्रभवा शून्या गगनस्य गतिरुक्ता ॥ ४८४ ॥

2807

नीरं वर्तुलमुर्वी चतुरस्रा वायुरर्धचन्द्रः स्यात् ।
तेजस्त्रिकोणमम्बरमाकृत्या शून्यमुद्दिष्टम् ॥ ४८५ ॥

2808

जलवसुधातत्त्वाभ्यामुदिताभ्यां सौम्यकार्यमतुलं स्यात् ।
मारुततेजोभ्यां च प्रारब्धं दीप्तमेति संसिद्धिम् ॥ ४८६ ॥

2809

शून्यं गमनं निष्फलमखिलेष्वपि शान्तदीप्तेषु ।
कार्येषु निन्दितं तत्कथितमिदं पूर्वसूरिभिः सत्यम् ॥ ४८७ ॥

2810

तत्रापि चिन्तनीयं सोमदिनाधीशनाडिकाचारात् ।
फलमेतेषामखिलं मिश्रं संजायते यस्मात् ॥ ४८८ ॥

2811

इडायां यदि भूम्यम्बुतत्त्वे प्रवहतस्तदा ।
स्थिरसौम्यादिकार्याणामारम्भः सिद्धिकृद्भवेत् ॥ ४८९ ॥

2812

पिङ्गलायां यदा तत्त्वं वायोर्वा तेजसो भवेत् ।
उग्रकर्माणि सर्वाणि तदा सिध्यन्ति निश्चितम् ॥ ४९० ॥

2813

यदेडायां मरुत्तत्त्वं तेजस्तत्त्वं भवेदुत ।
कार्याणां सौम्यदीप्तानां सदा स्यान्मिश्रितं फलम् ॥ ४९१ ॥

2814

पिङ्गलायां धरानीरतत्त्वे प्रवहतो यदि ।
तदोग्रसौम्यकार्याणां भवेत्फलविमिश्रता ॥ ४९२ ॥

2815

पिङ्गलायामिडायां वा व्योमतत्त्वं न शस्यते ।
कर्मणां शान्तदीप्तानामारम्भे नाशकं यतः ॥ ४९३ ॥

2816

तत्त्वबलान्नाडीबलमधिकं प्रोक्तं महर्षिभिर्नियतम् ।
ज्ञात्वैनं स्वरचारं नरो भवेत्कार्यनिपुणमतिः ॥ ४९४ ॥

एते नानाशकुनशास्त्रेभ्यः केचिन्ममापि ।

---

# अथ पशूनां लक्षणानि चिकित्सा च ॥ ८४ ॥

तेषु पूर्वं छागः ।

2817

भूपानां धनिनां वा गेहेषु वसन्ति संततं पशवः ।
ग्राह्याः सुलक्षणास्ते कुलक्षणा दूरतस्त्याज्याः ॥ १ ॥

2818

छागशुभाशुभलक्षणमभिधास्ये नवदशाष्टदन्तास्ते ।
धन्याः स्थाप्या वेश्मनि संत्याज्याः सप्तदन्ता ये ॥ २ ॥

2819

स्तन इव च गले लम्बति यश्छागलानां मणिः स विज्ञेयः ।
एकमणिः शुभफलकृद्धीनफला द्वित्रमणयो ये ॥ ३ ॥

2820

मुण्डाः सर्वे शुभदाः सर्वासिताः कृष्णदेहाश्च ।
श्वेतार्धासितदेहा धन्याः कपिलार्धकृष्णाश्च ॥ ४ ॥

2821

सपृषत्कण्ठशिरावान्नीलपृष्ठनिभश्च ताम्रदृक्शस्तः ।
कृष्णचरणः सितो वा कृष्णो वा श्वेतचरणो यः ॥ ५ ॥

2822

यः कृष्णाण्डः श्वेतो मध्ये कृष्णेन भवति पट्टेन ।
यो वा चरति सशब्दं मन्दं शस्तो न स छागः ॥ ६ ॥

2823

कृष्णशिरोरुहपादो यो वा प्राक्पाण्डुरोपरे नीलः ।
स भवति शुभंकृच्छागः सोपि शुभो वामनो यश्च ॥ ७ ॥

2824

अथाप्रशस्ताः खरतुल्यनादाः
प्रदीप्तपुच्छाः कुनखा विवर्णाः ।
निकृत्तकर्णा द्विपमस्तकाश्च
भवन्ति ये वा सितताल्वजिह्वाः ८ ॥

अथ शुनकः ।

2825

पादाः पञ्चनखास्त्रयस्तु चरणाः षड्भिर्नखैर्दक्षिणः
ताम्रोष्ठाग्रनसो मृगेश्वरगतिर्जिघ्रन्भुवं याति च ।
लाङ्गूलं ससटं यदृक्षसदृशं कर्णौ च लम्बौ मृदू
यस्य स्यात्स करोति पोट्टुरचिरात्पुष्टां श्रियं श्वा गृहे ॥ ९ ॥

2826

पादे पादे पञ्च पञ्चाग्रपादे
वामे यस्याः षण्नखा मल्लिकाक्षी ।
वक्रं पुच्छं पिङ्गला लम्बकर्णा
या सा राष्ट्रं चुक्कुरी याति पुष्टा ॥ १० ॥

## अथ गावः ।

2827

अस्ताविलरूक्षाक्ष्यो मूषकनयनाश्च न शुभदा गावः ।
प्रचलच्चिपिटविषाणा करटाः खरसदृशवर्णाश्च ॥ ११ ॥

2828

दशसप्तचतुर्दत्यः प्रलम्बमुण्डानना विनतपृष्ठाः ।
ह्रस्वस्थूलग्रीवा यवमध्या दारितखुराश्च ॥ १२ ॥

2829

श्यामातिदीर्घजिह्वा गुल्फैरतितनुभिरतिमहद्भिर्वा ।
अतिककुदा कृशदेहा नेष्टा हीनाधिकाङ्गाश्च ॥ १३ ॥

2830

मार्जाराक्षः कपिलः करटाभो न शुभदो द्विजस्येष्टः ।
कृष्णोष्ठतालुजिह्वखसनो यूथस्य नाशकरणाय ॥ १४ ॥

2831

स्थूलशकृन्मणिशृङ्गः सितोदरः कृष्णसारवर्णश्च ।
गृहजातोपि त्याज्यो यूथविनाशावहो वृषभः ॥ १५ ॥

2832

श्यामाकपुष्पचित्राङ्गो भस्मारुणसंनिभो बिडालाक्षः ।
विप्राणामपि न शुभं करोति वृषभः परिगृहीतः ॥ १६ ॥

2833

मृदुसंहतताम्रोष्ठास्तनुस्फिजस्ताम्रतालुजिह्वाश्च ।
तनुह्रस्वोच्चश्रवणाः सुकुक्षयः स्पष्टजङ्घाश्च ॥ १७ ॥

2834

तनुभूस्पृग्बालधयो रक्तान्तविलोचना महोच्छ्रायाः ।
सिंहस्कन्धास्तन्वल्पकम्बलाः पूजिताः सुगताः ॥ १८ ॥

2835

वामावर्तैर्वामे दक्षिणपार्श्वे च दक्षिणावर्तैः ।
शुभदा भवन्त्यनड्वोजङ्घाभिश्चैडकनिभाभिः ॥ १९ ॥

2836

लम्बैर्वृषणैर्मेषोदरैश्च संक्षिप्तवङ्क्षणः क्रोडः ।
ज्ञेयो भाराध्वसहो जवेश्वतुल्यश्च शस्तफलः ॥ २० ॥

2837

सितवर्णः पिङ्गाक्षस्ताम्रविषाणेक्षणो महावक्त्रः ।
हंसो नाम शुभफलो यूथस्य विवर्धनः प्रोक्तः ॥ २१ ॥

2838

भूस्पृग्बालधिरास्राविषाणोद्धतककुद्मांश्च ।
कल्माषश्च स्वामिनमाचिरात्कुरुते पतिं लक्ष्म्याः ॥ २२ ॥

## अथ गवादीनां चिकित्सा ।

2839

चूर्णीकृतेषुपुङ्खाया लवणान्वितपिण्डकान् ।
वारिस्फोटा विनश्यन्ति द्रुतं वेसरवाजिनाम् ॥ २३ ॥

2840

धात्रः कुमारिकापत्रपिण्डो लवणसंयुतः ।
हन्ति कण्डूं दशाहेन गजवेसरवाजिनाम् ॥ २४ ॥

2841

कुष्ठसैन्धवसंयुक्तमधुलिप्ताङ्गवालके ।
द्वेष्येपि कुरुते प्रीतिं वाजिनी प्रसवान्विता ॥ २५ ॥

2842

तण्डूलीयकमूलानि तथा बिल्वकपित्थयोः ।
गोघृतेन समालोड्य सपर्दृष्टं तु पाययेत् ॥ २६ ॥

2843

चन्दनागुरुकुष्ठैश्च लोध्रभार्गीफणिज्झकैः ।
दंशलेपो विषं हन्ति जंगमं स्थावरं पुनः ॥ २७ ॥

2844

मूलं हि शालपर्ण्याः शनिवारनिमन्त्रितं रवेर्दिवसे ।
नीतं विधिना बद्धं कण्ठे गण्डापचीं हरति ॥ २८ ॥

2845

चर्वित्वा लक्ष्मणामूलं प्रेरितं मुखवायुना ।
योनिमध्यस्थितं गर्भं ग्राहयेन्महिषीगवाम् ॥ २९ ॥

2846

शाल्मलीतलनिर्यातदर्भखण्डस्य बन्धनात् ।
भृङ्गनम्रा त्यजत्याशु जरामुद्वेगकारिणीम् ॥ ३० ॥

2847

मधुजीरकगोरम्भातक्रलेपप्रभावतः ।
वत्सं स्निह्यति गौः क्षीरमतिमात्रं प्रयच्छति ॥ ३१ ॥

2848

विलिप्तं मधुना चित्रं पाषाणं पुरतः स्थितम् ।
लिहती मृतवत्सापि प्रस्नौति सुरभी द्रुतम् ॥ ३२ ॥

2849

ब्रह्मदण्डीशिफार्के वा बद्धा चक्राङ्गमूलिका ।
मन्थस्तम्भे सदा रक्षां ग्रक्षणस्य करोति सा ॥ ३३ ॥

2850

अङ्गारैः शाकवृक्षस्य चूर्णितैः सघृतैरुग्रहम् ।
दत्तैर्नश्यत्यतीसाररुग्रहं पानीयवारणात् ॥ ३४ ॥

2851

वरुणस्य फलाद्धस्तपीडिताद्गलितो रसः ।
सव्रणे पूरितोशेषं कृमिजालं निपातयेत् ॥ ३५ ॥

2852

अरलूवृक्षपत्राणां लेपो गोमुखरोगहृत् ।
गोनाससंभवः क्षारो हन्ति पुष्पं चिरोद्भवम् ॥ ३६ ॥

2853

ज्वरदोषे समुत्पन्ने पशूनां त्रिकटाकृतिम् ।
ललाटे लाञ्छनं कुर्यात्स्वल्पं लोहशलाकया ॥ ३७ ॥

2854

लाजाः कुष्ठं नखं मांसी गोमयं तगरं घृतम् ।
मयूरो गोमहिष्यादिगोष्ठे धूपो ज्वरापहः ॥ ३८ ॥

2855

मलदोषे समुत्पन्ने गवां कण्ठे विबन्धयेत् ।
घण्टां तत्र लिखेन्मन्त्रं यावकेनामयापहम् ॥ ३९ ॥

2856

मन्त्रः । ॐ घण्टाकर्णो वटे शेते गणः प्रोक्तो महाबलः ।
मारीचिर्नाशनकरः स गाः पातु जगत्पतिः ॥ ४० ॥

## अथ पशुवशीकरणम् ।

2857

अङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां गा घ्राणे संगृह्य नामयेत् ।
मन्त्रेणानेन वश्याः स्युः पशवोश्वादयस्तथा ॥ ४१ ॥

मन्त्रः । ॐ नमो भगवते विष्णवे पशूनां पतये नमः ठः ठः ॥

2858

चित्रोत्तरावैष्णवरोहिणीषु
चतुर्दशीदर्शदिनाष्टमीषु ।
स्थानं प्रवेशं गमनं पशूनां
धीमान्विदध्यान्न कदाचिदेव ॥ ४२ ॥

एते नानाशास्त्रेभ्यः ।

---

## अथ विषापहरणम् ॥ ८५ ॥

2859

स्थावरं जङ्गमं चेति द्विविधं विषमुच्यते ।
स्थावरं कालकूटादि जङ्गमं भौजगादिकम् ॥ १ ॥

2860

चिकित्सा कथ्यते तेषां मन्त्रविद्याभिरौषधैः ।
यां ज्ञात्वा सर्वजन्तूनां नरः स्यादुपकारकृत् ॥ २ ॥

2861

कालकूटादयो भेदा विषस्य नव सन्ति ये ।
चिकित्सा कथ्यते तेषां मन्त्रपूर्वमविस्तरात् ॥ ३ ॥

2862

मरिचं सैन्धवं सर्पिर्मधुनिम्बफलानि च ।
समभागानि पिष्टानि पाययेद्विषमूर्छितम् ॥ ४ ॥

2863

ततोस्य छर्दिरेकौ च भवतस्तत्क्षणादपि ।
तस्मिन्निवृत्ते स्वस्थः स्यात्कालकूटादिमोहितः ॥ ५ ॥

2864

कर्कोटिकार्कयोर्मूलं चूर्णयित्वा च सर्षपान् ।
सार्षपा पाययेन्मन्त्री स्थावरक्ष्वेडशान्तये ॥ ६ ॥

2865

वन्ध्याकर्कोटिकामूलं गोमूत्रेण घृतेन वा ।
तण्डुलोदेन पीतं वा निहन्ति निखिलं विषम् ॥ ७ ॥

2866

स्थावरं जङ्गमं चैव नखदंष्ट्रादिकं च यत् ।
श्रीफलस्य जटां सूक्ष्मां चूर्णीकृत्य निधापयेत् ॥ ८ ॥

2867

शाणद्वयमितं चूर्णं काञ्जिकेन तु पाययेत् ।
स्थावरं जङ्गमं क्ष्वेडं तथा दूषीविषं च यत् ।
तत्सर्वं नाशयत्येव नात्र कार्या विचारणा ॥ ९ ॥

2868

वामकरानामिकया जलपूर्णं सप्तवारमभिमन्त्र्य ।
दक्षिणकरस्थपात्रं तस्मात्सप्तैव चुलुकानि ॥ १० ॥

2869

पातुं यस्य च दद्यात्स निर्विषो भवति तत्क्षणादेव ।
मन्त्रश्च शाबरोयं स उच्यते विषहरः परमः ॥ ११ ॥
(युग्मम्)

2870

शिवः शबररूपेण यदा पार्थमयोधयत् ।
तदा प्रोवाच यान्मन्त्रांस्ते मन्त्रा शाबराः स्मृताः ॥१२॥

मन्त्रः । ॐ गुरुके पाय शरणम् ।
ॐ चवि चवि चारि भार विसुमाटी ॥

अथोपविषाणि ।

2871

हरिद्रां दुग्धसहितामश्वमारविषार्दितः ।
पिबेत्सशर्करां वापि ततः स्यान्निर्विषो नरः ॥ १३ ॥

2872

तण्डुलीयं गुडूचीं वा धत्तूरस्य विषे पिबेत् ।
तथा कर्पासपञ्चाङ्गं तत्पञ्चाङ्गविषापहम् ॥ १४ ॥

2873

बल्वलान्तस्त्वचं पिष्टां जलेन कृतपिण्डिकाम् ।
बद्धा कर्णे विषस्थाने विन्द्याद्विषविनाशिनीम् ॥ १५ ॥

2874

छागदुग्धेन संपिष्य हरिद्रातिलदूर्विकाः ।
नाशयन्ति प्रलेपेन विषमर्कसमुद्भवम् ॥ १६ ॥

2875

प्रणश्यति गुडं पीत्वा कूष्माण्डरससंयुतम् ।
सशर्करं वा गोदुग्धं कोद्रवस्वर्णयोर्मदः ॥ १७ ॥

2876

चुलुकैर्जलपानेन जिह्वाकर्षणतोपि वा ।
पूगीफलमदो याति लवणस्याशनेन वा ॥ १८ ॥

2877

घृतोद्वर्तनतो याति कण्डूतिः कपिकच्छुजा ।
याति लूता शमं शीघ्रमिङ्गुदीत्वग्विलेपनात् ॥ १९ ॥

2878

शतधौतं नवनीतं भल्लातकजं विषं हरेल्लेपात् ।
ईदृग्विधं समस्तं शमयति नीली तथा लोध्रम् ॥ २० ॥

2879

गुञ्जाफलानि विंशतिरभयात्रितयं गुडं च पलमात्रम् ।
कृत्वैकत्र च गुटिकाः कुर्याच्छाणोन्मिताः सकलाः ॥ २१ ॥

2880

गुटिकात्रितयं भुक्त्वा पीत्वा चोष्णोदकं विरेकः स्यात् ।
योगोयं दूषीविषहर्ता पथ्यं च तत्र दधिभक्तम् ॥ २२ ॥

2881

कुष्ठैले मलयजगैरिके सलोध्रे
पिप्पल्यौ मधुकसुचर्चिकं च मांसी ।
एषां यत्समधु नतोच्चटं च चूर्णं
तद्दूषीविषमपहन्ति साधु लीढम् ॥ २३ ॥

अथ जङ्गमविषाणि ।

तेषु पूर्वं भुजंगः ।

2882

शेषवासुकितक्षाख्यककोटाब्जमहाम्बुजाः ।
शङ्खपालश्च जलिको नागा अष्टौ पुराभवन् ॥ २४ ॥

2883

आद्यन्तौ च तदाद्यन्तौ तदाद्यन्तौ च मध्यमौ ।
वह्नीन्दुवायुवरुणपुत्रौ पितृसमप्रभौ ॥ २५ ॥

2884

दशाष्टपञ्चत्रिगुणसप्तमूर्धान्वितौ क्रमात् ।
विप्रौ नृपौ विशौ शूद्रौ द्वौ द्वौ नागौ प्रकीर्तितौ ॥ २६ ॥

2885

नागानां जज्ञिरे तेषां सुताः पञ्चशतं पृथक् ।
अजरामरणा घोरास्ते सर्वे कामरूपिणः ॥ २७ ॥

2886

तदन्वयोद्भवाः सर्पा असंख्येयास्ततोभवन् ।
स्वर्गवारिधिपातालभूतलेषु वसन्ति ते ॥ २८ ॥

2887

फणिमण्डलिराजीला वातपित्तकफात्मकाः ।
क्रमाद्भौमाः स्मृताः सर्पा व्यन्तरा दोषमिश्रिताः ॥ २९ ॥

2888

दर्वीकरास्तु सफणा घोणसा मण्डलान्विताः ।
राजीला राजिभिश्चित्रा व्यन्तरा मिश्रलक्षणाः ॥ ३० ॥

2889

दर्वीकरस्य दंशः स्याद्रूक्षः शुष्कः सितेतरः ।
उष्णः सशोफः पीतश्च दंशो मण्डलिनः पृथुः ॥ ३१ ॥

2890

शोफवान्स्निग्धशीतश्च दंशो राजीलकः सितः ।
व्यन्तरादिकृतो दंशो विज्ञेयो मिश्रलक्षणः ॥ ३२ ॥

2891

दंशे स्थित्वा द्विपञ्चाशन्मात्रा संवर्धते विषम् ।
मात्रा लघ्वक्षरोन्माना निमेषोन्मानिकापि वा ॥ ३३ ॥

2892

दंशाच्च याति गरलं भालं नेत्रं ततो मुखम् ।
आस्याच्च धमनीस्ताभ्यो धातून्व्याप्नोत्यपि क्रमात् ॥ ३४ ॥

2893

धातोर्धात्वन्तरप्राप्तौ विषवेगो भवेन्महान् ।
ततो दष्टस्य जायन्ते चेष्टा वेगेषु सप्तसु ॥ ३५ ॥

2894

वेगो रोमाञ्चमाद्यो रचयति विषजः स्वेदवक्त्रोपशोषौ
तस्योर्ध्वं तत्परौ द्वौ वपुषि जनयतो वर्णभेदप्रवेपौ ।

यो वेगः पञ्चमोसौ नयनविवशतां कण्ठभङ्गं च हिक्कां
षष्ठो निःश्वासमोहौ वितरति च मृतिं सप्तमो दष्टकस्य ॥ ३६ ॥

2895

यस्याङ्गानां जडत्वं श्वयथुरवयवोद्वेगदाहप्रवेपौ
विड्भेदः केशलुञ्चः सुकरमरुणतापाङ्गयोर्भ्रान्तिरक्ष्णोः ।
तृष्णासृक्कम्पशूलौ हृदि च विघटना दन्तदन्तच्छदानां
श्यावं च श्लेष्मपित्तोद्वमनमसृगरं रोमकूपादिषु स्यात् ॥ ३७ ॥

2896

लालास्रुतिः सितनिभा परिवेषमास्ये
नासाश्रयाणि वचनानि च सन्धिभेदः ।
पूर्वाधिका विकृतयो विविधा भवेयु-
र्यस्य प्रतिक्षणमसौ खलु कालदष्टः ॥ ३८ ॥

2897

कृत्तिकाभरणीस्वातिमूलपूर्वात्रयाश्विनीः ।
विशाखार्द्रामघाश्लेषाचित्राश्रवणरोहिणीः ॥ ३९ ॥

2898

तारास्ताः सर्पदष्टस्य त्यजेन्मन्दकुजौ तथा ।
पञ्चमी चाष्टमी षष्ठी अमावस्या चतुर्दशी ।
संध्याचतुष्टयं दुष्टं दुष्टयोगाश्च राशयः ॥ ४० ॥

## अथ दूतपरीक्षा ।

2899

आकारणाय मान्त्रिकमागतदूतस्य वचनमादाय ।
कृत्वा प्रमाणमादावभिमन्त्र्य च तत्र मन्त्रेण ॥ ४१ ॥

2900

सप्तत्रिगुणितवारं ततः प्रमाणं पुनः कुर्यात् ।
वृद्धौ समतायां वा जीवति दष्टो न मानहीनत्वे ॥४२॥

(युग्मम्)

2901

मन्त्रः । ॐ भट्टिणि रिणि जिणि ॥

दूतमुखोत्थितवर्णान्द्विगुणीकृत्य त्रिभिर्हरेद्भागम् ।
अवशेषे शून्ये वा नो जीवतीति विज्ञेयम् ॥ ४३ ॥

## अथ समस्तसर्पाणां तत्क्षणदष्टचिकित्सा ।

2902

दंशकाहिं दशेत्सद्यो दष्टः काष्ठशिलादिना ।
विषशान्त्यै दहेद्दंशं ज्वलोल्काकनकादिना ॥ ४४ ॥

2903

श्रवोमलेन बास्याङ्घ्रिलेपे संशोषयेच्च तम् ।
दष्टाङ्गं छेदयेद्दंशोपरिष्टाद्बन्धयेद्दृढम् ॥ ४५ ॥

2904

सर्पदष्टप्रवेशे तु स्वयमेव विचक्षणः ।
मूत्रयेत्तत्क्षणादेव निर्विषत्वमवाप्नुयात् ॥ ४६ ॥

2905

सद्यो भुजंगदंशे रविस्रुतमलपूरिते कदाचिदपि ।
व्रजति न धातुषु गरलं सत्यं पाषाणरेखेव ॥ ४७ ॥

2906

सघृतं मरिचं पेयं जीवो वा जीवलक्षणः ।
रामठेक्ष्वाकुपञ्चाङ्गपूर्णं वा नस्यतो हितम् ॥ ४८ ॥

## अथ दर्वीकरचिकित्सा ।

2907

शिरीषबीजपुष्पार्कक्षीरबीजकटुत्रयम् ।
विषं विनाशयेत्पानलेपनस्याञ्जनादिना ॥ ४९ ॥

2908

*शिरीषपुष्पं स्वरसेन भावितं*
*त्रिःसप्तकृत्वो मरिचं सिताद्वयम् ।*

प्रयोजयेदञ्जनपानभावनै-
र्विमोहितानामपि सर्पदंशिनाम् ॥ ९० ॥

2909

नतोषणं निशादारु करंजोर्कः शिला मधु ।
यष्टिः शिरीषं कृष्णा च गणोयं विषसूदनः ॥ ९१ ॥

2910

पञ्चाङ्गं कृष्णपञ्चम्यां शिरीषस्य रसादिना ।
गृहीत्वा मूत्रपिष्टैस्तैर्विषघ्नो गुटिकाः कृताः ॥ ९२ ॥

2911

छायाशुष्का रक्तिमात्राः सर्वकर्मसु योजयेत् ।
जातवत्सशकृद्वत्समूत्रवर्तिर्विषं हरेत् ॥ ९३ ॥

2912

हिङ्गूग्रलशुनव्योषाधान्याम्लगुलिका तथा ।
मांसीचन्दनसिन्धूत्थकृष्णायष्ट्यूषणोत्पलैः ॥
समूत्रैरञ्जनं सद्यो विषसुप्तप्रबोधनम् ॥ ९४ ॥

2913

अर्ककर्पासयोर्मूलं जलपीतं जयेद्विषम् ।
पटोलमूलनस्येन कालदष्टोपि जीवति ॥ ९५ ॥

2914

मूलं सुवर्णजात्या मूले सेफन्दकनकयोर्वापि ।
दत्ते नस्ये पाने चैकैकं गरलनाशनं गदितम् ॥ ९६ ॥

2915

वैरेचनफलमज्जानिम्बुकरसभावितस्तु बहुवारम् ।
लालाघृष्टो निहितो नेत्रयुगे हरति कालविषम् ॥ ९७ ॥

2916

पाठामूलं विनिष्पिष्य गोघृतेन पिबेत्तु यः ।
स भवेद्विषनिर्मुक्तो नात्र कार्या विचारणा ॥ ९८ ॥

2917

एकविंशतिसंजप्तं जलं मन्त्रेण पाययेत् ।
यदा वान्तिस्तदा मृत्युर्न वान्तिर्जीवति ध्रुवम् ॥ ९९ ॥

मन्त्रः । ॐ नीलकण्ठः विमुक्षः क्षः क्षः ॥

## अथ मण्डलिचिकित्सा ।

2918

त्रिवृन्निशायष्टिफलत्रयीस्नु-
क्क्षीरान्विते गव्यचतुष्कयुक्ते ।
ब्राह्मीरसे साधितमाज्यमुच्चै-
र्विनाशयेन्मण्डलिनां विषार्तिम् ॥ ६० ॥

2919

अजामूत्रं च तद्विष्ठा सूकरस्य तथैव विट् ।
बुद्बुदं लेपतो हन्यान्मण्डलिक्ष्वेडसंभवम् ॥ ६१ ॥

2920

चूर्णं तक्रभवं स्नुहीतरुशिफा पक्वं कदल्याः फलं
तुम्बीहिङ्गुमुनेः शिफा शिवजलं नीली सगुम्फा शिफा ।
चूर्णं नागलतादलं दधिनृपौ लोणस्य पिण्डत्रयं
योगानामिदमाशु मण्डलिविषं लेपेन निर्मूलयेत् ॥ ६२ ॥

2921

काकमाची तथा कुष्ठं गोतक्रेण च पाचयेत् ।
नाशयेन्मण्डलिक्ष्वेडमगदोयं सुनिश्चितम् ॥ ६३ ॥

## अथ राजीलचिकित्सा ।

अथ राजीलदष्टेन पेया कृष्णा ससैन्धवा ।
सकृष्णा खण्डदुग्धाज्यं पातव्यं वापि माक्षिकम् ॥ ६४ ॥

2922

सकुष्ठरेणुकव्योषच्छत्रातिविषमक्षिकाः ।
कटुकागृहधूमाद्या घ्नन्ति राजीलजं विषम् ॥ ६५ ॥

2923

शिखिपिच्छवचाहिङ्गुलशुनं नकुलास्थिभिः ।
मरीचतुल्यैर्धूपः स्याद्विषहा स्नुहिवह्निजः ॥ ६६ ॥

2924

जिघ्रेद्वा नासया दार्वीरोचनासिन्धुजाङ्गुलीम् ।
पिबेद्वा गुलिकानां तु व्योषं सबकुलास्थि वा ॥ ६७ ॥

## अथ व्यन्तरचिकित्सा ।

2925

अगदैः सर्वसामान्यैर्व्यन्तराणां विषं हरेत् ।
धूपो देवीसहापिच्छखण्डनैस्तद्विषापहः ॥ ६८ ॥

2926

व्योषपिच्छविडालास्थिनकुलाङ्गरुहैः समैः ।
चूर्णितैर्मेषदुग्धाक्तैर्धूपः सर्वविषापहः ॥ ६९ ॥

2927

मन्त्रेणानेन सलिलमभिमन्त्र्यैकविंशतिम् ।
पाययेत्सर्पदष्टस्य निर्विषो भवति क्षणात् ॥ ७० ॥

2928

व्यन्तरगोनसलूतागर्दभविस्फोटकरभमागण्डाः ।
मूषिककीटविषाणि स्थावरमपि नाशमायाति ॥ ७१ ॥

2929

दष्टमौलौ सुधां ध्यात्वा वर्षन्तीं मेघमालिकाम् ।
दर्भैर्मयूरपिच्छैर्वा मार्जयेन्मान्त्रिकस्ततः ॥ ७२ ॥

2930

ध्यानेन जलपानेन मार्जनेनाखिलं विषम् ।
प्राणिनां नश्यति क्षिप्रं मेघमालाप्रभावतः ॥ ७३ ॥

मन्त्रः । ॐ साले माले हर विषवेगं हा हा हीही समरी अं वेलं अंवेगहिॐ नागेन्द्रद्रुमं रुद्रं अर्वटं मः ब्रूं ब्रूं लं सः ठः ठः ॥

## अथ सर्पसामान्यचिकित्सा ।

2931

दधि मधु नवनीतं पिप्पली शृङ्गवेरं
मरिचमपि च कुष्ठं चाष्टमं सैन्धवं च ।

यदि दशति सरोषस्तक्षको नागराजः
अगदमपि च कुर्यान्निर्विषं तक्षणेन ॥ ७४॥

2932

अलाबुबीजं त्रपुसस्य बीजं
तस्यैव तोयेन च तन्निषिक्तम् ।
आलेपनाद्यैर्विधिवत्प्रयुक्तं
हन्याद्विषं तक्षकसंभवं च ॥ ७५ ॥

2933

श्वेतवचां घृतमरिचे गुञ्जां च पिबेद्भुजंगसंदष्टः ।
छर्दिर्विरेकौ भवतस्ततः सुखी स्याद्विषैर्मुक्तः॥ ७६ ॥

2934

आलिर्दिव्यौषधी प्रोक्ता सूक्ष्मकण्टकसंवृता ।
विमुच्यते विषैः प्राणी पीत्वा तोयेन तज्जटाम् ॥ ७७ ॥

## अथ घोणसीविद्या ।

2935

सप्ताभिमन्त्रितं नीरं सर्पदष्टस्य पाययेत् ।
दर्भैर्मयूरपिच्छैर्वा मार्जयेदेकविंशतिम् ॥ ७८ ॥

2936

स्थावरजङ्गमगरलं भूतग्रहशाकिनीप्रभृतीन् ।
गर्भोद्भवं च शूलं दृष्टिविषं स्फोटकं लूताः ॥ ७९ ॥

2937

नाशयति घोणसीयं विद्यामन्त्रेण पूर्वसिद्धेन ।
जापः सहस्रमानो मन्त्रस्य शतं च होमः स्यात् ॥ ८० ॥

मन्त्रः । ॐ ह्रीं नमः श्रीघोणसेहरे २ वरे २ तरे २ वां २ चल २ लां २ रां २ सर २ क्षं २ क्षां २ क्षीं २ ह्रीं २ ह्रूं २ ह्रां भगवति श्रीघोणसे घ ५ सः ५ हर ५ वः ५ ठः ५ मः ५ वरविहंगमानुजे क्ष्मां क्ष्मीं क्ष्मूं क्ष्मैं क्ष्मौं क्ष्म रा रो सय २ ठ २ श्रीघोणसे ह्रीं स्वाहा ॥

## अथ लहरीसमुत्थापनम् ।

ह्रां ह्रीं आस्तीकाय क्लीं क्लीं विषविनाशनाय ॐ वः
ॐ यः ॐ हर ४ कर्णे जपेद्दष्टः समुत्तिष्ठति ॥

## अथ सर्पोच्चाटनम् ।

2938

सप्ताभिमन्त्रितान्यत्र कर्करानेकविंशतिम् ।
क्षिपेत्ततः पलायन्ते सर्पास्त्रासपरायणाः ॥ ८१ ॥

मन्त्रः । ॐ ह्रां २ ह्रीं २ ह्रूं २ ह्रौं २ ह्रौं २ ह्रं २ ह्रः ॥

## अथास्तीकमन्त्रः ।

2939

ॐ सर्पापसर्प भद्रं ते दूरं गच्छ महाविष ।
जनमेजयस्य यज्ञान्ते आस्तीकवचनं स्मर ॥ ८२ ॥

2940

आस्तीकवचनं स्मृत्वा यः सर्पो न निवर्तते ।
शतधा भिद्यते मूर्ध्नि शिंशवृक्षफलं यथा ॥ ८३ ॥

अनेन त्रिवेलं पठितेन सर्पाः स्थानं त्यक्त्वा यान्ति ।

## अथौषधम् ।

2941

रसोनरससंलिप्तकर्पासास्थीनि विक्षिपेत् ।
बिलद्वारे ततः सर्पाः प्रणश्यन्त्यतिवेगतः ॥ ८४ ॥

## अथ सर्परक्षा ।

2942

वस्त्रे ग्रन्थिं ददन्मन्त्री सप्तवेलं जपेन्मनुम् ।
देहे ग्रन्थियुतं वासो यावत्तावन्न सर्पभीः ॥ ८५ ॥

2943

मन्त्रः । ॐ दष्टकर अष्टकर कालिङ्गनाग हरिनाग
सर्प डुण्डी विसु दाढबन्धन शिवगुरुप्रसाद ॥
लज्जामूलमधःपुष्पीमूलं बद्धं यदा करे ।
तदा तस्य न सर्पेभ्यो भयं कुत्रापि विद्यते ॥ ८६ ॥

2944

सितवर्षाभूमूलं पुष्यर्क्षगृहीतमतिशुचिविधानात् ।
तण्डुलजलेन पिबतः सप्तदिनं सर्पभीर्नास्ति ॥ ८७ ॥

2945

आषाढशुक्लपक्षे भानोर्दिवसे शिरीषवृक्षस्य ।
मूलं जलेन पिष्ट्वा पिबेच्च भीस्तस्य सर्पोत्था ॥ ८८ ॥

2946

आवत्सरमहिभीतिर्न स्यादस्य प्रभावेण ।
शुकनासां च पिबेद्यो जलपिष्टां तस्य भीर्नास्ति ॥ ८९ ॥

## अथ वृश्चिकविषचिकित्सा ।

2947

पलाशबीजमर्कस्य दुग्धे पिष्टं हरेत्क्षणात् ।
विषं वृश्चिकसंभूतं दंशस्थानविलेपनात् ॥ ९० ॥

2948

वृद्धकर्पासमूलं च मेषशृङ्गी च वारुणी ।
एकैकेन प्रयोगेण वृश्चिकोवतरत्यलम् ॥ ९१ ॥

2949

घृताक्तदुग्धलेपेन मधूकस्वेदतोथवा ।
सैन्धवोष्णाज्यपानेन वृश्चिकस्य विषं व्रजेत् ॥ ९२ ॥

2950

अथ मन्त्रमिमं कर्णे जपेद्दंशं स्पृशेत्तथा ।
एकविंशतिवारं च वृश्चिकस्वेऽशान्तये ॥ ९३ ॥

2951

मन्त्रः। ॐ आदित्यरथवेगेन विष्णुबाहुबलेन च।
गरुडपक्षपातेन भूम्यां गच्छ महाविष ॥
ॐ श्रीपक्षियोगिपादाज्ञा श्रीशिवोत्तमप्रभुपादाज्ञा ॥ ९४ ॥
अथवा द्वितीयं मन्त्रं पूर्वोक्तविधानेन जपेत्।

2952

मन्त्रः। हिमवदुत्तरे पार्श्वे कपिलो नाम वृश्चिकः।
तेनाहं प्रेषितो दूतो गच्छ गच्छ महाविष।
किलिकिलि स्वाहा डाकिनी स्वाहा फट् रेपविष ॥ ९५ ॥

अथापरविषाणि।

2953

खर्जूरालीढमङ्गं यत्तस्मिन्नङ्गे विनिक्षिपेत्।
दीपतैलं ततस्तीव्रं विषं नश्यति देहिनाम् ॥ ९६ ॥

2954

हरेच्छिरीषपञ्चाङ्गं व्योषं शतपदीविषम्।
सस्नुक्क्षीरं शिरीषास्थि हरेद्दुरजं विषम् ॥ ९७ ॥

2955

शिलातालककुष्ठानि भावयेत्तुलसीरसैः।
याति तत्पानतः शीघ्रं विषं मूषकसंभवम् ॥ ९८ ॥

2956

आखुना भक्षितस्याथ नामोच्चार्य समुद्धरेत्।
मार्गधूलिं क्षिपेद्वूरं तस्य शीघ्रं सुखं भवेत् ॥ ९९ ॥

2957

कुस्तुम्बरुं निशायुग्मं शिरीषकुसुमैः समम्।
कान्तापुष्पं पिबेन्मूलं समस्ताखुविषापहम् ॥ १०० ॥

2958

कार्णिकारससौवीरगुप्तां त्रिकटुमाधवीम्।
यष्टीधान्यगुडक्षीरं दष्टो मत्तशुना पिबेत् ॥ १०१ ॥

2959

अङ्कोलपत्रधूपेन यद्वा केशसमन्वितैः ।
सक्तुभिः कटुतैलाक्तैर्यातिमत्स्यविषं क्षयम् ॥ १०२ ॥

2960

शृङ्गिमत्स्यविषे स्वेदो घृतकर्पासपिण्डिका ।
केसरं तगरं शुण्ठी मरिचं हन्ति लेपतः ॥ १०३ ॥

2961

मक्षिकाया विषं यद्वा घृतसैन्धवलेपतः ।
तप्तायःस्वेदतो भृङ्गचा वराटच्याश्च विघर्षणात् ॥ १०४ ॥

2962

वृकव्याघ्रतरक्ष्वृक्षशृगालद्विपवाजिनाम् ।
रुधिरं स्रावयेद्दंशाद्दहेल्लोहशलाकया ॥ १०५ ॥

2963

श्यामासुरभिजिह्वा च निःशेषप्राणिसंभवम् ।
नखदन्तविषं हन्ति मधुना सह लेपतः ॥ १०६ ॥

2964

वटनिम्बशमीकल्ककषायो हन्ति लेपतः ।
निःशेषजीवजातीनां नखदन्तविषं द्रुतम् ॥ १०७ ॥

2965

पाठामूलं लिप्तं दंशस्थाने जलेन संपिष्टम् ।
सर्वेषां कीटानां विषमपहरति क्षणादेव ॥ १०८ ॥

एते नानागारुडशास्त्रेभ्यः ।

## अथ भूतविद्या ॥ ८६ ॥

2966

तत्र देवासुरनागत्रिदोषादिसमुपसृष्टचित्तस्योन्मा-
दिनश्चिकित्सा कथ्यते ।

राजीकरञ्जव्याघातशिरीषार्कनिशायुगम् ।
प्रियङ्गुस्त्रिफलादारुहिङ्गुव्योषं कुचन्दनम् ॥ १ ॥

2967

मञ्जिष्ठोग्रासमूलं च तद्वली ग्रहनाशनी ।
पाननस्याञ्जनालेपस्नानोद्वर्तनधूपनात् ॥ २ ॥

2968

कृष्णाकसेरुखर्जूर्यो बदरी मधुकम्बरी ।
शर्करा मधु सर्पिश्च सर्वोन्मादे पिबेदिदम् ॥ ३ ॥

2969

निम्बपत्रवचाराजीहिङ्गुगोमेषरोमभिः ।
हिङ्गूग्रावह्लिलशुनैर्धूपौ स्यातां ग्रहापहौ ॥ ४ ॥

2970

पाठापथ्यावचाशिग्रुसिन्धुव्योषैः पृथग्जलैः ।
अजाक्षीराढके पक्वं सर्पिः सर्वग्रहान्हरेत् ॥ ५ ॥

2971

विद्या चण्डासिधारेयं ग्रहघ्नी कर्णजापतः ।
एकविंशतिजप्तैश्च सर्षपैस्ताडयेन्मुखे ॥ ६ ॥

मन्त्रः । ॐ नमो रत्नत्रयाय नमश्चण्डवज्रपाषाणाय महासत्त्व-सेनापतये नमश्चण्डवज्रशृङ्खलाय प्रदीप्ताय प्रज्वलितहस्ताय प्रज्वलितार्चितदीप्तकेशाय नीलकण्ठाय विभ्रान्तरूपाय लम्बोदराय महाज्ञानवक्त्राय भ्रुकुटीमुखाय चतुर्दंष्ट्राय करालाय महाविकृतरूपाय वज्रगर्भाय एह्येहि कायमनुप्रविश्य शिरसि गृह्ण २ चक्षुषी वालय २ हिरि २ भिरि २ किं चिरायसि २ देवदानवगन्धर्वयक्षराक्षसभूतप्रेतपिशाचनागांस्त्रासय २ कम्पय २ समयमनुस्मर हन २ दह २ पच २ मथ २ विध्वंसय २ चण्डासिधाराभीतमतिराज्ञापयति हुं फट् ठः ठः स्वाहा ॥

2972

बलिर्मद्येन मांसेन मत्स्यैस्तैलेन सक्तुभिः ।
माषापूपैः सकल्माषैरैशान्यां दिशि दीयते ॥ ७ ॥

## अथ बलिनिवेदनम् ।

2973

मन्त्रः । भूतानि यानीह वसन्ति तानि
बलिं गृहीत्वा विधिवत्प्रयुक्तम् ।
अन्यत्र वासं परिकल्पयन्तु
रक्षन्तु तान्यद्य नमोस्तु तेभ्यः ॥ ८ ॥

एते नानासंहिताभ्यः ।

## अथ बालग्रहोपशमनम् ॥ ८७ ॥

जन्मदिवसादारभ्याष्टादशवर्षपर्यन्तं देवीग्रहा
मनुष्यं गृह्णन्ति तासां च नामानि ।

पापिनीभीषणीघण्टालीकाकोलीहंसाविकाकाकटीमुक्तकेशीश्रीदण्डीमहिषीरोदनीपूतनामुकुटीगोमुखीपिङ्गलालटनापङ्कजाशीतलायमुनाकुम्भकर्णीकातापसीराक्षसीचपलायातनारोदनीचटकाचञ्चलाधावनीजवनाजातवेदाकालिनीकलहंसीदेवदूतीबालिकावायवीमण्डकाबन्धकीकुमारीप्रभृतयः ।

2974

नखदन्तविकारी स्यान्निद्राहीनोथवा भयोद्वेगी ।
दुर्गन्धी बहुचेष्टो बालो बालग्रहाविष्टः ॥ १ ॥

2975

दूर्वा सतिक्ता विषमच्छदत्व-
क्प्रोद्वर्तनाद्धन्ति शिशुग्रहार्तिम् ।
सप्तच्छदाश्वत्थमधूकशेलु-
पत्रक्वथाम्भः स्नपनाच्च शीतात् ॥ २ ॥

2976

वंशत्वग्जतुसंयुतं सलशुनं सारिष्टपत्रं घृतं
निर्माल्यं नरकेशसर्षपरुरगत्वग्गौररोजीयुतम् ।
सिद्धार्थं जतुनिम्बपत्रसहितं वंशत्वगाज्यान्वितं
धूपानां त्रयमेतदाशु सकलान्बालग्रहान्नाशयेत् ॥ ३ ॥

2977

सर्वबालग्रहेषु स्यान्मन्त्रोयं सार्वकामिकः ।
बालरक्षाविधाने च तथा दर्भादिमार्जने ॥ ४ ॥

मन्त्रः । ॐ नमः सर्वमातृणां हृदयं मोटय २ भञ्जय २ काटय २ स्फोटय २ स्फुट २ तुण्ड २ गृह्ण २ आकट्ट २ विकट्ट २ त्रोटय २ एवं सिद्धमाज्ञापयति हर २ निर्दोषं कुरु २ बालिका बालो वा स्त्रीपुरुषौ वा सर्वग्रहाणामुपक्रम्यतु ॐ चामुण्डे नमो देव्यै २ ह्रः ह्रीं २ ह्रीं अपसरन्तु दुष्टग्रहा हुं हुं तद्यथा गच्छन्तु गुह्यका अन्यत्र स्थाने उ रुद्रो ज्ञापयति ठः ठः स्वाहा ॥

एते आगमशास्त्रेभ्यः ।

## अथ कौतुकानि ॥ ८८ ॥

2978

भूपानां रसिकानां धनिनां वा कौतुकेषु सक्तानाम् ।
ग्रन्थानालोक्य मया क्रियते किंचिद्विनोदार्थम् ॥ १ ॥

2979

रथ्याकूपतरुच्छायाप्रेतभूदेवगेहजाः ।
वल्मीकसंभवा वह्निदग्धपानीयपीडिताः ॥ २ ॥

2980

हिमाखुक्रिमिभिर्युक्ता मृदुकाकालसंभवाः ।
ओषध्यो विधिनानीता न कार्यं साधयन्ति ताः ॥ ३ ॥

(युग्मम्)

2981

अतः प्रशस्ते नक्षत्रे शुभे वारे शुचिष्मता ।
औषधं विधिवद्ग्राह्यं स्मृत्वा देवीं च सुप्रभाम् ॥ ४ ॥

मन्त्रः । ॐ सुप्रभायै नमः ।

2982

पुष्यार्के मूलार्के हस्तार्के चोत्तरार्कदिवसेषु ।
ग्राह्यं प्रातर्द्रव्यं निमन्त्रितं भानुसुतदिवसे ॥ ५ ॥

2983

पुष्येपराजितामूलमुद्धृतं सार्षपा युतम् ।
पीतं वा कंधराबद्धं गण्डमालाविनाशनम् ।
चित्रोद्धृतं गले बद्धं कुन्दमूलं निहन्ति ताम् ॥ ६ ॥

2984

कण्ठे रज्जुं बद्ध्वा मृतस्य पुंसस्तु रज्जुमादाय ।
तस्याः खण्डं कण्ठे बद्धं गण्डस्रजं हरति ॥ ७ ॥

2985

बब्बूलबन्दकं बद्धं कट्यामर्शोविकारनुत् ।
तथा शेफालिकायास्तु वायुपीडाहरं स्मृतम् ॥ ८ ॥

2986

काकजङ्घाजटा निद्रां कुरुते मस्तके स्थिता ।
पुष्योद्धृतं शुनःपित्तमपस्मारघ्नमञ्जनात् ॥ ९ ॥

2987

निर्गुण्ड्याः सहदेव्याश्च कटौ बद्धं जटाद्वयम् ।
प्रातरादित्यवारे च सर्वज्वरविनाशकृत् ॥ १० ॥

2988

कन्याकर्तितसूत्रेण बद्धापामार्गमूलिका ।
ऐकाहिकज्वरं हन्ति शिखायामतिवेगतः ॥ ११ ॥

2989

कर्णे बद्धा रवौ श्वेततुरंगरिपुमूलिका ।
सर्वज्वरहरा श्वेतमन्दारस्य च मूलिका ॥ १२ ॥

2990

काकमाचीशिफा कर्णे बद्धा रात्रिज्वरापहा ।
पाणिस्थं वृषवृन्दाकं द्यूते वितनुते जयम् ॥ १३ ॥

2991

काकजङ्घारसः कर्णे क्षिप्तो बाधिर्यनाशनः ।
हन्ति कर्णे जटा बद्धा तस्या नेत्रामयं ध्रुवम् ॥ १४ ॥

2992

गृहीतं रेवतिऋक्षे पिप्पलस्य च वन्दकम् ।
महिलानां करे बद्धं परमं गर्भधारणम् ॥ १५ ॥

2993

धत्तूरमूलिका पुष्ये गृहीता कटिसंस्थिता ।
गर्भं निवारयत्येव रण्डावेश्यादियोषिताम् ॥ १६ ॥

2994

राजिकां तिलतैलं च पिष्ट्वा नारी ऋतौ पिबेत् ।
त्रिदिनं तेन गर्भस्य संभवो नैव जायते ॥ १७ ॥

2995

पिबति प्रसूतिसमये काञ्जिकयुक्तं जपाभवं पुष्पम् ।
न बिभर्ति सा प्रसूतिं धृतेपि तस्या न गर्भः स्यात् ॥ १८ ॥

2996

बब्बूलवृक्षपुष्पाणि गोदुग्धेन पिबेद्दृतौ ।
या नारी गर्भसंभूतिः पुनस्तस्यां न जायते ॥ १९ ॥

2997

ज्ञात्वा तु गर्भं गर्भिण्याः सार्धमासद्वयोन्मितम् ।
तदैकवर्णगोक्षीरे पिबेद्गर्भस्य मञ्जरीम् ॥ २० ॥

2998

पिष्टां गृहीतां च रवेर्दिने शुचिविधानतः ।
भवन्ति पुत्रिका यस्याः सा पुत्रं जनयेद्ध्रुवम् ॥ २१ ॥
(युग्मम् ।)

2999

ऋतुस्नाता पिबेन्नारी श्वेतकण्टारिकाजटाम् ।
पयसा पुत्रसंभूतिस्तस्याः संजायते ध्रुवम् ॥ २२ ॥

3000

भूनागलज्जालुकयोः कल्कसंलिप्तशेफसा ।
या नारी रमते सा स्यादन्येषां पुंस्त्वनाशिनी ॥ २३ ॥

3001

द्विपदशनः पुटदग्धः साजक्षीरो रसाञ्जनोपेतः ।
दिनसप्तकप्रलेपात्खलतेरपि रोमसंजनकः ॥ २४ ॥

3002

कर्पूरभल्लातकशङ्खचूर्णं
क्षारो यवानां समनःशिलश्च ।
तैलं विपक्वं हरितालमिश्रं
निर्मूललोमानि करोति सद्यः ॥ २५ ॥

3003

अङ्कोल्लबीजमज्जानां सूक्ष्मचूर्णं विधीयते ।
तिलतैलेन तच्चूर्णं सम्यक्कृत्वा च भावयेत् ॥ २६ ॥

3004

मर्दयित्वोष्णतोयेन गृह्णीयात्तैलमुत्तमम् ।
नानाकर्माणि सिध्यन्ति तैलेनानेन योगिनाम् ॥ २७ ॥
(युग्मम्।)

3005

अपक्वमपि चूतस्य फलं द्रवति वेगतः ।
गुडशुण्डीप्रलेपेन विधृतं शश्वदातपे ॥ २८ ॥

3006

निच्छल्लिदारितं राजीचूर्णं गुग्गुलमर्दितम् ।
अपक्वमपि चूतस्य फलं सुस्वादु जायते ॥ २९ ॥

3007

केतकीपत्रकुष्ठैलादलकेसरचूर्णतः ।
दिव्यगन्धं भवेद्वारि मोहितालिकदम्बकम् ॥ ३० ॥

3008

चन्दनैलादलोशीरतगरैर्वासिते जले ।
पीते संजायते नित्यं गन्धो वपुषि भोगिनाम् ॥ ३१ ॥

3009

पादांशपत्रकोन्मिश्रजलचन्दनशिग्रुभिः ।
केतकीपुष्पसंवादी गन्धो भवति निश्चितम् ॥ ३२ ॥

3010

शिग्रुजटारसभावितचूर्णः
सर्षपखलिरिह रात्रावुषितः ।
चम्पकगन्धसमं शुचिगन्धं
कुरुते स्नानविधौ विनियुक्तः ॥ ३३ ॥

3011

अतिपक्वकपित्थेन लिप्तपात्रे स्रुयामितम् ।
दुग्धमस्तुविहीनं स्याच्चन्द्रबिम्बोपमं दधि ॥ ३४ ॥

3012

धात्रीफलरसैर्लिप्तेपक्वपात्रे स्रुयामितम् ।
गतमृत्कं जलाधौतं पात्ररूपं भवेद्दधि ॥ ३५ ॥

3013

शालिमण्डेन संलिप्तशुष्कशुद्धेन वाससा ।
छादिते वेणुपात्रे स्यात्सुदुग्धं यामितं दधि ॥ ३६ ॥

3014

फलान्यनेकवृक्षाणां मधुना मदनेन च ।
लिप्तवृन्तानि तिष्ठन्ति क्षतहीनानि वै चिरम् ॥ ३७ ॥

3015

ककुभस्य फलं पुष्पं लाक्षा श्रीवासगुग्गुलू ।
श्वेतापराजितामूलं विडङ्गान्वितसर्षपाः ॥ ३८ ॥

3016

धूपः सर्जरसोपेतः प्रसरन्गृहमध्यतः ।
सर्पाखुमत्कुणान्यूकान्नाशयत्येव गन्धतः ॥ ३९ ॥

## अथ क्षेत्ररक्षा ।

3017

कुम्भे विद्यां समभ्यर्च्य मन्त्रिता बलविद्यया ।
वालुकाः श्वेतसिद्धार्थान्क्षेत्रमध्ये विनिक्षिपेत् ॥ ४० ॥

3018

शलभाः सारसाः कीरा वराहमृगमूषकाः ।
शशकाश्च ततो यान्ति बलविद्याप्रभावतः ॥ ४१ ॥

मन्त्रः । ॐ नमः सुरेभ्यो बल २ ज २ चिरि २ मिलि २ स्वाहा ॥

## अथ सिंहरक्षा ।

3019

रेखया कुण्डलं कुर्यान्निजसार्थसमन्ततः ।
मान्त्रिको धनुषः कोट्या जपेन्मन्त्रं तु शाबरम् ॥ ४२ ॥

मन्त्रः । नन्दायणु पुत्त सायरिउपहारु मोरी रक्षा कुक्कुर जिम पुंछी दुल्लावइ उरहइ पुंछी परहई मुहि जाह रे जाह । आठ संकला करि उर बन्ध उं वाघ वाघिणि कउ मुह बन्धउ कलियाखिणीकी दुहाई महादेवकी पूजा पाई टालहि जई आगिली विष देहि ॥

3020

बोलला इति शब्देन प्रोच्चैरुक्तेन मन्त्रिणा ।
यावद्दूरं श्रुतः शब्दस्ततः सिंहः पलायते ॥ ४३ ॥

3021

पिशुनात्तस्करात्सिंहादपमृत्योस्तथा शरात् ।
रक्षां करोति मन्त्रोयं पठितः शबरस्त्रिया ॥ ४४ ॥

3022

रक्षां कुर्वीत तर्जन्या दिक्ष्वष्टस्वपि बुद्धिमान् ।
अथवा निक्षिपेद्दिक्षु कर्करानभिमन्त्रितान् ॥ ४५ ॥

मन्त्रः । ॐ आडू चूडू वाढी कोडी चोरु
चाटु कालु कांडु वाघु स्वाहा ॥

## अथ विद्युद्वारणम् ॥

3023

जैमिनिश्च सुमन्तुश्च वैशम्पायन एव च ।
पुलस्त्यः पुलहो विष्णुः षडेते वज्रवारणाः ॥ ४६ ॥

3024

मुनेः कल्याणमन्त्रस्य जैमिनेश्चापि कीर्तनात् ।
विद्युदग्निभयं नास्ति लिखितं तु गृहोदरे ॥ ४७ ॥

3025

कदम्बवृक्षसारस्तु विद्युत्पातनिवारणः ।
विद्युत्पातस्य नो भीतिर्देवराजेति कीर्तनात् ॥ ४८ ॥

3026

रामरक्षां पठेद्यस्तु रात्रौ वा यदि वा दिवा ।
न तस्य दुष्टचित्तेभ्यो भयं कुत्रापि विद्यते ॥ ४९ ॥

एते नानासंहिताभ्यः ।

## अथ कल्पस्थानम् ॥ ८९ ॥

3027

षट्त्रिंशद्वर्षदेशीयः पुमान्कुर्याद्रसायनम् ।
पञ्चाशद्वार्षिको वापि कृत्वा तत्रावसीदति ॥ १ ॥

3028

रुदन्तीनामविख्याता जराव्याधिविनाशिनी ।
चणपत्रोपमैः पत्रैर्युक्ताम्भोबिन्दुवर्षिणी ॥ २ ॥

3029

चतुर्विधा तु सा ज्ञेया रक्ता पीता सितासिता ।
तामोषधीं समादाय शुक्लपक्षे शुभे दिने ॥ ३ ॥

3030

पत्रमूलान्वितां प्राज्ञश्छायाशुष्कां च कारयेत् ।
विरेकं वमनं कृत्वा बिडालपदमात्रया ॥ ४ ॥

3031

भक्षयेन्मधुसर्पिर्भ्यां मासमेकं महौषधीम् ।
जीर्णायां भोजनं कुर्याद्दुग्धभक्तं नरो जयी ॥ ५ ॥

3032

दृढकायोतितेजस्वी सर्वरोगैः प्रमुच्यते ।
वलीपलितनिर्मुक्तः परमायुस्ततो भवेत् ॥ ६ ॥

## अथ त्रिफला ।

3033

हरीतक्यास्त्रयो भागाः शिवा द्वादशभागिका ।
षड्भागाश्च विभीतस्य त्रिफलेयं प्रकीर्तिता ॥ ७ ॥

3034

खदिरस्याम्भसा सप्तरात्रं भृङ्गरसेन च ।
विडङ्गपयसा सप्त सप्त ब्रह्मरसेन च ॥ ८ ॥

3035

त्रिफलां भावयित्वेत्थं भक्षयेद्गुडसर्पिषा ।
पलितं हन्ति वर्षेण सर्वरोगैः प्रमुच्यते ॥ ९ ॥

## अथ भृङ्गराजः ।

3036

समूलपत्रमुत्पाट्य भृङ्गराजं शुभे दिने ।
शुष्कं च चूर्णितं पुष्ये विडालपदमात्रया ॥ १० ॥

3037

काञ्जिकेन समालोड्य भक्षयेत्प्रातरन्वहम् ।
षण्मासयोगतो हन्ति पलितं वलिभिः सह ।
दुग्धान्नभोजनासक्तश्चिरंजीवी भवेन्नरः ॥ ११ ॥

## अथ विडङ्गादि ।

3038

विडङ्गसमधात्रीणां चूर्णं लोहरजोयुतम् ।
तैलान्वितं नरो लीढ्वा जरसा नाभिभूयते ॥ १२ ॥

## अथ हस्तिकर्णेः ।

3039

अभिमन्त्र्य शुचिविधानादाज्याढ्यं हस्तिकर्णजं चूर्णम् ।
योभ्याति स हि नरः स्याद्यथेष्टचेष्टोपि दीर्घायुः ॥ १३ ॥

मन्त्रः । ॐ नमो विनायकाय स्वाहा अमृतं रक्ष२
मम सिद्धिं देहि रुद्रस्य वचने स्वहा ॥

## अथ भल्लातकः ।

3040

भल्लातकं समादाय क्षीरेण सह पाचयेत् ।
तत्क्षीरं मधुसर्पिर्भ्यां पिबेन्मासत्रयावधि ।
वलीपलितनिर्मुक्तो जीवेद्वर्षशतं सुखी ॥ १४ ॥

## अथ गन्धकः ।

3041

चूर्णीकृत्य पलानि पञ्च नितरां गन्धाश्मनो यत्नत-
स्तच्चूर्णं त्रिगुणे च मार्कवरसे छायाविशुष्कीकृतम् ।
पथ्याचूर्णमथो तथा मधु घृतं प्रत्येकमेषां पलं
वृद्धो यौवनमेति मासयुगलं खादन्नरः प्रत्यहम् ॥ १५ ॥

## अथाश्वगन्धा ।

3042

अश्वगन्धापलं त्रिंशच्चूर्णयित्वा विचक्षणः ।
वृद्धदारुकचूर्णेन समभागं च कारयेत् ॥ १६ ॥

3043

स्थापयित्वा घटे दिव्ये सर्पिषा परिभाविते ।
कर्षमेकं समश्नीयाच्चूर्णं च पयसा सह ॥ १७ ॥

3044

न चात्र परिहारोस्ति शुक्रवृद्धिः प्रजायते ।
भवत्येव चतुर्मासाद्वलीपलितवर्जितः ॥ १८ ॥

## अथ पुनर्नवा ।

3045

पुनर्नवाजटाचूर्णं पलार्धं पयसा सह ।
मासैकं क्षीरभोजी यः स वृद्धस्तरुणायते ॥ १९ ॥

## अथ पानीयम् ।

3046

न संपत्तिक्रिया यस्य भेषजं न च विद्यते ।
सर्वरोगविनाशाय निशान्ते स पयः पिबेत् ॥ २० ॥

3047

अम्भसः प्रसृतीरष्टौ रवावनुदिते पिबेत् ।
वातपित्तकफान्हत्वा जीवेद्वर्षशतं सुखी ॥ २१ ॥

3048

प्रसृतियुगलमात्रं प्रातरुत्थाय नित्यं
पिबति खलु नरो यो नासरन्ध्रेण वारि ।
स भवति मतिपूर्णश्चक्षुषा तार्क्ष्यतुल्यो
वलिपलितविहीनः सर्वरोगैर्विमुक्तः ॥ २२ ॥

## अथ धातुमारणम् ।

3049

नागेन रुक्मं शिलया च नागं
तालेन वङ्गं दरदेन तीक्ष्णम् ।
गन्धाश्मना चैव निहन्ति शुल्बं
तारं च माक्षीकवरेण हन्यात् ॥ २३ ॥

3050

शुद्धं हेम श्लक्ष्णपत्रीकृतं स-
द्वारं वारं सूतगन्धानुलिप्तम् ।
तीव्रे वह्नौ काञ्चनारे हलिन्या
ज्वालामुख्या संपुटैर्भस्म कुर्यात् ॥ २४ ॥

## अथ भस्मसूतकः ।

3051

तारिकां सैन्धवं चैव पारदं समभागतः ।
निम्बुकद्रवसंघृष्टाश्चटपिष्टांस्तु कारयेत् ॥ २५ ॥

3052

ततस्तान्पिठरीमध्ये धृत्वा मुद्रां च दापयेत् ।
अधः प्रज्वालयेद्वह्निं पिठर्यास्तु शनैः शनैः ॥ २६ ॥

3053

आसामुपरि दद्याच्च पानीयस्य विचक्षणः ।
एवं यामद्वयं कुर्यात्ततस्त्वासां न दापयेत् ॥ २७ ॥

3054

वह्निं खरतरं कुर्याद्याममेकं निरन्तरम् ।
गत्वोपरि रसस्तत्र म्रियते स्फटिकप्रभः ॥
भस्मसूतक एवं स्यात्ततः कार्येषु योजयेत् ॥ २८ ॥

## अथ केशरञ्जनम् ॥ ९० ॥

3055

त्रिफलायास्तु षड्भागा जटादाडिमजा द्वयम् ।
भागत्रयं निशानां स्यात्सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ १ ॥

3056

भागं षष्टिकमण्डस्य कुर्यादेकं च बुद्धिमान् ।
भृङ्गराजरसं तत्र भागान्दद्याच्च विंशतिम् ॥ २ ॥

3057

सर्वमेकत्र कृत्वा तु लोहभाण्डे विनिक्षिपेत् ।
तस्योपरि ततो दद्याल्लोहस्यैव पिधानिकाम् ॥ ३ ॥

3058

भूमौ चाश्वशकृन्मध्ये मासमात्रं निधापयेत् ।
तस्य लेपं ततो मौलौ कूर्चे दुग्धेन दापयेत् ॥ ४ ॥

3059

रात्रावेरण्डपत्रैश्च वेष्टयित्वा स्वपेत्ततः ।
प्रातः स्नानं ततः कुर्यात्केशाः स्युर्भ्रमरप्रभाः ॥ ५ ॥

3060

एवं लेपत्रयं कुर्यात्सप्तमे सप्तमेऽहनि ।
ततो जन्मावधि कचाः कृष्णाः स्युर्भ्रमरप्रभाः ॥ ६ ॥

3061

तिलान्वितमहाकालबीजतैलस्य नस्यतः ।
दुग्धाहारस्य पुंसस्तु पलितं नश्यति ध्रुवम् ।
बिभीतनिम्बकुम्भारी शिवा शेलुश्च काकिनी ।
एकैकतैललेपेन पलितं नश्यति ध्रुवम् ॥ ७ ॥

3062

श्यामातगरकर्चूरनिशागन्धकलेपतः ।
वेगतः पाण्डुराः केशाः कृष्णाः स्युर्गुडधूपिताः ॥ ८ ॥

3063

काकिन्याः पत्रमूलं सहचरसहितं केतकीनां च कन्दं
छायाशुष्कं च भृङ्गं त्रिफलरसयुतं तैलमध्ये निधाय ।
लौहे पात्रे प्रणीतं धरणितलगतं मासमात्रस्थितं त-
त्केशाः काशप्रकाशा अलिकुलसदृशाः संभवन्त्यस्य लेपात् ॥ ९ ॥

3064

नागपत्राणि चणकक्षारलिप्तेन वेष्टयेत् ।
वस्त्रेण भाजने लौहे स्थापयेन्मुद्रिते सुधीः ॥ १० ॥

3065

करीषमध्ये निहितं तत्सर्वं पञ्चमासकम् ।
द्रवीभूतं ततः सर्वमुद्धरेत्तेन लेपयेत् ॥ ११ ॥

3066

शिरः कूर्चं च वक्त्रान्तस्तण्डुलानि विनिक्षिपेत् ।
यदा कृष्णानि तानि स्युस्तदा स्नानं विधीयते ॥ १२ ॥

3067

केशाः कालालिसंकाशा जायन्ते दशवत्सरम् ।
घृष्टं तु राजतं चूर्णं ताम्रं नागं विचूर्णितम् ॥ १३ ॥

3068

त्रिफला नागवल्ली च कासीसं गन्धकस्तथा ।
भृङ्गराजरसं नीली लोध्रं पलमितं पृथक् ॥ १४ ॥

3069

एतच्चतुर्गुणं तैलं तस्माच्चापि चतुर्गुणम् ।
काञ्जिकं प्रक्षिपेद्धीमांस्ततस्तैलं विपाचयेत् ॥ १५ ॥

3070

क्षिप्त्वा शिरसि तत्तैलं पत्त्रैरेरण्डसंभवैः ।
वेष्टयित्वा स्वपेद्रात्रौ प्रातः स्नानं विधीयते ॥ १६ ॥

3071

भवेयुः श्यामलाः केशाः पक्षं यावच्च नान्यथा ।
यन्त्राकृष्टं कलञ्जीनां तैलं स्थाप्यं सुरक्षितम् ॥ १७ ॥

3072

उन्मूल्य सितकेशांस्तु मूले मूले च तत्क्षिपेत् ।
ततः केशाः प्रजायन्ते कृष्णाः कौतुककारिणः ।
युक्त्या पूर्वोक्तया युञ्ज्यान्मेषशृङ्गीपयः सुधीः ॥ १८ ॥
एते नानासंहिताभ्यः ।

---

## अथ सामान्यशृङ्गाररसनिर्देशः ॥ ९१ ॥

3073

शृङ्गारवीरकरुणाद्भुतहास्यभयानकाः ।
बीभत्सरौद्रशान्ताश्च नवधा कीर्तिता रसाः ॥ १ ॥

3074

यतोयं सर्वजन्तूनां प्रियः शृङ्गारको रसः ।
अतो रसानां सर्वेषां मया पूर्वमिहोच्यते ॥ २ ॥

3075

चर्तुर्विधः स चाप्युक्तः सामान्यो विप्रलम्भकः ।
संयोगो मिश्रकश्चेति रसिकानां सुखाप्तये ॥ ३ ॥

## अथ मनसिजप्रशंसा ।

3076

अनङ्गेनाबलासङ्गाज्जिता येन जगत्त्रयी ।
स चित्रचरितः कामः सर्वकामप्रदोस्तु वः ॥ ४ ॥

क्षेमेन्द्रस्य ।

3077

कुलगुरुरबलानां केलिदीक्षाप्रबन्धे
परमसुहृदनङ्गो रोहिणीवल्लभस्य ।
अपि कुसुमपृषत्कैर्देवदेवस्य जेता
जयति सुरतलीलानाटिकासूत्रधारः ॥ ५ ॥

कस्यापि ।

## अथ स्त्रीप्रशंसा ।

3078

दृशा दग्धं मनसिजं जीवयन्ति दृशैव याः ।
विरूपाक्षस्य जयिनीस्ताः स्तुवे वामलोचनाः ॥ ६ ॥

क्षेमेन्द्रस्य ।

3079

यासां सत्यपि सद्गुणानुसरणे दोषानुरागो भृशं
याः प्राणान्परमर्पयन्ति न पुनः संपूर्णदृष्टिं प्रिये ।
अत्यन्ताभिमतेपि वस्तुनि विधिर्यासां निषेधात्मक-
स्तत्तत्केलिषु दक्षिणा अपि सदा वामा जयन्त्येव ताः ॥ ७ ॥

कस्यापि ।

3080

न हया न च मातङ्गा न रथा न च पत्तयः ।
स्त्रीणामपाङ्गदृष्टश्चैव जीयते जगतां त्रयम् ॥ ८ ॥

दण्डिनः ।

3081

प्रभवति मनसि विवेको विदुषामपि शास्त्रसंभवस्तावत् ।
निपतन्ति दृष्टिविशिखा यावन्नेन्दीवराक्षीणाम् ॥ ९ ॥

कृष्णमिश्रस्य ।

3082

स्त्रीमुद्रां कुसुमायुधस्य परमां सर्वार्थसंपत्करीं
ये मूढाः प्रविहाय यान्ति कुधियो मिथ्याफलान्वेषिणः ।
ते तेनैव निहत्य निर्दयतरं नग्नीकृता मुण्डिताः
केचिद्रक्तपटीकृताश्च जटिलाः कापालिकाश्चापरे ॥ १० ॥

भर्तृहरेः ।

3083

सोमः शौचं ददौ तासां गन्धर्वाश्च शुभां गिरम् ।
अग्निः सर्वाङ्गकान्तत्वं तस्मादिष्टतमाः स्त्रियः ॥ ११ ॥

3084

स्त्रियः पवित्रं परमं नैता दुष्यन्ति कर्हिचित् ।
मासि मासि रजो ह्यासां दुष्कृतान्यपि कृन्तति ॥ १२ ॥

एतौ मनोः ।

3085

जये धरित्र्याः पुरमेव सारं
पुरे गृहं सद्मनि चैकदेशः ।
तत्रापि शय्या शयने वरा स्त्री
रत्नोज्ज्वला राज्यसुखस्य सारः ॥ १३ ॥

3086

रत्नानि विभूषयन्ति योषा
भूष्यन्ते वनिता न रत्नकान्त्या ।
चेतो वनिता हरन्त्यरत्ना
नो रत्नानि विनाङ्गनासङ्गात् ॥ १४ ॥

3087

श्रुतं दृष्टं स्पृष्टं स्मृतमपि नृणां ह्लादजननं
न रत्नं स्त्रीभ्योन्यत्क्वचिदपि कृतं लोकपतिना ।
तदर्थं धर्मार्थौ विभववरसौख्यानि च ततो
गृहे लक्ष्म्यो मान्याः सततमबला मानविभवैः ॥ १५ ॥

केषामप्येते ।

3088

अमृतस्येव कुण्डानि रत्नानामिव राशयः।
रतेरिव निधानानि निर्मिताः केन योषितः ॥ १६ ॥

3089

प्राणानां च प्रियायाश्च मूढाः सादृश्यकारिणः ।
प्रिया कण्ठगता रत्यै प्राणा मरणहेतवः ॥ १७ ॥

3090

अकृत्रिमप्रेमरसा विलासालसगामिनी ।
असारे दग्धसंसारे सारं सारङ्गलोचना ॥ १८ ॥

केषामप्येते ।

## अथ स्त्रीपुरुषजातिभेदः ॥ ९२ ॥

3091

देवीमप्सरसो यक्षकान्तां राक्षसकामिनीम् ।
कृत्यामिति जगुर्नारीं युतां तैरेव लक्षणैः ॥ १ ॥

3092

चन्द्रमुखी मृगनयना मदनधनुर्भ्रूः शशाङ्कशिशिरा या ।
समशिखरसदृशदशना मुखपरिमललीनमधुपालिः ॥ २ ॥

3093

पुंस्कोकिलमधुरोक्तिर्बिम्बोष्ठी कम्बुकण्ठकृतशोभा ।
कोमलमृणालबाहू रक्तोत्पलसदृशकरचरणा ॥ ३ ॥

3094

श्रीफलसमवक्षोजा मध्ये क्षीणा गभीरनाभिश्च ।
त्रिभुवनजयरेखा इव यस्यास्त्रिवलीलता भाति ॥ ४ ॥

3095

पृथुतरनितम्बबिम्बा हरिणीसमस्मरमन्दिरोद्देशा ।
कामतरोरङ्कुर इव यस्या रोमावली विभात्युदरे ॥ ५ ॥

3096

रम्भोरूर्हंसगतिः कनकरुचिर्नीलनीरजाभासा ।
सुरभक्ता पतिभक्ता लज्जालुः सुरभिरतनीरा ॥ ६ ॥

3097
सितवसनकुसुमनिरता लघ्वाहारा च कृष्णघनकबरी ।
चिरकालितपतिरमणा देवी सा पद्मिनी वा स्यात् ॥ ७ ॥

3098
गीतनृत्यप्रिया केकिवाणी चित्राम्बरैषिणी ।
सुगन्धिवक्त्रेभगतिः सुन्दरी मधुरप्रिया ॥ ८ ॥

3099
मधुगन्धिरतद्रावा कोष्णाङ्गी कठिनस्तनी ।
गौरी श्यामशरीरा वा सुविशालकटीतटा ॥ ९ ॥

3100
अजालघुस्मरावासा बाह्यसंभोगरागिणी ।
नारी या चित्रिणीचिह्ना साप्सरोजातिरुच्यते ॥ १० ॥

3101
स्थूला वा तन्वी वा गौरी श्यामापि दीर्घकरचरणा ।
वडवापृथुमदनगृहा रक्ताम्बररागिणी कुटिला ॥ ११ ॥

3102
विपुलकुचा पृथुजघना सोष्णाङ्गी क्षारगन्धिरतसलिला ।
या शङ्खिनीसमाना हंसरवा यक्षिणी सा स्यात् ॥ १२ ॥

3103
दीर्घास्यदन्तनासा स्थूलोष्ठी स्थूलहस्तचरणा च ।
कपिलकचा गतलज्जा वारणकुम्भाभवक्षोजा ॥ १३ ॥

3104
करिमदगन्धिरतजला रोमशजङ्घा कषायकटुरसना ।
स्थूलपृथुस्मरगेहा शीतोष्णाङ्गी च खरवचना ॥ १४ ॥

3105
अरुणाङ्गी श्यामा वा पतिवर्गद्वेषिणी कुटिलचित्ता ।
या हस्तिनीसमाना सा ज्ञेया राक्षसी नारी ॥ १५ ॥

3106
कलहप्रियातिदीर्घा खर्वा वा श्यामपीतहरिता वा ।
लम्बोष्ठी लघुनासा लघुशिथिलस्तनविभागा च ॥ १६ ॥

3107

शुष्ककटिः पृथुजठरा विगन्धिका या च करभिकायोनिः ।
या घस्मरा शिवोक्तिः सा ज्ञेया कर्मणा कृत्या ॥ १७ ॥

3108

अन्योन्यलक्षणैर्युक्तां नारीं संकीर्णकां विदुः ।
या निजैरेव संयुक्ता चिह्नैस्तां केवलां जगुः ॥ १८ ॥

## अथ पुरुषलक्षणानि ।

3109

देवगन्धर्वयक्षाणां ये राक्षसपिशाचयोः ।
लक्षणैः संयुतास्ते स्युर्नरास्तैरेव नामभिः ॥ १९ ॥

3110

दाता सत्यवचाः शूरो ज्ञानी सत्त्वरतः शुचिः ।
सुवर्णकान्तिः श्यामो वा महाकायो घनध्वनिः ॥ २० ॥

3111

आजानुलम्बिबाहुः कम्बुग्रीवो बली चतुर्दंष्ट्रः ।
भाग्यनिधिः पृथुवक्षा लघुमधुराशी च पद्माक्षः ॥ २१ ॥

3112

मलयजगन्धशरीरः कामं क्रोधं निषेवते स्थाने ।
मृगलिङ्गः सुरपुरुषो भक्तो विप्रेषु विज्ञेयः ॥ २२ ॥

3113

सत्त्वरजोभ्यां युक्तः श्यामो वा चम्पकाभकान्तिर्वा ।
तेजस्वी शुचिवेषो मधुराम्लरुचिर्वदान्यश्च ॥ २३ ॥

3114

संगीतरक्तः प्रमदासु सक्तो
दुःखासहो दुन्दुभिधीरघोषः ।
मध्यप्रमाणोम्बुजगन्धिकायो
गन्धर्वजातिः कथितोजलिङ्गः ॥ २४ ॥

3115

पृथुजठरललाटः पीनकण्ठो बलीया-
न्विपुलनिबिडकायो रोमशः पक्ष्मलाक्षः ।
अचलमतिरमर्षी सिंहघोषो धनाढ्यो
नवघृतसमगन्धः कान्तरक्तान्तनेत्रः ॥ २५ ॥

3116

दीनेषु दाताम्लरसान्नभोजी
रजस्तमोभ्यां जनितानुषङ्गः ।
यः किंचिदाश्यामतनुः प्रदिष्टः
स यक्षजातिर्वृषलिङ्गलिङ्गः ॥ २६ ॥

3117

कृष्णोरुणो वा विकृतास्यदंष्ट्रः
प्रचण्डकायो बलवान्पलाशी ।
उष्ट्रस्वरः कोपनिधिः सुराप-
स्तमोमयो वारणदानगन्धिः ॥ २७ ॥

3118

बिडालाक्षः सुरान्द्वेष्टि नित्यमूर्ध्वशिरोरुहः ।
रक्षोजातिर्नरो ज्ञेयो हयलिङ्गाभमेहनः ॥ २८ ॥

3119

आसवरतिरतिबहुभुक्कटुम्लाशी च कर्मठः पिशुनः ।
स्थूलः कृशोतिदीर्घः खर्वो वा कृष्णपीतो वा ॥ २९ ॥

3120

अतितामसोजगन्धिः काकरवो ह्रस्वकूर्चकः पापः ।
भीरुः कुधीः पिशाचो रासभलिङ्गस्तु विज्ञेयः ॥ ३० ॥

3121

परस्परगुणान्कांश्चिद्यो बिभर्ति स मिश्रकः ।
यः स्वैरेव गुणैर्युक्तो स स्वरूपो निगद्यते ॥ ३१ ॥

श्रीधरस्यैते ।

# अथ स्त्रीपुरुषसंयोगविवृतिः ॥ ९३ ॥

3122

हरिणी छागी वडवा करिणी करभी च पञ्चधा नार्यः ।
मृगबर्करवृषतुरगरासभसंज्ञा नराः पञ्च ॥ १ ॥

3123

ऋतुलोकपालपङ्क्तिद्वादशभुवनाङ्कुलोन्मितैर्गुह्यैः ।
अनुपूर्वतस्तु युक्ता हरिणीहरिणादयो ज्ञेयाः ॥ २ ॥

3124

हरिणीमृगयोरजाजयोर्यस्तुरगीवृषयोरिभाश्वयोश्च ।
करभीखरयोर्भवेत्तु योगः समभेव रतं बुधास्तदाहुः ॥३॥

3125

हरिणीछागयोश्छागीवृषयोर्वडवांश्वयोः ।
करिणीखरयोरुच्चं रतमाहुर्मनीषिणः ॥ ४ ॥

3126

छागीहरिणं वडवाछागं करिणीवृषभं करभीतुरगम् ।
यदि लभते रतसमये नीचरतं किल तदिदं प्राहुः ॥५॥

3127

मृगी वृषभजा वाहं वडवा रासभं यदि ।
लभते सुरतस्थाने तदात्युच्चरतं विदुः ॥ ६ ॥

3128

हयी मृगमिभी छागं करभी वृषभं यदि ।
लभते सुरते प्राहुरतिनीचरतं तदा ॥ ७ ॥

3129

हरिणीहययोश्छागीखरयोरप्युच्चतरं रतमिह गदितम् ।
हरिणो हरिणीं छगलः करभीमतिनीचरतं यदि संयुक्तः ॥ ८ ॥

3130

मृगी खरं यदा याति करभी च मृगं यदि ।
तदा युक्तं रतं प्राहुरसमं च बुधा जगुः ॥ ९ ॥

3131

पञ्चविंशतिभेदेन प्रोक्तमेवं रतं बुधैः ।
तत्रोद्ये च समे प्रीतिर्योषितां नान्यतः सुखम् ॥ १० ॥

3132

देवीं चतुर्थयामे दिनरात्र्योरप्सरोगणं प्रथमे ।
यक्षीं तृतीययामे द्वितीयके राक्षसीं रमयेत् ॥ ११ ॥

3133

निखिलेष्वपि या कृत्या नो वा कृत्या सदा भवेद्रम्या ।
करभीचिह्ना कृत्या खरः पिशाचस्तयोर्युक्तः ॥ १२ ॥

एते शार्ङ्गधरस्य ।

---

## अथ स्त्रीसेवाप्रकारः ॥ ९४ ॥

3134

सेवनं योषितां कुर्याद्बुधो बुद्ध्वा यथाक्रमम् ।
बालायोग्याधिरूढानामृतुयोगविभावनात् ॥ १ ॥

3135

बालेति गीयते नारी यावद्वर्षाणि षोडश ।
तस्मात्परं च तरुणी यावता त्रिंशता भवेत् ॥ २ ॥

3136

तदूर्ध्वमधिरूढा स्याद्यावत्पञ्चाशता भवेत् ।
वृद्धा तत्परतो ज्ञेया सुरतोत्सववर्जिता ॥ ३ ॥

3137

निदाघशरदोर्बाला पथ्या विषयिणो भवेत् ।
हेमन्ते शिशिरे योग्या प्रौढा वर्षावसन्तयोः ॥ ४ ॥

3138

नित्यं वा सेव्यमानापि बाला वर्धयते बलम् ।
क्षयं नयति योग्या स्त्री प्रौढा जनयते जराम् ॥ ५ ॥

महेश्वरस्तु विशेषमाह ।

3139

अलोमशाः सतिलका नित्यं सेव्या हि योनयः ।
अलोमशत्वं कक्षायां मुखे संजायते तिलः ॥ ६ ॥

3140

आसीने लालयेद्बालां तरुणीं शयने तथा ।
उत्थितेप्यधिरूढां च लालनं त्रिविधं विदुः ॥ ७ ॥

3141

नो रमेत रतं तावद्यावन्नोत्कण्ठिता प्रिया ।
अन्यथा न सुखोत्पत्तिरिति कामानुशासनम् ॥ ८ ॥

एते पद्मश्रियाः ।

3142

पङ्कजासनलयेन पद्मिनीं
नागरेण रमयेत चित्रिणीम् ।
वेणुदारितपदेन शङ्खिनीं
स्कन्धजङ्घयुगलेन हस्तिनीम् ॥ ९ ॥

3143

व्रजति रतिसुखार्थं चित्रिणीमन्ययामे
भजति दिनरजन्यो हस्तिनीं च द्वितीये ।
गमयति च तृतीये शङ्खिनीमार्द्रभावं
रमयति रमणीयां पद्मिनीं तुर्ययामे ॥ १० ॥

एतौ कोकात् ।

---

## अथ संकेताख्यानभावहावविवृतिः ॥ ९५ ॥

तेषु पूर्वं संकेतः ।

3144

आद्ये यामे तु शङ्खः स्यान्महाशङ्खो द्वितीयके ।
पद्मस्तृतीयके यामे महापद्मश्चतुर्थके ॥ १ ॥

3145

रामस्तु पञ्चमे ख्यातो विरामः षष्ठकः स्मृतः ।
प्रवरः सप्तमे ज्ञेयः प्रत्यूषश्चाष्टमे स्मृतः ॥ २ ॥

3146

दाडिमं तु द्विजे ज्ञेयं पनसं क्षत्रिये स्मृतम् ।
कदलीफलकं वैश्ये तथाम्रं शूद्रके मतम् ॥ ३ ॥

3147

राजपुत्रे द्वितीयेन्दुः संपूर्णेन्दुश्च भूपतौ ।
मध्याह्ने यून्यपक्वं तु बाले पक्वं च वृद्धके ॥ ४ ॥

3148

ब्राह्मण्यां कुन्दपुष्पं स्याद्राजपुत्र्यां च मालती ।
मल्लिका वैश्यपुत्र्यां तु शूद्रपुत्र्यां च कैरवम् ॥ ५ ॥

3149

कामुके भ्रमरः प्रोक्तः कामिन्यां चूतमञ्जरी ।
तथाह्वानेङ्कुशश्चापि प्राकारो वारणे स्मृतः ॥ ६ ॥

3150

देहार्पणे रक्तसूत्रं जीवो जीवसमर्पणे ।
भल्लातकफलं भीतौ भयाभावे हरीतकी ॥ ७ ॥

3151

छिन्नवस्त्रं तु विच्छेदे सदृशग्रन्थि संगमे ।
एकस्नेहे तथा चैकं द्वयोः स्नेहे तु तद्द्वयम् ॥ ८ ॥

एते पञ्चश्रियः ।

अथ भावः ।

3152

शुद्धोशुद्धश्च संकीर्णस्त्रिधा भावः प्रकीर्तितः ।
शुद्धोपि त्रिविधो मन्दस्तीक्ष्णस्तीक्ष्णतरस्तथा ॥ ९ ॥

3153

ईषत्प्रकटितो मन्दस्तीक्ष्णस्तु पुलकादिभिः ।
स तु तीक्ष्णतरः श्वासशोषितावयवोत्र यः ॥ १० ॥

3154

अथाशुद्धोद्भवो ग्राम्यनर्तकस्येव यो भवेत् ।
कैतवस्नेहमापन्नो भावः संकीर्ण उच्यते ॥ ११ ॥

अथ हावाः ।

3155

हेलाविच्छित्तिविब्बोककिलिकिञ्चितविभ्रमाः ।
लीला विलासो हावश्च विक्षेपो विहृतं मदः ॥ १२ ॥

3156

मोट्टायितं कुट्टमितं मौग्ध्यं च तपनं तथा ।
ललितं चेत्यमी हावाश्चेष्टाः शृङ्गारभावजाः ॥ १३ ॥

3157

प्रौढे वयसि रूढानां नारीणां सुरतोत्सवे ।
शृङ्गारशास्त्रतत्त्वज्ञैः सा हेला परिकीर्तिता ॥ १४ ॥

3158

यथा

आसज्य स्वयमेव चुम्बनविधिं याच्ञा विनालिङ्गनं
तल्पान्ते जघनेन वेपथुमता पर्यर्पितं जानुनोः ।
क्रोधोत्कम्पममर्षयत्यनुनयत्यस्याः स्मरक्रीडया
प्रौढैकाभिरतिः प्रियस्य हृदयं हेलाबलात्कर्षति ॥१५॥

3159

प्रसाधनानां दयितापराधा-
द्यदीर्ष्ययानादरतः सखीनाम् ।
प्रयत्नतो धारणमङ्गनाया
विच्छित्तिरेषा कथिता बहुज्ञैः ॥ १६ ॥

3160

यथा

सखि प्रेयान्नत्वा स्खलितमकरोत्क्षन्तुमुचितं
विधत्स्वालंकारं नहि नहि बलादर्पयसि किम् ।

अयि श्रेयश्चिन्त्यं सततमबलाभिः प्रणयिना-
ममासीस्तन्वि त्वं प्रतनुमपि विच्छित्तिविषयम् ॥ १७ ॥

3161

अभिमतवस्तूपहृतावपि गुरुगर्वादनादरस्तन्व्याः ।
स्खलितेपि प्रियस्य संयमताडनमित्येव विब्बोकः ॥१८ ॥

3162

यथा

अनास्था वस्तूनामभिमतगुणानामुपहृतौ
घनो गर्वस्तन्व्या रुषि च विहिताडम्बरविधिः ।
प्रहारः पादाभ्यां यमनमपि काञ्च्या चरणयोः
प्रियाया विब्बोकं तदिदमिति धन्योनुभवति ॥ १९ ॥

3163

सौख्येषु हसितरुदितत्रासक्रोधभ्रमाभिलाषाणाम् ।
संघर्षः प्रियदर्शनहर्षात्किलकिञ्चितं ज्ञेयम् ॥ २० ॥

3164

यथा

क्रन्दत्यबाष्पमभये भयमातनोति
क्रोधो मनाग्भवति तत्क्षणमेव हास्यम् ।
आलम्ब्य हर्षमबला किलकिञ्चिताख्यं
हावं विभावयति पुण्यवतोन्तिकस्था ॥ २१ ॥

3165

क्रोधः स्मितं च कुसुमाभरणादियाच्ञां
तद्भर्जनं च सहसैव विमण्डनं च ।
आक्षिप्य कान्तवचनं लपनं सखीभि-
र्निष्कारणं स्थितगतेन स विभ्रमः स्यात् ॥ २२॥

3166

यथा

आस्तां माद्य भवे शुभे सखि लता न्यस्ता त्वया माधवी
कान्ते तन्मम संप्रयच्छ कुसुमं किं वामुना मे फलम् ।

नाल्पं निर्मलयामि मौक्तिकमिदं न्यस्तं त्वया दद्यता-
मित्थं विभ्रमसंभ्रमो मदयति प्रेयांसमेणीदृशः ॥ २३ ॥

3167

अप्राप्तवल्लभसमागमनाधिकायाः
सख्याः पुरोत्र निजचित्तविनोदबुद्ध्या ।
आलापवेषगतिहास्यविकत्थनाद्यैः
प्राणेश्वरानुकृतिमाकलयन्ति लीलाम् ॥ २४ ॥

3168

यथा

वेणीबन्धकपर्दिनी सिततनुः श्रीखण्डपांसूत्करैः
केतक्येकदलेन्दुभृद्विसलता व्यालोपवीतिन्यपि ।
प्राक्पाणिग्रहणाद्विनोदरभसा सख्याः पुरो लीलया
कुर्वाणानुकृतिं हरस्य दिशतु श्रेयांसि वः पार्वती ॥ २५ ॥

3169

यो वल्लभासन्नगतो विकारो
गत्यासनस्थानविलोकनेषु ।
वृथास्मितक्रोधचमत्कृतिश्च
विकूणनं चास्य कृतं विलासः ॥ २६ ॥

3170

यथा

स्खलितबहलः पादन्यासो विलोकितमन्यतो
रुचिरविषये वक्त्राम्भोजं प्रयाति विकूणनम् ।
स्मितमपि मुहुर्व्यर्थः क्रोधो वृथैव चमत्कृति-
र्दयितमभिगच्छन्त्यास्तन्व्या विलासरसोदयः ॥ २७ ॥

3171

सबाष्पगद्गदालापः सस्मितापाङ्गवीक्षितम् ।
प्रेमदाक्षिण्यवृत्तिश्च तरुण्या हाव उच्यते ॥ २८ ॥

3172

यथा

प्राप्तेषु शृङ्गारसाश्रयेषु
हावेषु कामाङ्कुरचिह्नभूतः ।
उत्पद्यते यः स्मितवीक्षितोक्त-
मुन्मीलितं बालतया स हावः ॥ २९ ॥

3173

विसंस्थूलावेशमयो विकारो विविधः स्त्रियः ।
तमामनन्ति विक्षेपं मुनयः कपिलादयः ॥ ३० ॥

3174

यथा

धम्मिल्लं बद्धमुक्तं तिलकमसकलं न्यस्तवृत्तं च धत्ते
दृष्टावेकत्र कालाञ्जनमुरसि रणत्किंकिणीं रत्नकाञ्चीम् ।
अंसोत्क्षिप्तार्धहारक्रमुकफलरसा रञ्जितैकाधरान्ता
कान्ता विक्षेपभावादपहरति मनः स्रस्तरुद्धोरुवासाः॥३१॥

3175

वाच्यानां च पदार्थानां ज्ञानेपि यदभाषणम् ।
नायकेषु मृगाक्षीणां विहृतं तत्प्रकीर्तितम् ॥३२॥

3176

यथा

कण्ठे क एष तव वल्लभ नूपुरोयं
तत्पादभूषणमयं वलयस्तदानीम् ।
इत्यादिवाच्यमविभाव्य वचो मृगाक्ष्या
ज्ञानेपि तद्विहृतमुत्सुकतां तनोति ॥ ३३ ॥

3177

मधुपानमदे प्रायस्तारुण्यातिशयोद्भवः ।
विकारो यो वरस्त्रीणां तं वदन्ति मदं बुधाः ॥ ३४ ॥

3178

यथा

आलापः स्मितकौमुदीसहचरो दृष्टिः प्रहर्षोज्ज्वला
भ्रूनृत्याध्वरदीक्षिता चरणयोर्न्यासः समे भङ्गुरः ।
वेशेषु क्षणिकस्पृहा मदविधेर्बन्धो न वादाश्रय-
स्तन्व्या नैकविकारभूर्मधुमदप्रायो मदः स्फूर्जति ॥३५॥

3179

दयितस्य कथारम्भे साङ्गभङ्गविजृम्भणम् ।
कर्णकण्डूयनं स्त्रीणां मोट्टायितमुदाहृतम् ॥ ३६ ॥

3180

यथा

तस्याङ्घ्रिद्वितयं नमन्ति विबुधाः स त्वेककः सर्ववि-
त्तं मृत्युंजयमामनन्ति मुनयः सोद्यापि पाति व्रतम् ।
इत्याकर्ण्य कथां हरस्य विजयापार्श्वे विवाहात्पुरा
भङ्क्त्वाङ्गानि विजृम्भितं गिरिभुवो मोट्टायितं पातु वः॥३७॥

3181

केशस्तनादिग्रहणे हर्षादिभ्रमिते मुखे ।
दुःखाविष्करणं तन्व्या यत्तत्कुट्टमितं मतम् ॥ ३८ ॥

3182

यथा

किं कान्त निर्दयतरं भुजकंदलीभ्यां
गाढं निपीडयसि मां न सहिष्णुरस्मि ।
वामभ्रुवामिति सुखेष्वपि दुःखभाजां
धन्यः शृणोति यदि कुट्टमिताक्षराणि ॥३९॥

3183

मुक्ताफलं तरोः कस्येत्यादि यत्कृत्रिमं वचः ।
वल्लभानां पुरः प्रोक्तं मौग्ध्यं तत्सुधियो विदुः ॥ ४० ॥

3184

यथा

के द्रुमास्ते क्व चारामे सन्ति केन प्ररोपिताः ।
नाथ मद्भूषणे न्यस्तं येषां मुक्ताफल फलम् ॥ ४१ ॥

3185

नागच्छति प्रियतमे प्रहरार्धमात्र-
मुद्वेगजं विधिविचेष्टितमङ्गनायाः ।
सख्याः पुरः श्वसनरोदनमात्मभाग्य-
निन्दादिकं कविवरास्तपनं वदन्ति ॥ ४२ ॥

3186

यथा

नायाते प्रहरार्धमेव दयिते भङ्क्त्वा नितम्बे मिथः
संसक्ताङ्गुलिजालमध्यमधुना सख्यः कृतार्था इति ।
व्याहारं श्वसनं मुहुः पुनरिदं गौर्याद्यनभ्यर्चनं
तन्वङ्ग्यास्तपनं तनोति कृतिनः प्रेमाणमुच्चैस्तराम् ॥४३॥

3187

भ्रूनेत्रादिक्रियाशाली सुकुमारविधानतः ।
हस्तपादाङ्गविन्यासस्तन्वङ्ग्या ललितं विदुः ॥ ४४ ॥

3188

यथा

स्कन्धार्पितैकमणिकुण्डलमुच्चतैक-
भ्रूवल्लिसाचिविनिवेशितदृष्टिपातम् ।
चेतो न कस्य ललितं हरति प्रियाया
हासोद्धतांशुकनिरुद्धमुखेन्दुकान्तम् ॥ ४५ ॥

## अथ स्त्रीपुरुषवशीकरणम् ।

3189

नाभिहत्कण्ठदेशेषु ददच्छ्वासं शनैः शनैः ।
कामं संसाधयेत्कामी गायत्रीं सप्तधा पठेत् ॥ ४६ ॥

## अथ कामगायत्री ।

3190

ॐ नमो भगवासाय विद्महे पुष्पबाणाय धीमहि ।
तन्नः कामः प्रचोदयात् ॥
व्याजेन चुम्बनादीनामुच्छ्वासं पाययेत्प्रियाम् ।
तेन सा वशमायाति न तु तस्याः स्वयं पिबेत् ॥ ४७ ॥

3191

अङ्गुष्ठे पदगुल्फजानुजघने नाभौ च वक्षःस्तने
कक्षाकण्ठकपोलदन्तवसने नेत्रालिके मूर्धनि ।
शुक्लाशुक्लविभागतो मृगदृशामङ्गेष्वनङ्गस्थिती-
रूर्ध्वाधोगमनेन वामपदगाः पक्षद्वये लक्षयेत् ॥ ४८ ॥

3192

के गृह्णन्ति कचाँल्ललाटनयने चुम्बन्ति दन्तच्छदं
दन्तौघेन निपीडयन्ति तरसा चुम्बन्ति गण्डस्थलीम् ।
कक्षाकण्ठतट लिखन्ति नखैरर्गृह्णन्ति गाढं स्तनौ
मुष्टया वक्षसि ताडयन्ति ददते नाभौ चपेटां शनैः ॥४९॥

3193

कुर्वन्ति स्मरमन्दिरे करिकरक्रीडां स्त्रियो जानुनी
गुल्फाङ्गुष्ठपदानि च प्रतिमुहुर्निघ्नन्ति तैरात्मनः ।
इत्येवं कलयन्ति ये शशिकलामालिङ्ग्य मज्जन्ति ते
शीतांशूपलपुत्तिकां शशिकरस्पृष्टामिव प्रेयसीम् ॥ ५० ॥

3194

ज्ञात्वानङ्गस्थितिं कामी तत्स्थानं संस्पृशेद्रते ।
तेन कान्ता वशं याति द्रुतं द्रवति निश्चितम् ॥ ५१ ॥

3195

एकारौकारयुक्ता हरिहरिजहराः पञ्च बाणाः स्मरस्य
ख्याता लक्ष्याण्यमीषां हृदयकुचदृशो मूर्धि गुह्ये क्रमेण ।

स्थानेष्वेतेषु भूयो निजनयनधनुःप्रेरितैस्तैः पतद्भिः
स्यन्दन्ते सुन्दरीणां ज्वलदनलनिभैर्बिन्दवः कामबाराम्॥९२॥

3196

सरसिजमरुणं हृदये कुचयोश्चूतं दृशोरशोकं च ।
शिरसि शिरीषं योनावुत्पलमेतानि पञ्च बाणाः स्युः॥९३॥

3197

रोचनामीनपित्ताभ्यां सव्यहस्तकनिष्ठया ।
कृतो विशेषको युक्त्या त्रैलोक्यस्यापि मोहनः ॥ ९४ ॥

3198

कनकस्य तु पञ्चाङ्गं कर्पूरं केतकीरजः ।
आत्मशुक्रेण संयुक्तं वश्यकृद्भक्षितं स्त्रियाः ॥ ९५ ॥

3199

शिलागोरोचनापत्रकुङ्कुमस्य विशेषकात् ।
अङ्गलेपनतो नारी नरेन्द्रस्य प्रिया भवेत् ॥ ९६ ॥

3200

चूर्णे दत्तं वशकृच्चूर्णं कीटस्य काकजङ्घायाः ।
मुनिदलरससिक्तो वा टङ्कणकःस्वाङ्गमलमिलितः॥९७॥

3201

क्षौमीं लेखावर्तिं गददलताली सतगरकैस्तैलम् ।
सिद्धार्थस्य गृहीत्वा नृकपाले चाञ्जनं विहितम् ।
नयनगतं युवतीनामपि मुनिचेतांसि मोहयति ॥ ९८ ॥

3202

यदि सहदेवीमूलं ग्रहणे संगृह्य रोचनापिष्टम् ॥ ९९ ॥
तत्कृततिलका नारी गुरुकुलमपि वश्यतां नयति ।

3203

सितदूर्वा सितबृहती सितगिरिकर्णी समूलपुष्पा च ।
ताम्बूलेन वितीर्णा स्त्रीपुरुषौ वश्यतां नयति ॥ ६० ॥

3204

निजबीजेन रतान्ते वामदृशो झटिति वामपादं यः ।
अथवा लिम्पति हृदयं स एव तस्याः परो दयितः ॥६१॥

3205

वचा सौवर्चलं कुष्ठं रजन्यौ मरिचानि च ।
एषां लेपप्रभावेण वशीकरणमुत्तमम् ॥ ६२ ॥

3206

कर्पूरं चन्दनं कुष्ठं तुलसी सर्जसंभवम् ।
मुस्तं शिलारसं चैव धत्तूरमगुरुस्तथा ॥ ६३ ॥

3207

शेफाली शनपुष्पा च सर्षपास्तगरं गुडः ।
तथा रुद्रजटा सर्वमेतदेकत्र कारयेत् ॥ ६४ ॥

3208

अनेन योगराजेन धूपिताम्बरभूषणः ।
धूपिताङ्गस्त्रिभुवनं मनुजः कुरुते वशम् ॥ ६५ ॥

अथ द्रावणम् ।

3209

यदि वा मधु डविच्छासहितं कठिनाङ्गनावराङ्गेषु ।
क्षेपात्तद्भुजलेपाद्रेतःस्रोतः प्रवर्तयति ॥ ६६ ॥

3210

कर्पूरामिश्रेण च कण्टकारी-
बीजोद्भवेनैव रसेन लिप्तम् ।
लिङ्गं रते द्रावकरं वधूनां
संजायतेत्यन्तसुखावहं च ॥ ६७ ॥

3211

चूर्णितैष्टङ्गणोपेतैर्महाराष्ट्रीफलच्छदैः ।
मधुना लिङ्गलेपेन द्रावो भवति योषिताम् ॥ ६८ ॥

3212

रक्तकपिलिङ्गमुडुपतिकाञ्चनमधुसूतसहितं वा ।
हयलालामञ्जिष्ठा सितसर्षपजातिकुसुमं वा ॥ ६९ ॥

3213

मधुसैन्धवकलरवमलमिलितं वाजिलिङ्गलेपेन ।
द्रावयति कामिनीनां रतिसमये काममन्दिरं नियतम्॥७०॥

## अथ वाजीकरणम् ।

3214

गोक्षुरकेक्षुरकं शतमूली-
वानरि नागबलातिबलानाम् ।
चूर्णमिदं पयसा निशि सेव्यं
यस्य गृहे प्रमदाशतमस्ति ॥ ७१ ॥

3215

गोक्षुरविदारिकाभवचूर्णं वा शर्करासहितम् ।
स्वरसेन भावितं वा धात्रीचूर्णं सिताज्यमधुलीढम् ॥
लीढ्वानुपीय दुग्धं न तृप्यति स्त्रीशतस्यापि ॥ ७२ ॥

3216

पिप्पलीमाषशालीनां यवगोधूमयोस्तथा ।
चूर्णभागान्समीकृत्य घृते पूपलिकां पचेत् ॥ ७३ ॥

3217

तां भक्षयित्वा पीत्वा च शर्करामधुरं पयः ।
नरश्चटकवद्गच्छेन्मैथुने तरुणीर्दश ॥ ७४ ॥

3218

घृतमधुसहदेवान्वितसरोजकिंजल्कलिप्तनाभेर्वा ।
रममाणस्य न तृप्यति मनः शतस्यापि रमणीनाम् ॥७५॥

एते योगरत्नावल्याः ।

## अथ बीजस्तम्भः ।

3219

भृङ्गरजः कन्यायां विष्णुक्रान्तासजीरके मलिते ।
मुखगतगुटिकाविधिना बीजस्तम्भं रते कुरुते ॥ ७६ ॥

3220

वानरं चपलं ध्यायेद्वृक्षशाखावलम्बिनम् ।
सुरते तेन बीजस्य स्तम्भो भवति निश्चितम् ॥ ७७ ॥

3221

कपिकच्छूमूलेन च निजचरणविलेपनाद्भवति ।
बीजस्तम्भः पुंसो बहुशो दृष्टः प्रयोगोयम् ॥ ७८ ॥

3222

सितशरपुङ्खामूलं पारदरससहितमानने निहितम् ।
एककरञ्जकबीजान्तरगं बीजं विधारयति ॥ ७९ ॥

3223

स्नुह्याजदुग्धपिष्टं लज्जालोर्मूलमाङ्घ्रिलेपनतः ।
ध्वजलेपादजमूत्रापिष्टं वा वारुणीमूलम् ॥ ८० ॥

3224

माहिषघृतसहदेवीतिलमधुसितकमलकेसरैस्तुल्यैः ।
गृहचटकेन च लेपितनाभिस्तब्धेन्द्रियो रमते ॥ ८१ ॥

3225

कपिकच्छूमूलेन च मदाविह्वलछागमूत्रपिष्टेन ।
मिलनं स्तब्धीकरणं मूलेन दुरालभायाश्च ॥ ८२ ॥

## अथ लिङ्गवृद्धिः ।

3226

मधुतगरगौरसर्षपबृहतीखरमञ्जरीकणाः सतिलाः ।
यवकुष्ठमरिचसैन्धवहयगन्धामाषसंयुक्ताः ॥ ८३ ॥

3227

स्तनयुगलकर्णपालीर्ध्वजभुजशिखरोपचयमेताः ।
ध्रुवमुद्वर्तनविधिना सततास्यासेन कुर्वन्ति ॥ ८४ ॥

3228

भल्लातकबृहतीफलदाडिमफलकल्कसाधितं कुरुते ।
लिङ्गं मर्दनविधिना कटुतैलं वाजिलिङ्गाभम् ॥ ८५ ॥

3229

पुटदग्धपद्मिनीदलभल्लातककृष्णलवणानाम् ।
भूयः परिणतबृहतीफलरससंपिष्टया मृदितम् ॥ ८६ ॥

3230

महिषीमलमिलितमग्रे लिङ्गं पश्चाच्च तैर्भवति ।
मुसलमिव मदनविह्वलयुवतीजनदर्पनिर्दलनम् ॥ ८७ ॥
(युग्मम्)

3231

कनकरसमसृणवार्तितहयगन्धामूलमिश्रपर्युषितम् ।
माहिषमिह नवनीतं गतबीजे कनकफलमध्ये ॥ ८८॥

3232

गोमयगाढोद्वार्तितपूर्वं पश्चादनेकशो लिप्तम् ।
भवति हयलिङ्गसदृशं लिङ्गं कठिनाङ्गनादयितम् ॥८९॥
(युग्मम्)

3233

करिकृष्णाश्वगन्धा च नवनीतं च माहिषम् ।
एतेषां मर्दनाल्लिङ्गवृद्धिः संजायते परा ॥ ९० ॥

3234

कर्पूरमिश्रसेह्वण्डदुग्धलेपेन जायते ।
शेफसो महती वृद्धिः कठिनस्त्रीसुखावहा ॥ ९१ ॥

3235

शर्करासैन्धवं सर्पिश्छागक्षीरविपाचितम् ।
युक्त्या तु मर्दयेल्लिङ्गं भवेत्करिकरोपमम् ॥ ९२ ॥
एते कोकस्य ।

## अथ कुसुमजननम् ।

3236

पीते च तिलकषाये त्रिकटुद्विजयष्टिमूलसंयुक्ते ।
अपहरति रक्तगुल्मं कुसुमनिरोधं च तरुणीनाम् ॥ ९३॥

3237
कर्पासबीजमज्जानां चूर्णं तैलेन पाचयेत् ।
तेन संजायते पुष्पं युवतीनां चिराद्गतम् ॥ ९४ ॥

3238
तुम्बीबीजयवक्षारौ दन्तिबिल्वं कणा गुडः ।
पञ्चबाणवलं वर्तिर्वज्रीक्षीरेण निर्मिता ।
योनिमध्यस्थिता पुष्पं जनयत्येव योषिताम् ॥ ९५ ॥

## अथ गर्भजननम् ।

3239
नागकेसरपुष्पाणां चूर्णं गोसर्पिषा सह ।
पीते स्त्री लभते गर्भमृतौ दुग्धान्नभोजिनी ॥ ९६ ॥

3240
लक्ष्मणा शिखिमूला वा दुग्धपीता दिनत्रयम् ।
ऋतौ जाते स्त्रियो गर्भं ग्राहयेन्नरसंगमे ॥ ९७ ॥

## अथ गर्भपातरक्षा ।

3241
लज्जालुर्धातकीपुष्पमुत्पलं मधु लोध्रकम् ।
जलस्थया स्त्रिया पीतं गर्भपातं निवारयेत् ॥ ९८ ॥

3242
गर्भिणीगर्भतो रक्तं स्तम्भयेन्निपतद्भुतम् ।
पारावतमलं पीतं त्र्यहं तन्दुलवारिणा ॥ ९९ ॥

## अथ सुखप्रसूतिः ।

3243
कृत्वा च सप्तखण्डं गुञ्जामूलं निबध्य कटिदेशे ।
सूत्रैः सप्तभिरचिरात्सुखसूतिं भामिनी भजते ॥ १०० ॥

3244
हिङ्गुसैन्धवसंयुक्तप्रकाञ्जिकपानतः ।
प्रसूते स्त्री कटौ बद्धे मूले वा मातुलुङ्गजे ॥ १०१ ॥

3245
जरायुजं मृतं गर्भमपतन्तीं जरामपि ।
योषितां पातयत्येव पादस्थोत्तरणीशिफा ॥ १०२ ॥

## अथ बालरक्षा ।

3246
मयूरचूलिकामूलं ग्रहणादौ समुद्धृतम् ।
बालकस्य गले बद्धं सर्वदोषनिवारणम् ॥ १०३ ॥

3247
एका वा दुग्धिका तुम्बी शङ्खपुष्पी जटा धृता ।
कण्ठदन्तोद्भवा भूतवेदनाहरणक्षमा ॥ १०४ ॥

## अथ यौवनरक्षा ।

3248
मुण्डीचूर्णकषायेण युतं तैलं विपाचितम् ।
पतितं यौवनं न स्यात्पानादुत्तिष्ठति ध्रुवम् ॥ १०५ ॥

3249
माकन्दमूलसंयुक्तमधुकर्पूरपूरिता ।
गतेपि यौवने स्त्रीणां योनिर्गाढातिजायते ॥ १०६ ॥
एते योगरत्नावल्याः ।

## अथ मुखवासजलवासौ ।

3250
जातीफलं च कस्तूरी कर्पूरं चूतवारिसंपृक्तम् ।
धूपितमगुरुकसिल्हं मधुगुडधूपैश्च मुखवासः ॥ १०७ ॥

3251
सूक्ष्मैलाकस्तूरीकुष्ठत्वक्पत्रचन्दनैः सुतनु ।
मलयजसहितं नूनं रचय महीपाल जलवासम् ॥ १०८ ॥

3252
त्वक्पत्राभ्यां जातीपत्रैलाभ्यां च चम्पको भवति ।
त्वङ्मरिचाभ्यां वीनः कुष्ठतिलाभ्यां च पाटलावासः ॥ १०९ ॥

## अथाङ्गवासः ।

3253

चूर्णं कुष्ठमुरानागकेसराणां घृतान्वितम् ।
मधु पीतं करोत्यङ्गसौरभं सततं नृणाम् ॥ ११० ॥

3254

प्रातःकुष्ठरजश्चूर्णं लिहन्मधुघृतान्वितम् ।
काठिन्यं सौरभं तस्य देहे स्याच्चिरजीवितम् ॥ १११ ॥

श्रीकण्ठशंभोः ।

## अथ धूपाः ।

3255

दलं मलयजं मांसी सितागुरु जलं मधु ।
समांशैर्मेलितैर्धूपो धत्ते कुङ्कुमसौरभम् ॥ ११२ ॥

3256

चन्दनागरुकुष्ठानि शिवासर्जरसौ सिता ।
मलयानिलनामायं धूपोमीभिः सुरप्रियः ॥ ११३ ॥

योगरत्नावल्या एतौ ।

3257

सूरणद्विपदानाभ्यां शिलया गौरसर्षपैः ।
कुङ्कुमागुरुरम्भाभिश्चन्द्रचन्दनकौशिकैः ॥ ११४ ॥

3258

दशाङ्गोयं महाधूपो नाम्ना संमोहनाभिधः ।
त्रैलोक्यं मोहयत्येव कामबाणसमः स्मृतः ॥ ११५ ॥

शार्ङ्गधरस्य ।

3259

शशिनखगिरिमदमांसीजतुभागो मलयलोहयोर्भागौ ।
मिलितैर्गुडपरिमृदितैर्वस्त्रगृहादीनि धूपयेच्चतुरः ॥ ११६ ॥

गन्धदीपिकायाः ।

## अथधूपवर्तिः ।

3260

नखगुरुसिल्हकवालककुन्दुरुशैलेयचन्दनं श्यामा ।
क्रमवृद्धभागरचिता वर्तिः क्षितिनाथकान्तेयम् ॥ ११७ ॥

पद्मश्रियः ।

3261

मार्जारी हिमवालुका पिशुनकं गोशीर्षकं शिल्हनं
वह्नेः प्रीतिकरं तथाम्बुपिशिता स्यात्कौशिकं यौगिकम् ।
कल्कं भागविवर्धकं गुडसितासंमूर्च्छितं सर्पिषा
युक्तं मन्मथवर्तिरित्यभिहिता स्याद्भोगिनां सर्वदा ॥११८॥

श्रीगोविन्दराजदेवानाम् ।

## अथ दीपवर्तिः ।

3262

सुरदारुमलयमुस्तकलाक्षागुरुशीलचूर्णकर्पूरम् ।
नृपवासगेहयोग्या मनोहरा दीपवर्तिरियम् ॥ ११९ ॥

3263

गन्धरसागिरिकण्डुरुगुग्गुलुसर्जरसपूतिकर्पूरम् ।
श्रीवाससिल्हचन्दनमित्यपरा दीपवर्तिरियम् ॥ १२० ॥

एतौ पद्मश्रियः ।

---

# अथ बालावर्णनम् ॥ ९६ ॥

3264

अभ्यासः कर्मणां सम्यगुत्पादयति कौशलम् ।
विधिना तावदभ्यस्तं यावत्सृष्टा मृगेक्षणा ॥ १ ॥

3265

दग्धो विधिर्विधत्ते न सर्वगुणसुन्दरं जनं कमपि ।
इत्यपवादभयादिव मुग्धाक्षी निर्मिता विधिना ॥ २ ॥

3266

लावण्यामृतदीर्घिका कुलगृहं सौन्दर्यसौभाग्ययो-
स्त्रैलोक्याकररत्नकन्दलिरियं जीव्यात्सहस्रं समाः ।
रूपालोकनकौतुकेन बहुना शिल्पश्रमेणादरा-
न्मन्ये यां विधिना विधाय विहितं सृष्टेर्ध्वजारोपणम् ॥ ३ ॥

3267

एकान्तसुन्दरविधानजडः क्व वेधाः
सर्वाङ्गकान्तिचतुरं क्व च रूपमस्याः ।
मन्ये महेश्वरभयान्मकरध्वजेन
प्राणार्थिना युवतिरूपमिदं गृहीतम् ॥ ४ ॥

केषामप्येते ।

3268

अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चन्द्रो नु कान्तिप्रदः
शृङ्गारैकरसः स्वयं नु मदनो मासो नु पुष्पाकरः ।
वेदाभ्यासजडः कथं नु विषयव्यावृत्तकौतूहलो
निर्मातुं प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः ॥ ५ ॥

कालिदासस्य ।

3269

किं कौमुदीः शशिकलाः सकला विचूर्ण्य
संयोज्य वामृतरसेन पुनः प्रयत्नात् ।
कामस्य घोरहरहुंकृतिदग्धमूर्त्तेः
संजीवनौषधिरियं विहिता विधात्रा ॥ ६ ॥

कस्यापि ।

---

## अथ वयःसंधिवर्णनम् ॥ ९७ ॥

3270

यथा यथा विशत्यस्या हृदये हृदयेश्वरः ।
तथा तथा बहिर्यातौ मन्ये संकोचतः कुचौ ॥ १ ॥

कस्यापि ।

3271

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै-
रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम् ।
अखण्डं पुण्यानां फलमपि च तद्रूपमनघं
न जाने भोक्तारं कामिह समुपस्थास्यति विधिः ॥ २ ॥

कालिदासस्य ।

3272

अयमङ्कुरभाव एव तावत्-
स्तुचयोः कर्षति लोकलोचनानि ।
इतरेतरपीडनामवस्थां
गतयोः श्रीरनयोः कथं भवित्री ॥ ३ ॥

3273

दृश्यं दृशां सहस्रैर्मनसामयुतैर्विभावनीयं च ।
सुकृतशतकोटिभोग्यं किमपि वयः सुभ्रुवः स्वदते ॥४॥

3274

भ्रुवोः काचिल्लीलापरिणतिरपूर्वा नयनयोः
स्तनाभोगो व्यक्तस्तरुणिमसमारम्भसमये ।
इदानीं बालायाः किममृतमयः किं विषमयः
किमानन्दः साक्षाद्घनितमधुरः पञ्चमरवः ॥ ५ ॥

केषामप्येते ।

3275

परिहरति वयो यथा यथास्याः
स्फुरदुरुकन्दलशालि बालभावम् ।
द्रढयति धनुषस्तथा तथा ज्यां
स्पृशति शरानपि सज्जयन्मनोभूः ॥ ६ ॥

3276

समं विलासेङ्गुरितः स्तनाभ्यां
त्रपा विलासेन सहावतीर्णा ।

अवर्ततान्यस्त्रपयैव साकं
कान्तः प्रकारो वचसां कृशाङ्ग्याः ॥ ७ ॥

एतौ जयतुङ्गोदयात्।

3277

मुखं विकसितस्मितं वाशितवक्रिम प्रेक्षितं
समुच्छलितविभ्रमा गतिरपास्तसंस्था मतिः ।
उरो मुकुलितस्तनं जघनमंसबन्धोद्धुरं
बतेन्दुवदनातनौ तरुणिमोद्गमो मोदते ॥ ८ ॥

कस्यापि।

3278

दोलायां जघनस्थलेन चलता लोलेक्षणा लज्जते
साशङ्कं तनुकण्टकक्षतभिया क्रीडावने क्रीडति ।
धत्ते दिक्षु निरीक्षणं स्मितमुखी पारावतानां रुतैः
सज्जं मौग्ध्यविसर्जनाय सुतनोः शृङ्गारमित्रं वयः ॥ ९ ॥

बिल्हणस्य।

3279

अनाकूतैरेव प्रियसहचरीणां शिशुतया
वचोभिः पाञ्चालीमिथुनमधुना संगमयितुम् ।
उपादत्ते नो वा विरमति न वा केवलमियं
कपोलौ कल्याणी पुलकमुकुलैर्दन्तुरयति ॥ १० ॥

मुरारेः।

3280

वक्षस्यावरणादरः स्तनमुखोद्भेदं विनाप्यङ्गुली-
मुद्राम्लाचितहास्यमास्यमधिकं नो पुत्रिकादौ रसः ।
तिर्यग्लोचनवीक्षितानि वचसां छेकोक्तिसंक्रान्तय-
स्तस्याः सीदति शैशवे समभवत्कोप्येष नव्यक्रमः ॥११॥

3281

प्रगल्भानामन्तर्निविशति शृणोति प्रियकथां
स्वयं तत्तच्चेष्टाशतमभिनयैर्व्यञ्जयति च ।

स्पृहामन्तः कान्ते वहति न समभ्येति निकटं
यथैवेयं बाला हरति हि तथा चित्तमधिकम् ॥ १२ ॥

3282

पद्भ्यां मुक्तास्तरलगतयः संश्रिता लोचनाभ्यां
श्रोणीबन्धस्त्यजति तनुतां सेवते मध्यदेशः ।
धत्ते वक्षः कुचसचिवतामद्वितीयत्वमास्यं
तद्वात्राणां गुणविनिमयः कल्पितो यौवनेन ॥ १३ ॥

3283

क्षोभं धत्ते यदपि बहलः स्निग्धलावण्यपूरः
प्रत्यङ्गं यत्तटमनुसरन्त्यूर्मयो विभ्रमाणाम् ।
उन्मग्नं यत्स्फुरति च मनाक्कुम्भयोर्द्वन्द्वमेत-
त्तन्मन्येस्याः स्मरगजयुवा गाहते हत्तडागम् ॥ १४ ॥

3284

लावण्यामृतनिर्झरेण सुदृशः सिक्ताखिलाङ्गस्थली
जातस्तत्र नवीनयौवनकलालीलालतामण्डपः ।
तस्मिन्नेष विशेषशीतलतरुच्छायासु सुप्तोत्थितः
कंदर्पस्त्रिजगज्जयोद्यमपरोप्यद्यापि निद्रालसः ॥ १५ ॥

3285

यथा यथास्याः कुचयोः समुन्नति-
स्तथा तथा लोचनमेति वक्रताम् ।
अहो सहन्ते बत नो परोन्नतिं
निसर्गतोन्तर्मलिना ह्यसाधवः ॥ १६ ॥

केषामप्येते ।

---

## अथ तरुणीपृथगवयववर्णनम् ॥ ९८ ॥

तत्र प्रथमं केशपाशः ।

3286

अस्या मनोहराकारकबरीभारनिर्जिताः ।
लज्जयेव वने वासं चक्रुश्चमरबर्हिणः ॥ १ ॥

वररुचेः ।

3287

भाति विन्यस्तकह्लारः सुकेश्याः केशसंचयः ।
शोणितार्द्रैः शरैः पूर्णं तूणीरमिव मान्मथम् ॥ २ ॥

कस्यापि ।

3288

विकचकचकलापः किंचिदाकुञ्चितोयं
कुचकलशनिवेशी शोभते श्यामलाक्ष्याः ।
मधुरसपरितोषात्किंचिदुत्फुल्लकोषे
कमल इव निलीनः पेटकः षट्पदानाम् ॥ ३ ॥

पुण्यस्य ।

3289

स्नानार्द्रमुक्तेष्वनुधूपवासं
विन्यस्तसायंतनमल्लिकेषु ।
कामो वसन्तात्ययमन्दवीर्यः
केशेषु लेभे बलमङ्गनानाम् ॥ ४ ॥

कालिदासस्य ।

3290

चलत्कामिमनोमीनमादातुं चित्तजन्मनः ।
जालयष्टिरिवाभाति बालावेणी गुणोज्ज्वला ॥ ५ ॥

कस्यापि ।

3291

आभुग्नाङ्गुलिपल्लवौ कचभरे व्यापारयन्ती करौ
बन्धोत्कर्षनिबद्धमानसतया शून्यां दधाना दृशम् ।
बाहूत्क्षेपसमुन्नते कुचतटे पर्यस्तचीनांशुका
ह्रीसंकोचितबाहुमूलसुभगं बध्नाति जूटीं वधूः ॥ ६ ॥

सिद्धापिदेः ।

## अथ ललाटम् ।

3292

अस्या ललाटे रचिता सखीभि-
र्विभाव्यते चन्दनपत्रलेखा ।

आपाण्डुरक्षामकपोलभित्ता-
वनङ्गबाणव्रणपट्टिकेव ॥ ७ ॥
भासस्य ।

3293

बाले लालमलेखेयं भाले भक्षीव राजते ।
भ्रूलताचापमाकृष्य न विद्मः कं हनिष्यति ॥ ८ ॥

3294

कस्तूरीतिलकं बाले भाले मा कुरु मा कुरु ।
अद्य साम्यं भजामीति जृम्भते शशलाञ्छनः ॥ ९ ॥
कस्यापि ।

3295

विराजतेस्यास्तिलको यमञ्चितो
विकुञ्चितभ्रूलतिकाद्वयान्तरे ।
विजित्य लोकद्वितयं दिवं प्रति
स्मरेण बाणो धनुषीव योजितः ॥ १० ॥
कस्यापि ।

## अथ भ्रुवौ ।

3296

तस्याः शलाकाञ्जननिर्मितेव
कान्तिर्भ्रुवोरायतलेखयोर्या ।
तां वीक्ष्य लीलाचतुरामनङ्गः
स्वचापसौन्दर्यमदं मुमोच ॥ ११ ॥
कालिदासस्य ।

3297

भ्रूरेखायुगलं भाति तस्याश्चटुलचक्षुषः ।
पत्रद्वयीव हरिता नासावंशविनिर्गता ॥ १२ ॥
विल्हणस्य ।

## अथ नेत्रे ।

3298

नूनमाज्ञाकरस्तस्याः सुभ्रुवो मकरध्वजः ।
यतस्तन्नेत्रसंचारसूचितेषु प्रवर्तते ॥ १३ ॥

कस्यापि ।

3299

यासां कटाक्षविशिखैः स्मरचौरेण ताडिताः ।
हृतचैतन्यसर्वस्वा मोह्यन्ते मुग्धकामुकाः ॥ १४ ॥

शार्ङ्गधरस्य ।

3300

सन्मार्गे तावदास्ते प्रभवति पुरुषस्तावदेवेन्द्रियाणां
लज्जां तावद्बिधत्ते विनयमपि समालम्बते तावदेव ।
भ्रूचापाकृष्टमुक्ताः श्रवणपथजुषो नीलपक्ष्माण एते
यावल्लीलावतीनां हृदि न धृतिमुषो दृष्टिबाणाः पतन्ति॥१५॥

बाणभट्टस्य ।

3301

नलिनं मलिनं विवृण्वती
पृषतीमस्पृशती तदीक्षणे ।
अपि खञ्जनमञ्जनाञ्चिते
विदधाते रुचिगर्वदुर्विधम् ॥ १६ ॥

श्रीहर्षस्य ।

3302

भ्रमयति शरीरमधिकं भ्रमयति चेतः करोति संतापम् ।
मोहं मुहुश्च कुरुते विषमिव विषमं तु वीक्षणं तस्याः ॥ १७॥

3303

शिलासम्यग्धौतोज्ज्वलधवलधारापरिसरा-
निमानन्तः श्यामानिव विषमबाणस्य विशिखान् ।
दृढप्रज्ञावर्माण्यपि हृदयमर्माणि रुजतः
कटाक्षानेतस्या मुनिरपि न सोढुं प्रभवति ॥ १८ ॥

कस्यापि ।

## अथ नासा ।

3304

पुराणबाणत्यागाय नूतनास्त्रकुतूहलात् ।
तन्नासा भाति कामेन तूणीवाधोमुखीकृता ॥ १९ ॥

बिल्हणस्य ।

3305

सुधामयोपि क्षयरोगशान्त्यै
नासाग्रमुक्ताफलकच्छलेन ।
अनङ्गसंजीवनदृष्टिशक्ति-
र्मुखामृतं ते पिबतीव चन्द्रः ॥ २० ॥

वैद्यनाथस्य ।

## अथ कर्णपाशौ ।

3306

सौन्दर्यपात्रे वक्त्रेन्दौ कुरङ्गासङ्गभीतया ।
सूचितौ श्रोत्रपाशाभ्यां पाशाविव मृगीदृशः ॥ २१ ॥

3307

तालीदलं काञ्चनकर्णपाशे
प्रसारयन्ती सुतनुः कराभ्याम् ।
रराज कर्णान्तनिषण्णदृष्टिः
शाणे दधानेव कटाक्षबाणान् ॥ २२ ॥

बिल्हणस्यैतौ ।

3308

ताटङ्कमस्यास्तरलेक्षणाया
मुक्ताफलैश्चारु रुचं विधत्ते ।
मुखश्रिया चन्द्रमिवाभिभूय
बन्दीकृतं तारकचक्रवालम् ॥ २३ ॥

कस्यापि ।

## अथ कपोलौ ।

3309

आबभत्परिवेषमण्डलमलं वक्त्रेन्दुबिम्बाद्बहिः
कुर्वच्चम्पकजृम्भमाणकलिकाकर्णावतंसक्रियाम् ।
तन्वङ्ग्याः परिनृत्यतीव हसतीवोत्सर्पतीवोल्बणं
लावण्यं ललतीव काञ्चनशिलाकान्ते कपोलस्थले ॥ २४ ॥

त्रिविक्रमभट्टस्य ।

## अथाधरः ।

3310

तवैष विद्रुमच्छायो मरुमार्ग इवाधरः ।
करोति कस्य नो मुग्धे पिपासाकुलितं मनः ॥ २५ ॥

कस्यापि ।

3311

अल्पेनापि सुरक्तेन साधनेन प्रयोजनम् ।
ओष्ठद्वयसहायेन कान्तास्येन जगज्जितम् ॥ २६ ॥

कस्यापि ।

3312

रसवदमृतं कः संदेहो मधून्यपि नान्यथा
मधुरमधिकं द्राक्षायाश्च प्रसन्नतरं फलम् ।
सकृदपि पुनर्मध्यस्थः सन्नसान्तरविज्ञनो
वदतु यदिहान्यत्स्वादु स्यात्प्रियादशनच्छदात् ॥ २७ ॥

कस्यापि ।

3313

अयि मृगाक्षि तवाधरपल्लवे
दयितदन्तपदं न भवत्यदः ।
भुवनमोहनमन्त्रपदाङ्कितं
किमुत यन्त्रमिदं स्मरयन्त्रिणः ॥ २८ ॥

3314

सर्वस्यैव हि रत्नस्य व्रणैर्घः परिहीयते ।
दयिताधररत्नं तु व्रणितं यात्यनर्घताम् ॥ २९ ॥

कयोरप्येतौ ।

अथ दन्ताः ।

3315

द्विधा विधाय शीतांशुं कपोलौ कृतवान्विधिः ।
तन्व्यास्तद्रसनिःस्यन्दबिन्दवो रदनावली ॥ ३० ॥

कपोलकवेः ।

3316

यावद्यावत्कुवलयदृशा मृज्यते दन्तपालि-
स्तावत्तावद्विगुणमधरच्छायया शोणशोचिः ।
काचित्तस्याः परिमलकलाहूतमात्रालिकान्त्या
वक्त्रश्वासे प्रसरति मुहुः श्यामिकाप्याविरासीत् ॥ ३१ ॥

कस्यापि ।

अथ स्मितम् ।

3317

स्मयमानमायताक्ष्याः किंचिदभिव्यक्तदशनशोभि मुखम् ।
असमग्रलक्ष्यकेसरमुच्छ्वसदिव पङ्कजं दृष्टम् ॥ ३२ ॥

3318

पुष्पं प्रवालोपहितं यदि स्या-
न्मुक्ताफलं वा स्फुटविद्रुमस्थम् ।
ततोनुकुर्याद्विशदस्य तस्य
ताम्रौष्ठपर्यस्तरुचः स्मितस्य ॥ ३३ ॥

एतौ कालिदासस्य ।

## अथ मुखम् ।

3319

यदमरशतैः सिन्धोरन्तः कथंचिदुपार्जितं
सकलमपि तद्धात्रा कान्तामुखे विनिवेशितम् ।
सुरसुमनसः श्वासामोदे शशीव कपोलयो-
रमृतमधरे तिर्यग्भूते विषं च विलोचने ॥ ३४ ॥

3320

तस्या मुखस्यातिमनोहरस्य
कर्तुं न शक्तः सदृशं प्रियायाः ।
अद्यापि शीतद्युतिरात्मबिम्बं
निर्माय निर्माय पुनर्भिनत्ति ॥ ३५ ॥

3321

अनेन रम्भोरु तवाननेन
पीयूषभानोस्तुलया धृतस्य ।
ऊनस्य नूनं परिपूरणाय
ताराः स्फुरन्ति प्रतिमानखण्डाः ॥ ३६ ॥

कयोरप्येतौ ।

3322

कोशः स्फीततरः स्थितानि परितः पत्राणि दुर्गं जलं
मित्रैर्मण्डलमुज्ज्वलं चिरमधो नीतास्तथा कण्टकाः ।
इत्याकृष्टशिलीमुखेन रचनां कृत्वा तदत्यद्भुतं
यत्पद्मेन जिगीषुणापि न जितं मुग्धे त्वदीयं मुखम् ॥३७॥

विज्ञकायाः ।

3323

धिक्तस्य मन्दमनसः कुकवेः कवित्वं
यः स्त्रीमुखं तुहिनबिम्बसमं करोति ।
भ्रूभङ्गविभ्रमकटाक्षनिरीक्षितानि
कोपप्रसादहसितानि कुतः शशाङ्के ॥ ३८ ॥

श्रीधनदेवानाम् ।

3324

अनाकाशे चन्द्रः सरसिजदलद्वन्द्वसहितो
गृहीतः पश्चार्धे कुटिलकुटिलैः सोपि तिमिरैः ।
सुधां मुञ्चत्युच्चैरनिशमथ संमोहजननीं
किमुत्पातालीयं वदत जगतः कर्तुमुदिता ॥ ३९ ॥

कस्यापि ।

3325

आरब्धे दयितामुखप्रतिसमे निर्मातुमस्मिन्नपि
व्यक्तं जन्म समानमेव मिलितामंशुच्छटां वर्षति ।
आत्मद्रोहिणि रोहिणीपरिवृढे पर्यङ्कपङ्केरुहः
संकोचादथ दुस्थितस्य न विधेस्तच्छिल्पमुन्मीलितम् ॥४०॥

मुरारेः ।

3326

जितेन्दुपद्मलावण्यं कः कान्तावदनं जयेत् ।
मुक्त्वा तदेव सुरतश्रमजिह्मितलोचनम् ॥ ४१ ॥

कस्यापि ।

## अथ कण्ठः ।

3327

कण्ठस्य विदधे कान्तिं मुक्ताभरणता यथा ।
नास्याः स्वभावरम्यस्य मुक्ताभरणता तथा ॥ ४२ ॥

शकवृद्धेः ।

3328

मातङ्गकुम्भसंसर्गजातपातकशङ्कया ।
स्नातीव मुक्ताहारोस्याः स्फुरत्कान्तिजले गले ॥ ४३ ॥

श्रीवैद्यभानुपण्डितस्य ।

3329

कण्ठस्य तस्याः स्तनबन्धुरस्य
मुक्ताकलापस्य च निस्तलस्य ।

अन्योन्यशोभाजननाद्बभूव
साधारणो भूषणभूष्यभावः ॥ ४४ ॥
कालिदासस्य ।

## अथ बाहू ।

3330

दयिताबाहुपाशस्य कुतोयमपरो विधिः ।
जीवयत्यर्पितः कण्ठे मारयत्यपवर्जितः ॥ ४५ ॥
भासस्य ।

3331

शब्दवद्भिरलंकारैरुपेतमतिकोमलम् ।
सुवृत्तं काव्यवद्रेजे तद्बाहुलतिकाद्वयम् ॥ ४६ ॥
शकवृद्धेः ।

---

## अथ करौ ।

3332

मुग्धे प्रसारयसि किं कुसुमानि हर्तु-
मेतान्यशोकविटपस्य कुतूहलेन ।
अस्यैव तन्वि नवपल्लवडम्बरेषु
त्वं हारयिष्यसि ननु स्वयमेव पाणी ॥ ४७ ॥
कस्यापि ।

3333

न्यस्तानि दन्तवलयानि करे कयाचि-
त्तानीन्दुखण्डघटितानि ममैष तर्कः ।
अस्या निसर्गमृदुपाणिसरोजमेषा-
मामोचने क्षणिति यन्मुकुलीबभूव ॥ ४८ ॥
कस्यापि ।

## अथाङ्गुल्यः ।

3334

अङ्गुलीषु कुरङ्गाक्ष्याः शोभते मुद्रिकावलिः ।
प्रीतेव बाणैः पुष्पेषोः सूक्ष्मलक्ष्यपरंपरा ॥ ४९ ॥

बिल्हणस्य ।

3335

सुदीर्घा रागशालिन्यो बहुपर्वमनोहराः ।
तस्या विरेजुरङ्गुल्यः कामिनां संकथा इव ॥ ५० ॥

शकवृद्धेः ।

---

## अथ स्तनौ ।

3336

नयननीरज किं भवता कृतं
मुखशशी यदयं रिपुराश्रितः ।
इति वचो वितरीतुमिवोन्मुखं
वरतनोः स्तनवक्त्रयुगं बभौ ॥ ५१ ॥

कस्यापि ।

3337

पुष्पेषोरभिषेकहेमकलशौ हारप्रभावाहिनी-
चक्राह्वौ मदनोन्मदद्विपपतेः कुम्भौ रतेः कन्दुकौ ।
कन्दौ बाहुमृणालिकायुगलयोर्लीलालतासत्फले
नव्यौ रत्नसमुद्गकौ वहति सा लावण्यपूर्णौ स्तनौ ॥ ५२ ॥

3338

शुकीचञ्चूत्खातच्छवि फलयुगं यौवनतरो-
रयःशङ्कुक्षुण्णं मदनकरिणः कुम्भयुगलम् ।
समुद्रं भोगायामृतकलशयुग्मं सुकृतिनः
कुचद्वन्द्वं तन्व्या नवनखपदाङ्कं विजयते ॥ ५३ ॥

कयोरप्येतौ ।

3339

मृद्वङ्गि कठिनौ तन्वि पीनौ सुमुखि दुर्मुखौ ।
अत एव बहिर्यातौ हृदयात्ते पयोधरौ ॥ ५४ ॥

3340

तन्वङ्ग्याः स्तनयुग्मेन मुखं न प्रकटीकृतम् ।
हाराय गुणिने स्थानं न दत्तमिति लज्जया ॥ ५५ ॥

3341

काठिन्यमङ्गैरखिलैर्निरस्तं
कुचौ युवत्याः शरणं जगाम ।
अधः पतिष्याव इतीव भीत्या
न शक्नुवस्तावपि हातुमेतत् ॥ ५६ ॥

3342

यन्न माति तदङ्गेषु लावण्यमतिसंभृतम् ।
पिण्डीकृतमुरोदेशे तत्पयोधरतां गतम् ॥ ५७ ॥

3343

एकावलीकलितमौक्तिककैतवेन
तन्व्याः समुन्नतपयोधरयुग्मसेवाम् ।
चक्रुर्मनांसि यमिनामतिनिर्मलानि
कंदर्पमुक्तशरपातकृतान्तराणि ॥ ५८ ॥

केषामप्येते ।

---

अथ मध्यः ।

3344

वयःप्रकर्षादुपचीयमान-
स्तनद्वयस्योद्वहनश्रमेण ।
अत्यन्तकार्श्यं वनजायताक्ष्या
मध्यो जगामेति ममैष तर्कः ॥ ५९ ॥

कुमारदासस्य ।

3345

काञ्चीगुणैर्विरचिता जघनेषु लक्ष्मी-
र्लब्धा स्थितिः स्तनतटेषु च रत्नहारैः ।
नो भूषिता वयमितीव नितम्बिनीनां
कार्श्यं निरर्गलमधार्यत मध्यभागैः ॥ ६० ॥

रत्नाकरस्य ।

## अथ बलित्रयम् ।

3346

मध्यत्रिबलीत्रिपथे पीवरकुचचत्वरे च चपलदृशाम् ।
छलयति मदनपिशाचः पुरुषं हि मनागपि स्खलितम् ॥६१॥

3347

एकमेव बलिं बध्वा जगाम हरिरुन्नतिम् ।
तन्व्यास्त्रिबलिबन्धेपि सैव मध्यस्य नम्रता ॥ ६२ ॥

कयोरप्येतौ ।

## अथ रोमावली ।

3348

गभीरनाभीह्रदसंनिधाने
रराज तन्वी नवरोमराजिः ।
मुखेन्दुभीतस्तनचक्रवाक-
द्वन्द्वोज्झिता शैवलमञ्जरीव ॥ ६३ ॥

लक्ष्मीधरस्य ।

3349

अमुष्मिँल्लावण्यामृतसरसि नूनं मृगदृशः
स्मरः शर्वप्लुष्टः पृथुजघनभागे निपतितः ।
यदङ्गाङ्गाराणां प्रशमपिशुना नाभिकुहरे
शिखा धूमस्येयं परिणमति रोमावलिमिषात् ॥ ६४ ॥

कस्यापि ।

## अथ नाभिः ।

3350

मन्ये समाप्तलावण्ये सारसर्गे मृगीदृशः ।
अपूरयित्वेव गतो नाभिरन्ध्रं चतुर्मुखः ॥ ६५ ॥

3351

कुचकुम्भौ समालम्ब्य तरीतुं कान्तिनिम्नगाम् ।
प्रमादतस्ततो भ्रष्टा दृष्टिर्नाभौ निमज्जति ॥ ६६ ॥

कयोरप्येतौ ।

## अथ नितम्बः ।

3352

तन्नितम्बस्य निन्दन्ति वृद्धिं परिजनाङ्गनाः ।
काञ्चीनवनवग्रन्थिग्रथनेन कदर्थिताः ॥ ६७ ॥

बिल्हणस्य ।

3353

स कथं न स्पृहणीयो विषयरतैस्तन्नितम्बविन्यासः ।
शान्तात्मनापि विहितं विश्वसृजा गौरवं यत्र ॥ ६८ ॥

कस्यापि ।

## अथ जघनम् ।

3354

वपुरनुपमं नाभेरूर्ध्वं विधाय मृगीदृशो
ललितललितैरङ्गन्यासैः पुरा रभसादिव ।
तदनु सहसा खिन्नेनेव प्रजापतिना भृशं
पृथुलपृथुला स्थूलस्थूला कृता जघनस्थली ॥६९॥

जघनस्थलीघटकस्य ।

3355

तस्याः पद्मपलाशाक्ष्यास्तन्व्यास्तज्जघनं घनम् ।
दृष्टं सखीभिर्याभिस्ताः पुंभावं मनसा ययुः ॥ ७० ॥

वाल्मीकेः ।

## अथोरू ।

3356

पश्यन्हतो मन्मथबाणपातैः
शक्तो विधातुं न निमील्य चक्षुः ।
ऊरू विधात्रा हि कथं कृतौ ता-
वित्यास तस्यां सुमतोर्वितर्कः ॥ ७१ ॥

कुमारदासस्य ।

3357

मन्ये तदूरू संभाव्य हस्तसर्वस्वहारिणौ ।
वहन्त्यस्पर्शताहेतोर्मतङ्गत्वं मतङ्गजाः ॥ ७२ ॥

बिल्हणस्य ।

## अथ जङ्घे ।

3358

जङ्घे तदीये संतापं यज्जनस्यानुरागिणः ।
जनयांचक्रतुस्तीव्रं तत्र हेतुर्विलोमता ॥ ७३ ॥

शकवृद्धेः ।

3359

हेममञ्जीरमालाभ्यां भाति जङ्घालताद्वयम् ।
लावण्याय कृतास्थानं कुङ्कुमेनेव सुभ्रुवः ॥ ७४ ॥

बिल्हणस्य ।

## अथ चरणयुगलम् ।

3360

अमूल्यस्य मम स्वर्णतुलाकोटिद्वयं कियत् ।
इति कोपादिवाताम्रं पादयुग्मं मृगीदृशः ॥ ७५ ॥

3361

जाग्रतः कमलालक्ष्मीं यज्जग्राह तदद्भुतम् ।
पादद्वयस्य मत्तेभगतिस्तेये तु का स्तुतिः ॥ ७६ ॥

बिल्हणस्यैतौ ।

## अथ नखश्रेणिः ।

3362

तस्याः पादनखश्रेणी शोभते किल सुभ्रुवः ।
रत्नावलीव लावण्यरत्नाकरसमुद्गता ॥ ७७ ॥

बिल्हणस्य ।

3363

त्वद्वक्त्रं नेत्रपद्मप्रकटितमसकृत्स्पर्धितं यन्मयैत-
ज्ज्ञातं तस्मात्कृशत्वं ग्रहणमपि ततो जाद्यमन्तःकलङ्कः ।
तत्सर्वं क्षम्यतां मे पुनरपि न करोम्येवमुक्त्वा तु तस्या
गाढं लग्नः शशाङ्कश्चरणनखमणिच्छद्मना पादयुग्मम् ॥७८॥

कस्यापि ।

## अथ गमनम् ।

3364

सलीलमियमायान्ती कामिनी गजगामिनी ।
उन्नताङ्घ्रिनखज्योतिःपुष्पैर्भुवमिवार्चति ॥ ७९ ॥

3365

मारयन्त्या जनं सर्वं निरागसमवज्ञया ।
मातङ्गानां गतिर्यादृक्तादृगासीदसंशयम् ॥ ८० ॥

कस्याप्येतौ ।

## अथ कान्तिः ।

3366

सुन्दरी सा भवत्येष विवेकः केन जायते ।
प्रभामात्रं हि तरलं दृश्यते तत्र नाश्रयः ॥ ८१ ॥

दण्डिनः ।

3367

अवयवेषु परस्परबिम्बिते-
ष्वतुलकान्तिषु राजति यत्तनोः ।

अयमयं प्रविभाग इति स्फुटं
जगति निश्चिनुते चतुरोपि कः ॥ ८२ ॥

भीमसिंहपण्डितस्य ।

---

## अथ समग्रस्त्रीस्वरूपवर्णनम् ॥ ९९ ॥

3368

सा दृष्टा यैर्न वा दृष्टा मुषिताः समभेव ते ।
हृदयं हृतमेकेषामन्येषां चक्षुषोः फलम् ॥ १ ॥

प्रभाकरदेवस्य ।

3369

अवलोकनमपि सुखयति कुवलयदलचारुचपलनयनायाः ।
किं पुनरमृतसमानं सरभसमालिङ्गनं तस्याः ॥ २ ॥

कस्यापि ।

3370

स्तनयुगमतीव तुङ्गं निम्नो मध्यः समुन्नतं जघनम् ।
इति विषमे हरिणाक्ष्या वपुषि नवे क इह न स्खलति ॥ ३ ॥

कस्यापि ।

3371

मुखेन चन्द्रकान्तेन महानीलैः शिरोरुहैः ।
पादाभ्यां पद्मरागाभ्यां रेजे रत्नमयीव सा ॥ ४ ॥

कस्यापि ।

3372

संन्यस्तभूषापि नवैव नित्यं
विनापि हारं हसतीव कान्त्या ।
मदं विनापि स्खलतीव भावै-
र्वाचं विना व्याहरतीव दृष्ट्या ॥ ५ ॥

व्यासस्य ।

3373

तद्वक्त्रं यदि मुद्रिता शशिकथा तच्चेस्मितं का सुधा
तच्चक्षुर्यदि हारितं कुवलयैस्ताश्चेद्गिरो धिङ्मधु ।

धिक्कंदर्पधनुर्भुवौ यदि च ते किं वा बहु ब्रूमहे
यत्सत्यं पुनरुक्तवस्तुविरसः सर्गक्रमो वेधसः ॥ ६ ॥

3374

सौरभ्यं मृगलाञ्छने यदि भवेदिन्दीवरे वक्रता
माधुर्यं यदि बिम्बुके तरलता कंदर्पचापे यदि ।
रम्भायां यदि विप्रतीपगमनं प्राप्तोपमानं तदा
तद्वक्त्रं च तदीक्षणं तदधरस्तद्भ्रूस्तदूरूयुगम् ॥ ७ ॥

3375

यतो यतोङ्गादपयाति कञ्चुक-
स्ततस्ततः स्वर्णमरीचिवीचयः ।
यतो यतोस्या निपतन्ति दृष्टय-
स्ततस्ततः श्यामसरोजवृष्टयः ॥ ८ ॥

केषामप्येते ।

3376

अकृशं नितम्बभागे क्षामं मध्ये समुन्नतं कुचयोः ।
अत्यायतं नयनयोर्मम जीवितमेतदायाति ॥ ९ ॥

3377

अव्याजसुन्दरीं तां विज्ञानेनाद्भुतेन योजयता ।
उपकल्पिता विधात्रा बाणाः कामस्य विषदिग्धाः ॥ १० ॥

3378

वेणी विडम्बयति मत्तमधुव्रताली-
मङ्गीकरोति गुणमैन्दवमास्यमस्याः ।
बाहू मृणाललतिकाश्रियमाश्रयेते
पुङ्खानुपुङ्खयति कामशरान्कटाक्षः ॥ ११ ॥

कालिदासस्यैते ।

3379

तदा तदङ्गस्य बिभर्ति विभ्रमं
विलेपनामोदरुचः स्फुरद्रुचः ।

दरस्फुरत्काञ्चनकेतकीदला-
त्सुवर्णमभ्यस्यति सौरभं यदि ॥ १२ ॥
कस्यापि ।

3380

भ्रूपल्लवं धनुरपाङ्गतरंगितानि
बाणा गुणः श्रवणपालिरिति स्मरेण ।
तस्यामनङ्गजयजङ्गमदेवताया-
मस्त्राणि निर्जितजगन्ति किमर्पितानि ॥ १३ ॥
जयदेवस्य ।

---

## अथ विप्रलम्भशृङ्गारे प्रियप्रस्थान-वर्णनम् ॥ १०० ॥

3381

मनसि निविशते स कोपि तापः
प्रणयिनि बाहुलतान्तरास्थितेपि ।
सरसिजमकरन्दगन्धबन्धु-
र्वहति यदेष शनैः शनैः समीरः ॥ १ ॥
कस्यापि ।

3382

आयाते श्रुतिगोचरं प्रियतमप्रस्थानकाले बला-
त्तल्पान्तःस्थितया तदाननमलं दृष्ट्वा चिरं मुग्धया ।
सोच्छ्वासं दृढमन्युनिर्भरगलद्बाष्पाम्बुधौतं तया
स्वं वक्त्रं विनिवेश्य भर्तृहृदये निःशब्दकं रुद्यते ॥ २ ॥
कस्यापि ।

3383

गन्तुर्विवस्वदुदये हृदयेश्वरस्य
प्रत्यूषपक्षिनिनदश्रवजातकम्पा ।
निद्रां जलैरशिशिरैर्नयनान्तजातैः
कान्ता तदंसशिखरे पतितैर्जहार ॥ ३ ॥
सूक्तिसहस्रात् ।

3384

कान्ते कथंचिद्गदितप्रयाणे
क्षणं विनम्रा विरहार्हताङ्गी ।
ततः समालोक्य कदा गतोसी-
त्यालिङ्ग्य मुग्धा मुदमाससाद ॥ ४ ॥

कस्यापि ।

3385

लज्जां विहाय रुदितं विधृतः पटान्ते
मागास्त्वमित्युदितमङ्गुलयो मुखेस्ताः ।
स्थित्वा पुरः पतितमेव निवर्तनाय
प्राणेश्वरे व्रजति किं न कृतं कृशाङ्ग्या ॥ ५ ॥

कस्यापि ।

3386

दृष्टः कातरनेत्रया चिरतरं बद्धाञ्जलिं याचितः
पश्चादंशुकपल्लवेन विधृतो निर्व्याजमालिङ्गितः ।
इत्याक्षिप्य समस्तमर्थमघृणो गन्तुं प्रवृत्तः शठः
पूर्वं प्राणपरिग्रहो दयितया मुक्तस्ततो वल्लभः ॥ ६ ॥

अमरुकस्य ।

3387

यामीति प्रियपृष्टायाः प्रियायाः कण्ठवर्तिनोः ।
वचोजीवितयोरासीत्पुरो निःसरणे रणः ॥ ७ ॥

कस्यापि ।

3388

लग्ना नांशुकपल्लवे भुजलता न क्षारदेशेर्पिता
नो वा पादयुगे तया निपतितं तिष्ठेति नोक्तं वचः ।
कालेः केवलमम्बुदालिमलिने गन्तुं प्रवृत्तः शठ-
स्तन्वङ्ग्या नयनाम्बुकल्पितनदीपूरेण रुद्धः प्रियः ॥ ८ ॥

अमरुकस्य ।

3389

प्रहरविरतौ मध्ये वाह्नस्ततोप्यपरेण वा
किमुत सकले यातेप्यह्नि प्रिय त्वमिहैष्यसि ।

इति दिनशतप्राप्यं देशं प्रियस्य यियासतो
हरति गमनं बालालापैः सबाष्पगलज्जलैः ॥ ९ ॥
गलज्जलवसुदेवस्य ।

3390

दूरं सुन्दरि निर्गतासि नगरादेष द्रुमः क्षीरवा-
नस्मादेव निवर्त्यतामिति शनैरुक्त्वाध्वगेन प्रियाम् ।
गाढालिङ्गनवक्रितस्तनतटाभोगस्फुटत्कञ्चुकं
वीक्ष्योरःस्थलमश्रुपूरितदृशः प्रस्थानभङ्गः कृतः ॥ १० ॥
कस्यापि ।

## अथ नायिकां प्रति नायकवचनादिकथनम् ।

3391

स्मर्तव्योहं त्वया कान्ते न स्मरिष्याम्यहं तव ।
स्मरणं चेतसो धर्मस्तच्चेतो भवता हृतम् ॥ ११ ॥
कस्यापि ।

3392

स्मर्तव्या वयमिन्दुसुन्दरमुखि प्रस्तावतोपि त्वया
सत्यं नाथ यदि प्रदास्यति विधिर्जातिस्मरत्वं मम ।
एकस्मिन्नपि जन्मनि प्रियतमे जातिस्मरत्वं कथं
प्राणाः पान्थ समं त्वयैव चलिताः काद्यापि जन्मैकता ॥१२॥
कस्यापि ।

---

## अथ नायकं प्रति नायिकोक्तिः ॥ १०१ ॥

3393

गच्छ गच्छसि चेत्कान्त पन्थानः सन्तु ते शिवाः ।
ममापि जन्म तत्रैव भूयाद्यत्र गतो भवान् ॥ १ ॥

3394

सहिष्ये विरहं नाथ देह्यदृश्याञ्जनं मम ।
यदक्तनेत्रां कंदर्पः प्रहर्तुं मां न शक्ष्यति ॥ २ ॥
एतौ खण्डितः ।

3395

लोलैर्लोचनवारिभिः सशपथैः पादप्रणामैः परै-
रन्यास्ता विनिवारयन्ति कृपणाः प्राणेश्वरं प्रस्थितम् ।
पुण्याहं व्रज मङ्गलं सुदिवसः प्रातः प्रयातस्य ते
यत्स्नेहोचितमीहितं प्रिय मया तन्निर्गतः श्रोष्यसि ॥ ३ ॥

अमरुकस्य ।

## अथ नायकं प्रति सखीवाक्यम् ।

3396

या बिम्बौष्ठरुचिः क्व विद्रुममणिः स्वप्नेपि तां लब्धवा-
न्हासश्रीसदृशैस्तपोभिरपि किं मुक्ताफलैर्भूयते ।
तत्कान्तिः शतशोपि वह्निपतनैर्हेम्नः कुतः सेत्स्यति
त्यक्त्वा रत्नमयीं प्रयासि दयितां कस्मै धनायाध्वग ॥ ४ ॥

शिवस्वामिनः ।

3397

उद्यद्बर्हिषि दर्दुरारवपुषि प्रक्षीणपान्थायुषि
श्येतद्विप्लुषि चन्द्ररुङ्मुषि सखे हंसद्विषि प्रावृषि ।
मा मुञ्चोच्चकुचाग्रसंततपतद्बाष्पाकुलां बालिकां
कालेकालकरालनीलजलदव्यालुप्तभास्वत्त्विषि ॥ ५ ॥

बाणभट्टस्य ।

---

## अथ विरहिण्यवस्थावर्णनम् ॥ १०२ ॥

3398

शशभृन्नवपल्लवे शशाङ्के
मकरन्दस्रुति वारुणीसरोजे ।
अपि चास्यमरुद्गणान्प्रसूते
तिलकुसुमं स्फुटचम्पकौघदाम्नि ॥ १ ॥

कस्यापि ।

3399

विभ्रम्य विभ्रम्य वनद्रुमाणां
छायासु तन्वी विचचार काचित् ।
तनूत्तरीयेण करोद्धृतेन
निवारयन्ती शशिनो मयूखान् ॥ २ ॥

कस्यापि ।

3400

अस्तमितविषयसङ्गा मुकुलितनयनोत्पला मुहुः श्वसिता ।
ध्यायति किमप्यलक्ष्यं बाला योगाभियुक्तेव ॥ ३ ॥

गोवर्धनस्य ।

3401

परिम्लानं पीनस्तनजघनसङ्गादुभयत-
स्तनोर्मध्यस्यान्तः परिमलनमप्राप्य हरितम् ।
इदं व्यस्तन्यासं श्लथभुजलताक्षेपवलनैः
कृशाङ्ग्याः संतापं वदति बिसिनीपत्रशयनम् ॥ ४ ॥

श्रीहर्षस्य ।

3402

दह्यमानेपि हृदये मृगाक्ष्या मन्मथाग्निना ।
स्नेहस्तथैव यत्तस्थौ तदाश्चर्यमिवाभवत् ॥ ५ ॥

शक्तवृद्धेः ।

3403

लिखति न गणयति रेखा निर्भरबाष्पाम्बुधौतगण्डतला ।
अवधिदिवसावसानं मा भूदिति शङ्किता बाला ॥ ६ ॥

मौरिकायाः ।

3404

प्रयातेस्तं भानौ श्रितशकुनिनीडेषु तरुषु
स्फुरत्संध्यारागे शशिनि शनकैरुल्लसति च ।
प्रियप्रत्याख्यानाद्विगुणविरहोत्कण्ठितदृशा
तदारब्धं तन्व्या मरणमपि यत्रोत्सवपदम् ॥ ७ ॥

भल्लटस्य ।

3405

सा तोरणान्तिकमुपेत्य दिशोवलोक्य
निःश्वस्य दीर्घमुपधाय करं कपोले ।
मत्वा च तं पुरत एव ससंभ्रमत्वा-
ज्ज्ञात्वा समोहलिखितेव न किं किमासीत् ॥ ८॥

पृथ्वीधरस्य ।

3406

भ्रातः पान्थ पथि त्वया न पथिकः कश्चित्समासादितो
बाले नैकशतानि कीदृश इति प्रख्यायतां वल्लभः ।
यं दृष्ट्वा प्रमदाजनस्य भवतः स्फारे मुदा लोचने
स ज्ञेयो दयितो ममेति पथिकायावेद्य मोहं गता ॥ ९ ॥

कस्यापि ।

3407

रथ्यारजोरुणितधूसरिताङ्गयष्टे
कश्चित्पितुः स्मरसि पुत्रक निर्घृणस्य ।
उक्त्वैवमङ्कगतमात्मजमायताक्ष्या
पान्थस्त्रिया प्ररुदितं करुणं दिनान्ते ॥ १० ॥

कस्यापि ।

3408

तन्वङ्ग्या गुरुसंनिधौ नयनजं यद्वारि संस्तम्भितं
तेनान्तर्गलितेन मन्मथशिखी सिक्तो वियोगोद्भवः ।
मन्ये तस्य निरस्यमान किरणस्यैषा मुखेनोद्गता
श्वासायाससमागतालिसरणिव्याजेन धूमावली ॥ ११ ॥

कस्यापि ।

3409

मुग्धा स्वप्नसमागते प्रियतमे तत्पाणिसंस्पर्शनं
रोमाञ्चाञ्चितया शरीरलतया संभाव्य कोपात्किल ।
मा मा वल्लभ संस्पृशेति सहसा शून्यं वदन्ती मुहुः
सख्या नो हसिता सचिन्तमसकृत्संशोचिता प्रत्युत ॥ १२॥

रुद्रस्य ।

3410

एतानि निःसहतनोरसमञ्जसानि
शून्यं मनः पिशुनयन्ति गतागतानि ।
एते च तीरतरवः प्रथयन्ति ताप-
मालम्बितोज्झिततरुग्लपितैः प्रवालैः ॥ १३ ॥

कालिदासस्य ।

3411

शीघ्रं भूमिगृहे गृहाण वसतिं प्राणैः किमु क्रीडसि
प्राप्तां पश्यसि किं न दैवहतिके ज्योत्स्नां गवाक्षोदरैः ।
इत्थं मन्मथतीव्रसंज्वरजुषां गेहेषु वामभ्रुवा-
मुद्गच्छन्ति कुरङ्गलाञ्छनभयाद्दीनाः सखीनां गिरः ॥ १४ ॥

बिल्हणस्य ।

3412

शय्या पुष्पमयी परागमयतामङ्गार्पणादद्भुते
ताम्यन्त्यन्तिकतालवृन्तनलिनीपत्राणि दाहोष्मणा ।
न्यस्तं च स्तनमण्डले मलयजं शीर्णान्तरं दृश्यते
कथादाशु भवन्ति फेनिलमुखा भूषामृणालाङ्कुराः ॥ १५ ॥

3413

मदनदहनशुष्यत्कान्तकान्ताकुचान्त-
र्नवमलयजपङ्के गाढबद्धाखिलाङ्गिः ।
उपरि विततपक्षो लक्ष्यतेलिर्निमग्नः
शर इव कुसुमेषोरेष पुङ्खावशेषः ॥ १६ ॥

कस्यापि ।

---

## अथ नायिकां प्रति सखीवचनम् ॥ १०३ ॥

3414

पक्ष्माग्रग्रथिताश्रुबिन्दुनिकरैर्मुक्ताफलस्पर्धिभिः
कुर्वत्या हरहासहारि हृदये हारावलीभूषणम् ।

बाले बालमृणालनालवलयालंकारकान्ते करे
विन्यस्याननमायताक्षि सुकृती कोयं त्वया स्मर्यते ॥ १ ॥

कस्यापि ।

3415

आसन्नामवलम्ब्य केसरलतामेकेन पुष्पोज्ज्वलां
सख्यं निःसहया नितम्बफलके कृत्वा कराम्भोरुहम् ।
आमीलन्नयनान्तवान्तसलिलं श्राव्यस्य निन्द्यस्य वा
कस्येदं दृढसौहृदं प्रतिदिनं दीनं त्वया स्मर्यते ॥ २ ॥

कस्यापि ।

3416

अलसवलितैः प्रेमार्द्रार्द्रैर्मुहुर्मुकुलीकृतैः
क्षणमभिमुखैर्लज्जालोलैर्निमेषपराङ्मुखैः ।
हृदयनिहितं भावाकूतं वमद्भिरिवेक्षणैः
कथय सुकृती कोयं मुग्धे त्वयाद्य विलोक्यते ॥३॥

अमरुकस्य ।

3417

उज्जृम्भाननमुक्तसत्कुचतटं लोलद्भ्रमद्भूलतं
स्वेदाम्भःक्षपिताङ्गयष्टि विगलद्व्रीडं सरोमाञ्चया ।
धन्यः कोपि युवा स यस्य वदने व्यापारिताः सांप्रतं
मुग्धे मुग्धमहाब्धिफेनपटलप्रख्याः कटाक्षच्छटाः ॥ ४ ॥

धनिकस्य ।

3418

भगिनि मदनः श्रीमानेष त्वया यदि लिख्यते
किमपि सुमुखि व्यग्रासीति व्रजामि निजालयम् ।
यदपि मकरोधस्तात्पौष्पं करे च शरासनं
तदपि परितो दृष्टिर्देया जनः सखि नागरः ॥५॥

हनूमतः ।

3419

मुग्धे दोर्लतिकां निधाय न कृतो द्वारोपरोधस्त्वया
लज्जा नो रुदती गतासि रभसात्तस्योत्तरीयांशुके ।

कालेस्मिन्कुसुमाकरे द्विगुणितप्रेमोत्सवे रागिणां
गच्छन्नग्रत एव मूढहृदये मुक्तस्त्वया वल्लभः ॥ ६ ॥
दोर्लतिकाभीमस्य।

3420

विश्रान्तो दिवसस्तटीमयमटत्यस्ताचलस्यांशुमा-
न्संप्रत्यङ्कुरितान्धकारपटलैर्लम्बालका द्यौरभूत् ।
एह्यन्तर्विश वेश्मनः शशिमुखि द्वारस्थलीतोरण-
स्तम्भालम्बितबाहुवल्लि रुदती किं त्वं पथः पश्यसि ॥७॥
रुद्रटीपण्डितस्य ।

3421

गोपायन्ती विरहजनितं दुःखमग्रे गुरूणां
किं त्वं मुग्धे नयनविसृतं बाष्पपूरं रुणत्सि ।
नक्तं नक्तं नयनसलिलैरेष आर्द्रीकृतस्ते
शय्योपान्तः कथयति दशामातपे शोष्यमाणः ॥ ८ ॥
कस्यापि ।

3422

मुखं पाण्डुच्छायं नयनयुगलं बाष्पतरलं
तनुः क्षामक्षामा गतमविशदं धैर्यविगमः ।
ह्रियं मुक्त्वा मूढे कथयसि न मे सारवचना-
न्यवस्था येनेयं तव सखि मुहूर्तेन पतिता ॥ ९ ॥
कस्यापि ।

3423

आहारे विरतिः समग्रविषयग्रामे निवृत्तिः परा
नासाग्रे नयनं यदेतदपरं यच्चैकनिष्ठं मनः ।
मौनं चेदमिदं च शून्यमखिलं यद्विश्वमाभाति ते
तद्भूयाः सखि योगिनी किमसि भोः किं वा वियोगिन्यसि ॥१०॥
राजशेखरस्य ।

---

## अथ वियोगिनीप्रलापाः ॥ १०४ ॥

3424

प्रस्थानं वलयैः कृतं प्रियसखैरस्रैरजस्रं गतं
धृत्या न क्षणमासितं व्यवसितं चित्तेन गन्तुं पुरः ।

यातुं निश्चितचेतसि प्रियतमे सर्वे समं प्रस्थिता
गन्तव्ये सति जीवितप्रियसुहृत्सार्थः किमुत्सृज्यते ॥ १ ॥

अमरुकस्य ।

3425

स्वयमप्राप्तदुःखो यः स दुनोति न विस्मयः ।
त्वं स्मरप्राप्तदाहोपि दहसीति किमुच्यते ॥ २ ॥

कस्यापि ।

3426

वरमसौ दिवसो न पुनर्निशा
ननु निशैव वरं न पुनर्दिनम् ।
उभयमेतदुपैत्यथवा क्षयं
प्रियतमेन न यत्र समागमः ॥ ३ ॥

कस्यापि ।

3427

अरतिरियमुपैति मां न निद्रा
गणयति तस्य गुणान्मनो न दोषान् ।
विगलति रजनी न सङ्गमाशा
व्रजति तनुस्तनुतां न चानुरागः ॥ ४ ॥

बिल्हणस्य ।

3428

पञ्चत्वं तनुरेतु भूतनिवहः स्वं स्वं विशत्वीप्सितं
याचे त्वां द्रुहिण प्रणम्य शिरसा भूयोपि भूयान्मम ।
तद्वापीषु पयस्तदीयमुकुरे ज्योतिस्तदीयालय-
व्योम्नि व्योम तदीयवर्त्मनि धरा तत्तालवृन्तेनिलः ॥ ५ ॥

आकाशपोलेः ।

3429

हारो नारोपितः कण्ठे मया विश्लेषभीरुणा ।
इदानीमन्तरे जाताः पर्वताः सरितो द्रुमाः ॥ ६ ॥

वाल्मीकिमुनेः ।

3430

मुग्धस्य ते वद विधुंतुद किं वदामि
किं मुक्तवानसि मुखे पतितं शशाङ्कम् ।
अस्यार्द्रबिम्बगलितेन सुधारसेन
संधानमेति तव किं न जरत्कबन्धः ॥ ७ ॥

बिल्हणस्य ।

3431

रिपुरिव सखीसंवासोयं शिखीव हिमानिलो
विषमिव सुधारश्मिर्यस्मिन्दुनोति मनोगते ।
हृदयमदये तस्मिन्नेवं पुनर्वलते बला-
त्कुवलयदृशां वामः कामो निकामनिरङ्कुशः ॥ ८ ॥

जयदेवस्य ।

3432

विरमत विरमत सख्यो नलिनीदलतालवृन्तपवनेन ।
हृदयगतोयं वह्निर्झटिति कदाचिज्ज्वलत्येव ॥ ९ ॥

कस्यापि ।

3433

बिभेमि सखि संवीक्ष्य भ्रमरीभूतकीटकम् ।
तद्ध्यानादागते पुंस्त्वे तेन सार्धं रतिः कथम् ॥ १० ॥

कस्यापि ।

3434

याः पश्यन्ति प्रियं स्वप्ने धन्यास्ताः सखि योषितः ।
अस्माकं तु गते कान्ते गता निद्रापि वैरिणी ॥ ११ ॥

कस्यापि ।

3435

यास्यामीति समुद्यतस्य वचनं विस्रब्धमाकर्णितं
गच्छन्दूरमुपेक्षितो मुहुरसौ व्यावृत्य तिष्ठन्नपि ।
तच्छून्ये पुनरागतास्मि भवने प्राणास्त एते दृढाः
सख्यस्तिष्ठत जीवितव्यसनिनी दंभादहं रोदिमि ॥ १२ ॥

कस्यापि ।

3436

इदानीं तीव्राभिर्दहन इव भाभिः परिवृतो
ममाश्चर्यं सूर्यः किमु सखि रजन्यामुदयति ।
अयं मुग्धे चन्द्रः किमिति मयि तापं प्रकटय-
त्यनाथानां बाले किमिह विपरीतं न भवति ॥ १३ ॥

पुष्टिकस्य ।

3437

यात्रामङ्गलसंविधानरचनाव्यग्रे सखीनां गणे
बाष्पाम्भःपिहितेक्षणे गुरुजने तद्वत्सुहृन्मण्डले ।
प्राणेशस्य मदीक्षणार्पितदृशः कृच्छ्रादतिक्रामतः
किं व्रीडाहतया मया भुजलतापाशो न कण्ठेर्पितः ॥१४॥

कस्यापि ।

---

## अथ नायकं प्रति दूतीप्रेषणम् ॥ १०५ ॥

3438

अपूजितैवास्तु गिरीन्द्रकन्या
किं पक्षपातेन मनोभवस्य ।
यद्यस्ति दूती सरसोक्तिदक्षा
दासः पतिः पादतले वधूनाम् ॥ १ ॥

बिल्हणस्य ।

3439

दूति त्वं तरुणी युवा स चपलः श्यामास्तमोभिर्दिशः
संदेशः सरहस्य एव विपिने संकेतकावासकः ।
भूयो भूय इमे वसन्तमरुतश्चेतो नयन्त्यन्यथा
गच्छ क्षेमसमागमाय निपुणं रक्षन्तु ते देवताः ॥ २ ॥

कस्यापि ।

3440

ननु संदिशेति सुदृशोदितया
त्रपया न किंचन किलाभिदधे ।

निजमैक्षि मन्दमनिशं निशितैः
कृशितं शरीरमशरीरशरैः ॥ ३ ॥
माघकवेः।

3441

प्राणेश विज्ञप्तिरियं मदीया
तत्रैव नेया दिवसाः कियन्तः ।
संप्रत्ययोग्यस्थितिरेष देशः
करा हिमांशोरपि तापयन्ति ॥ ४ ॥
वल्लभस्य।

3442

जीवामीति वियोगिनी यदखिले लोके प्रवृत्ताः कथा
अद्य श्वोथ मरिष्यतीति मरणे कालात्ययः किं कृतः ।
आगन्तव्यमिहेति संप्रति सखे संभावना निष्फला
भ्रातः संप्रति याहि नास्ति लिखितं तद्ब्रूहि यत्ते क्षमम् ॥ ५ ॥
लोणितकस्य।

3443

अनलस्तम्भनविद्यां सुभग भवान्नियतमेव जानाति ।
मन्मथशराग्नितप्ते हृदि मे कथमन्यथा वससि ॥ ६ ॥
कस्यापि।

3444

उल्लङ्घ्यापि सखीवचः समुचितामुल्लङ्घ्य लज्जामलं
भित्त्वा भीतिभरं निरस्य च निजं सौभाग्यगर्वं मनाक् ।
आज्ञां केवलमेव मन्मथगुरोरादाय नूनं मया
त्वं निःशेषविलासिवर्गगणनाचूडामणिः संभृतः ॥ ७ ॥
कस्यापि।

---

## अथ वियोग्यवस्थाप्रलापवर्णनम् ॥ १०६ ॥

3445

देशैरन्तरिता शतैश्च सरितामुर्वीभृतां काननै-
र्यत्नेनापि न याति लोचनपथं कान्तेति जानन्नपि ।

उद्ग्रीवश्चरणावरुद्धवसुधः प्रोन्मृज्य साश्रे दृशौ
तामाशां पथिकस्तथापि किमपि ध्यायन्मुहुर्वीक्षते ॥ १ ॥

कस्यापि।

3446

सा तन्वीति घनस्तनीति विकसच्चीलाब्जनेत्रेति च
स्वैरं संचरतीति वक्ति मधुरां वाचं विचित्रामपि ।
इत्थं विद्रुमपाटलाधरपुटां सीमन्तिनीं ध्यायतो
रोमाञ्चो रुदितं स्मितं प्रलपितं पान्थस्य संजायते ॥ २ ॥

कस्यापि ।

3447

प्रियाविरहितस्यास्य हृदि चिन्ता समागता ।
इति मत्वा गता निद्रा के कृतघ्नमुपासते ॥ ३ ॥

शीलाभट्टारिकायाः ।

3448

कर्पूराम्बुनिषेकभाजि सरसैरम्भोजिनीनां दलै-
रास्तीर्णेपि विवर्तमानवपुषः स्रस्तस्रजि स्रस्तरे ।
मन्दोन्मेषदृशः किमन्यदभवत्सा काप्यवस्था तदा
यस्याश्चन्दनचन्द्रचम्पकदलश्रेण्यादि वह्नीयते ॥ ४ ॥

त्रिविक्रमस्य ।

## अथ वियोगिप्रलापाः ।

3449

यदि प्रियावियोगेपि रुद्यते दीनदीनकम् ।
तदिदं दग्धमरणमुपयोगं क्व यास्यति ॥ ५ ॥

दग्धमरणस्य ।

3450

दिव्यचक्षुरहं जातः सरागेणापि चक्षुषा ।
इहस्थो येन पश्यामि देशान्तरगतां प्रियाम् ॥ ६ ॥

धैर्यमित्रस्य ।

3451

नपुंसकमिति ज्ञात्वा प्रियायां प्रहितं मनः ।
तत्तु तत्रैव रमते हताः पाणिनिना वयम् ॥ ७ ॥

कस्यापि ।

3452

नूनमयं मे पापः कान्ताविरहे रसायनीभूतः ।
वर्षसहस्राभ्यधिकान्नयामि कथमन्यथा दिवसान् ॥ ८ ॥

कस्यापि ।

3453

भ्रमय जलदानम्भोगर्भान्प्रमोदय चातका-
न्कलय शिखिनः केकोत्कण्ठान्कठोरय केतकान् ।
विरहिणि जने मूर्छां लब्ध्वा विनोदयति व्यथा-
मकरुण पुनः संज्ञाव्याधिं विधाय किमीहसे ॥ ९ ॥

भवभूतेः ।

3454

जाने कोपपराङ्मुखी प्रियतमा स्वप्नेऽद्य दृष्टा मया
मा मां संस्पृश पाणिनेति रुदती गन्तुं प्रवृत्ता ततः ।
नो यावत्परिरभ्य चाटुकशतैराश्वासयामि क्षणं
भ्रातस्तावदहं शठेन विधिना निद्रादरिद्रः कृतः ॥ १० ॥

निद्रादरिद्रस्य ।

3455

तप्ते महाविरहवह्निशिखावलीभि-
रापाण्डुरस्तनतटे हृदये प्रियायाः ।
मन्मार्गवीक्षणनिवेशितदीनदृष्टे-
र्नूनं छमच्छमिति बाष्पकणाः पतन्ति ॥ ११ ॥

छमच्छमिकारस्य ।

3456

न मे दुःखं प्रिया दूरे न मे दुःखं हृतेति सा ।
एतदेवानुशोचामि वयस्तस्या निवर्तते ॥ १२ ॥

वाल्मीकिमुनेः ।

3457

इतो विद्युत्पुञ्जस्फुरितमसकृद्भापयतु मा-
मितः केकानेका हरतु हृदयं निर्दयमिदम् ।
इतः कामो वामः प्रहरतु मुहुः पुङ्खितशरो
गतासि त्वं दूरे चपलनयने प्रेयसि यतः ॥ १३ ॥

श्रीगोविन्दराजदेवानाम् ।

3458

केशैः केसरमालिकामपि चिरं या बिभ्रती खिद्यते
या गात्रेषु घनं विलेपनमपि न्यस्तं न सोढुं क्षमा ।
दीपस्यापि शिखां न वासभवने शक्नोति या वीक्षितुं
तापं सा विरहानलस्य महतः सोढुं कथं शक्ष्यति ॥ १४ ॥

कस्यापि ।

3459

अपसरति न चक्षुषो मृगाक्षी
रजनिरियं च न याति नैति निद्रा ।
प्रहरति मदनोपि दुःखितानां
बत बहुशोभिमुखीभवन्त्यपायाः ॥ १५ ॥

त्रिविक्रमस्य ।

3460

हृदि बिसलता हारो नायं भुजंगमनायकः
कुवलयदलश्रेणी कण्ठे न सा गरलद्युतिः ।
मलयजरजो नेदं भस्म प्रियारहिते मयि
प्रहर न हरभ्रान्त्यानङ्ग क्रुधा किमु धावसि ॥ १६ ॥

3461

पाणौ मा कुरु चूतसायकममुं मा चापमारोपय
क्रीडानिर्जितविश्व मूर्छितजनाघातेन किं पौरुषम् ।
तस्या एव मृगीदृशो मनसिज प्रेङ्खत्कटाक्षाशुग-
श्रेणीजर्जरितं मनागपि मनो नाद्यापि संधुक्षते ॥ १७ ॥

जयदेवस्यैतौ ।

3462

यदि स्मरामि तां तन्वीं जीविताशा कुतो मम ।
अथ विस्मृत्य जीवामि जीवितव्यसनेन किम् ॥ १८ ॥

कस्यापि ।

3463

पादाङ्गुष्ठेन भूमिं किसलयरुचिना सापदेशं लिखन्ती
भूयो भूयः क्षिपन्ती मयि सितशबले लोचने लोलतारे ।
वक्त्रं ह्रीनम्रमीषत्स्फुरदधरपुटं वाक्यगर्भं दधाना
यन्मां नोवाच किंचित्स्थितमपि पुरतो मानसं तद्वनोति॥१९॥

कस्यापि ।

3464

व्रीडायोगान्नतवदनया संनिधाने गुरूणां
बद्धोत्कम्पं स्तनकलशयोर्मन्युमन्तर्निगृह्य ।
तिष्ठेत्युक्तं किमिव न तया यत्समुत्सृज्य बाष्पं
मय्यासक्तश्चकितहरिणीहारिनेत्रत्रिभागः ॥ २० ॥

नेत्रत्रिभागन्नह्मयशस्विनः ।

3465

याताः किं न मिलन्ति सुंदरि पुनश्चिन्ता त्वया मत्कृते
नो कार्या नितरां कृशासि कथयत्येवं सबाष्पे मयि ।
लज्जामन्थरतारकेण निपतत्पीताश्रुणा चक्षुषा
दृष्ट्वा मां हसितेन भाविमरणोत्साहस्तया सूचितः ॥२१॥

अमरुकस्य ।

3466

कान्तामुखं सुरतकेलिविमर्दखेद-
संजातघर्मकणविच्छुरितं रतान्ते ।
आपाण्डुरं विलसदर्धनिमीलिताक्षं
संस्मृत्य हे हृदय किं शतधा न यासि ॥ २२ ॥

3467

अद्यापि तत्प्रचलकुण्डलघृष्टगण्डं
वक्त्रं स्मरामि विपरीतरताभियोगे ।

आन्दोलनभ्रमजलस्फुटसान्द्रबिन्दु-
मुक्ताफलप्रकरविच्छुरितं प्रियायाः ॥ २३ ॥

अमरुकस्यैते ।

3468

निद्रार्धमीलितदृशो मदमन्थराणि
नाप्यर्थवन्ति न च नाम निरर्थकानि ।
अद्यापि मे मृगदृशो मधुराणि तस्या-
स्तान्यक्षराणि हृदये किमपि ध्वनन्ति ॥ २४ ॥

3469

अद्यापि तां कनकचम्पकदामगौरीं
फुल्लारविन्दनयनां तनुरोमराजीम् ।
सुप्तोत्थितां मदनविह्वललालसाङ्गीं
विद्यां प्रमादगलितामिव चिन्तयामि ॥ २५ ॥

3470

अद्यापि सा मनसि संपरिवर्तते मे
रात्रौ मयि क्षुतवति क्षितिपालपुत्र्या ।
जीवेति मङ्गलवचः परिहृत्य कोपा-
त्कर्णे कृतं कमलपत्रमनालपन्त्या ॥ २६ ॥

बिल्हणस्यैते ।

3471

आसन्नमार्गमतिलङ्घ्य ततेन मूर्ध्ना
पश्चात्प्रसङ्गवलितेन मुखेन यान्त्या ।
आरोपिताः कतिपये मयि पक्ष्मजाल्या
साकूतहासमनतिप्रकटाः कटाक्षाः ॥ २७ ॥

कस्यापि ।

3472

मुखं तस्याः स्मितस्मेरं किंचिदञ्चलसंवृतम् ।
मदालोकनलोलाक्षं स्मृत्वा मन्ये सुधां मुधा ॥ २८ ॥

कस्यापि ।

## अथ नायकस्याग्रे दूत्युक्तिः ॥ १०७ ॥

3473

सा सुन्दर तव विरहे सुतनुरियन्मात्रलोचना सपदि ।
एतावतीमवस्थां याता दिवसैरियन्मात्रैः ॥ १ ॥

रुद्रटस्य ।

3474

अङ्गेनङ्गज्वरहुतवहश्चक्षुषि ध्यानमुद्रा
कण्ठे जीवः करकिसलये दीर्घशायी कपोलः ।
अंसे वेणी कुचपरिसरे चन्दनं वाचि मौनं
तस्याः सर्वं स्थितमपि न तु त्वां विना क्वापि चेतः ॥ २ ॥

क्षेमेन्द्रस्य ।

3475

गृहीतं ताम्बूलं परिजनवचोभिः कथमपि
स्मरत्यन्तःशून्या सुभग विरतायामपि निशि ।
तथैवास्ते हस्तः कलितफणिवल्ली किसलय-
स्तथैवास्यं तस्याः क्रमुकफलफालीपरिचितम् ॥ ३ ॥

बिल्हणस्य ।

3476

कुसुमशयनेप्यङ्गं ताम्यत्यनङ्गविवर्तनं
वदनपवनैः श्यामच्छायो बभूव सखीजनः ।
हृदयनिहितः शीतो लेपश्छमीति रवं करो-
त्यहह कठिनावस्था तस्यास्त्वयैवमुपेक्ष्यते ॥ ४ ॥

कस्यापि ।

3477

गलत्येका मूर्छा भवति पुनरन्या यदनयोः
किमप्यासीन्मध्ये सुभग सकलायामपि निशि ।
लिखन्त्यास्तत्तस्याः कुसुमशरलेखं तव कृते
समाप्तिं स्वस्तीति प्रथमपदभागोपि न गतः ॥ ५ ॥

कस्यापि ।

3478

गेहादङ्गणमङ्गणादपि बहिर्बाह्याच्च पृथ्वीतलं
तामार्तिं यदि सैव वेत्ति सुमुखी किंचान्यदाचक्ष्महे ।
पर्यङ्केपि तवाङ्गसङ्गसुभगः स्वेदाम्भसां निर्झरै-
र्धीरामण्डपतामनीयत तया तस्मिन्रुदत्या मुहुः ॥ ६ ॥

कस्यापि ।

3479

तस्या महाविरहवह्निशिखाकलाप-
तप्ते स्थितोसि हृदये सततं प्रियायाः ।
प्रालेयसीकरसमे हृदि सा कृपालो
बाला क्षणं वसति नैव खलु त्वदीये ॥ ७ ॥

कस्यापि ।

3480

दृष्टे चन्द्रमसि प्रलूनतमसि व्योमाङ्गणस्थेयसि
स्फूर्जन्निर्मलतेजसि त्वयि गते दूरं निजप्रेयसि ।
श्वासः कैरवकोरकीयति मुखं तस्याः सरोजीयति
क्षीरोदीयति मन्मथो मृगदृशो दृक्चन्द्रकान्तीयति ॥ ८ ॥

भल्लटस्य ।

3481

आवासो विपिनायते प्रियसखीमालापि जालायते
तापोपि श्वसितेन दावदहनज्वालाकलापायते ।
सापि त्वद्विरहेण हन्त हरिणीरूपायते हा कथं
कंदर्पोपि यमायते विरचयञ्शार्दूलविक्रीडितम् ॥ ९ ॥

3482

क्षणमपि विरहः पुरा न सेहे
नयननिमीलनखिन्नया यया ते ।
श्वसिति कथमसौ रसालशाखां
चिरविरहेण विलोक्य पुष्पिताग्राम् ॥ १० ॥

जयदेवस्यैतौ ।

3483

अङ्गानि मे दहतु कान्तवियोगवह्निः
संरक्ष्यतां प्रियतमो हृदि वर्तते यः ।
इत्याशया शशिमुखी गलदश्रुवारि-
धाराभिरुष्णमभिषिञ्चति हृत्प्रदेशम् ॥ ११ ॥

कस्यापि ।

3484

अविरलपरिवाहैरश्रुणः सारणीनां
स्मरदहनशिखोष्णश्वासपूरैश्च तस्याः ।
सुभग बत कृशाङ्ग्याः स्पर्धयान्योन्यमेभिः
क्रियत इव पुरो भूः पङ्किला पांसुला च ॥ १२ ॥

कस्यापि ।

3485

सखीभिक्षां याचे बत नतशिरास्त्वामिदमहं
न चेदस्ति प्रीतिः कुरु तदपि कारुण्यकणिकाम् ।
अवस्था सा तस्याः सुकृतमथ यस्यां किमपरं
प्रमोहो विश्रामस्त्वमथ मरणं वा प्रतिकृतिः ॥ १३ ॥

गौडाभिनन्दस्य।

3486

अच्छिन्नं नयनाम्बु बन्धुषु कृतं तापः सखीष्वाहितो
दैन्यं न्यस्तमशेषतः परिजने चिन्ता गुरुभ्योर्पिता ।
अद्य श्वः किल निर्वृतिं व्रजति सा श्वासैः परं खिद्यते
विश्रब्धो भव विप्रयोगजनितं दुःखं विभक्तुं तया ॥ १४ ॥

अमरुकस्य ।

3487

त्वां चिन्तापरिकल्पितं सुभग सा संभाव्य रोमाञ्चिता
शून्यालिङ्गनसंचलद्भुजयुगेनात्मानमालिङ्गति ।
किं चान्यद्विरहव्यथाप्रशमनीं संप्राप्य मूर्छां चिरा-
त्प्रत्युज्जीवति कर्णमूलपठितैस्त्वन्नाममन्त्राक्षरैः॥ १५ ॥

कस्यापि ।

3488

नीरागा मृगलाञ्छने मुखमपि स्वं नेक्षते दर्पणे
त्रस्ता कोकिलकूजितादपि गिरं नोन्मुद्रयत्यात्मनः ।
चित्रं दुःसहदाहदायिनि धृतद्वेषापि पुष्पायुधे
सा बाला सुभगं प्रति प्रतिपदं प्रेमाधिकं पुष्यति ॥ १६ ॥

कस्यापि ।

3489

उन्मीलन्ति नखैर्लुनीहि वहति क्षौमाञ्चलेनावृणु
क्रीडाकाननमाश्रयन्ति वलयक्काणैः समुत्रासय ।
इत्थं वञ्जुलदक्षिणानिलकुहूकण्ठीषु सांकेतिक-
व्यापाराः सुभग त्वदीयविरहे तस्याः सखीनां मिथः ॥१७॥

सत्कविमिश्रस्य ।

3490

वर्षन्ति स्तनयित्नवो न सरले धारागृहे वर्तसे
गर्जन्ति प्रतिकूलवादिनि न ते द्वारि स्थिता दन्तिनः ।
इत्येवं गमितो घनव्यतिकरः सा राजपुत्री पुन-
र्वाते वाति कदम्बपुष्पसुरभौ केन प्रतारिष्यते ॥ १८ ॥

उमापतिधरस्य ।

3491

संप्राप्तेवधिवासरे क्षणमसौ त्वद्वर्त्मवातायनं
वारंवारमुपेत्य निष्कृपतया निश्चित्य किंचिच्चिरम् ।
संप्रत्येव निवेद्य केलिकुररीः सास्रं सखीभिः शिशो-
र्माधव्याः सहकारकेण करुणः पाणिग्रहो निर्मितः ॥ १९ ॥

कस्यापि ।

3492

विमुञ्चन्त्या प्राणांश्चिरविहरदुःखासहतया
तया संदिष्टं ते कठिनहृदयापश्चिममिदम् ।
अपत्यं बालैका मम विधिहतायाः सलिलदा
यथा नेयं सेवाव्यसनरुचये दीयत इति ॥ २० ॥

कस्यापि ।

3493

किं पृष्टेन द्रुततरमितो गम्यतां सा प्रिया ते
दृष्टा मार्गे दिवसमखिलं साऽस्मभेका मयैवम् ।
दृष्टे दृष्टे त्वामिति रभसोद्वीक्षमालोकयन्ती
पृष्टे पृष्टे न भवति भवानित्युदश्रुर्वलन्ती ॥ २१ ॥

कस्यापि ।

3494

चित्रोत्कीर्णादपि विषधराद्भीतिभाजो निशायां
किं तद्भूमस्त्वदभिसरणे साहसं नाथ तस्याः ।
ध्वान्ते यान्त्या यदतिनिभृतं बालयात्मप्रकाश-
त्रासात्पाणिः पथि फणिफणारत्नरोधी व्यधायि ॥ २२ ॥

हरिहरस्य ।

3495

संकेतकुञ्जभुवि सा शयनोपधानं
व्यालं कृतं सुभग कुण्डलितं न वेद ।
तत्कण्ठलग्नघनचन्दनगन्धलुब्ध-
स्तत्रैव निश्चलमुवास चिराय सोपि ॥ २३ ॥

कस्यापि ।

3496

मा गच्छ प्रमदाप्रिय प्रियशतैरभ्यर्थितस्त्वं मया
बाला प्राङ्गणमागतेन भवता प्राप्तोत्यवस्थां पराम् ।
किं चास्याः कुचभारनिःसहतरैरङ्गैरनङ्गाकुलै-
स्त्रुट्यत्कञ्चुकजालकैरनुदिनं निःसूत्रमस्मद्गृहम् ॥ २४ ॥

मौरिकायाः ।

---

## अथ नायिकां प्रति नायकावस्थावर्णनम् ॥१०८॥

3497

पदशब्दलीनहृदयो रूपालंकारभावनानिपुणः ।
कविरिव वाञ्छितनिद्रस्तरुणि तवार्थे परं स युवा ॥ १ ॥

कस्यापि ।

3498

विकिरति मुहुः श्वासानाशां पुरो मुहुरीक्षते
प्रविशति मुहुः कुञ्जात्कुञ्जं मुहुर्बहु ताम्यति ।
रचयति मुहुः शय्यां पर्यःकुलं मुहुरीक्षते
मदनकदनक्रान्तः कान्ते प्रियस्तव वर्तते ॥ २ ॥

3499

सा मां द्रक्ष्यति वक्ष्यति प्रियकथां प्रत्यङ्गमालिङ्गनैः
प्रीतिं यास्यति रंस्यते सखि समागत्येति चिन्ताकुलः ।
मार्गं पश्यति वेपते पुलकयत्यानन्दति स्विद्यति
प्रत्युद्गच्छति मूर्छति प्रियतमः कुञ्जे निकुञ्जप्रियः ॥ ३ ॥

3500

पूर्वं यत्र समं त्वया रतिपतेरासादिताः सिद्धय-
स्तस्मिन्नेव निकुञ्जमन्मथमहातीर्थे पुनर्माधवः ।
ध्यायंस्त्वामनिशं जपन्नपि तवैवालापमन्त्रावलीं
भूयस्त्वत्कुचकुम्भनिर्भरपरीरम्भामृतं वाञ्छति ॥ ४ ॥
जयदेवस्यैते ।

## अथ नायिकां प्रति नायकसंदेशः ।

3501

त्वद्रूपामृतपानदुर्ललितया दृष्ट्या क्व विश्राम्यतां
त्वद्वाक्यश्रवणाभियोगपरयोः श्रव्यं कुतः श्रोत्रयोः ।
एभिस्त्वत्परिरम्भनिर्भररसैरङ्गैः कथं स्थीयतां
कष्टं त्वद्विरहेण संप्रति वयं कष्टामवस्थां गताः ॥ ५ ॥
कस्यापि ।

3502

भ्रूचापे निहितः कटाक्षविशिखो निर्मातु मर्मव्यथां
श्यामात्मा कुटिलः करोतु कबरीभारोपि मारोद्यमम् ।
मोहं तावदयं च तन्वि तनुतां बिम्बाधरो रागवा-
न्सद्वृत्तः स्तनमण्डलस्तव कथं प्राणैर्मम क्रीडति ॥ ६ ॥
जयदेवस्य ।

3503

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलाया-
मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम् ।
अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः ॥ ७ ॥

कालिदासस्य ।

3504

स्थानान्निर्गत्य दूरं व्रजति मयि चिरं मुक्तकण्ठं रुदित्वा
पश्चादुन्मृज्य नेत्रे प्रणतिमुपगता वेपमानाङ्गयष्टिः ।
कान्ते यन्मामवोचः प्रलयघनघटाटोपबद्धान्धकारे
काले कापालिकोपि प्रवसति न गृहात्तन्मनो मे दुनोति॥८॥

कस्यापि ।

---

## अथ दूत्युपहासप्रश्नौ ॥ १०९ ॥

3505

पार्श्वाभ्यां सप्रहाराभ्यामधरे व्रणखण्डिते ।
दूति सङ्ग्रामयोग्यासि न योग्या दूतकर्मणि ॥ १ ॥

कस्यापि ।

3506

बहुनात्र किमुक्तेन दूति मत्कार्यसिद्धये ।
स्वमांसान्यपि दत्तानि वक्तव्येषु तु का कथा ॥ २ ॥

वररुचेः।

3507

श्वासः किं त्वरिता गता पुलकिता कस्मात्प्रसादः कृतः
स्रस्ता वेण्यपि पादयोर्निपतनाज्जीवी च गत्वागमात् ।
स्वेदार्द्रं मुखमातपेन गलितं क्षामा किमित्युक्तिभि-
र्दूति म्लानसरोरुहाकृतिधरस्यौष्ठस्य किं वक्ष्यसि ॥ ३ ॥

शीलाभट्टारिकायाः।

3508

निःशेषच्युतचन्दनं स्तनतटं निर्मृष्टरागोधरो
नेत्रे दूरमनञ्जने पुलकिता तन्वी तवेयं तनुः ।

मिथ्यावादिनि दूति बान्धवजनस्याज्ञातपीडागमा
वापीं स्नातुमितो गतासि न पुनस्तस्याधमस्यान्तिकम्॥ ४ ॥
कस्यापि ।

3509

रजन्यामन्यस्यां सुरतपरिवृत्तावनुचितं
मदीयं यद्वासः कथमपि हतं तेन सुहृदा ।
त्वया प्रत्यानीतं निजवसनदानात्पुनरिदं
कुतस्त्वादृग्दूति स्खलितशमनोपायनिपुणा॥ ५ ॥
बीजाकरस्य ।

3510

किं त्वं निगूहसे दूति स्तनौ वक्षं च पाणिना ।
खण्डिता एव शोभन्ते शूराधरपयोधराः ॥ ६ ॥
कस्यापि ।

3511

उल्लापयन्त्या दयितस्य दूतीं
वध्वा विभूषां च निवेशयन्त्या ।
प्रसन्नता कापि मुखस्य जज्ञे
वेषश्रिया नु प्रियवार्तया नु ॥ ७ ॥
शिवस्वामिनः ।

3512

कथय निपुणे कस्मिन्दृष्टः कथं नु कियच्चिरं
किमभिलिखितं किं तेनोक्तं कदा स इहैष्यति ।
इति बहुविधप्रेमालापप्रपञ्चितविस्तराः
प्रियतमकथाः स्वल्पेप्यर्थे प्रयान्ति न नष्टताम् ॥ ८ ॥
कस्यापि ।

3513

अलमलमघृणस्य तस्य नाम्ना
पुनरपि सैव कथा गतः स कालः ।
कथय कथय वा तथापि दूति
प्रतिवचनं द्विषतोपि माननीयम् ॥ ९ ॥
वासुदेवस्य ।

## अथ संभोगशृङ्गारे परस्परावलोकनम् ॥ ११० ॥

3514

प्रियादर्शनमेवास्तु किमन्यैर्दर्शनान्तरैः ।
प्राप्यते येन निर्वाणं सरागेणापि चेतसा ॥ १ ॥

कस्यापि ।

3515

क्षीरसागरकल्लोललोललोचनयानया ।
असारोपि हि संसारः सारवानिव लक्ष्यते ॥ २ ॥

आकाशपोलेः ।

3516

उपप्राकारायं प्रहिणु नयने तर्कय मना-
गनाकाशे कोयं गलितहरिणः शीतकिरणः ।
सुधाबद्धग्रासैरुपवनचकोरैरनुसृतां
किरञ्ज्योत्स्नामच्छां लवलिफलपाकप्रणयिनीम् ॥३॥

कस्यापि ।

3517

पुरः स्थित्वा किंचिद्ललितमुखमालोकय सखे
सखेदाः स्थास्यन्ति ध्रुवमिदमदृष्ट्वा तव दृशः ।
इतश्चञ्चत्काञ्चीरणितमुखरात्सौधशिखरा-
दराकायां केयं कवलयति चान्द्रेण महसा ॥ ४ ॥

कस्यापि ।

3518

अये केयं लीलाधवलगृहवातायनतले
तुलाकोटिक्वाणैः कुसुमधनुषं जागरयति ।
अहो नेत्रद्वन्द्वं विलसति विलङ्घ्य श्रुतिमहो
कथं न त्रैलोक्यं जयति मदनः स्मेरवदनः ॥ ५ ॥

कस्यापि ।

3519

अमृतममृतं चन्द्रश्चन्द्रस्तथाम्बुजमम्बुजं
रतिरपि रतिः कामः कामो मधूनि मधून्यपि ।

इति न भजते वस्तु प्रायः परस्परसंकरं
तदियमबला धत्ते लक्ष्मीं कुतः सकलात्मिकाम् ॥ ६ ॥

कस्यापि ।

3520

विनैवाम्भोवाहं बहलरुचिलिप्ताम्बरतला-
त्तडिल्लेखा हेमद्युतिविततिरम्या विलसति ।
विनैव स्वर्गङ्गां नभसि रभसा व्यग्रशफरी-
परीवर्तैः सार्धं स्फुरति विकचेन्दीवरवनम् ॥ ७ ॥

जयदेवस्य ।

3521

तमःस्तोमः पूर्वं तदनु सकलः शीतकिरण-
स्ततः कोकद्वन्द्वं तदनु न च किंचित्पुनरभूत् ।
अनम्भस्यावर्तस्तदनु कदलीकाण्डयुगलं
ततोवाञ्चौ पद्मौ किमिदमिति चित्रैव रचना ॥ ८ ॥

देवबोधेः ।

3522

न जाने संमुखायाते प्रियाणि वदति प्रिये ।
सर्वाण्यङ्गानि किं यान्ति नेत्रतामुत कर्णताम् ॥ ९ ॥

कस्यापि ।

3523

काचिन्निवारितबहिर्गमना जनन्या
द्रष्टुं प्रियं भवनजालकमाससाद ।
तस्या विलोचनमदृश्यत दाशदत्त-
यन्त्रोपरुद्धशफरोपमितं क्षणेन ॥ १० ॥

3524

कृच्छ्रेण कापि गुरुणैव जनेन रोध-
मुलङ्घ्य नायकसमीपभुवं प्रतस्थे ।
हा हन्त शीघ्रगमनप्रतिरोधहेतु-
स्तस्याः पुनः स्तनभरोपि गुरुर्बभूव ॥ ११ ॥

उत्प्रेक्षावल्लभस्यैतौ ।

3525

यां यां प्रियः प्रैक्षत कातराक्षीं
सा सा ह्रिया नम्रमुखी बभूव ।
निःशङ्कमन्याः सममाहितेर्ष्या-
स्तत्रान्तरे जघ्नुरमुं कटाक्षैः ॥ १२ ॥

माघकवेः ।

---

## अथ प्रियातिथ्यादिकम् ॥ १११ ॥

3526

सञ्जितसकलशरीरा क्षणे क्षणे मनसि किमपि गणयन्ती ।
उत्सवमिह तं दिवसं मनुते मुग्धा प्रियागमने ॥ १ ॥

शार्ङ्गधरस्य ।

3527

आगच्छन्सूचितो येन येनानीतो गृहं प्रति ।
प्रथमं सखि कः पूज्यः किं काकः किं क्रमेलकः ॥ २ ॥

सोमकवेः ।

3528

आयाते दयिते मरुस्थलभुवामुत्प्रेक्ष्य दुर्लङ्घ्यतां
गेहिन्या परितोषबाष्पकलिलामासज्य दृष्टिं मुखे ।
दत्त्वा पीलुशमीकरीरकवलं लोलाञ्चलेनादरा-
दुन्मृष्टं करभस्य केसरसटाभाराग्रलग्नं रजः ॥ ३ ॥

अज्ञातपुण्यस्य ।

3529

बाला चन्दनमालिकाकिसलयग्रन्थीनधःकुर्वतः
भुत्वा वल्लभवाहनस्य रटितं दासेरकस्याङ्गणे ।
आक्रन्दात्सुहृदो वनाद्रुरुजनं नासाग्रसङ्गादसू-
न्कान्तं स्त्रीवधपातकात्स्मरमसत्कीर्तेः परावर्तयत् ॥ ४ ॥

कस्यापि ।

3530

किंचित्कम्पितपाणिकङ्कणरवैः पृष्टं ननु स्वागतं
व्रीडानम्रमुखाब्जया चरणयोर्न्यस्ते च नेत्रोत्पले ।

हारस्थस्तनयुग्ममङ्गलघटे दत्तः प्रवेशो हृदि
स्वामिन्किं न तवातिथेः समुचितं सख्यानयानुष्ठितम् ॥५॥

त्रिविक्रमभट्टस्य।

3531

कृशा केनासि त्वं प्रकृतिरियमङ्गस्य ननु मे
मलाधूम्रा कस्माद्रुदजनगृहे पाचकतया ।
स्मरस्यस्मान्कञ्चिन्नहि नहि नहीत्येवमगद-
त्स्मरोत्कम्पं बाला मम हृदि निपत्य प्ररुदिता ॥ ६ ॥

कस्यापि।

3532

कृशासीत्यालीना मलिनवसनासीत्यवनता
क्वचिद्दृष्टासीति स्तनकलशकम्पं प्ररुदिता ।
परिष्वक्ता यावत्प्रणयपदवीं कामपि गता
ततः सारङ्गाक्ष्या हृदयसदने लीनमभवत् ॥ ७ ॥

कस्यापि।

---

## अथ मानिनीमानाख्यानम् ॥ ११२ ॥

3533

स्फुरसि बाहुलते किमनर्थकं
त्वमपि लोचन वाम भव स्थिरम् ।
तमहमागतमप्यपराधिनं
न परिरब्धुमलं न च वीक्षितुम् ॥ १ ॥

कस्यापि।

3534

एकत्रासनसंस्थितिः परिहता प्रत्युद्गमाहूरत-
स्ताम्बूलाहरणच्छलेन रभसाश्लेषोपि संविग्नितः ।
आलापोपि न मिश्रितः परिजनं व्यापारयन्त्यान्तिके
कान्तं प्रत्युपचारतश्चतुरया कोपः कृतार्थीकृतः ॥ २ ॥

कस्यापि ।

3535

तद्वक्त्राभिमुखं मुखं विनमितं दृष्टिः कृता पादयो-
स्तस्यालापकुतूहलाकुलतरे श्रोत्रे निरुद्धे मया ।
पाणिभ्यां च तिरस्कृतः सपुलकः स्वेदोद्गमो गण्डयोः
सख्यः किं करवाणि यान्ति शतधा यत्कञ्चुके संधयः ॥ ३ ॥

अमरुकस्य ।

3536

तत्तद्वदत्यपि यथावसरं हसत्य-
प्यालिङ्गनेपि न निषेधति चुम्बनेपि ।
किं तु प्रसादनभयादपि निह्नुतेन
कोपेन कोपि विहितोद्य रसावतारः ॥ ४ ॥

कस्यापि ।

3537

आशङ्क्य प्रणतिं पटान्तपिहितौ पादौ करोत्यादरा-
द्व्याजेनागतमावृणोति हसितं चास्पष्टमुद्वीक्षते ।
मय्यालापवति प्रतीपवचनं सख्या सहाभाषते
तस्यास्तिष्ठतु निर्भरप्रणयिता मानोपि रम्योदयः ॥ ५ ॥

भीमस्य ।

3538

तदेवाजिह्माक्षं मुखमविशदास्ता गिर इमाः
स एवाङ्गश्लेषो मयि सरसमाश्लिष्यति तनुम् ।
यदुक्तं प्रत्युक्तं यदपटु शिरःकम्पनपरं
प्रियामानेनाहो पुनरपि कृता मे नववधूः ॥ ६ ॥

संकुलस्य ।

3539

वेगादुत्सुकमागते विचलितं संभाषिणि स्फारितं
संश्लिष्यत्यरुणं गृहीतवसने कोपाञ्चितभ्रूलतम् ।
मानिन्याश्चरणानतिव्यतिकरे बाष्पाम्बुपूर्णेक्षणं
चक्षुर्जातमहो प्रपञ्चचतुरं जातागसि प्रेयसि ॥ ७ ॥

कस्यापि ।

3540

भ्रूभङ्गे रचितेपि दृष्टिरधिकं सोत्कण्ठमुद्वीक्षते
रुद्धायामपि वाचि सस्मितमिदं दग्धाननं जायते ।
कार्कश्यं गमितेपि चेतसि तनू रोमाञ्चमालम्बते
दृष्टे निर्वहणं भविष्यति कथं मानस्य तस्मिञ्जने ॥ ८ ॥

भदन्तवर्मणः ।

---

## अथ कलहान्तरिताप्रलापादिकम् ॥ ११३ ॥

3541

अद्यारभ्य यदि प्रिये पुनरहं मानस्य चान्यस्य वा
गृह्णीयां विषरूपिणः शठमतेर्नामापि संक्षोभिणः ।
तत्तेनैव विना शशाङ्ककिरणस्पष्टाट्टहासा निशा
एको वा दिवसः पयोदमलिनो भूयान्मम प्रावृषि ॥ १ ॥

कस्यापि ।

3542

मानव्याधिनिपीडिताहमधुना शक्नोमि तस्यान्तिकं
नो गन्तुं न सखीजनोपि चतुरो यो मां बलान्नेष्यति
मानी सोपि जनो न लाघवभयादभ्येति मातः स्वयं
कालो याति चलं च जीवितमिदं क्षुण्णं मनश्चिन्तया ॥ २ ॥

कस्यापि ।

3543

निःश्वासा वदनं दहन्ति हृदयं निर्मूलमुन्मूल्यते
निद्रा नैति न दृश्यते प्रियमुखं नक्तं दिनं रुद्यते ।
अङ्गं शोषमुपैति पादपतितः प्रेयांस्तदोपेक्षितः
सख्यः कं गुणमाकलय्य दयिते मानं वयं कारिताः ॥ ३ ॥

कस्यापि ।

3544

इदं कृष्णं कृष्णं प्रियतममनु श्वेतमथ किं
गमिष्यामो यामो भवतु गमनेनाथ भवतु ।

पुरा येनैवं मे चिरमनुसृता चित्तपदवी
स एवान्यो जातः सखि परिचिताः कस्य पुरुषाः ॥ ४ ॥

3545

गते प्रेमाबन्धे प्रणयबहुमाने विगलिते
निवृत्ते सद्भावे जन इव जने गच्छति पुरः ।
तदुत्प्रेक्ष्योत्प्रेक्ष्य प्रियसखि गतांस्तांश्च दिवसा-
न्न जाने को हेतुर्दलति शतधा यन्न हृदयम् ॥ ५ ॥

3546

कथमपि सखि क्रीडाकोपाद्व्रजेति मयोदिते
कठिनहृदयस्त्यक्त्वा शय्यां बलादुत एव सः ।
इति सरभसध्वस्तप्रेम्णि व्यपेतघृणे स्पृहां
पुनरपि हतव्रीडं चेतः करोति करोमि किम् ॥ ६ ॥

अमरुकस्यैते ।

3547

मानोज्झतेत्यसहनेत्यतिपण्डितेति
मय्येव धिक्कृतिरनेकमुखी सखीनाम् ।
दाक्षिण्यमात्रमसृणेन विचेष्टितेन
धूर्तस्य तस्य हि गुणानुपवर्णयन्ति ॥ ७ ॥

सख्यनुनयः ।

3548

स्निग्धे यत्परुषासि यत्प्रणमति स्तब्धासि यद्रागिणि
द्वेषस्थासि यदुन्मुखे विमुखतां यातासि तस्मिन्प्रिये ।
तन्मुग्धे विपरीतकारिणि तव श्रीखण्डचर्चा विषं
शीतांशुस्तपनो हिमं हुतवहः क्रीडामुदो यातनाः ॥ ८ ॥

3549

सभयचकितं विन्यस्यन्तीं दृशं तिमिरे पथि
प्रतितरु मुहुः स्थित्वा मन्दं पदानि वितन्वतीम् ।
कथमपि रहः प्राप्तामङ्गैरनङ्गतरंगिभिः
सुमुखि सुभगः स त्वां पश्यन्नुपैतु कृतार्थताम् ॥ ९ ॥

3550

त्वां चित्तेन सदा वहन्नयमतिभ्रान्तो भृशं तापितः
कंदर्पेण तु पातुमिच्छति सुधासंवादि बिम्बाधरम् ।
अस्याङ्गं तदलंकुरु क्षणमिह भ्रूक्षेपलक्ष्मीलव-
क्रीते दासजनेपि सेवितपदाम्भोजे कुतः संभ्रमः ॥१०॥

जयदेवस्यैते ।

3551

लिखन्नास्ते भूमिं बहिरवनतः प्राणदयितो
निराहाराः सख्यः सततरुदितोच्छूननयनाः ।
परित्यक्तं सर्वं हसितपठितं पञ्जरशुकै-
स्तवावस्था चेयं विसृज कठिने मानमधुना ॥ ११ ॥

अमरुकस्य ।

3552

असद्वृत्तो नायं न च खलु गुणैरेष रहितः
प्रियो मुक्ताहारस्तव चरणमूले निपतितः ।
गृहाणैनं मुग्धे व्रजतु तव कण्ठप्रणयिता-
मुपायो नास्त्यन्यस्तव हृदयदाहोपशमने ॥ १२ ॥

कस्यापि ।

3553

मुग्धे किं नखरैः क्षिपस्यविरतं नेत्राम्बु मानोन्नते
पश्यैनं चरणानतप्रणिहितं स्वं कान्तमात्ताञ्जलिम् ।
अप्रह्वे तव चेतसि प्रणयिनि प्राणेतिनिर्विण्णता-
मन्यासक्तमनस्युपेक्षितगता फूत्कृत्य रोदिष्यति ॥ १३ ॥

शार्ङ्गधरस्य ।

---

## अथ नायकयोरुक्तिप्रत्युक्ती ॥ ११४ ॥

3554

बाले नाथ विमुञ्च मानिनि रुषं रोषान्मया किं कृतं
खेदोस्माञ्जु न मेपराध्यति भवान्सर्वेपराधा मयि ।

तत्किं रोदिषि गद्गदेन वचसा कस्याग्रतो रुद्यते
नन्वेतन्मम का तवास्मि दयिता नास्मीत्यतो रुद्यते ॥१॥
कुमारदासस्य ।

3555

नयननिपातेङ्गितः पल्लवितो वचसि पुष्पितो हसिते ।
फलतु कृशाङ्गि तवाङ्गस्पर्शेन मनोरथोस्माकम् ॥ २ ॥
कस्यापि ।

3556

सुभ्रु त्वं कुपितेत्यपास्तमशनं त्यक्ताः कथा योषितां
दूरादेव मयोज्झिताः सुरभयः स्रग्गन्धधूपादयः ।
रागं रागिणि मुञ्च मय्यवनते दृष्टे प्रसीदाधुना
सद्यस्त्वद्विरहे भवन्ति सुभगे सर्वा ममान्धा दिशः ॥३॥
विद्यापतेः ।

3557

उत्तरंगय कुरङ्गलोचने
लोचने कमलगर्वमोचने ।
अस्तु सुन्दरि कलिन्दनन्दिनी-
वीचिडम्बरगभीरमम्बरम् ॥ ४ ॥
कस्यापि ।

3558

पुराभूदस्माकं प्रथममविभक्ता तनुरियं
ततो नु त्वं प्रेयानहमपि हताशा प्रियतमा ।
इदानीं नाथस्त्वं वयमपि कलत्रं किमपरं
मयाप्तं प्राणानां कुलिशकठिनानां फलमिदम् ॥ ५ ॥
अमरुकस्य ।

3559

व्यावृत्तं खलु सर्वतो विषयतस्त्वय्येव लीनं मनो
नित्यं च त्वदधीनमेव नियतं मज्जीवितं मानिनि ।
मत्वैवं मयि नूनमन्यविषयाशङ्का त्वया त्यज्यतां
किं वान्यत्र निशाकरोभिरमते मुक्त्वा क्षणं कौमुदीम् ॥६॥
कस्यापि ।

3560

कृतककृतकैर्मायाशाठ्यैस्त्वयाप्यतिवर्तितं
निभृतनिभृतैः कार्यालापैर्मयाप्युपलक्षितम् ।
भवतु विदितं नेष्टा तेहं वृथा परिखिद्यसे
अहमसहना त्वं निःस्नेहः समेन समं गतम् ॥ ७ ॥

कस्यापि ।

3561

यद्गम्यं गुरु गौरवस्य सुहृदो यस्मिल्लभन्तेन्तरं
यद्दाक्षिण्यवशात्प्रसह्य सहते नर्मोपचारानपि ।
यल्लज्जा निरुणद्धि यत्र शपथैरुत्पाद्यते प्रत्यय-
स्तत्किं प्रेम स उच्यते परिचयस्तत्रापि कोपेन किम् ॥ ८ ॥

कस्यापि ।

3562

कोपो यत्र भ्रुकुटिरचना निग्रहो यत्र मौनं
यत्रान्योन्यस्मितमनुनयो दृष्टिपातः प्रसादः ।
तस्य प्रेम्णस्तदिदमधुना वैशसं पश्य जातं
त्वं पादान्ते लुठसि न च मे मानमोक्षः खलायाः ॥ ९ ॥

वामनस्य ।

3563

सार्धं मनोरथशतैस्तव धूर्त कान्ता
सैव स्थिता मनसि कृत्रिमभावरम्या ।
अस्माकमस्ति न कथंचिदिहावकाश-
स्तस्मात्कृतं चरणपातविडम्बनाभिः ॥ १० ॥

कस्यापि ।

3564

यदा त्वं चन्द्रोभूः शिशिरकरसंपर्करुचिर-
स्तदाहं जाता द्राक्छशधरमणीनां प्रतिकृतिः ।
इदानीमर्कस्त्वं खररुचिसमुत्सारितरसः
किरन्ती कोपाग्नीनहमपि रविग्रावघटिता ॥ ११ ॥

अचलस्य ।

3565

प्रसादे वर्तस्व प्रकटय मुदं संत्यज रुषं
प्रिये शुष्यन्त्यङ्गान्यमृतमिव ते सिञ्चतु वचः ।
निधानं सौख्यानां क्षणमभिमुखं स्थापय मुखं
न मुग्धे प्रत्येतुं प्रभवति गतः काल हरिणः ॥ १२ ॥

चन्द्रकस्य ।

---

## अथ नायकशिक्षानायकानुनयौ ॥ ११५ ॥

3566

अङ्गुलीकिसलयाग्रतर्जनं
भ्रूविभङ्गकुटिलं च वीक्षितम् ।
मेखलाभिरसकृच्च बन्धनं
वञ्चयन्प्रणयिनीरवाप सः ॥ १ ॥

कालिदासस्य ।

3567

कोपात्किंचिदुपानतोपि रसभादाकृष्य केशेष्वलं
नीत्वा मोहनमन्दिरं दयितया हारेण बद्ध्वा दृढम् ।
भूयो यास्यसि तद्गृहानिति मुहुः कण्ठार्धरुद्धाक्षरं
जल्पन्त्या श्रवणोत्पलेन सुकृती कश्चिद्गृहस्ताड्यते ॥ २ ॥

3568

सा बाढं भवतेक्षितेति निबिडं संयम्य बाहोः स्रजा
भूयो द्रक्ष्यसि तां शठेति नितरां संभर्त्स्य संतर्ज्य च ।
आलीनां पुर एव निह्नुतिपरः कोपाद्रणन्नूपुरं
मानिन्या चरणप्रहारविधिना प्रेयानशोकीकृतः ॥ ३ ॥

रुद्रस्यैतौ ।

3569

पादे मूर्धनि ताम्रतामुपगते कर्णोत्पले चूर्णिते
छिन्ने हारलतागुणे करतले संपातजातव्रणे ।

अप्राप्तप्रियताडनव्यतिकरा हन्तुं पुनः कोपिता
वाञ्छन्ती मुहुरेणशावनयना पर्याकुला रोदिति ॥ ४ ॥
कस्यापि ।

3570

अधिरजनि जगाम धाम तस्याः
प्रियतमयेति रुषा स्रजावनद्धः ।
पदमपि चलितुं युवा न सेहे
किमिव न शक्तिहरं ससाध्वसानाम् ॥ ५ ॥
माघकवेः ।

## अथ नायकानुनयः ।

3571

त्वं तावद्बहुवल्लभो नवयुवा कान्तः सुखी निर्घृणो
नो जानासि परव्यथां शठमते नैवासि दुःखी यतः ।
किं त्वन्याः परिपृच्छ मन्मथशरैः पीडामसह्यामिमां
त्राता नो भव येन सज्जनजनैः कापालिको नोच्यसे ॥ ६ ॥
कस्यापि ।

3572

विरहविषमः कामो वामः करोति तनुं तनुं
दिवसगणनादक्षश्चायं व्यपेतघृणो यमः ।
त्वमपि वशगो मानव्याधेर्विचिन्तय नाथ हे
किसलयमृदुर्जीवेदेवं कथं प्रमदाजनः ॥ ७ ॥
शीलाभट्टारिकायाः ।

3573

घनघनमपि दृष्ट्वा व्योम रम्यं मरुत्वा-
च्छिखिकुलकलवाचां श्रोत्रमासीन्निवासः ।
असुसम न मृताहं यद्वियोगेपि जाते
तव घनपरिरम्भप्रार्थनाशावशेन ॥ ८ ॥
हरिणस्य ।

3574

मुक्तो मानपरिग्रहः सह सखीसार्थेन तन्मन्त्रिणा
शक्ता त्वच्चरणप्रसादरहिता नाहं क्षणं प्राणितुम् ।

पश्य त्वं कृशकं शरीरकमिदं यां यामवस्थां गतं
सैषाहं तव पादयोर्निपतिता नाथ प्रसीदाधुना ॥ ९ ॥
कस्यापि ।

---

## अथ परस्परप्रसादः ॥ ११६ ॥

3575

दृष्ट्वैकासनसंस्थिते प्रियतमे पश्चादुपेत्यादरा-
देकस्या नयने निमील्य विहितक्रीडानुबन्धच्छलः ।
तिर्यग्वक्रितकंधरः सपुलकप्रेमोल्लसन्मानसा-
मन्तर्हासलसत्कपोलफलकां धूर्तोपरां चुम्बति ॥ १ ॥
अमरुकस्य ।

3576

आगत्य प्रणिपातसान्त्वितसखीदत्तान्तरे सागसि
स्वैरं कुर्वति तल्पपार्श्वनिभृते धूर्तेङ्गसंवाहनम् ।
ज्ञात्वा स्पर्शवशाच्छियं किल सखीभ्रान्त्या स्वमङ्कं शनैः
खिन्नासीत्यभिधाय मीलितदृशा सानन्दमारोपितः ॥ २ ॥
कस्यापि ।

3577

सुतनु जहिहि मानं पश्य पादानतं मां
तव न खलु कदाचित्कोप एवंविधोभूत् ।
इति निगदति नाथे तिर्यगामीलिताक्ष्या
नयनजलमनल्पं मुक्तमुक्तं न किंचित् ॥ ३ ॥
कस्यापि ।

3578

सत्यं वल्लभ एष दुर्लभतमो रागो ममास्मिन्पुनः
कोपोस्यातिगुरुर्न चातिनिपुणाः सख्योपि संबोधने ।
संचिन्त्येति मृगीदृशा प्रियतमे दृष्टे श्लथां मेखलां
बध्नन्त्या न गतं स्थितं न च लसद्वासोथवा संवृतम् ॥ ४ ॥

3579

वाचो वाग्मिनि किं तवाद्य परुषाः सुभ्रु भ्रुवो विभ्रमो-
प्युद्भ्रान्तः कृत एष लोलनयने किं लोहिते लोचने।
नास्त्यागो मयि किं मुधैव कुपितेत्युक्ते पुरः प्रेयसा
मानिन्या जलबिन्दुदन्तुरपुटा दृष्टिः सखीष्वाहिता ॥ ५ ॥

रुद्रस्यैतौ।

3580

सा यावन्ति पदान्यलीकवचनैरालीजनैः पाठिता
तावन्त्येव कृतागसोद्भुततरं संलप्य पत्युः पुरः।
प्रारेभे परतो यथा मनसिजस्येच्छा तथा वार्तितुं
प्रेम्णो मौग्ध्यविभूषणस्य सहजः कोप्येष कान्तक्रमः ॥ ६ ॥

भट्टेन्दुराजस्य।

3581

दृष्टे लोचनवन्मनाङ्मुकुलितं पार्श्वस्थिते वक्त्रव-
च्छ्यग्भूतं बहिरासितं पुलकवत्स्पर्शे समातन्वति।
नीवीबन्धवदागतं शिथिलतां संभाषमाणे क्षणं
मानेनापसृतं ह्रियेव सुदृशः पादस्पृशि प्रेयसि ॥ ७ ॥

कस्यापि।

3582

इह स्फुटं तिष्ठति नाथ कण्टकः
शनैः शनैः कर्ष नखाग्रलीलया।
इति च्छलात्काचिदलग्नकण्टकं
पदं तदुत्सङ्गतले न्यवेशयत् ॥ ८ ॥

कस्यापि।

---

## अथ सूर्यास्तवर्णनचक्रवाकावस्थाख्याने ॥ ११७ ॥

3583

पृथुगगनकबन्धस्कन्धचक्रं किमेत-
त्किमु रुधिरकपालं कालकापालिकस्य।

कललभरितमन्तः किं नु तार्क्ष्याण्डखण्डं
प्रजनयति वितर्कं सांध्यमर्कस्य बिम्बम् ॥ १ ॥
कस्यापि ।

3584

अस्तावलम्बिरविबिम्बतयोदयाद्रि-
चूडोन्मिषत्सकलचन्द्रतया च सायम् ।
संध्याप्रनृत्तहरहस्तगृहीतकांस्य-
तालद्वयेव समलक्ष्यत नाकलक्ष्मीः ॥ २ ॥
रत्नाकरस्य ।

3585

अनुरागवन्तमपि लोचनयो-
र्दधतं वपुः सुखमतापकरम् ।
निरकासयद्रविमपेतवसुं
वियदालयादपरदिग्गणिका ॥ ३ ॥
माघकवेः ।

3586

विलोक्य संगमे रागं पश्चिमाया विवस्वतः ।
कृतं कृष्णं मुखं प्राच्या नहि नार्यो विनेर्ष्यया ॥ ४ ॥
कस्यापि ।

3587

सांध्यरागरुधिरारुणमारा-
न्निष्पपात रविमण्डलमब्धौ ।
क्रूरकालकरवालविलूनं
वासरस्य सहसैव शिरो नु ॥ ५ ॥
भट्टोपमन्योः ।

3588

परिपतति पयोनिधौ पतङ्गः
सरसिरुहामुदरेषु मत्तभृङ्गः ।
उपवनतरुकोटरे विहंगो
युवतिजनेषु शनैः शनैरनङ्गः ॥ ६ ॥
कस्यापि ।

3589

कृतोपकारं प्रियबन्धुमर्कं
मा द्राक्ष्म हीनांशुमधः पतन्तम् ।
इतीव मत्वा नलिनीवधूभि-
र्निमीलितान्यम्बुरुहेक्षणानि ॥ ७ ॥

भोजनेरन्द्रस्य ।

3590

नो रविर्न च तमो न तमीशो
न द्युतिर्ग्रहगणो न च संध्या ।
यादृशं प्रथमतः किल सृष्टे-
स्तादृगेव भुवनं भ्रियमूहे ॥ ८ ॥

कस्यापि ।

3591

सैरन्ध्रीकरकृष्टपट्टकसरत्तारध्वनिः संचर-
द्भूतीसूत्रितसंधिविग्रहविधिः सोल्लासलीलाविधिः ।
वारस्त्रीजनसज्जमानशयनः संनद्धपुष्पायुधः
श्रीखण्डद्रवधौतसौधशिखरो रम्यः क्षणो वर्तते ॥ ९ ॥

कस्यापि ।

3592

विश्लेषाकुलचक्रवाकमिथुनैरुत्पक्षमाक्रन्दितं
कारुण्यादिव मीलितासु नलिनीष्वस्तं च मित्रे गते ।
शोकेनेव दिगङ्गनाभिरभितः श्यामायमानैर्मुखै-
र्निःश्वासानिलधूमवर्त्तय इवोद्गीर्णास्तमोराजयः ॥ १० ॥

कस्यापि ।

3593

शुचिरिति परितः प्रसिद्धभाजि
प्रकटिततेजसि दुर्जये कृशानौ ।
निजवसुनिकुरम्बमस्तवेला-
व्यतिकरवान्निदधे सरोजबन्धुः ॥ ११ ॥

बिल्हणस्य ।

3594

महद्भिरोघैस्तमसामभिद्रुते
भयेप्यसंमूढमतिर्भ्रमन्क्षितौ ।
प्रदीपवेषेण गृहे गृहे स्थितो
विखण्ड्य देहं बहुधेव भास्करः ॥ १२ ॥

मेण्ठस्य ।

## अथ चक्रवाकावस्थाख्यानम् ।

3595

चक्राह्वो विरही हतोपि हृदये बाणेन न त्यक्तवा-
न्प्राणान्प्राणसमासमागमसुखध्यानैकतानश्चिरम् ।
स्वां छायामवलोक्य वारिणि गलद्रक्तामवेत्य प्रियां
भ्रान्तस्तद्व्रणवेदनापरिगतः कष्टं मृतः सांप्रतम् ॥ १३ ॥

कस्यापि ।

3596

एकेनाक्ष्णा प्रविततरुषा वीक्षते लम्बमानं
भानोर्बिम्बं जलविलुलितेनापरेण स्वकान्तम् ।
अह्नश्छेदे दयितविरहाशङ्किनी चक्रवाकी
द्वौ संकीर्णौ रचयति रसौ नर्तकीव प्रगल्भा ॥ १४ ॥

चन्द्रकस्य ।

3597

तीरात्तीरमुपैति रौति करुणं चिन्तां समालम्बते
किंचिद्ध्यायति निश्चलेन मनसा योगीव युक्तेक्षणः ।
स्वां छायामवलोक्य कूजति पुनः कान्तेति मुग्धः खगो
धन्यास्ते भुवि ये निवृत्तमदना धिग्दुःखितान्कामिनः ॥१५॥

3598

भुङ्क्त्वा भोक्तुं न भुङ्क्ते कुटिलबिसलतां कोटिमिन्दोर्वितर्का-
त्तारकारास्तृषार्त्तः पिबति न पयसां विप्रुषः पङ्कसंस्थाः ।
छायामम्भोरुहाणामलिकुलशबलां वेत्ति संध्यामसंध्यां
कान्ताविश्लेषभीरुर्दिनमपि रजनीं मन्यते चक्रवाकः ॥ १६ ॥

3599

मित्रे क्वापि गते सरोरुहवने बद्धानने क्लाम्यति
क्रन्दत्सु भ्रमरेषु वीक्ष्य दयिताश्लिष्टं पुरः सारसम् ।
चक्राङ्गेण वियोगिना बिसलता नास्वादिता नोज्झिता
वक्त्रे केवलमर्गलेव निहिता जीवस्य निर्गच्छतः ॥ १७ ॥

3600

वापीतोयं तटरुहवनं पद्मिनीपत्रशय्या
चन्द्रालोको विकचकुसुमामोदहृद्यः समीरः ।
यत्रैतेपि प्रियविरहिणो दाहिनश्चक्रनाम्न-
स्तत्रोपायः क इव भवतु प्राणसंधारणाय ॥ १८ ॥

केषामप्येते ।

---

## अथ तमोवर्णनम् ॥ ११८ ॥

3601

पिदधति तिमिरे समस्तलोकं
प्रलयमहाब्धिनिभे भृतोच्चनिम्ने ।
व्यरुचदुडुगणो वलक्षरोचि-
र्बहुविधफेनसमूहतुल्यरूपः ॥ १ ॥

शार्ङ्गधरस्य ।

3602

काकोलः कलकण्ठिका कुवलयं कादम्बिनी कर्दमः
कंसारिः कबरी कृपाणलतिका कस्तूरिका कज्जलम् ।
कालिन्दी कषपट्टिका करिघटा कामारिकण्ठस्थली
यस्यैते करदीभवन्ति सखि तद्वन्दे विनिद्रं तमः ॥ २ ॥

कस्यापि ।

3603

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः ।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलतां गता ॥ ३ ॥

विक्रमादित्यमेण्ठयोः ।

3604

अविज्ञातविशेषस्य सर्वतेजोपहारिणः ।
स्वामिनो निर्विवेकस्य तमसश्च किमन्तरम् ॥ ४ ॥

अवन्तिवर्मणः ।

3605

इदं नभसि भीषणभ्रमदुलूककोलाहलै-
र्निशाचरविलासिनीनिवहदत्तनेत्रोत्सवम् ।
परिस्फुरति निर्भरप्रचुरपङ्कमग्नोल्लस-
द्वराहकुलमांसलप्रबलबद्धमन्धं तमः ॥५॥

सर्वज्ञवासुदेवस्य ।

3606

किं भूमौ परितः स्फुरन्ति करिणः कस्तूरिकाया रसैः
सिक्ताः किं निखिला दिशः किमखिलं लिप्तं मषीभिर्नभः ।
किं व्याप्तं भुवनं समस्तमपि च श्रीकण्ठकण्ठत्विषा
कालिन्दीजलकान्तिभाजि निबिडे जातेन्धकारेधुना ॥ ६ ॥

कस्यापि ।

3607

सद्यः सान्द्रमषीविलुप्तककुभः स्निग्धेन्द्रनीलद्रव-
व्यामीलन्नभसो निरन्तरमिलन्नीलीरसश्योतिनः ।
एते कोकिलकायकालिमहतो लुम्पन्ति वृत्तिं दृशो
रुन्निद्राञ्जनपुञ्जमेचकरुचो भीमास्तमःप्रक्रमाः ॥ ७ ॥

कस्यापि ।

3608

चिन्वञ्चौरचिकीर्षितानि घटयद्वेतालगोष्ठीसुखं
तन्वानं शवसाधनोत्सवरसं निर्व्याजवीरात्मनाम् ।
कुर्वत्कामकृशानुतप्तमनसां गुप्ताङ्गनासंगमं
दृप्यत्कोकिलकालकण्ठमलिनं ध्वान्तं समुज्जृम्भते ॥ ८ ॥

कस्यापि ।

3609

काश्मीरगौरवपुषामभिसारिकाणा-
मावद्धरेखमभितो रुचिमञ्जरीभिः ।

एतत्तमालदलनीलतमं तमिस्रं
तत्प्रेमहेमनिकषोपलतां तनोति ॥ ९ ॥

जयदेवस्य ।

---

## अथाभिसारिकासंचारः ॥ ११९ ॥

3610

क्व प्रस्थितासि करभोरु घने निशीथे
प्राणाधिपो वसति यत्र मनःप्रियो मे ।
एकाकिनी वद कथं न बिभेषि बाले
नन्वस्ति पुष्पितशरो मदनः सहायः ॥ १ ॥

गोविन्दस्वामिनो विकटनितम्बायाश्च ।

3611

वातोद्धूतमुखी प्रनष्टतिलका तोयार्द्रलीनांशुका
मेघानां निनदेन भीतहृदया गत्वा प्रियस्यालयम् ।
द्वारं नेच्छति लज्जया प्रलपितुं देहीति वर्षाहता
पादौ नूपुरकर्दमप्रतिहतौ संशब्दयन्ती स्थिता ॥ २ ॥

कस्यापि ।

3612

प्राणेशमभिसरन्ती पथि स्खलन्ती सुपिच्छिले मुग्धा ।
अवलम्बनाय वारां धारासु करं प्रसारयति ॥ ३ ॥

कस्यापि ।

3613

उरसि निहितस्तारो हारः कृता जघने घने
कलकलवती काञ्ची पादौ रणन्मणिनूपुरौ ।
प्रियमभिसरस्येवं मुग्धे त्वमाहतडिण्डिमा
यदि किमपरं त्रासोत्कम्पं दिशः समुदीक्षसे ॥ ४ ॥

अर्गटस्य ।

3614

मार्गे पङ्कचिते घनान्धतमसे निःशब्दसंचारया
गन्तव्याद्य मया प्रियस्य वसतिर्मुग्धेति कृत्वा मतिम् ।

आजानूद्भूतनूपुरा करतलेनाछाद्य नेत्रे भृशं
कृच्छ्रेणाग्रपदस्थितिः स्वभवने पन्थानमभ्यस्यति ॥ ५ ॥
कस्यापि ।

3615

अम्भोजाक्ष्याः पुरवनलताधाम्नि संकेतभाज-
श्चेतोनाथे चिरयति भृशं मोहनिद्रां गतायाः ।
स्वच्छं नाभीह्रदवलयितं कान्तरत्नांशुजालं
तोयभ्रान्त्या पिबति हरिणी विस्मयं च प्रयाति ॥ ६ ॥
कस्यापि ।

3616

ज्ञातं ज्ञातिजनैः प्रघुष्टमयशो दूरं गता धीरता
त्यक्ता ह्रीः प्रतिपादितोप्यविनयः साध्वीपदं प्रोज्झितम् ।
लुप्ता चोभयलोकसाधुपदवी दत्तः कलङ्कः कुले
भूयो दूति किमन्यदस्ति यदसावद्यापि नागच्छति ॥ ७ ॥
कस्यापि ।

3617

नायातः सखि निर्दयो यदि शठस्त्वं दूति किं दूयसे
स्वच्छन्दं बहुवल्लभः स रमते किं तत्र ते दूषणम् ।
पश्याद्य प्रियसंगमाय दयितस्याकृष्यमाणं गुणै-
रुत्कण्ठार्तिभरादिव स्फुटदिदं चेतः स्वयं यास्यति ॥ ८ ॥
जयदेवस्य ।

3618

जनो दुर्वर्ज्योयं कुलममलिनं वर्त्म विषमं
पतिश्छिद्रान्वेषी प्रणयिवचनं दुष्परिहरम् ।
अतः कान्तिचन्द्री रतिविहितसंकेतगतये
गृहाद्द्वारं द्वारं निरगमदथ प्राविशदथ ॥ ९ ॥

3619

छिद्रान्वेषणतत्परः प्रियसखि प्रायेण लोकोधुना
रात्रिश्चापि घनान्धकारबहला गन्तुं न ते युज्यते ।

मा मैवं सखि वल्लभः प्रियतमस्तस्योत्सुका दर्शने
युक्तायुक्तविचारणा यदि भवेत्स्नेहाय दत्तं जलम् ॥१०॥

3620

मन्दं निधेहि चरणौ परिधेहि वासो
नीलं पिधेहि वलयावलिमञ्चलेन ।
मा जल्प साहसिनि शारदचन्द्रकान्त-
दन्तांशवस्तव तमांसि समापयन्ति ॥ ११ ॥

केषामप्येते ।

---

## अथ चन्द्रोदयवर्णनम् ॥ १२० ॥

3621

उदयतटान्तरितमियं प्राची सूचयति दिङ्मुखानाथम् ।
परिपाण्डुना मुखेन प्रियमिव हृदयस्थितं रमणी ॥ १ ॥

श्रीहर्षस्य ।

3622

अथ मन्मथवाहिनीपरागः
किमपि ज्योतिरुदस्फुरत्पुरस्तात् ।
तिमिरस्य जरा चकोरकूरं
कुलटाकेलिवनीदवानलार्चिः ॥ २ ॥

कस्यापि ।

3623

अथ पथिकवधूदहनः शनकैरुदभून्निशाकरालोकः ।
कुमुदप्रबोधदूतो व्यसनगुरुश्चक्रवाकीणाम् ॥ ३ ॥

क्षेमेन्द्रस्य ।

3624

ततः कुमुदनाथेन कामिनीगण्डपाण्डुना ।
नेत्रानन्देन चन्द्रेण माहेन्द्री दिगलंकृता ॥ ४ ॥

व्यासस्य ।

3625

हंसो यथा राजति पङ्कजस्थः
सिंहो यथा मन्दरकंदरस्थः ।

वीरो यथा दर्पितकुञ्जरस्थ-
श्चन्द्रोपि बभ्राज तथाम्बरस्थः ॥ ५ ॥

वाल्मीकिकवेः ।

3626

पद्मयोदेति वियोगिनां दिनमणिः शृङ्गाररक्षामणि-
स्तारामौक्तिकहारनायकमणिश्चण्डीशचूडामणिः ।
गौढानङ्गभुजंगमस्तकमणिः कंदर्पसीमन्तिनी-
काञ्चीमध्यमणिश्चकोरपरिषच्चिन्तामणिश्चन्द्रमाः ॥ ६ ॥

कस्यापि ।

3627

मृगाङ्कोयं धत्ते गगनजलधेः फेनतुलनां
सितच्छत्राकारं मदननृपतेर्विश्वजयिनः ।
त्रियामारामाया मलयजविशेषप्रतिकृतिं
जगद्धात्रीदेव्या मणिमुकुरलक्ष्मीं च विमलाम् ॥७॥

शार्ङ्गधरस्य ।

3628

आकाशवापीसितपुण्डरीकं
शाणोपलं मन्मथसायकानाम् ।
पद्मयोदितं शारदमुत्पलाक्षि
संध्याङ्गनाकन्दुकमिन्दुबिम्बम् ॥ ८ ॥

कस्यापि ।

3629

ॐ कारो मदनद्विजस्य गगनक्रोडैकदंष्ट्राङ्कुर-
स्तारामौक्तिकशुक्तिरन्धतमसस्तम्बेरमस्याङ्कुशः ।
शृङ्गारार्गलकुञ्चिका विरहिणीमर्मच्छिदा कर्तरी
संध्यावारवधूनखक्षतिरियं चान्द्री कला जृम्भते ॥ ९ ॥

कस्यापि ।

3630

त्रिनयनजटावल्लीपुष्पं निशावदनस्मितं
ग्रहकिसलयं संध्यानारीनितम्बनखक्षतम् ।

तिमिरभिदुरं व्योम्नः भृङ्गं मनोभवकार्मुकं
प्रतिपदि नवस्येन्दोर्बिम्बं सुखोदयमस्तु नः ॥ १० ॥

फल्गुहस्तिन्याः ।

3631

स्वैरं कैरवकोरकान्विदलयन्यूनां मनो दोलय-
न्नम्भोजानि निमीलयन्मृगदृशां मानं समुन्मूलयन् ।
ज्योत्स्नां कन्दलयन्दिशो धवलयन्नम्भोधिमुद्वेल्लय-
न्कोकानाकुलयंस्तमः कवलयन्निन्दुः समुज्जृम्भते ॥११॥

कस्यापि ।

3632

एष स्वर्गतरंगिणीजलमिलद्धिन्दिन्दिरदन्तद्युति-
र्भ्रदयद्राजतकुम्भविभ्रमधरः शीतांशुरभ्युद्यतः ।
हंसीयत्यमलाम्बुजीयति लसद्भिण्डीरपिण्डीयति
स्फारस्फाटिककुण्डलीयति दिशामानन्दकन्दीयति ॥१२॥

शङ्गधरस्य ।

3633

पुरंदरहरिद्दरीकुहरगर्भसम्प्रोत्थित-
स्तुषारकरकेसरी गगनकाननं गाहते ।
मयूखनखरत्रुटत्तिमिरकुम्भिकुम्भस्थलो-
च्छलत्तरलतारकाकपटकीर्णमुक्तागणः ॥ १३ ॥

कस्यापि ।

3634

उपोढरागेण विलोलतारकं
तथा गृहीतं शशिना निशामुखम् ।
यथा समस्तं तिमिरांशुकं तया
पुरोपि रागाद्गलितं न लक्षितम् ॥ १४ ॥

पाणिनेः ।

3635

अन्धकारगरलं यतो जग-
न्मोहकारि भृशमत्ति नित्यशः ।

उज्ज्वलं जठरमोषधीपते-
रभ्रनाभमभवत्ततः प्रिये ॥ १५ ॥

कस्यापि ।

3636

अद्यापि स्तनशैलदुर्गविषमे किं मानिनीनां हृदि
स्थातुं वाञ्छति मान एष झगिति क्रोधादिवालोहितः ।
उद्यन्दूरतरप्रसारितकरः कर्षत्यसौ तत्क्षणा-
त्फुल्लत्कैरवकोषनिःसरदलिश्रेणीकृपाणं शशी ॥ १६ ॥

कस्यापि ।

3637

इन्दोरेककलाया रुद्रेणोद्धृत्य मूर्धनि विधृतायाः ।
स्थानमिव तुच्छमेतत्कलङ्करूपेण परिणमति ॥ १७ ॥

3638

सद्यः पाटितकेतकोदरदलश्रेणीश्रियं बिभ्रती
येयं मौक्तिकदामगुम्फनविधौ योग्यच्छविः प्रागभूत् ।
उन्मेया कलशीभिरञ्जलिपुटैर्ग्राह्या मृणालाङ्कुरैः
पातव्या च शशिन्यमुग्धविभवे सा वर्तते चन्द्रिका ॥१८॥

कस्यापि ।

3639

एतत्तर्कय कैरवैकमहरे शृङ्गारदीक्षागुरौ
दिक्कान्तामुकुरे चकोरसुहृदि प्रौढे तुषारत्विषि ।
कर्पूरैः किमपूरि किं मलयजैरालेपि किं पारदै-
रक्षालि स्फटिकोपलैः किमघटि द्यावापृथिव्योर्वपुः ॥१९॥

कस्यापि ।

3640

कपोले मार्जारी पय इति कराँल्लेढि शशिन-
स्तरुच्छिद्रप्रोतान्बिसमिति करी संकलयति ।
रतान्ते तल्पस्थान्हरति वनिताप्यंशुकमिति
प्रभामत्तश्चन्द्रो जगदिदमहो विप्लवयति ॥ २० ॥

भासस्य ।

3641

कैलासायितमद्रिभिर्विटपिभिः श्वेतातपत्रायितं
मृत्पङ्केन दधीयितं जलनिधौ दुग्धायितं वारिभिः ।
मुक्ताहारलतायितं व्रततिभिः शङ्खायितं श्रीफलैः
श्वेतद्वीपजनायितं जनपदैर्जाते शशाङ्कोदये ॥ २१ ॥

त्रिविक्रमभट्टस्य ।

3642

मल्लिकामालभारिण्यः सर्वाङ्गीणार्द्रचन्दनाः ।
क्षौमवत्यो न लक्ष्यन्ते ज्योत्स्नायामभिसारिकाः ॥ २२ ॥

दण्डिकवेः ।

3643

कुमुदेष्वधिकं भान्ति पतिताश्चन्द्ररश्मयः ।
अतिप्रकृष्टशीलेषु कुलेष्विव समृद्धयः ॥ २३ ॥

कस्यापि ।

3644

लक्ष्मीक्रीडातडागो रतिधवलगृहं दर्पणो दिग्वधूनां
पुष्पं श्यामालतायास्त्रिभुवनजयिनो मन्मथस्यातपत्रम् ।
पिण्डीभूतं हरस्य स्मितममरसरित्पुण्डरीकं मृगाङ्को
ज्योत्स्नापीयूषवापी जयति सितवृषस्तारकागोकुलस्य ॥ २४ ॥

कालिदासस्य ।

3645

मानिनीजनविलोचनपाता-
नुष्णबाष्पकलुषान्प्रतिगृह्णन् ।
मन्दमन्दमुदितः प्रययौ खं
भीतभीत इव शीतमयूखः ॥ २५ ॥

भारवेः ।

3646

ख्याता वयं समधुपा मधुकोषवत्य-
श्चन्द्रः प्रसारितकरो द्विजराज एषः ।
अस्मत्समागमकृतोऽस्य पुनर्द्वितीयो
मा भूत्कलङ्क इति संकुचिता नलिन्यः ॥ २६ ॥

कस्यापि ।

# अथ पानगोष्ठीवर्णनम् ॥ १२१ ॥

3647

दृश्यते पानगोष्ठीषु कान्तावक्त्रगतं मधु ।
स्मरं सहायमासाद्य प्रस्तो राहुरिवेन्दुना ॥ १ ॥

क्षेमेन्द्रस्य ।

3648

पीतस्तुषारकिरणो मधुनैव सार्ध-
मन्तः प्रविश्य चषकप्रतिबिम्बवर्ती ।
मानान्धकारमपि मानवतीजनस्य
नूनं बिभेद यदसौ प्रससाद सद्यः ॥ २ ॥

रत्नाकरस्य ।

3649

प्राप्यते गुणवतापि गुणानां
व्यक्तमाश्रयवशेन विशेषः ।
तत्तथा हि दयितानन दत्तं
व्यानशे मधु रसातिशयेन ॥ ३ ॥

भारवेः ।

3650

सागसि प्रियतमे कृतकोपा
याङ्घ्रियुग्मपतितेपि न तुष्टा ।
सैव मद्यपरिलुप्तविवेका
तं तथैव परितोषयति स्म ॥ ४ ॥

नग्नजितः ।

3651

पिपि प्रिय सस स्वयं मुमु मुखासवं देहि मे
तत त्यज दुदु द्रुतं भभभ भाजनं काञ्चनम् ।
इति स्खलितजल्पितं मदवशात्कुरङ्गीदृशः
प्रगे हसितहेतवे सहचरीभिरध्यैयत ॥ ५ ॥

कस्यापि ।

3652
हावहारि हसितं वचनानां
कौशलं दृशि विकारविशेषः ।
चक्रिरे भृशमुजोरपि वध्वाः
कामिनेव तरुणेन मदेन ॥ ६ ॥
माघकवेः ।

3653
मूर्त्तिमन्तमपि रागरसौघं
ते परस्परसमर्पितवक्त्राः ।
अङ्गनासवमिषेण तदानी-
मक्षिपन्त हृदयेषु युवानः ॥ ७ ॥
जयमाधवस्य ।

---

## अथ चाटुद्यूतक्रीडासुरतप्रशंसाः ॥ १२२ ॥

3654
मुग्धे धानुष्कता केयमपूर्वा तव दृश्यते ।
यया विध्यसि चेतांसि गुणैरेव न सायकैः ॥ १ ॥
कस्यापि ।

3655
कृष्णार्जुनानुरक्तापि दृष्टिः कर्णावलम्बिनी ।
याति विश्वसनीयत्वं कस्य ते कलभाषिणि ॥ २ ॥
दण्डिकवेः ।

3656
स्मितपुष्पोद्गमोयं ते दृश्यतेधरपल्लवे ।
फलं तु जातं मुग्धाक्षि चक्षुषोर्मम पश्यतः ॥ ३ ॥
श्रीहर्षस्य ।

3657
दासे कृतागसि भवेदुचितः प्रभूणां
पादप्रहार इति मानिनि नास्मि दूये ।
उद्यत्कठोरपुलकाङ्कितकण्टकायै-
र्यद्विद्यते तव पदं ननु सा व्यथा मे ॥ ४ ॥
कस्यापि ।

3658

बन्धूकद्युतिबान्धवोयमधरः स्निग्धा मधूकच्छवि-
र्गण्डे चण्डि चकास्ति नीलनलिनश्रीमोचनं लोचनम् ।
नासान्वेति तिलप्रसूनपदवीं कुन्दाभदन्ति प्रिये
प्रायस्त्वन्मुखसेवया विजयते विश्वं स पुष्पायुधः ॥ ५ ॥

जयदेवस्य ।

3659

तरंगय दृशोङ्गने रचय वन्ध्यामिन्दीवरं
क्षणं वपुरपावृणु स्पृशतु काञ्चनं कालिमा ।
स्फुटीकुरु रदच्छदं व्रजतु विद्रुमः श्वेतता-
मुदञ्चय मुखं मनाग्भवतु लज्जितश्चन्द्रमाः ॥ ६ ॥

राजशेखरस्य ।

3660

यत्पद्ममादित्सु तवाननीयां
कुरङ्गलक्ष्मा च मृगाक्षि लक्ष्मीम् ।
एकार्थलिप्साकृत एव मन्ये
शशाङ्कपङ्केरुहयोर्विरोधः ॥ ७ ॥

श्रीहर्षस्य ।

## अथ द्यूतक्रीडा ।

3661

आश्लेषचुम्बनरतोत्सवभूषणादि-
क्रीडा दुरोदरपणः प्रतिभूरनङ्गः ।
भोगः स यद्यपि जये च पराजये च
यूनोर्मनस्तदपि वाञ्छति जेतुमेव ॥ ८ ॥

मुरारेः ।

3662

अद्य द्यूतजिताधरग्रहविधावीशोसि तत्खण्डना-
दाधिक्ये वद को भवानिति मृषाकोपाञ्चितभ्रूलता ।
सद्यःस्विन्नकरायकुन्तलपरायत्तीकृतास्यस्य मे
मुग्धाक्षी प्रतिकृत्य तत्कृतवती द्यूतेपि यन्नार्जितम् ॥ ९ ॥

गोपादित्यस्य ।

3663

गाढालिङ्गनपूर्वमेकमनया द्यूते जिते चुम्बनं
तत्किंचित्परिरभ्य दत्तममुना प्रत्यर्पितं चानया ।
नैतत्तादृगिदं न तादृशमिति प्रत्यर्पणप्रक्रमै-
र्यूनोश्चुबनमेकमेव बहुधा रात्रिर्गता तन्वतोः ॥ १० ॥

उड्डीयकवेः ।

3664

आश्लेषे प्रथमं क्रमेण विजिते द्यूतेधरस्यार्पणे
नर्मद्यूतविधौ पणं प्रियतमे कान्तां पुनः पृच्छति ।
अन्तर्हासनिरोधसंभृतरसोद्भेदस्फुरद्भण्डया
स्वैरं सारिविसारणाय निहितः स्वेदाम्बुगर्भः करः ॥११॥

## अथ सुरतप्रशंसा ।

3665

सुरते च समाधौ च मनो यत्र न लीयते ।
ध्यानेनापि हि किं तेन किं तेन सुरतेन वा ॥ १२ ॥

कस्यापि ।

3666

यत्र न मदनविकारः सद्भावसमर्पणं च गात्राणाम् ।
तस्मिन्नुद्धतभावे पशुकर्मणि पशव एव रज्यन्ते ॥ १३ ॥

3667

प्रतिक्षणसमुल्लसन्नवकलाकलापान्वितं
क्षपाकरविलोकने यदि तवास्ति कौतूहलम् ।
विलोकय तदा सखे सुरतसंगरासूत्रण-
प्रहृष्टदयितामुखं निबिडकञ्चुकोत्तारणे ॥ १४ ॥

भट्टसोमेश्वरस्य ।

3668

संदष्टेधरपल्लवे सचकितं हस्तामामाधुन्वती
मा मा मुञ्च शठेति कोपवचनैरानर्तितभ्रूलता ।

सीत्काराञ्चितलोचना सरभसं वैश्वुम्बिता मानिनी
प्राप्तं तैरमृतं श्रमाय मथितो मूढैः सुरैः सागरः ॥ १९ ॥

अमरुकस्य ।

---

## अथ नववधूसंगमः ॥ १२३ ॥

3669

रक्षामालिकया बाले बद्धया किं प्रयोजनम् ।
अवश्यंभाविनावेतौ कुचग्रहकचग्रहौ ॥ १ ॥

कस्यापि ।

3670

नीरन्ध्रं परिरभ्यते प्रियतमो भूयस्तरां चुम्ब्यते
तद्वाढं क्रियते यदस्य रुदितं चाटूत्करैः स्तूयते ।
सख्या मुग्धवधूरसौ रतविधौ यत्नेन सा शिक्षिता
निर्भ्रान्तं गुरुणा पुनः शतगुणं पञ्चेषुणा कारिता ॥ २ ॥

रुद्रस्य ।

3671

बाला तन्वी मृदुतनुरिति त्यज्यतामत्र शङ्का
दृष्टा काचिद्भ्रमरभरतो मञ्जरी भज्यमाना ।
तस्मादेषा रहसि भवता निर्दयं पीडनीया
मन्दाक्रान्ता विसृजति रसं नेक्षुयष्टिः समग्रम् ॥ ३ ॥

विकटनितम्बायाः ।

### अथ नववधूसुरतारम्भक्रीडा ।

3672

दृष्ट्वा दृष्टिमधो ददाति कुरुते नालापमाभाषिता
शय्यायां परिवृत्य तिष्ठति बलादालिङ्गिता वेपते ।
निर्यान्तीषु सखीषु वासभवनान्निर्गन्तुमेवेहते
बाला वामतया प्रियस्य नितरां प्रीत्यै नवोढाभवत् ॥ ४ ॥

श्रीहर्षस्य ।

3673

पटालग्ने पत्यौ नमयति मुखं जातविनया
हठाश्लेषं वाञ्छत्यपहरति गात्राणि निभृतम् ।
न शक्नोत्याख्यातुं स्मितमुखसखीदत्तनयना
ह्रिया ताम्यत्यन्तः प्रथमपरिहासे नववधूः ॥ ५ ॥

अमरुकस्य ।

3674

अंसाकृष्टदुकूलया सरभसं गूढौ भुजाभ्यां स्तना-
वाकृष्टे जघनांशुके कृतमधः संसक्तमूरुद्वयम् ।
नाभीमूलनिबद्धचक्षुषि तया व्रीडानताङ्ग्या प्रिये
दीपः फूत्कृतिवातवेपितशिखः कर्णोत्पलेनाहतः ॥ ६ ॥

कर्णोत्पलस्य ।

3675

विरम नाथ विमुञ्च ममाञ्चलं
शमय दीपमिमं समया सखीम् ।
इति नवोढवधूवचनैर्युवा
मुदमगादधिकं सुरतादपि ॥ ७ ॥

रुद्रस्य ।

3676

चम्बनेषु परिवर्तिताधरं
हस्तरोधि रसनाविघट्टने ।
विघ्नितेच्छमपि तस्य सर्वतो
मन्मथेन्धनमभूद्बधूरतम् ॥ ८ ॥

कालिदासस्य ।

3677

समाकृष्टं वासः कथमपि हठात्पश्यति तदा
क्रमादूरुद्वन्द्वं जघठशरगौरं मृगदृशः ।
तया दृष्टिं दत्त्वा महति मणिदीपे निपुणया
निरुद्धं हस्ताभ्यां झगिति निजनेत्रोत्पलयुगम् ॥ ९ ॥

कस्यापि ।

3678

बलान्नीता पार्श्वं मुखमभिमुखं नैव कुरुते
धुनाना मूर्धानं हरति बहुशश्चुम्बनविधिम् ।
हृदि न्यस्तं हस्तं क्षिपति गमनारोपितमना
नवोढा वोढारं सुखयति च संतापयति च ॥ १० ॥

कस्यापि ।

---

## अथ सुरतकेलिकथनम् ॥ १२४ ॥

3679

आस्तां दूरेण विश्लेषः प्रियामालिङ्गतो मम ।
स्वेदः किं नु सरिन्नाथो रोमाञ्चः किं नु पर्वतः ॥ १ ॥

कस्यापि ।

3680

आयाते दयिते मनोरथशतैर्नीते कथंचिद्दिने
वैदग्ध्यापगमाज्जडे परिजने दीर्घा कथां कुर्वति ।
दृष्टास्मीत्यभिधाय सत्वरतरं व्याधूय चीनांशुकं
तन्वङ्ग्या रतिकातरेण मनसा नीतः प्रदीपः शमम् ॥ २ ॥

अद्भुतपुण्यस्य ।

3681

भजन्त्यास्तल्पान्तं कृतकपटकण्डूति पिहित-
स्मिते जाते गेहाद्बहिरवहितालीपरिजने ।
प्रियास्यं पश्यन्त्याः स्मरशरसमाकूतसुभगं
सलज्जा लज्जापि व्यगमदिव दूरं मृगदृशः ॥ ३ ॥

जयदेवस्य ।

3682

चिरविरहिणोरत्युत्कण्ठाश्लथीकृतगात्रयो-
र्नवमिव जगज्जातं भूयश्चिरादभिनन्दतोः ।
कथमपि दिने दीर्घे याते निशामधिरूढयोः
प्रसरति कथा बद्धी यूनोर्यथा न तथा रतिः ॥ ४ ॥

3683

गाढालिङ्गनवामनीकृतकुचप्रोद्भूतरोमोद्गमा
सान्द्रस्नेहरसातिरेकविगलच्छ्रीमन्नितम्बाम्बरा ।
मा मा मानद माति मामलमिति क्षामाक्षरोल्लापिनी
सुप्ता किं नु मृता नु किं मनसि मे लीना विलीना नु किम्॥९॥

अमरुकस्यैतौ ।

3684

दृशा सपदि मीलितं दशनरोचिषा निर्गतं
करेण परिवेपितं वलयकैरथाक्रन्दितम् ।
प्रियैः समदयोषितां तनुविखण्ड्यमानेधरे
परव्यसनकातराः किमिव कुर्वतां साधवः ॥ ६ ॥

कस्यापि ।

3685

धम्मिल्लो भङ्गमेतु प्रविशतु तिलकः केशपाशान्धकारं
पत्राली गण्डपालीं त्यजतु च विवरं कर्णयोर्गन्तुकामा ।
वामायाः कान्तदन्तक्षततिसहने त्वेक एवाधरोसौ
वीरः कामाहवेस्मिन्निति वदति मुहुर्नूपुरः क्वाणभङ्ग्या॥७॥

भानुपण्डितस्य ।

3686

दोर्भ्यां संयमितः पयोधरभरेणापीडितः पाणिजै-
राविद्धो दशनैः क्षताधरपुटः श्रोणीतलेनाहतः ।
हस्तेनानमितः करेधरसुधास्यन्देन संमोहितः
कान्तः कामपि तृप्तिमाप तदहो कामस्य वामा गतिः॥८॥

3687

ईषन्मीलितदृष्टिमुग्धहसितं सीत्कारधारावशा-
दव्यक्ताकुलकेलिकाकुविकसद्दन्तांशुधौताधरम् ।
श्वासोत्कम्पिपयोधरोपरिपरिष्वक्तं कुरङ्गीदृशो
हर्षोत्कर्षविमुक्तनिःसहतनोर्धन्यो धयत्याननम् ॥ ९ ॥

जयदेवस्यैतौ ।

3688

रतिरभसनितान्तश्रान्तकान्ताकुचान्त-
श्चलदमलकराग्रा नाभिदेशेष्वधो वा ।
स्मितमधुरमुखीनां ह्रीणनेत्रोत्पलाना-
मधरमधु वधूनां भाग्यवन्तः पिबन्ति ॥ १० ॥

3689

चारुनूपुररणत्कृतं रते
कामिनां हरति मानसं यथा ।
नो तथा मधुरगीतवादितं
केकिचातकपिकस्वना अपि ॥ ११ ॥

शार्ङ्गधरस्यैतौ ।

3690

नैषा वेगं मृदुतरतनुस्तावकीनं विसोढुं
शस्ता नैनां चपल नितरां खेदयेन्दीवराक्षीम् ।
रत्यध्यासं विदधत इति प्राणनाथस्य गत्वा
कर्णोपान्ते निभृतनिभृतं नूपुरं शंसतीव ॥ १२ ॥

मूर्तस्य ।

3691

स्वामिन्प्रभो प्रिय गृहाण परिष्वजस्व
किं किं शठोस्यकरुणोसि सुखोज्झितोसि ।
हा दुःखयस्यलमलं विरमेति वाचः
स्त्रीणां भवन्ति सुरते प्रणयानुकूलाः ॥ १३ ॥

कुमारभद्रस्य ।

3692

स्विन्नं मण्डलमैन्दवं विगलितं स्रग्भारनद्धं तमः
प्रागेव प्रथमानकेतकशिखावीरायितं च स्थितम् ॥
शान्तं कुण्डलताण्डवं कुवलयद्वन्द्वं तिरो मीलितं
वीतं विद्रुमसीत्कृतं नहि ततो जाने किमासीदिति ॥ १४ ॥

कस्यापि ।

3693

मत्तेभकुम्भपरिणाहिनि कुङ्कुमार्द्रे
कान्तापयोधरयुगे रतखेदखिन्नः ।
वक्षो निधाय भुजपञ्जरमध्यवर्ती
धन्यः क्षपां क्षपयति क्षणलब्धनिद्रः ॥ १५ ॥
भर्तृहरेः ।

---

## अथ विपरीतरतम् ॥ १२५ ॥

3694

तन्नास्ति कारयति यन्न मनोभवस्य
सा शक्तिरप्रतिहता भुवने तथाहि ।
उद्घाट्य पीवरपयोधरमण्डलाग्रं
वल्गन्ति पत्युरुपरि प्रमदा अपीह ॥ १ ॥
शशिवर्धनस्य ।

3695

पतु तवोरसि सततं दयिताधम्मिल्लमल्लिकानिकरः ।
रतरभसकचग्रहलुलितालकवल्लरीगलितः ॥ २ ॥
बाणभट्टस्य ।

3696

प्रशान्ते नूपुरारावे श्रूयते मेखलाध्वनिः ।
कान्ते नूनं रतश्रान्ते कामिनी पुरुषायते ॥ ३ ॥
कस्यापि ।

3697

प्रारब्धे रतिकेलिसंकुलरणारम्भे तया साहस-
प्रायं कान्तजयाय किंचिदुपरि प्रारम्भि तत्संभ्रमात् ।
खिन्ना येन कटीतटी शिथिलिता दोर्वल्लिरुत्कम्पितं
वक्षो मीलितमक्षि पौरुषरसः स्त्रीणां कुतः सिध्यति ॥४॥
जयदेवस्य ।

3698

वल्गत्कुचं व्याकुलकेशपाशं
स्विद्यन्मुखं स्वीकृतमन्दहासम् ।

पुण्यातिरेकात्पुरुषा लभन्ते
पुंभावमम्भोरुहलोचनानाम् ॥ ५ ॥
कस्यापि ।

3699

मुग्धे तवास्मि दयिता पुरुषो भव त्व-
मित्युक्तया नहि नहीति शिरो विधूय ।
स्वस्मात्करात्प्रियकरे वलयं क्षिपन्त्या
वाचं विनाभ्युपगमः कथितो मृगाक्ष्या ॥ ६ ॥
कस्यापि ।

3700

क्वचित्ताम्बूलाक्तः क्वचिदगरुपङ्काङ्कमलिनः
क्वचिच्चूर्णोद्गारी क्वचिदपि च सालक्तकपदः ।
वलीभङ्गाभोगैरलकपतितैः कीर्णकुसुमैः
स्त्रियाः सर्वावस्थं कथयति रतं प्रच्छदपटः ॥ ७ ॥
कस्यापि ।

3701

ईषत्कम्पपयोधरं गुरुकटीपीठप्रहाराद्भुतं
स्विद्यद्भालमनेकहास्यसरसं संकथ्यपादव्यथम् ।
वारंवारमुरःप्रपातसुभगं संदश्यमानाधरं
किंचिद्दत्तनितम्बदेशनखरं धन्यो रतं सेवते ॥ ८ ॥
श्रीशिवदासदेवानाम् ।

3702

आलोलामलकावलीं सकुसुमां बिभ्रच्चलत्कुण्डलं
किंचिन्मृष्टविशेषकं तनुतरैः स्वेदाम्भसः सीकरैः ।
तन्व्या यत्सुरतान्ततान्तनयनं वक्त्रं रतव्यत्यये
तत्त्वां पातु चिराय किं हरिहरब्रह्मादिभिर्दैवतैः ॥ ९ ॥
अमरुकस्य ।

---

## अथ सुरतनिवृत्तिः ॥ १२६ ॥

3703

शान्ते मन्मथसंगरे रणभृतां सत्कारमातन्वती
वासोदाज्जघनस्य पीनकुचयोर्हारं श्रुतेः कुण्डलम् ।

बिम्बोष्ठस्य च बीटिकां सुनयना पाण्यो रणत्कङ्कणं
पश्चाल्लम्बिनि केशपाशनिचये क्षुब्धो हि बन्धक्रमः ॥ १ ॥

कस्यापि।

3704

व्यालोलः केशपाशस्तरलितमलकैः स्वेदलोलौ कपोलौ
क्लिष्टा बिम्बाधरश्रीः कुचकलशरुचा हारिता हारयष्टिः।
काञ्ची कांचिद्दताशां स्तनजघनपदं पाणिनाच्छादयन्ती
भूषाहीनापि काचित्प्रियहृदयमहो प्रीणयत्येव मुग्धा ॥ २ ॥

जयदेवस्य।

3705

नेपथ्यादपि राजते हि नितरां व्यालुप्तभूषा तनुः
संभोगश्रममीलितं विजयते चक्षुः कटाक्षादपि।
गाढालिङ्गनकौतुकादपि नवं दोर्वल्लिविस्रंसनं
प्रीत्यालापरसादपि प्रियतमं मौनं कुरङ्गीदृशः ॥ ३ ॥

हरिहरस्य।

3706

करकिसलयं धूत्वा धूत्वा विमार्गति वाससी
क्षिपति सुमनोमालाशेषं प्रदीपशिखां प्रति।
स्थगयति मुहुः पत्युर्नेत्रे विहस्य समाकुला
सुरतविरतौ रम्या तन्वी पुनः पतिमाश्रिता ॥ ४ ॥

3707

सुरतविरतौ व्रीडावेशश्रमश्लथहस्तया
रहसि गलितं तन्व्या प्रातुं न पारितमंशुकम्।
रतिरसजडैरङ्गैरङ्गं पिधातुमशक्तया
प्रियतमतनौ सर्वाङ्गीणं प्रविष्टमधृष्टया ॥ ५ ॥

अमरुकस्यैतौ।

3708

प्रियशतपटस्तेयव्रीडाविडम्बनविह्वलां
किमपि कृपणालापां बालां विलोक्य ससंभ्रमः।

अपि विचलितस्कन्धावारे गते सुरताहवे
त्रिभुवनमहाधन्वी स्थाने न्यवर्तत मन्मथः ॥ ६ ॥
कस्यापि।

3709

निर्वृत्ते सुरतोत्सवे बहुविधे जातेधिकेऽङ्गक्रमे
तल्पे स्वेदजलार्द्रचन्दनमये किंचिद्गृहीताम्बरे ।
सान्द्रस्नेहवशाद्विशेषविषयव्यासङ्गजिह्मात्मनो-
र्दैपत्योः स्मरघस्मरातुरतया भूयोपि जाता स्पृहा ॥ ७ ॥
कस्यापि ।

---

## अथ निशीथक्रीडनादिकम् ॥ १२७ ॥

3710

शमितनिखिलदीपे सुप्तनिद्रालुलोके
रतपरवशचित्ता मध्यरात्रे विबुद्धाः ।
प्रथमसुरतखिन्नां मुग्धिकां बोधयन्तो
बहुदृढपरिरम्भैः कामुकाः खेदयन्ति ॥ १ ॥
शार्ङ्गधरस्य ।

3711

वदनशशिनः स्पर्शे शीतादिवागतवेपथुः
स्तनयुगलके भ्रान्त्वा तुङ्गे निविष्ट इव श्रमात् ।
ज्वलितमदनाङ्गारे तन्व्यास्ततो जघनस्थले
सपुलकजलः पत्युः पाणिर्विलीन इवाभवत् ॥ २ ॥
कस्यापि ।

3712

रतिकृति गते मायानिद्रां प्रवर्तितचुम्बना
पुलकपयसा तत्त्वं मत्वा मुखादहताननाः ।
कृतकशयनो निर्ग्राह्योसीत्युदीर्य कलं वधू-
र्व्रणितमधरं कृत्वा दन्तैरपूरयत स्पृहाम् ॥ ३ ॥
कस्यापि ।

## अथ प्रणयकलहे नायिकानुनयः ।

3713

गतप्राया रात्रिः शशिमुखि शशी शीर्यत इव
प्रदीपोयं निद्रावशमुपगतो घूर्णत इव ।
प्रणामान्तो मानस्तदपि न जहासि क्रुधमहो
कुचप्रत्यासत्त्या हृदयमपि ते चण्डि कठिनम् ॥ ४ ॥

3714

क्षीणांशुः शशलाञ्छनः शशिमुखि क्षीणो न मानस्तव
स्मेरं पद्मवनं मनागपि न ते स्मेरं मुखाम्भोरुहम् ।
पीतं श्रोत्रपुटेन षट्पदरुतं पीतं न ते जल्पितं
रक्ता शक्रदिगङ्गना रविकरैर्नाद्यापि रक्तासि किम् ॥ ५ ॥

कयोरप्येतौ ।

3715

एकस्मिञ्छयने पराङ्मुखतया वीतोत्तरं ताम्यतो-
रन्योन्यं हृदयस्थितेप्यनुनये संरक्षतोर्गौरवम् ।
दंपत्योः शनकैरपाङ्गवलनान्मिथोभवच्चक्षुषो-
र्भग्नो मानकलिः सहासरभसं कण्ठग्रहेनुष्ठितः ॥ ६ ॥

अमरुकस्य ।

3716

कृत्वा विग्रहमश्रुपातकलुषं शय्यासनादुत्थिता
क्रोधाद्यापि विहाय गर्भभवनद्वारं रुषा प्रस्थिता ।
दृष्ट्वा चन्द्रमसं प्रभाविरहितं प्रत्यूषवाताहता
हा रात्रिस्त्वरिता गतेति पतिता कान्ता प्रियस्योरसि ॥ ७ ॥

कस्यापि ।

---

## अथ प्रभातवर्णनम् ॥ १२८ ॥

3717

अभूत्प्राची पिङ्गा रसपतिरिव प्राप्य कनकं
गतच्छायश्चन्द्रो बुधजन इव ग्राम्यसदसि ।

क्षणं क्षीणास्तारा नृपतय इवानुद्यमपरा
न दीपा राजन्ते द्रविणरहितानामिव गुणाः ॥ १ ॥

3718

विरलविरलीभूतास्ताराः कलौ सुजना इव
व्यपसरति च ध्वान्तं चित्तात्सतामिव दुर्जनः ।
मन इव मुनेः सर्वत्रापि प्रसन्नमभून्नभो
विगलति निशा क्षिप्रं लक्ष्मीरनुद्यमिनामिव ॥ २ ॥

एतौ भोजराजकविवर्गस्य ।

3719

व्रजत्यपरवारिधिं रजतपिण्डपाण्डुः शशी
नमन्ति जलबुद्बुदद्युतिसपङ्क्तयस्तारकाः ।
कुरण्टकवितिपाण्डुरं दधति धाम दीपाङ्कुरा-
श्चकोरनयनारुणा भवति दिक्च सौत्रामणी ॥ ३ ॥

कस्यापि ।

3720

दिशि दिशि मृगयन्ते वल्लवा वत्समेते
मुहुरपगतनिद्राः सप्रयो हेषितेन ।
अयमपि च सरोषैः कामिभिः श्रूयमाणो
नदति मधुरतारं ताम्रचूडो विहंगः ॥ ४ ॥

कस्यापि ।

3721

यः सैन्ये स्मरपार्थिवस्य विरहिप्रत्यर्थिनामग्रणी-
र्ज्योत्स्नानिर्झरमुज्झति स्म जगतां यस्तापनिर्वापणम् ।
सोयं तारकनायकः किमपरं शृङ्गारसंजीवनं
जातः पृष्ठपरागपाण्डुरजरत्कूष्माण्डपिण्डाकृतिः ॥ ५ ॥

3722

भिन्दानो मानिनीनां पतिषु रुषमयं हर्म्यपारावतेभ्यो
वाचालत्वं ददानः कवितृषु कवितां प्रातिभं संदधानः ।

प्रातस्त्यस्तूर्यनादः स्थगयति गगनं मांसलः पांसुतल्पा-
दस्वल्पादुत्थितानां नरवरकरिणां शृङ्खलाशिञ्जितेन ॥६॥

कस्यापि।

3723

अविरतमविरामा रागिणां सर्वरात्रं
नवनिधुवनलीलाः कौतुकेनाभिवीक्ष्य ।
इदमुदवसितानामस्फुटालोकसंप-
न्नयनमिव सनिद्रं घूर्णते दैपमार्चिः ॥ ७ ॥

3724

कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजखण्डं
त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः ।
उदयमहिमरोचिर्याति शीतांशुरस्तं
हतविधिललितानां ही विचित्रो विपाकः ॥ ८ ॥

3725

लुलितनयनतारा: क्षामवक्त्रेन्दुबिम्बा
रजनय इव निद्राक्रान्तनीलोत्पलाक्ष्यः ।
तिमिरमिव दधानाः स्रंसिनः केशपाशा-
नवनिपतिगृहेभ्यो यान्त्यमूर्वारवध्वः ॥ ९ ॥

माघकवेः।

3726

ये कुण्ठीकृतवल्लभप्रणतयः शस्त्रैरनङ्गस्य ये
न प्राप्ताश्च निशीथिनीपतिकरैः शैथिल्यवीथीमपि ।
ते निःशङ्कविटङ्कतालुतुमुलप्रोतप्लुतप्लाविते-
श्छिन्नाः कुक्कुटकूजितैर्मृगदृशां मानग्रहग्रन्थयः ॥ १० ॥

बिल्हणस्य।

3727

आद्ये जग्मुषि ताम्रचूडरटिते श्रोत्रं प्रबुद्धा जवा-
त्किंचिद्वासवदिङ्मुखं प्रविकसद्दृष्ट्वा गवाक्षाध्वना ।

संत्रासेन समीरिता प्रियतमप्रेम्णावरुद्धा शनै-
रुत्थानोपनिवेशनानि कुरुते तल्पे मुहुः पांसुला ॥ ११ ॥

कस्यापि ।

3728

निर्यान्त्या रतिवेश्मनः परिणतप्रायां विलोक्य क्षपां
गाढालिङ्गनचुम्बनानि बहुशः कृत्वाप्यसंतुष्टया ।
एकं भूमितले निधाय चरणं तल्पे प्रकल्प्यापरं
तन्व्यङ्ग्या परिवर्तिताङ्गलतया प्रेयांश्चिरं चुम्बितः ॥१२॥

कस्यापि ।

---

## अथ प्रभातवायुसूर्योदयवर्णनम् ॥ १२९ ॥

3729

विकचकमलगन्धैरन्धयन्भृङ्गमालाः
सुरभितमकरन्दं मन्दमावाति वायुः ।
समदमदनमाद्यद्यौवनोद्दामरामा-
रमणरभसखेदस्वेदविच्छेददक्षः ॥ १ ॥

माघकवेः ।

3730

स्तनपरिसरभागे दूरमावर्तमानाः
स्फुटतनिमनि मध्ये किंचिदेव स्खलन्तः ।
ववुरलघुनितम्बाभोगरुद्धा वधूनां
निधुवनरसखेदच्छेदिनः शीतवाताः ॥ २ ॥

कस्यापि ।

3731

प्रातः सीमन्तिनीनां निधुवनलुलितान्स्रंसयन्केशपाशा-
नुन्मीलत्पङ्कजान्तःपरिमलसुरभिः स्फारयन्कामलीलाः ।
स्वच्छावश्यायबिन्दून्दिशि दिशि विकिरन्स्थूलमुक्ताफलाभा-
न्धूलीभिः केतकीनां धवलितभुवनो वाति मन्दं नभस्वान् ॥ ३ ॥

कस्यापि ।

3732

रामाणां रमणीयवक्त्रशशिनः स्वेदोपबिन्दुप्लुतो
व्यालोलालकमञ्जरीः प्रचलयन्धुन्वन्नितम्बांशुकम् ।
प्रातर्वाति न चातिकृष्टविकसद्राजीवराजीरजः-
पुञ्जामोदमनोहरो रतिरसग्लानिं हरन्मारुतः ॥ ४ ॥

कस्यापि ।

## अथ सूर्योदयवर्णनम् ।

3733

ततः कोकवधूबन्धुर्बन्धूककुसुमप्रभः ।
उदयाद्रिशिरोरत्नमुद्ययौ तेजसां निधिः ॥ ५ ॥

शार्ङ्गधरस्य ।

3734

निजांशुकावृतां प्राचीं चुम्बत्यर्कैतिरागिणि ।
लज्जयेव ययौ क्वापि श्यामा मीलितलोचना ॥ ६ ॥

रघोः कविदर्पणस्य ।

3735

आगत्य संप्रति वियोगविसंस्थुलाङ्गी-
मम्भोजिनीं क्वचिदपि क्षपितत्रियामः ।
एतां प्रसादयति पश्य शनैः प्रभाते
तन्वाङ्गि पादपतनेन सहस्ररश्मिः ॥ ७ ॥

कस्यापि ।

3736

उन्निद्रकोकनदरेणुपिशाङ्गिताङ्गा
गायन्ति मत्तमधुपा गृहदीर्घिकासु ।
एतच्चकास्ति च रवेर्नवबन्धुजीव-
पुष्पच्छदाभमुदयाचलचुम्बि बिम्बम् ॥ ८ ॥

3737

उदयति वितनोर्ध्वरश्मिरज्जा-
वहिमरुचौ हिमधाम्नि याति चास्तम् ।

वहति गिरिरयं विलम्बिघण्टा-
द्वयपरिवारितवारणेन्द्रलीलाम् ॥ ९ ॥
माघकवेः।

3738

अयमुदयति मुद्राभञ्जनः पद्मिनीना-
मुदयगिरिवनालीबालमन्दारपुष्पम् ।
विरहविधुरकोकद्वन्द्वबन्धुर्विभिन्द-
न्कुपितकपिकपोलक्रोडताम्रस्तमांसि ॥ १० ॥
कस्यापि ।

---

## अथ संभोगाविष्करणम् ॥ १३० ॥

3739

चन्दनं स्तनतटेधरबिम्बे
यावकं घनतरं च सपत्न्याः ।
प्रातरीक्ष्य कुपितापि मृगाक्षी
सागसि प्रियतमे परितुष्टा ॥ १ ॥
कस्यापि ।

3740

लाक्षालक्ष्म ललाटपट्टमभितः केयूरमुद्रा गले
वक्त्रे कज्जलकालिमा नयनयोस्ताम्बूलरागः परः ।
दृष्ट्वा कोपविधायि मण्डनमिदं प्रातश्चिरं प्रेयसो
लीलातामरसोदरे मृगदृशः श्वासाः समाप्तिं गताः ॥ २ ॥

3741

यद्रात्रौ रहसि व्यपेतविनयं वृत्तं रसात्कामिनो-
रन्योन्यं शयनीयमीहितरसावाप्तिप्रवृत्तस्पृहम् ।
तत्सानन्दमिलद्दृशोः कथमपि स्मृत्वा गुरूणां पुरो
हासोद्भेदनिरोधमन्थरमिलत्तारं कथंचित्स्थितम् ॥ ३ ॥
अमरुकस्यैतौ ।

3742

बहु जगद पुरस्तात्तस्य मत्ता किलाहं
चकर च किल चाटु प्रौढयोषिद्वदस्य ।
विदितमिति सखीभ्यो रात्रिवृत्तं विचिन्त्य
व्यपगतमदयाह्नि व्रीडितं मुग्धवध्वा ॥ ४ ॥

माघकवेः ।

3743

दंपत्योर्निशि जल्पतोर्गृहशुकेनाकार्णितं यद्वच-
स्तत्प्रातर्गुरुसंनिधौ निगदतस्तस्यातिमात्रं वधूः ।
कर्णालम्बितपद्मरागशकलं विन्यस्य चञ्चवाः पुटे
व्रीडार्ता प्रकरोति दाडिमफलव्याजेन वाग्बन्धनम् ॥ ५ ॥

कस्यापि ।

3744

दर्पणेषु परिभोगदर्शिनी
पृष्ठतः प्रणयिनो निषेदुषः ।
प्रेक्ष्य बिम्बमनुबिम्बमात्मनः
कानि कानि न चकार लज्जया ॥ ६ ॥

कालिदासस्य ।

3745

रतखिन्नतनुं प्रातर्लज्जानम्रमुखीं वधूम् ।
स्मरन्तीं रात्रिचरितं दृष्ट्वामोति न को मुदम् ॥ ७ ॥

शार्ङ्गधरस्य ।

3746

धन्यासि या कथयसि प्रियसंगमेपि
नर्मोक्तिचाटुकशतानि रतान्तरेषु ।
नीवीं प्रति प्रणिहिते तु करे प्रियेण
सख्यः शपामि यदि किंचिदपि स्मरामि ॥ ८ ॥

विज्जकायाः ।

3747

कान्ते तल्पमुपागते विगलिता नीवी स्वयं बन्धना-
द्वासो विस्रथमेखलागुणधृतं किंचिच्चितम्बे स्थितम् ।

एतावत्सखि वेद्मि केवलमहं तस्याङ्गसङ्गे पुनः
कोयं का वयमत्र किं नु सुरतं स्वल्पापि मे न स्मृतिः॥१॥

अमरुकस्य।

3748

धन्यास्ताः सखि योषितः प्रियतमे सर्वाङ्गलग्नेपि याः
प्रागल्भ्यं रचयन्ति मन्मथविधावालम्ब्य धैर्यं महत्।
अस्माकं तु तदीयपाणिमुकुलेनोन्मोचयन्त्यंशुकं
कोयं का वयमत्र किं च सुरतं नैषा स्मृतिर्जायते ॥१०॥

3749

किमपि कान्तभुजान्तरवर्तिनी
कृतवती यदियं कलभाषिणी।
तदनुकृत्य गिरा गुरुसंनिधौ
ह्रियमनीयत सारिकया वधूः ॥ ११ ॥

कस्यापि।

---

## अथ सतीवर्णनकुलवधूवृत्ते ॥ १३१ ॥

3750

निर्व्याजा दयिते ननान्दृषु नता श्वश्रूषु भक्ता भव
स्निग्धा बन्धुषु वत्सला परिजने स्मेरा सपत्नीष्वपि।
भर्तुर्मित्रजने सनर्मवचना खिन्ना च तद्वैरिषु
प्रायः संवननं नतभ्रु तदिदं वीतौषधं भर्तृषु ॥ १ ॥

राजशेखरस्य।

3751

स्नानाम्भो बहु साधिता रसवती देवाग्निकार्योचितः
संभारो रचितो विशुद्धवसने कालोचिते योजिते।
स्नानं नाथ विधीयतामतिथयः सीदन्ति नान्या त्वरा
धन्यं बोधयते शनैरिति पतिं मध्याह्नसुप्तं सती ॥ २ ॥

दीपकस्य।

3752

नातः परं कुलमतः परतो न शीलं
नातः परं च करुणासदनं मृगाक्ष्याः ।
यद्बाष्पबिन्दुरपराधवतोपि पत्यु-
रुत्सङ्गितेन चरणेन तयापनिन्ये ॥ ३ ॥

कस्यापि ।

3753

दुर्वाराः स्मरमार्गणाः प्रियतमो दूरे मनोप्युत्सुकं
गाढं प्रेम नवं वयोतिकठिनाः प्राणाः कुलं निर्मलम् ।
स्त्रीत्वं धैर्यविरोधि मन्मथसुहृत्कालः कृतान्तोक्षमी
सोढव्याः सखि सांप्रतं कथममी सर्वेमयो दुःसहाः ॥ ४ ॥

मयूरसूनोः शङ्कस्य।

3754

अस्माकं सखि वाससी न रुचिरे नैवेयकं नोज्ज्वलं
नो वक्रा गतिरुद्धतं न हसितं नैवास्ति कश्चिन्मदः ।
किं त्वन्येपि जना वदन्ति सुभगो ह्यस्याः पतिर्नान्यतो
दृष्टिं निक्षिपतीति विश्वमियता मन्यामहे दुःस्थितम् ॥ ५ ॥

रुद्रस्य।

## अथ कुलवधूवृत्तम् ।

3755

जीवति जीवति नाथे म्रियते च मृते मुदा युता मुदिते ।
सहजस्नेहरसाला कुलवनिता केन तुल्या स्यात् ॥ ६ ॥

शार्ङ्गधरस्य ।

3756

भक्तिः प्रेयसि संश्रितेषु करुणा श्वश्रूषु नम्रं शिरः
प्रीतिर्ज्ञातिषु गौरवं गुरुजने क्षान्तिः कृतागस्यपि ।
अम्लाना कुलयोषितां व्रतविधिः सोयं विधेयः पुन-
र्मज्ञर्तुर्दयिता इति प्रियसखीबुद्धिः सपत्नीष्वपि ॥ ७ ॥

बिल्हणस्य ।

3757

अभ्युत्थानमुपागते गृहपतौ तद्भाषणे नम्रता
तत्पादार्पितदृष्टिरासनविधिस्तस्योपचर्या स्वयम् ।
सुप्ते तत्र शयीत तत्प्रथमतो जह्याच्च शय्यामिति
प्राच्यैः पुत्रि निवेदितः कुलवधूसिद्धान्तधर्मागमः ॥ ८ ॥

राजशेखरस्य ।

3758

चतुर्थेह्नि स्नातां त्रिदिनविरहात्पाण्डुवदनां
रजोमुक्तां तन्वीं चपलनयनां कामकलिताम् ।
हिमत्वङ्मार्जारीमलयभवगन्धप्रणयिनी-
मधन्यः को भुङ्क्ते च्युतकुसुमशेषामिव लताम् ॥ ९ ॥

कस्यापि ।

3759

लज्जावशावनतमन्थरदृष्टिपातं
यैश्चुम्बितं कुलवधूवदनारविन्दम् ।
तेषामनेकपुरुषव्रणिताधरेषु
तृप्तिः कथं भवति वेश्यवधूमुखेषु ॥ १० ॥

कस्यापि ।

3760

प्रतिरजनि प्रतिदिवसं विहर बहिश्चण्डि डिण्डिमं दत्त्वा ।
कोणवधूदृग्वलितैर्विश्वं पुनराकुलीभवति ॥ ११ ॥

हरिहरस्य ।

---

## अथासतीचरितम् ॥ १३२ ॥

3761

वयं बाल्ये बालांस्तरुणिमनि यूनः परिणता-
वपीच्छामो वृद्धान्परिणयविधिस्तु स्थितिरिति ।
त्वयारब्धं जन्म क्षपयितुमनेनैकपतिना
न मे गोत्रे पुत्रि क्वचिदपि सतीलाञ्छनमभूत् ॥ १ ॥

कस्यापि ।

3762

मया कुमार्यापि न सुप्तमेकया
न जारमुत्सृज्य पुमान्विलोकितः ।
अनेन गोत्रस्थितिपालनेन
प्रसन्नतामेतु भवोपकारिणी ॥ २ ॥

बिल्हणस्य ।

3763

भ्रूभेदैः कतिचिद्गिरा कुटिलया काश्चित्क्रियत्यः स्मितैः
स्वैरिण्यः कथयन्ति मन्मथरसव्यापारवश्यं मनः ।
कासांचित्पुनरङ्गकेषु मसृणच्छायेषु मध्यस्थितो
भावः काचपुटेषु पुष्करमिव प्रव्यक्तमालोक्यते ॥ ३ ॥

अभिनन्दस्य ।

3764

दृशा किंचिल्किंचिल्ललितभुजलीलाविलसनैः
कराघातैः किंचिन्नखविलिखनैः किंचिदधिकम् ।
स्पृशन्त्यः संबाधे गुरुभिरनभिप्रेक्षितपथे
यथेष्टं चेष्टन्ते स्फुटकुचतटाः पश्य कुलटाः ॥ ४ ॥

कस्यापि ।

3765

नयनविकारैरन्यं वचनैरन्यं विचेष्टितैरन्यम् ।
रमयति सुरतेनान्यं स्त्री बहुरूपा निजा कस्य ॥ ५ ॥

क्षेमेन्द्रस्य ।

3766

पर्यङ्कः स्वास्तरणः पतिरनुकूलो मनोहरं सदनम् ।
तृणमिव लघु मन्यन्ते कामिन्यश्चौर्यरतिलुब्धाः ॥ ६ ॥

3767

दुर्दिवसे घनतिमिरे दुःसंचारासु नगरवीथीषु ।
पत्युर्विदेशगमने परमसुखं जघनचपलायाः ॥ ७ ॥

3768

यः कौमारहरः स एव हि वरस्ता एव चैत्रक्षपा-
स्ते चोन्मीलितमालतीसुरभयः प्रौढाः कदम्बानिलाः ।
सा चैवास्मि तथापि चौर्यसुरतव्यापारलीलाविधौ
रेवारोधसि वेतसीतरुतले चेतः समुत्कण्ठते ॥ ८ ॥

शीलाभट्टारिकायाः ।

3769

दृष्टिं हे प्रतिवेशिनि क्षणमिहाप्यस्मद्गृहे दास्यसि
प्रायेणास्य शिशोः पिता न विरसाः कौपीरपः पास्यति ।
एकाकिन्यपि यामि सत्वरमितः स्रोतस्तमालाकुलं
नीरन्ध्रास्तनुमालिखन्तु जरठच्छेदा नलग्रन्थयः ॥ ९ ॥

विज्जकायाः ।

3770

शुश्रूषस्व गुरूञ्जिवर्तय सखीर्वन्दस्व बन्धुस्त्रियः
कावेरीतटसंनिविष्टनयने मुग्धे किमुत्ताम्यसि ।
आस्ते पुत्रि समीप एव भवनादेलालतालिङ्गन-
न्यञ्चद्वालतमालदन्तुरदरी तत्रापि गोदावरी ॥ १० ॥

कस्यापि ।

3771

भद्रं तस्य तरोः स्वयंकृतचिरप्रस्थान किं कथ्यतां
दुर्वारस्तमरण्यवाह्निरदहद्विग्दारुणं दुर्वचः ।
मा खिद्यस्व ततः प्रभृत्यनुदिनं तस्याः पतद्भिर्दृशो-
रम्भोभिः परिणद्धपल्लवघनच्छायस्तरुर्वर्धते ॥ ११ ॥

कस्यापि ।

3772

इह वटवृक्षे यक्षः प्रतिवसति दिवापि यत्र भयशङ्का ।
तस्मिन्कति नहि वध्वा नीता वीतोदयाः क्षणदाः ॥ १२ ॥

कस्यापि ।

3773

एकाकिनी यदबला तरुणी तथाह-
मस्मद्गृहे गृहपतिश्च गतो विदेशम् ।

किं याचसे तदिह वासमियं वराकी
श्वश्रूर्ममान्धबधिरा ननु मूढ पान्थ ॥ १३ ॥

रुद्रस्य।

3774

शून्यं वेश्म त्विरादृतो गृहपतिर्जाताधुना शर्वरी
स्थातुं नोचितमत्र गच्छ निपुणं लोकैरनालोकितः ।
इत्थं लोलदृशा ह्यसावभिहितो दासीमुखेनाध्वगः
स्थित्वा किंचिदिव क्व यामि रजनी प्राप्तेत्युदीर्य स्थितः ॥ १४॥

कस्यापि।

3775

एकान्ते बत नो गृहं शशिमुखोप्यन्यादृशो दृश्यते
क्षिप्रं साधय याहि पुत्रि सुदिने भुक्त्वान्यमावासकम् ।
श्वश्वा संभ्रमिता किलेति बहुशः संप्रेरयन्त्या वधूः
पान्थं वीक्ष्य बभञ्ज सस्मितमुखी सैवार्धसिद्धौदनम् ॥ १५ ॥

कस्यापि।

3776

स्वामी निःश्वसितेप्यसूयति मनोजिघ्रः सपत्नीजनः
श्वश्रूरिङ्गितदैवतं नयनयोरीहालिहो यातरः ।
तद्दूरादयमञ्जलिः किममुना दृग्भङ्गिभावेन ते
वैदग्धीमदन प्रपञ्चचतुर व्यर्थोयमत्र श्रमः ॥ १६ ॥

3777

दृग्भङ्गभङ्गिमशतैरसतीरहस्य-
मन्वेषयन्कपटभिक्षुक लक्षितोसि ।
स्वस्य प्रभुर्न च भवामि ततः क्षमस्व
भैक्षोपढौकनमिषादयमञ्जलिस्ते ॥ १७ ॥

3778

अनार्य प्रज्ञानामिह जनवधूनां हि मनसो
महाशल्यं कर्णे तव कनकजम्बूकिसलयः ।

भ्रमन्भिक्षाहेतोरधिनगरि बुद्धोसि न मया
त्वयैतावद्वेषः पथिक न विधेयः पुनरपि ॥ १८ ॥
भिक्षाटनस्यैते ।

3779

आयातासि विमुञ्च वेपथुभरं दृष्टासि केनापि नो
नीलं चोलममुं विमुञ्च हरतु स्वेदं निशीथानिलः ।
इत्यन्तर्भयसञ्चकण्ठमसकृद्यामीति तल्पं गता
त्रस्यन्ती परिरभ्यते सुकृतिभिः स्वैरं नवस्वैरिणी ॥ १९ ॥
कस्यापि ।

3780

सव्रीडार्धनिरीक्षणं यदुभयोर्यद्दूतिसंप्रेषण-
मद्य श्वो भविता समागम इति प्रीतिप्रसादश्च यः ।
प्राप्ते कालसमागमे सरभसं यच्चुम्बनालिङ्गनं
तत्कामस्य फलं तदेव सुरतं शेषा पशूनां स्थितिः ॥२०॥

3781

सुखशय्या ताम्बूलं विस्रब्धाश्लेषचुम्बनादीनि ।
तुलयन्ति न लक्षांशं त्वरितक्षणचौर्यसुरतस्य ॥ २१ ॥
कस्यापि ।

3782

इन्दुर्यत्र न निन्द्यते न मधुरं दूतीवचः श्रूयते
नोच्छ्वासा हृदयं दहन्त्यशिशिरा नोपैति कार्श्यं वपुः ।
स्वाधीनामनुकूलिकां स्वगृहिणीमालिङ्ग्य यत्सुप्यते
तत्किं प्रेम गृहाश्रमव्रतमिदं कष्टं समाचर्यते ॥ २२ ॥

---

## अथ ऋतुवर्णने वसन्तस्वभावाख्यानम् ॥ १३३ ॥

3783

असौ मरुच्चुम्बितचारुकेसरः
प्रसन्नताराधिपमण्डलाग्रणीः ।

वियुक्तरामातुरदृष्टिवीक्षितो
वसन्तकालो हनुमानिवागतः ॥ १ ॥

भट्टबीजकस्य ।

3784

कोकिलश्चूतशिखरे मञ्जरीरेणुपिञ्जरः ।
गदितैर्व्यक्ततामेति कुलीनश्चेष्टितैरिव ॥ २ ॥

कस्यापि ।

3785

परिचुम्बति संश्लिष्य भ्रमरश्चूतमञ्जरीम् ।
नवसंगमसंहृष्टः कामी प्रणयिनीमिव ॥ ३ ॥

कस्यापि ।

3786

मल्लिकामुकुले भाति मञ्जु गुञ्जन्मधुव्रतः ।
प्रयाणे पञ्चबाणस्य शङ्खमापूरयन्निव ॥ ४ ॥

3787

सहकारकुसुमकेसरनिकरभरामोदमूर्छितदिगन्ते ।
मधुरमधुविधुरमधुपे मधौ भवेत्कस्य नोत्कण्ठा ॥ ५ ॥

कपिलरुद्रस्य ।

3788

मलयानिलमिलनोल्बणमदकलकलकण्ठकलकलालापः ।
मधुरमधुविधुरमधुपो मधुरयमधुना धिनोति धराम् ॥ ६ ॥

भट्टरुद्रस्य ।

3789

मन्दोयं मलयानिलः किसलयं चूतद्रुमाणां नवं
माद्यत्कोकिलकूजितं विचकिलामोदः पुराणं मधु ।
बाणानित्युपदीकरोति सुरभिः पञ्चैव पञ्चेषवे
यूनामिन्द्रियपञ्चकस्य युगपत्संमोहसंपादिनः ॥ ७ ॥

श्रीपालकविराजस्य ।

3790

उद्यद्विद्रुमकान्तिभिः किसलयैस्ताम्रां त्विषं बिभ्रतो
भृङ्गालीविरुतैः कलैरविशदव्याहारलीलाभृतः ।

घूर्णन्तो मलयानिलाहतिचलैः शाखासमूहैर्मुहु-
र्भ्रान्तिं प्राप्य मधुप्रसङ्गजनितां मत्ता इवामी द्रुमाः ॥ ८ ॥

श्रीहर्षस्य

3791

प्रसूनभृङ्गैर्मकरन्दतोयं
सलीलमादाय वसन्तकामी ।
वनस्थलीवामदृशां मुखानि
सिञ्चत्यसौ मन्दमरुत्करेण ॥ ९ ॥

कस्यापि ।

3792

स्थाने स्थाने मलयमरुतः पूरयन्त्यङ्कपालीं
पुष्पालीषु स्मरगजरजःस्नानयोग्यः परागः ।
जातं चूते मधु मधुकरप्रेयसीजानुदघ्नं
निर्विघ्नत्वं सपदि भजते राजराज्याभिषेकः ॥ १० ॥

बिल्हणस्य ।

3793

कमलिनीमलिनी दयितं विना
न सहते सह तेन निषेवितुम् ।
तमधुना मधुना निहितं हृदि
स्मरति सा रतिसारमहर्निशम् ॥ ११ ॥

3794

किंशुककलिकान्तर्गतमिन्दुकलास्पर्धि केसरं भाति ।
रक्तनिचोलकपिहितं धनुरिव जतुमुद्रितं वितनोः ॥ १२ ॥

विज्जकायाः ।

3795

त्यजत मानमलं बत विभ्रहै-
र्न पुनरेति गतं चतुरं वयः ।
प्रभृताभिरितीव निवेदिते
स्मरमते रमते स्म वधूजनः ॥ १३ ॥

कालिदासस्य ।

3796

प्रियसखीसदृशं प्रतिबोधिताः
किमपि काम्यगिरा परपुष्टया ।
प्रियतमाय वपुर्गुरुमत्सर-
च्छिदुरयादुरयाचितमङ्गनाः ॥ १४ ॥

माघकवेः ।

## अथ मदनपूजा ।

3797

कुसुमसुकुमारमूर्तिर्दधती नियमेन तनुतरं मध्यम् ।
आभाति मकरकेतोः पार्श्वस्था चापयष्टिरिव ॥ १५ ॥

3798

अनङ्गोयमनङ्गत्वमद्य निन्दिष्यति ध्रुवम् ।
यदनेन न संप्राप्तः पाणिस्पर्शोत्सवस्तव ॥ १६ ॥

श्रीहर्षस्यैतौ ।

## अथ कुसुमावचयः ।

3799

असंख्यपुष्पोपि मनोभवस्य
पञ्चैव बाणार्थमयं ददाति ।
एवं कदर्यत्वमिवावधार्य
सर्वस्वमग्राहि मधोर्वधूभिः ॥ १७ ॥

3800

अताडयत्पल्लवपाणिनैकां
पुष्पोच्चये राजवधूमशोकः ।
तच्छेदहेतोरलिपङ्क्तिभङ्ग्या
निकृन्ततीवासिलता स्मरेण ॥ १८ ॥

बिल्हणस्यैतौ ।

3801

उच्चित्य प्रथममधःस्थितं मृगाक्षी
पुष्पौघं भ्रितविटपं महीतुकामा ।
आरोढुं चरणमदादशोकपृष्ठे
मूलात्पुनरपि तेन पुष्पितोसौ ॥ १९ ॥

जयमाधवस्य ।

3802

पूर्वं द्विरेफपरिभूतिभयाद्भवत्या
यत्केशपुष्पभरणं हरिणाक्षि मुक्तम् ।
व्यर्थं तदद्य पुनरप्यलकेषु भृङ्गाः
पुञ्जीभवन्निजकुलभ्रमतः पतन्ति ॥ २० ॥

कस्यापि ।

3803

पाणौ पद्मधिया मधूककुसुमभ्रान्त्या तथा गण्डयो-
र्नीलेन्दीवरशङ्कया नयनयोर्बन्धूकबुद्ध्याधरे ।
लीयन्ते कबरीभरे निजकुलव्यामोहजातस्पृहा
दुर्वारा मधुपाः कियन्ति तरुणि स्थानानि रक्षिष्यसि ॥ २१ ॥

अचलस्य ।

3804

सन्तु द्रुमाः किसलयोत्तरपुष्पभाराः
प्राप्ते वसन्तसमये कथमित्थमेव ।
न्यासैर्नवद्युतिमतोः पदयोस्तवेयं
भूः पुष्पिता सुतनु पल्लविता च भाति ॥ २२ ॥

सूक्तिसहस्रात् ।

3805

इदमिदमिति भूरुहां प्रसूनै-
र्मुहुरभिलोभयता पुरः पुरोन्या ।
अनुरहसमनायि नायकेन
त्वरयति रन्तुमहो जनं मनोभूः ॥ २३ ॥

माघकवेः ।

3806

निपीयमानस्तबका शिलीमुखै-
रशोकयष्टिश्चलबालपल्लवा ।
विडम्बयन्ती ददृशे वधूजनै-
रमन्ददष्टौष्ठकरावधूननम् ॥ २४ ॥

भारवेः ।

## अथ वसन्तवायवः ।

3807

पानीयं नालिकेरीफलकुहरकुहूत्कारि कल्लोलयन्तः
कावेरीतीरतालद्रुमभरितसुराभाण्डभांकारचण्डाः ।
एते तन्वन्ति वेलावनललितलताताण्डवं द्राविडस्त्री-
कर्पूरापाण्डुगण्डस्थललुठितरया वायवो दाक्षिणात्याः ॥२५॥

बिल्हणस्य ।

3808

सललितमलकानां वल्लरीर्नर्तयन्तो
मधुसुरभिमुखाब्जोच्छ्वासगन्धानुबन्धाः ।
उपरतरतभाजां योषितां स्वेदबिन्दू-
न्सतृष इव पिबन्तो वान्ति मन्दं समीराः ॥ २६ ॥

कस्यापि ।

3809

कावेरीवारिवेल्लल्लहरिपरिकरक्रीडनक्रीतशीत-
स्फीतश्रीखण्डखण्डभ्रमणभरभवद्भूरिसौरभ्यगर्भाः ।
चोलस्त्रीचीनचेलाञ्चलकलनकलाक्रान्तकान्तस्तनान्ता
वान्ति प्रेयोवियोगातुरतरतरुणीवैरिणोमी समीराः ॥ २७ ॥

कृष्णपिल्लस्य ।

3810

उदञ्चत्कावेरीलहरिषु परिष्वङ्गरङ्गे नटन्तः
कुहूकण्ठीकण्ठीरवरवलवत्रासितप्रोषितेभाः ।

अमी चैत्रे मैत्रावरुणितरुणीकेलिकङ्केल्लिमल्ली-
चलद्वल्लीहल्लीसकसुरभयश्चण्डि चञ्चन्ति वाताः ॥ २८ ॥

3811

कावेरीतीरभूमीरुहभुजगवधूभुक्तमुक्तावशिष्टः
कार्णाटीचीनपीनस्तनवसनदशान्दोलनस्पन्दमन्दः ।
लोलल्लाटीललाटालकललितलतालास्यलीलाविलोलो
हा कष्टं दाक्षिणात्यः प्रसरति पवनः पान्थकान्ताकृतान्तः ॥ २९ ॥

राक्षसपण्डितयोरेतौ ।

3812

चञ्चत्कर्पूरचौरा मलयगिरिगुरुग्रावदावादवाप्ता
मन्दानन्दैर्मिलिन्दैरहमहमिकयानुद्रुता दूरपान्थाः ।
कावेरीवारिसेकाविरलतरतरङ्गीरवानीरसिक्ता
मुक्तार्द्राः खेदनिद्रालव इव पवनास्तालवन्यां विशन्ति ॥ ३० ॥

कस्यापि ।

3813

चूतश्रेणीपरिमलमुषश्चञ्चरीकानुयाता
भूयो भूयः कुवलयकुटीकोटरे लीयमानाः ।
मन्दं मन्दं सुरतविरतौ वान्ति सीमन्तिनीनां
गण्डाभोगभ्रमजललवग्राहिणो गन्धवाहाः ॥ ३१ ॥

कस्यापि ।

3814

भिन्दन्तश्चन्दनालीं बकुलमुकुलजां धूलिमुद्धूलयन्त-
श्चुम्बन्तश्चूतवाटीपरिमललहरीं चम्पकान्कम्पयन्तः ।
आरादारामसीमातटघटितघटीयन्त्रनिर्घातवारां
धारामाराधयन्तः श्रमजलभिदुरा वान्त्यमी गन्धवाहाः ॥ ३२ ॥

कस्यापि ।

3815

लीलादोलातिखेलारसरभसलसच्चीनचेलाञ्चलानां
चोलीनामापिबन्तो मृगमदसुरभिस्वेदबिन्दूनमन्दान् ।

लोलन्तः केरलीनां कुचकलशलसत्कुङ्कुमालेपनेषु
श्लिष्यन्तो मालवीनां मलयजमृदुलाः कञ्चुलीर्वान्ति वाताः ॥ ३३ ॥

श्रीधनदेवानाम् ।

3816

ये दोलाकेलिकाराः किमपि मृगदृशां मानतन्तुच्छिदो ये
सद्यः शृङ्गारदीक्षाव्यतिकरगुरवो ये च लोकत्रयेपि ।
ते कण्ठे लोलयन्तः परभृतवयसां पञ्चमं रागराजं
वान्ति स्वैरं समीराः स्मरविजयमहासाक्षिणो दाक्षिणात्याः ॥३४॥

कस्यापि ।

## अथ वसन्तपथिकः ।

3817

हे पान्थाः स्वगृहाणि गच्छत सुखं सेवाक्षणो मुच्यतां
मानं मानिनि मुञ्च वल्लभजने कोपानुबन्धेन किम् ।
आयातः कुसुमाकरः क्षपयति प्राणान्वियोगातुरे-
ष्वित्येवं परपुष्टनादपटहो वक्तीव कामाज्ञया ॥ ३५ ॥

3818

वक्रेण शिरसि निहितो नित्यं रुधिरारुणेन दुर्वारः ।
मत्तद्विप इव पथिकः किंशुककुसुमाङ्कुशेन धृतः ॥ ३६ ॥

3819

एतस्मिन्दाक्षिणात्यानिलचलितलतालीनमत्तालिमाला-
पक्षक्षोभावधूतच्युतबहलरजोह्लादिहृद्ये वसन्ते ।
प्रेमस्वेदार्द्रबाहुश्रथवलयलसत्प्रौढसीमन्तिनीनां
मन्दः कण्ठग्रहोपि ग्लपयति हृदयं किं पुनर्विप्रयोगः ॥३७॥

केषामप्येते ।

3820

उन्मीलन्मधुगन्धलुब्धमधुपव्याधूतचूताङ्कुर-
क्रीडत्कोकिलकाकलीकलकलैरुद्दीर्णकर्णज्वराः ।

नीयन्ते पथिकैः कथं कथमपि ध्यानावधानक्षण-
प्राप्तप्राणसमासमागमरसोल्लासैरमी वासराः ॥ ३८ ॥

जयदेवस्य ।

3821

अध्वन्यैर्मकरन्दसीकरसुरामत्तक्वणत्कोकिले
मार्गे मार्गनिरोधिनी परिहता शङ्के शुभाशङ्क्या ।
पान्थस्त्रीवधपातकादुपनतं चण्डालचिह्नं मधो-
रेषा किङ्किणिकेव षट्पदमयी झांकारिणी संहतिः ॥ ३९ ॥

कस्यापि ।

3822

सव्याधेः कृशता क्षतस्य रुधिरं दृष्टस्य लालास्रुतिः
किंचिन्नैतदिहास्ति तत्कथमसौ पान्थस्तपस्वी मृतः ।
आ ज्ञातं मधुलम्पटैर्मधुकरैरारब्धकोलाहले
नूनं साहसिकेन चूतमुकुले दृष्टिः समारोपिता ॥ ४० ॥

रामिलसोमिलयोः ।

3823

अध्वन्यस्य वधूर्वियोगविधुरा भर्तुः स्मरन्ती यदि
प्राणानुज्झति कस्य तत्खलु महत्संजायते पातकम् ।
यावन्नो कृतमध्वगेन हृदये तावत्तरोर्मूर्धनि
प्रोद्भुटं परपुष्टया तव तवेत्युच्चैर्वचोनेकशः ॥ ४१ ॥

कस्यापि ।

---

## अथ ग्रीष्मस्वभावाख्यानम् ॥ १३४ ॥

3824

तप्ता मही विरहिणामिव चित्तवृत्ति-
स्तृष्णाध्वगेषु कृपणेष्विव वृद्धिमेति ।
सूर्यः करैर्दहति दुर्वचनैः खलो नु
छाया सतीव न च मञ्चति पादमूलम् ॥ १ ॥

कस्यापि ।

3825

प्रतिगतमर्थिजनानां विच्छिन्नाशं समूहमवलोक्य ।
स्फुटितमपयशस्तापादिव हृदयतलं तडागस्य ॥ २ ॥

कस्यापि ।

3826

मुखकृतबिसखण्डश्चण्डमार्तण्डतापा-
स्तितजलजतलस्थो राजते राजहंसः ।
रजतघट इवायं विद्रुमाबद्धधारा-
विवरविगलदम्बुः कम्बुकण्ठि प्रतीहि ॥ ३ ॥

कस्यापि ।

3827

अङ्गारैः खचितेव भूर्वियदपि ज्वालाकरालं करै-
स्तिग्मांशोः किरतीव तीव्रमभितो वायुः कुकूलानलम् ।
अप्यम्भांसि नखंपचानि सरितामाशा ज्वलन्तीव च
ग्रीष्मेस्मिन्नववह्निदीपितमिवाशेषं जगद्वर्तते ॥ ४ ॥

श्रीभोजदेवस्य ।

3828

कानि स्थानानि दग्धान्यतिशयगहनाः सन्ति के वा प्रदेशाः
किं वा शेषं वनस्य स्थितमिति पवनासङ्गविस्पष्टतेजाः ।
चण्डज्वालावलीढस्फुटिततरुलतास्रन्थिमुक्ताट्टहासो
दावाग्निः शुष्कवृक्षे शिखरिणि गहनेधिष्ठितः पश्यतीव ॥ ५ ॥

भीमस्य ।

3829

बाले मालेयमुच्चैर्न भवति गगनव्यापिनी नीरदानां
किं त्वं पक्ष्मान्तवातैर्मलिनयसि मुधा वक्त्रमश्रुप्रवाहैः ।
एषा प्रोद्वृत्तमत्तद्विपकटकषणक्षुण्णविन्ध्योपलानां
दावाग्नेः संप्रवृद्धा मलिनयति दिशां मण्डलं धूमलेखा ॥ ६ ॥

धाराकदम्बस्य ।

3830

स्फीतं शीतं गतं क्व क्व शिशिरकिरणः क्वास्ति हेमन्तवासः
क्वैते पानीयपूर्णा मलिनजलधराः क्वाद्य विद्युत्प्रमोदः ।

इत्युच्चैर्जल्पमानैरिव मुखरमुखैर्झिल्लिदूतैरुपेतो-
वात्यैवैश्वागतोसौ प्रकटितविजयस्तम्भचिह्नैर्निदाघः ॥ ७ ॥

3831

पाश्चात्यैर्मरुमारुतैस्त्रिजगतामुन्मूलयन्नार्द्रतां
दावाग्निज्वलितैरपारगहनान्यप्यानयन्भस्मताम् ।
वात्याभिस्तृणपत्रधूलिनिकरान्धुन्वन्विहायःस्थले
ग्रीष्मः शुष्यदतुच्छपल्वललुठन्मत्स्यः समभ्यागतः ॥ ८ ॥

एतौ शार्ङ्गधरस्य ।

3832

निजां कायच्छायां भ्रयति महिषः कर्दममिव
च्युतं गुञ्जापुञ्जं रुधिरमिव काकः कलयति ।
समुत्सर्पन्सर्पः सुषिरविवरं तापविवशः
सचीत्काराधूतं प्रविशति करं कुञ्जरपतेः ॥ ९ ॥

क्षेमेन्द्रस्य ।

3833

अत्यच्छं सितमंशुकं शुचि मधु स्वामोदमच्छं रजः
कार्पूरं विधृतार्द्रचन्दनकुचद्वन्द्वाः कुरङ्गीदृशः ।
धारावेश्म सपाटलं विचकिलस्रग्दाम चन्द्रत्विषो
धातः सृष्टिरियं वृथैव तव न ग्रीष्मोभविष्यद्यदि ॥ १० ॥

श्रीभोजदेवस्य ।

3834

तदात्वस्नातानां दरदलितमल्लीमुकुलिताः
स्रजो बिभ्राणानां मलयजरसार्द्रार्द्रवपुषाम् ।
निदाघाग्निश्लेषग्लपितमभिसायं मृगदृशां
परिष्वङ्गेनङ्गं पुनरपि शनैरङ्कुरयति ॥ ११ ॥

कस्यापि ।

अथ मध्याह्नः ।

3835

दुःसहतापभयादिव संप्रति मध्यस्थिते दिवसनाथे ।
छायामिव वाञ्छन्ती छायापि गता तरुतलानि ॥ १२ ॥

श्रीमदवन्तिवर्मणः ।

3836

एष सूर्यांशुसंतप्तो मृगः कुतरुमाश्रितः ।
साधुर्भाग्यपरिक्षीणो नीचं प्राप्येव सीदति ॥ १३ ॥

कस्यापि ।

3837

धत्ते पङ्कजिनीतले गुरुभयं स्वं कर्णतालं द्विपः
सस्यस्तम्बरसान्नियच्छति शिखी मध्येशिखण्डं शिरः ।
मिथ्या लेढि मृणालकोटिकुटिलं दंष्ट्राङ्कुरं सूकरो
मध्याह्ने महिषश्च वाञ्छति निजच्छायामहाकर्दमम् ॥१४॥

राजशेखरस्य ।

3838

रवेर्मयूखैरभितापितो भृशं
विदह्यमानः पथि तप्तपांसुभिः ।
अवाक्फणो जिह्मगतिः श्वसन्मुहुः
फणी मयूरस्य तले निषीदति ॥ १५ ॥

कस्यापि ।

3839

तरुणतरणितेजःपुञ्जसंतप्तदेहः
पतति जरठखड्गः पल्वले पङ्कगेहः ।
हरिरपि सलिलार्थी शङ्कया तस्य नीरं
न पिबति न च याति क्लिश्यति प्राप्य तीरम् ॥१६॥

शार्ङ्गधरस्य ।

3840

सर्पत्सारणिवारिशीतलतले विन्यस्तपुष्पोत्करे
नीरन्ध्रे कदलीवने गुरुदलच्छायाहतार्कत्विषि ।
कर्पूरागुरुपङ्कपिच्छिलघनोत्तुङ्गस्तनालिङ्गिभिः
कान्ताकेलिरतै रहः सुकृतिभिर्मध्यंदिनं नीयते ॥ १७ ॥

कस्यापि ।

अथ जलकेलिः ।

3841

करौ धुनाना नवपल्लवाकृती
पयस्यगाधे किल जातसंभ्रमा ।

सखीषु निर्वाच्यमधार्ष्ट्यदूषितं
प्रियाङ्गसंश्लेषमवाप मानिनी ॥ १८ ॥

3842

तथा न पूर्वं कृतभूषणोद्धुरः
प्रियेण रागेण विलासिनीजनः ।
यथा जलार्द्रा नखमण्डनश्रिया
ददाह दृष्टीः प्रतिपक्षयोषिताम् ॥ १९ ॥

3843

तिरोहितान्तानि नितान्तमाकुलै-
रपां विगाहादलकैः प्रसारिभिः ।
दधुर्वधूनां वदनानि तुल्यतां
द्विरेफवृन्दान्तरितैः सरोरुहैः ॥ २० ॥

एते भारवेः ।

3844

संक्षोभं पयसि मुहुर्महेभकुम्भ-
श्रीभाजा कुचयुगलेन नीयमाने ।
विश्लेषं युगमगमद्रथाङ्गनाम्नो-
रुद्वृत्तः क इव सुखावहः परेषाम् ॥ २१ ॥

माघकवेः ।

3845

आत्तमात्तमधिकान्तमुक्षितुं
कातरा शफरशङ्किनी जहौ ।
अञ्जलौ जलमधीरलोचना
लोचनप्रतिशरीरलाञ्छितम् ॥ २२ ॥

कलशस्य ।

3846

अविरतमिदमम्भः स्वेच्छयोच्छालयन्त्या
विकचकमलकान्तोत्तानहस्तद्वयेन ।

परिकलित इवार्घः कामबाणातिथिभ्यः
सलिलमिव वितीर्णं बाल्यलीलासुखाय ॥ २३ ॥

कस्यापि ।

3847

ललितमुरसा तरन्ती तरलतरंगौघचालितनितम्बा ।
विपरीतरतासक्तेव दृश्यते सरसि सा सख्या ॥ २४ ॥

अमरुकस्य ।

3848

उन्मृष्टपत्राः कलितालकान्ताः
कण्ठेषु लग्ना जघनं स्पृशन्तः ।
स्तनस्थलेष्वाहतिमादधाना
गता वधूनां प्रियतां जलौघाः ॥ २५ ॥

3849

हृतोङ्गरागस्तिलकं विमृष्टं
लब्धान्तरैरेभिरितीव मत्वा ।
सुसंहतेनेति तदा जलाना-
मादायि मध्यं न कुचद्वयेन ॥ २६ ॥

जयमाधवस्यैतौ ।

3850

जलनिबिडितवस्त्रव्यक्तनिम्नोन्नताभिः
समकलि तटभूमिः स्नानमात्रोत्थिताभिः ।
रुचिरकनककुम्भश्रीमदाभोगतुङ्ग-
स्तनविनिहितहस्तस्वस्तिकाभिर्वधूभिः ॥ २७ ॥

भवभूतेः ।

## अथ ग्रीष्मवायवः ।

3851

कारञ्जीः कुञ्जयन्तो निजजठररवव्यञ्जितावीरकोशा-
नुत्पाकान्कृष्णलानां पृथुसुषिरगताञ्शिम्बिकान्पाटयन्तः ।

झिल्लीकाझल्लरीणां बधिरितककुभं झंकृतं खे क्षिपन्तः
शिञ्जानाश्वत्थपत्त्रप्रकरक्षणझणाराविणो वान्ति वाताः ॥ २८ ॥
बाणभट्टस्य ।

3852

व्योमव्यालोलमुक्ताफलधवलगलद्विन्दुसंदोहगर्भा-
नम्भोदाम्भर्त्सयित्वा दिशि दिशि भुवने भीतिमुद्भावयन्तः ।
एते रक्षोमृगाक्षीगतलुलितमरुत्क्षोभसंरम्भरूक्षा
वाताः पातालकुक्षिस्थितमपि सलिलं तत्क्षणाद्भक्षयन्ति ॥ २९ ॥
श्रीदेवदासदेवानाम् ।

3853

आध्मातोद्धतदाववह्निसुहृदः कीर्णोष्णरेणूत्कराः
संतप्ताध्वगमुक्तखेदविषमश्वासोष्मसंवादिनः ।
तृष्णार्ताजगरायतास्यकुहरक्षिप्तप्रवेशोत्कटा
भूभङ्गैरिव तर्जयन्ति पवना दग्धस्थलीकज्जलैः ॥ ३० ॥
क्षेमेन्द्रस्य ।

## अथ ग्रीष्मपथिकः ।

3854

सर्वाशारुधि दग्धवीरुधि सदा सारङ्गबद्धक्रुधि
क्षामक्ष्मारुहि मन्दमुन्मधुलिहि स्वच्छन्दकुन्दद्रुहि ।
शुष्यत्स्रोतसि तप्तभूरिरजसि ज्वालायमानार्णसि
ज्येष्ठे मासि खरार्कतेजसि कथं पान्थ व्रजञ्जीवसि ॥३१॥

3855

ग्रीष्मोष्मप्लोषशुष्यत्पयसि बकभयोद्भ्रान्तपाठीनभाजि
प्रायः पङ्केकमात्रं गतवति सरसि स्वल्पतोये लुठित्वा ।
कृत्वा कृत्वा जलार्द्रीकृतमुरसि जरत्कर्पटार्धं प्रपायां
तोयं जग्ध्वापि पान्थः पथि वहति हहा हेति कुर्वन्निपास्युः ॥३२॥

3856

वाताकीर्णविशीर्णवीरणतृणश्रेणीझणत्कारिणि
ग्रीष्मे सोष्मणि चण्डसूर्यकिरणप्रक्वाथ्यमानाम्भसि ।

चित्तारोपितकामिनीमुखशशिज्योत्स्नाहतक्लान्तयो
मध्याह्नेपि सुखं प्रयान्ति पथिकाः स्वं देशमुत्कण्ठिताः ॥ ३३ ॥

3857

भ्राम्यच्चीत्कारचक्रभ्रमभरितघटीयन्त्रचक्रप्रमुक्त-
स्रोतःपूर्णप्रणालीपथसरणिशिरासारिसीत्कारि वारि ।
कौपं पान्थाः प्रकामं सितमणिमुसलाकारविस्फारधारं
विक्षिप्तक्षुण्णमुक्ताकणनिकरनिभासारपातं पिबन्ति ॥ ३४ ॥

बाणभट्टस्यैते ।

## अथ प्रपापालिका ।

3858

अङ्गुल्यग्रनिरोधतस्तनुतरां धारामियं कुर्वती
कर्कर्या न परं पयो निपुणिका दातुं प्रपापालिका ।
विश्लिष्टाङ्गुलिना करेण दशनापीडं शनैः पान्थ हे
निष्पन्दोर्ध्वविलोचनस्त्वमपि हा जानासि पातुं पयः ॥ ३५ ॥

कस्यापि ।

3859

दूरादेव कृतोञ्जलिर्न तु पुनः पानीयपानोचितो
रूपालोकनकौतुकात्प्रचलितो मूर्धा न शान्त्या तृषः ।
रोमाञ्चोपि निरन्तरं प्रकटितः प्रीत्या न शैत्यादपा-
मक्षुण्णो विधिरध्वगेन विहितो वीक्ष्य प्रपापालिकाम् ॥ ३६ ॥

बाणभट्टस्य ।

3860

गन्तुं सत्वरमीहसे यदि पुनर्व्यालोलवेणीलतां
द्रष्टुं वा स्वकुटुम्बिनीमनुदिनं कान्तां समुत्कण्ठसे ।
तत्तृष्यन्नपि मुग्धमन्थरचलन्नेत्रान्तरुद्धाध्वगा-
मेतां दूरत एव हे परिहर भ्रातः प्रपापालिकाम् ॥ ३७ ॥

कस्यापि ।

3861

मध्याह्नेतिखरे निदाघसमये तापो घनो वर्तते
शीते कुञ्जवटे विचित्रविटपे भोः पान्थ विश्राम्यताम् ।

एकाकी च भवानहं च तरुणी शून्या प्रपा वर्तते
लज्जामि ब्रुवती स्वयं तु चतुरो जानासि कालोचितम् ॥ ३८ ॥
कस्यापि ।

---

## अथ वर्षास्वभावाख्यानम् ॥ १३५ ॥

3862

शीतलादिव संत्रस्तं प्रावृषेण्यान्नभस्वतः ।
नभो बभार नीरन्ध्रं जीमूतकुलकम्बलम् ॥ १ ॥
सर्वसस्य ।

3863

अस्थिरमनेकरागं गुणरहितं नित्यदुष्प्रापम् ।
प्रावृषि सुरेन्द्रचापं विभाव्यते युवतिचित्तमिव ॥ २ ॥
शक्रवृद्धेः ।

3864

स्फुरन्तः पिङ्गलाभासो धरण्यामिन्द्रगोपकाः ।
सरक्ताः पान्थपत्नीनां जीवा इव चकासिरे ॥ ३ ॥
कस्यापि ।

3865

आकर्ण्य स्मरयौवराज्यपटहं जीमूतधीरध्वनिं
नृत्यत्केकिकुटुम्बकस्य दधतं मन्द्रां मृदङ्गक्रियाम् ।
उन्मीलन्नवनीलकन्दलदलव्याजेन रोमाञ्चिता
हर्षेणेव समुच्छ्रितान्वसुमती दध्रे शिलीन्ध्रध्वजान् ॥ ४ ॥
त्रिविक्रमभट्टस्य ।

3866

नन्दयति कस्य न मनश्चपलैर्वनधूलिधूसरच्छायैः ।
आक्रम्य पुत्रकैरिव मलिनीकृतमम्बरं जलदैः ॥ ५ ॥

3867

मलिनहुतभुग्धूमश्यामैर्दिशो मलिना घनै-
रविरलतृणैः श्यामा भूमिर्नवोद्गतकन्दलैः ।

सुरतसुभगो नूनं कालः स एव समागतो
मरणशरणा यस्मिन्नेते भवन्ति वियोगिनः ॥ ६ ॥

विज्जकायाः ।

3868

वज्रेण त्रिजगत्पतेर्बलरिपोरच्छिन्नपक्षाः पुरा
ये भीता निममज्जुरब्धिजठरे ते लूनपक्षाग्गिरीन् ।
आश्वास्य व्रणदुःखजां शमयितुं तेषामुदग्रव्यथा-
मुत्तस्थुर्जलदच्छलेन जलधेरूढाम्भसः पर्वताः ॥ ७ ॥

सूक्तिसहस्रात् ।

3869

क्षपाः क्षामीकृत्य प्रसभमपहृत्याम्बु सरितां
प्रताप्योर्वीं कृत्स्नां तरुगहनमुच्छोष्य सकलम् ।
क्व संप्रत्युष्णांशुर्गत इति तदन्वेषणपरा-
स्तडिद्दीपालोका दिशि दिशि चरन्तीह जलदाः ॥ ८ ॥

पाणिनेः ।

3870

दिशां हाराकाराः शमितशमभारा अपि मुनेः
ससूचीसंचाराः कृतमदविकाराश्च शिखिनाम् ।
हताध्वव्यापारास्तुहिनकणसारा विरहिणी-
मनःकीर्णाङ्गाराः किरति जलधारा जलधरः ॥ ९ ॥

कस्यापि ।

3871

मन्दं मुद्रितपांसवः परिपतज्झांकारिझञ्झामरु-
द्वेगध्वस्तकुटीरकाग्रनिपतच्छिद्रेषु लब्धान्तराः ।
कर्मव्यग्रकुटुम्बिनीकुचभरप्रस्वेदभेदाच्छिदः
प्रारम्भे मदयन्ति कन्दलदलोल्लासाः पयोबिन्दवः ॥ १० ॥

कस्यापि ।

3872

किंचिन्मुद्रितपांसवः शिखिकुलैरुत्कण्ठमालोकिता
जीर्णावासरुदद्दरिद्रगृहिणीश्वासानिलैर्जर्जराः ।

एते ते निपतन्ति नूतनघनात्यावृड्भरारम्भिणो
विच्छायीकृतविप्रयुक्तवनितावक्त्रेन्दवो बिन्दवः ॥ ११ ॥

3873

मेघाटोपैः स्तनितसुभगं वीक्ष्य खं हस्तिदन्तैः
कृत्वा भित्तीरुपरि सदनं चामरैश्छादयित्वा ।
कर्पूरैस्तां मृगमदरसैर्भूमिमालिप्य शेते
सैंहे चर्मण्युरसि दयिताबाहुरूढः पुलिन्दः ॥ १२ ॥

3874

रटतु जलधरः पतन्तु धाराः
स्फुरतु तडिन्मरुतोपि वान्तु काले ।
इयमुरसि महौषधीव कान्ता
निखिलभयप्रतिघातिनी स्थिता मे ॥ १३ ॥

केषामप्येते ।

3875

उन्निद्रकन्दलदलान्तरलीयमान-
गुञ्जन्मदान्धमधुपे नवमेघकाले ।
स्वप्नेपि यः प्रवसति प्रविहाय कान्तां
तस्मै विषाणरहिताय नमो वृषाय ॥ १४ ॥

राहुलकस्य ।

3876

काले नीलबलाहके सतडिति प्रीतिप्रदे बर्हिणा-
माश्चर्यं कथयामि वः शृणुत भो यद्वृत्तमस्मद्गृहे ।
सौभाग्यव्ययशङ्क्यैकशयने कान्ताप्रियाभ्यामहो
मानिभ्यां बत रात्रिमेव सकलां चीर्णं प्रवासिव्रतम् ॥ १५ ॥

कस्यापि ।

अथ दोलाकेलिः ।

3877

सौन्दर्यमिन्दीवरलोचनानां
दोलासु दोलासु यदुल्ललास ।

यदि प्रसादाल्लभते कवित्वं
जानाति तद्वर्णयितुं मनोभूः ॥ १६ ॥

3878

प्रसार्य पादौ विहितस्थितीनां
दोलासु लोलांशुकपल्लवानाम् ।
मनोरथानामपि यत्र गम्यं
तद्दृष्टुमापुः सुदृशां युवानः ॥ १७ ॥

3879

उन्नम्य दूरं मुहुरानमन्त्यः
कान्ताः श्रथीभूतनितम्बबिम्बाः ।
दोलाविलासेन जितश्रमत्वा-
त्प्रकर्षमापुः पुरुषायितेषु ॥ १८ ॥

बिल्हणस्यैते ।

3880

प्रत्यासन्नसखीकराम्बुजयुगप्रेङ्खोलितां प्रेङ्खिका-
मारुह्येयमुदस्तहारलतिका व्यावृत्ततुङ्गस्तनी ।
दृष्टादृष्टमुखी गतागतवशादालोलमानांशुका
तन्वङ्गी गगने करोति पुरतः शातह्रदं विभ्रमम् ॥ १९ ॥

नाथकुमारस्य ।

## अथ वर्षावायवः ।

3881

धाराधौतं धुनानाः शशधरधवलं केसरं केतकीनां
कैलासे किंनरीणां चलदलकलतालास्यलीलां दधानाः ।
आमूलं मानिनीनां मनसि च विहितं मानमुन्मूलयन्तो
वान्त्येते वारिवाह व्यतिकरशिशिराः प्रावृषेण्याः समीराः ॥२०॥

कस्यापि ।

3882

एते ते दुरतिक्रमक्रमिलद्धर्मोर्मिमर्मच्छिदः
कादम्बेन रजोभरेण ककुभो रुन्धन्ति झञ्झानिलाः ।

गाढारम्भनिगूढनीरदघटासंघट्टनीलीभव-
द्व्योमक्रोडकटाहपातुकपयोवेणीकणग्राहिणः ॥ २१ ॥
कृष्णपिङ्गस्य ।

## अथ वर्षापथिकः ।

3883

गर्ज वा वर्ष वा मेघ मुञ्च वाशनितोमरान् ।
गणयन्ति न शीतोष्णं वल्लभाभिमुखा जनाः ॥ २२ ॥
कस्यापि ।

3884

उपरि पयोधरमाला दूरे बाला किमेतदापतितम् ।
हिमवति दिव्यौषधयः कोपाविष्टः फणी शिरसि ॥ २३ ॥
श्रीभोजदेवस्य ।

3885

किं गतेन यदि सा न जीवति
प्राणिति प्रियतमा तथापि किम् ।
इत्युदीक्ष्य नवमेघमालिकां
न प्रयाति पथिकः स्वमन्दिरम् ॥ २४ ॥
भर्तृहरेः ।

3886

उपरि घनं घनपटलं तिर्यग्गिरयोपि नर्तितमयूराः ।
क्षितिरपि कन्दलधवला दृष्टिं पथिकः क्व पातयतु ॥ २५ ॥
कस्यापि ।

3887

बर्ही रौति बका रटन्ति तडितो भ्राम्यन्त्यतिव्याकुला
विक्रोशन्ति घनाघनाश्च विलपत्युच्चैर्बलाकावलिः ।
आत्मानं मरुतः क्षिपन्ति सलिलासारः पतत्यग्रतो
मुक्त्वा प्रावृषि साहसैकरसिके याति प्रियामध्वगे ॥ २६ ॥
कस्यापि ।

3888

नृत्यच्चन्द्रकिणि क्वणन्मधुलिहि श्यामायमानक्षितौ
धीरध्वानपयोमुचि प्रविलसत्सौदामिनीदामनि ।

धाराम्भःकणवाहिशीतमरुति प्राणान्पयोदागमे
हा हा हास्यति मुग्धिका नववधूरित्यध्वगः क्रन्दति ॥ २७ ॥

कस्यापि ।

3889

श्रुत्वा बालमृगीविलोलनयना शब्दं घनानां पुरा
भीत्या वक्षसि संस्तृतापि निविडं भूयः समालिङ्गति ।
या वक्त्रादपहृत्य गोपितवती कण्ठे ममैवाननं
सा द्रक्ष्यत्यधुना कथं नु विरहे बाला पयोदावलीम् ॥२८॥

दुर्गसेनस्य ।

3890

रसति तरुणीकेशश्यामे पयोभृति निर्भरं
स्फुरति चपले वारं वारं क्षणद्युतितेजसि ।
उपगुरुजनं मन्ये दैन्यात्पराङ्मुखसुप्रया
निभृतनिभृतं मन्दोच्छ्वासं तया बत रुद्यते ॥ २९ ॥

जीवनागस्य ।

3891

रात्रौ वारिभरालसाम्बुदरवोद्विग्नेन जाताश्रुणा
पान्थेनात्मवियोगदुःखपिशुनं गीतं तथोत्कण्ठया ।
आस्तां जीवितहारिणः प्रवसनालापस्य संकीर्तनं
मानस्यापि जलाञ्जलिः सरभसं लोकेन दत्तो यथा ॥ ३० ॥

कस्यापि ।

3892

निशीथे लीनानां झगिति तडितां वीक्ष्य विषयं
घनानामाभोगं रसिकपथिकेनोन्मुखदृशा ।
न गीतं सोत्कण्ठं न च रुदितमुत्कण्ठतरलं
न मुक्ता निःश्वासाः स्फुटदनुमतं किं नु हृदयम् ॥ ३१ ॥

कस्यापि ।

3893

ग्रामेस्मिन्पथिकाय पान्थ वसतिर्नैवाधुना दीयते
रात्रावत्र विवाहमण्डपतले पान्थः प्रसुप्तो युवा ।

तेनोद्गीय खलेन गर्जति घने स्मृत्वा प्रियां तत्कृतं
येनाद्यापि करङ्कदण्डपतनाशङ्की जनस्तिष्ठति ॥ ३२ ॥

कस्यापि ।

3894

भ्रातः पान्थ प्रसीद प्रतिविरम समुत्सृज्य बालामकाण्डे
गन्तुं बाष्पाम्बुपूरप्लुतनयनमुखीं प्रेयसीं ते न युक्तम् ।
वृत्तं ग्रामेतिकष्टं यदिह गृहपतेः प्रोषितस्य प्रियाया
मुक्ताक्रन्दांस्त्वमेतान्सलिलवितरणे निर्गतान्पश्य बन्धून् ॥ ३३ ॥

शङ्कुकस्य ।

3895

भद्रात्र ग्रामके त्वं वससि परिचयस्तोस्ति जानासि वार्त्ता-
मस्मिन्नध्वन्यजाया जलधररसितोत्का न काचिद्विपन्ना ।
इत्थं पान्थः प्रवासावधिदिनविगमापायशङ्की प्रियायाः
पृच्छन्वृत्तान्तमारास्थितनिजभवनोप्याकुलो न प्रयाति ॥ ३४ ।

भीमस्य ।

## अथ पथिककामिनी ।

3896

अदृष्टपूर्वमस्माभिर्यदेवं दृश्यतेधुना ।
विषं विषधरैः पीतं मूर्छिताः पथिकाङ्गनाः ॥३५ ॥

कस्यापि ।

3897

शिशिरसीकरवाहिनि मारुते
चरति शीतभयादिव सत्वरः ।
मनसिजः प्रविवेश वियोगिनी-
हृदयमाहितशोकहुताशनम् ॥ ३६ ॥

कुमारदासस्य ।

3898

विरमत घनाः किं वो वृष्ट्या मुधैव विसृष्टया
व्रजत ककुभं कामप्यन्यां मनोरुचिरामितः ।

न तदिह वनं नासौ मार्गो न तच्च धरातलं
विरहगलितैस्तन्व्या नो यत्प्लुतं नयनाम्बुभिः ॥ ३७ ॥

कस्यापि ।

3899

प्रसरदलकाकीर्णे कर्णे न केकिरुतं श्रुतं
श्वसितविजितो वातो घ्रातो न वा कुटजोत्कटः ।
न च परिचिता सा वा संपत्स्नुताश्रुणि लोचने
तदपि किमपि प्रावृट्श्यामा दुनोति वियोगिनीम् ॥ ३८ ॥

कस्यापि ।

3900

मेघैर्व्योम नवाम्बुभिर्वसुमती विद्युल्लताभिर्दिशो
धाराभिर्गगनं वनानि कुटजैः पूरैर्वृता निम्नगाः ।
एकां घातयितुं वियोगविधुरां दीनां वराकीं स्त्रियं
प्रावृट्काल हताश वर्णय कृतं मिथ्या किमाडम्बरम् ॥३९॥

विज्जकायाः ।

3901

वाता वान्तु कदम्बरेणुशबला नृत्यन्तु सर्पद्विषः
सोत्साहा नववारिभारगुरवो मुञ्चन्तु नादं घनाः ।
मग्नां कान्तवियोगशोकजलधौ मां वीक्ष्य दीनाननां
विद्युत्किं स्फुरसि त्वमप्यकरुणे स्त्रीत्वे समाने सति ॥ ४० ॥

विद्यापतेः ।

---

## अथ शरत्स्वभावाख्यानम् ॥ १३६ ॥

3902

अथ प्रसन्नेन्दुमुखी सिताम्बरा
समाययावुत्पलपत्रलोचना ।
सपङ्कजा श्रीरिव गां निषेवितुं
सहंसबालव्यजना शरद्वधूः ॥ १ ॥

महामनुष्यस्य ।

3903

दर्शयन्ति शरन्नद्यः पुलिनानि शनैः शनैः ।
नवसंगमसव्रीडजघनानीव योषितः ॥ २ ॥

भगवतो व्यासस्य ।

3904

न तज्जलं यन्न सुचारुपङ्कजं
न पङ्कजं तद्यदलीनषट्पदम् ।
न षट्पदोसौ न जुगुञ्ज यः कलं
न गुञ्जितं तन्न जहार यन्मनः ॥ ३ ॥

भर्तृस्वामिनः ।

3905

एकेन चुलुकेनाब्धिर्निपीतः कुम्भयोनिना ।
तस्योदयेतः कालुष्यं त्यजन्त्यापो भयादिव ॥ ४ ॥

कस्यापि

3906

काशाः क्षीरनिकाशा दधिवरवर्णानि सप्तपर्णानि ।
नवनीतनिभश्चन्द्रः शरदि च तक्रप्रभा ज्योत्स्ना ॥ ५ ॥

गण्डगोपालस्य ।

3907

तीक्ष्णं रविस्तपति नीच इवाचिराद्यः
शृङ्गं रुरुस्त्यजति मित्रमिवाकृतज्ञः ।
तोयं प्रसीदति मुनेरिव धर्मचिन्ता
कामी दरिद्र इव शोषमुपैति पङ्कः ॥ ६ ॥

भासस्य ।

3908

अर्धं सुप्त्वा निशायाः सरभसरतायाससन्नश्लथाङ्गः
प्रोद्भूतासह्यतृष्णो मधुमदविरतौ हर्म्यपृष्ठे विबुद्धः ।
संभोगक्लान्तकान्ताशिथिलभुजलतावर्जितं गर्गरीतो
ज्योत्स्नाभिन्नाच्छधारं न पिबति सलिलं शारदं मन्दभाग्यः ॥७॥

भर्तृहरेः ।

3909

द्वयमिदमत्यन्तसमं नीचे प्रभविष्णुता शरच्चेयम् ।
क्षेत्रेभ्यः प्राप्य फलं खलेषु निक्षिप्यते यस्याम् ॥ ८ ॥

जयगुप्तस्य ।

3910

चेतः कर्षन्ति सप्तच्छदकुसुमरसासारसौरभ्यलुभ्य-
द्भृङ्गीसंगीतभङ्गिश्रुतिसुभगदिशो वासराः शारदीनाः ।
किं च व्याकोशपङ्केरुहमधुरमुखीं संचरच्चञ्चरीक-
श्रेणीवेणीसनाथां रमयति तरुणः पद्मिनीमंशुमाली ॥ ९ ॥

श्रुतधरस्य ।

3911

अथोपगूढे शरदा शशाङ्के
शरद्यथौ शान्ततडित्कटाक्षा ।
कासां न सौभाग्यगुणोद्गमानां
नष्टः परिभ्रष्टपयोधराणाम् ॥ १० ॥

कस्यापि ।

## अथ भ्रमरीक्रीडा ।

3912

चेलाञ्चलेन चलहारलताप्रकाण्डै-
र्वेणीगुणेन च बलाद्वलयीकृतेन ।
हेलाहितभ्रमरकभ्रममण्डलीभिः
पत्त्रत्रयं रचयतीव चिरं नतभ्रूः ॥ ११ ॥

कस्यापि ।

3913

भ्रमाल्पकीर्णे भ्रमरीषु किंचि-
च्चेलाञ्चले चञ्चललोचनानाम् ।
कुचौ कदाचिज्जघनं युवानो
विलोक्य साफल्यमवापुरक्ष्णाम् ॥ १२ ॥

3914

परिभ्रमन्त्या भ्रमरीविनोदे
नितम्बबिम्बाद्विगलद्दुकूलम् ।
विलोक्य कस्याश्चन कोमलाङ्ग्याः
पुंभावमन्याः सुदृशो ववाञ्छुः ॥ १३ ॥

गुणाकरस्यैतौ ।

अथ शरद्वायवः ।

3915

वान्ति रात्रौ रतिक्लान्तकामिनीसुहृदोनिलाः ।
ललनालोलधम्मिल्लमल्लिकामोदवासिताः ॥ १४ ॥

कस्यापि ।

3916

वान्ति कह्लारसुभगाः सप्तच्छदसुगन्धयः ।
वाता नवरतग्लानवधूगमनमन्थराः ॥ १५ ॥

वाल्मीकिमुनेः ।

अथ शरत्पथिकः ।

3917

पङ्कानुषङ्गं पथि विस्मरन्तः
कथावशेषे च पयोदवृन्दे ।
मार्गेषु चन्द्रातपपिच्छिलेषु
पदे पदे चस्खलुरध्वनीनाः ॥ १६ ॥

अभिनन्दस्य ।

3918

इह निचुलनिकुञ्जे वंशसंभारभाजि
स्वपिषि यदि मुहूर्तं पश्यसि क्षेत्रमेतत् ।
इति पथिकमकस्मान्मार्ग एवोपविष्टं
वदति तरुणकान्तं गोपिका साङ्गभङ्गम् ॥ १७ ॥

कस्यापि ।

## अथ हेमन्तस्वभावाख्यानम् ॥ १३७ ॥

3919

हिमधवलदन्तकेशा मन्दद्युतितारका बृहत्तिमिरा ।
द्विगुणीभूता रजनी वृद्धेव शनैः शनैर्याति ॥ १ ॥

बीजकस्य ।

3920

शुकहरितयवानां सीम्नि नीहारभासः
सपदि विगतनिद्राः क्रौञ्चकान्ताः क्षपान्ते ।
विदधति कमनीयं क्राणमुद्यत्ककारं
सरलितगलनालं जर्जराः स्फाररेफम् ॥ २ ॥

कस्यापि ।

3921

वेपन्ते कपयो भृशं कृतजडं गोजाविकं म्लायति
श्वा चुल्लीकुहरोदरं क्षणमपि प्राप्तं च नैवोज्झति ।
शीतार्तैर्व्यसनातुरः पुनरयं दीनो जनः कूर्मव-
त्स्वान्यङ्गानि शरीर एव हि निजे निह्नोतुमाकाङ्क्षति ॥३॥

लक्ष्मीधरस्य ।

3922

लघुनि तृणकुटीरे क्षेत्रकोणे यवानां
नवकलमपलालस्रस्तरे सोपधाने ।
परिहरति सुषुप्तं हालिकद्वन्द्वमारा-
त्कुचकलशमहोष्माबद्धरेखस्तुषारः ॥ ४ ॥

कमलायुधस्य ।

3923

हे हेमन्त स्मरिष्यामि त्वय्यतीते गुणद्वयम् ।
अयंत्नशीतलं वारि निशा च सुरतक्षमा ॥ ५ ॥

कस्यापि ।

3924

प्रोद्यत्सौधारविन्दद्युतिभृति विदलत्कुन्दमाद्यद्विरेफे
काले प्रालेयवातप्रचलविकसितोद्दाममन्दारदाम्नि ।

येषां नो कण्ठलग्ना क्षणमपि तुहिनक्षोददक्षा मृगाक्षी
तेषामायामियामा यमसदनसमा यामिनी याति यूनाम् ॥ ६ ॥

कस्यापि ।

3925

प्रालेयशैलशिशिरानिलसंप्रयोगः
प्रोत्फुल्लकुन्दमकरन्दहृतालिवृन्दः ।
कालोयमापतति कुङ्कुमपङ्कपिङ्ग-
प्रोत्तुङ्गरम्यरमणीकुचसङ्गयोग्यः ॥ ७ ॥

भोहरस्य ।

## अथ कन्दुकक्रीडा ।

3926

चञ्चल्लोलाञ्चलानि प्रतिसरणि चलव्यस्तवेणीनि बाहो-
र्विक्षेपाद्दक्षिणस्य प्रचलितवलयस्फारकोलाहलानि ।
श्वासत्रुट्यद्दृचांसि द्रुतमितरकरोत्क्षेपलोलालकानि
स्रस्तस्रञ्जि प्रमोदं दधति मृगदृशां कन्दुकक्रीडितानि ॥ ८ ॥

राजशेखरस्य ।

3927

पयोधराकारधरो हि कन्दुकः
करेण रोषादिव ताड्यते मुहुः ।
इतीव नेत्राकृतिभीतमुत्पलं
तस्याः प्रसादाय पपात पादयोः ॥ ९ ॥

कालिदासस्य ।

3928

वक्त्रश्रीजितलज्जितेन्दुमलिनं कृत्वा करे कन्दुकं
क्रीडाकौतुकमिश्रभावमनया तिर्यग्वहन्त्याननम् ।
भृङ्गारप्रहकृष्णकेतकदलस्पर्धावतीनां दृशां
दीर्घापाङ्गतरंगणैकसुहृदां कोप्येष पात्रीकृतः ॥ १० ॥

राजशेखरस्य ।

3929

अमन्दमणिनूपुरक्वणनचारुचारक्रमं
झणज्झणितमेखलास्खलिततारहारच्छटम् ।
इदं तरलकङ्कणावलिविशेषवाचालितं
मनो हरति सुभ्रुवः किमपि कन्दुकक्रीडितम् ॥ ११ ॥

कस्यापि ।

## अथ हेमन्तवायवः ।

3930

हूणीसीमन्तमुद्रां सपदि तरलयन्कीरकान्ताकुचान्तः-
स्वच्छन्दस्रस्तवस्त्राञ्चलचपलतया लोलयन्हारवल्लीम् ।
प्रालेयावासपृथ्वीधरशिखरचलच्चारुवारिप्रवाह-
प्रक्षोभप्रातिभश्रीः प्रसरति परितो हैमनो गन्धवाहः ॥ १२ ॥

कस्यापि ।

## अथ हेमन्तपथिकः ।

3931

हे पान्थ प्रियविप्रयोगहुतभुग्ज्वालानभिज्ञोसि किं
किं वा नास्ति तव प्रिया गतघृणः किं वा विहीनो धिया ।
येनास्मिन्नवकुङ्कुमारुणरुचिव्याप्तङ्गधर्मोचिते
कुन्दानन्दितमत्तषट्पदकुले काले गृहान्निर्गतः ॥ १३ ॥

कस्यापि ।

3932

आहूतोपि सहायैरेमीत्युक्त्वा विमुक्तनिद्रोपि ।
गन्तुमना अपि पथिकः संकोचं नैव शिथिलयति ॥१४॥

भर्वौः ।

3933

शीतार्तिप्रसरश्रथाकुलपदन्यासैः समुत्कम्पिभिः
पान्थैर्निर्दयतुच्छगोधननदद्दुष्टारवैः सूचिताः ।
प्राप्यन्ते हिमपीडितानि निभृतप्रोद्गाढधूमा घन-
स्तोकालक्ष्यकुटीरकाः कथमपि ग्रामा गिरिग्रामकाः ॥१५॥

श्रीभोजदेवस्य ।

3934

अन्योन्याहतिदन्तनादमुखरं प्रह्वं मुखं कुर्वता
नेत्रे साश्रुकणे निमील्य पुलकव्यासङ्गि कण्डूयता ।
हा हा हेति सुनिष्ठुरं विवदता बाहू प्रसार्य क्षणं
पुण्याग्निः पथिकेन पीयत इव ज्वालाहतश्मश्रुणा ॥ १६ ॥

बाणभट्टस्य ।

---

## अथ शिशिरस्वभावाख्यानम् ॥ १३८ ॥

3935

अंशुकमिव शीतभयात्संस्त्यानत्वच्छलेन हिमवलयम् ।
अम्भोभिरपि गृहीतं पश्यत शिशिरस्य माहात्म्यम् ॥ १ ॥

अमृतवर्धनस्य ।

3936

वह्नेः शक्तिर्जलमिव गता दर्शनाद्दाहवृत्ते-
र्नित्योद्वन्धे नवमरुबके वर्तते पुष्पकार्यम् ।
शीतत्रासं दधदिव रविर्याति सिन्धोः कृशानुं
शीतैर्भीता इव च दिवसाः सांप्रतं संकुचन्ति ॥ २ ॥

राजशेखरस्य ।

3937

प्रावरणैरङ्गारैर्गर्भगृहैः स्तनतटैश्च दयितानाम् ।
संतर्जितमाद्यानां निपतति शीतं दरिद्रेषु ॥ ३ ॥

कस्यापि ।

3938

कारणोत्पन्नकोपोपि सांप्रतं प्रमदाजनः ।
निशि शीतापदेशेन गाढमालिङ्गति प्रियम् ॥ ४ ॥

महामनुष्यस्य ।

3939

पीनोत्तुङ्गपयोधराः परिलसत्संपूर्णचन्द्राननाः
कान्ता नैव गृहे गृहं न च दृढं जात्यं न काश्मीरजम् ।
ताम्बूलं नवतूलिका नवपटी तैलं न गन्धाविलं
सद्यः पाचितसार्द्रका न वटकाः शीतं कथं गम्यते ॥ ५ ॥

श्वेताम्बरश्रीचन्द्रस्य ।

3940

द्वारं गृहस्य पिहितं शयनस्य पार्श्वे
वह्निर्ज्वलत्युपरि तूलपटो गरीयान् ।
अङ्गानुकूलमनुरागवशं कलत्र-
मित्थं करोति किमसौ स्वपतस्तुषारः ॥ ६ ॥

कस्यापि ।

3941

चुल्हीसीमनि गोरसार्द्रमशनं भुक्त्वा परीत्यार्भकै-
रभ्याशे सुकृषीक्षुयन्त्रनिनदं हर्षात्समाकर्णयन् ।
शेते संहतगोगणोष्मणि गृहे स्रस्ताम्बरां गेहिनी-
मालिङ्ग्यागणयन्निशासु तुहिनं प्रोद्दामरः पामरः ॥ ७ ॥

कस्यापि ।

## अथ दृङ्नीलनक्रीडा ।

3942

नैतस्याः प्रसृतिद्वयेन सरले शक्ये पिधातुं दृशौ
सर्वत्रैव विलोक्यते मुखशशिज्योत्स्नाविताभैरियम् ।
इत्थं बालतया सखीभिरसकृद्दृङ्नीलनाकेलिषु
व्याधिद्धा रजनीमुखं च नयने स्वे गर्हते कन्यका ॥ ८ ॥

कस्यापि ।

3943

न पाणिप्रच्छाद्यं नयनयुगमत्यायतमिदं
नितम्बस्यौदार्यात्त्वरितगतियोगोप्यसुलभः ।
अतिस्वल्पौ पाणी स्तनभरनिरोधान्न मिलितौ
निमीलक्रीडायां कलुषयसि मुग्धे किमिति नः॥९॥

कस्यापि ।

## अथ शिशिरवायवः ।

3944

केशानाकुलयन्दृशौ मुकुलयन्वासो बलादाक्षिप-
न्नातन्वन्पुलकोद्गमं प्रकटयन्नावेगकम्पं गतेः ।

वारं वारमुदारसीत्कृतरवैर्दन्तच्छदं पीडय-
न्यायः शैशिर एष संप्रति मरुत्कान्तासु कान्तायते ॥१०॥

कस्यापि ।

3945

चुम्बन्तो गण्डभित्तीरलकवति मुखे सीत्कृतान्यादधाना
वक्षःसूत्कञ्चुकेषु स्तनभरपुलकोद्भेदमापादयन्तः ।
ऊरूनाकम्पयन्तः पृथुजघनतटात्स्रंसयन्तोंशुकानि
व्यक्तं कान्ताजनानां विटचरितभृतः शैशिरा वान्ति वाताः ॥ ११ ॥

कस्यापि ।

## अथ शिशिरपथिकः ।

3946

पुण्याग्नौ पूर्णवाञ्छः प्रथममगणितश्लोषदोषः प्रदोषे
पान्थः सुप्त्वा यथेच्छं तदनु तनुतृणे धामनि ग्रामदेव्याः ।
उत्कम्पी कर्पटार्धे जरति परिजडे छिद्रिणि च्छिन्ननिद्रे
वाते वाति प्रकामं हिमकणिनि कणत्कोणतः कोणमेति ॥१२॥

बाणभट्टस्य ।

3947

संविष्टो ग्रामदेव्याः कुटघटितकुटीकुड्यकोणैकदेशे
शीते संवाति वायौ हिमकणिनि रणद्दन्तपङ्क्तिद्वयाग्रः ।
पान्थः कन्थां निशीथे परिकुथितजरत्तन्तुसंतानगुर्वीं
ग्रीवापादाग्रजानुग्रहणचटचटत्कर्पटं प्रावृणोति ॥ १३ ॥

मयूरस्य ।

3948

आरात्कारीषवह्नेर्विरचितसुतृणस्रस्तरान्तर्निषण्णैः
संशीर्णग्रन्थिकन्थाविवरवशविशच्छीतवाताभिभूतैः ।
नीताः कृच्छ्रेण पान्थैः श्वभिरिव निबिडं जानुसंकोचकुब्जै-
रन्तर्दुर्वारदुःखद्विगुणतरकृतायामयामास्त्रियामाः ॥ १४ ॥

कस्यापि ।

# अथ संमिश्राख्यानम् ॥ १३९ ॥

3949

यो न दीर्घसितापाङ्गविलासललितभ्रुवः ।
प्रियामुखस्य वशगस्तस्मै नृपशवे नमः ॥ १ ॥

कस्यापि ।

3950

कुचावालोक्य तन्वङ्ग्याः शिरः कम्पयते युवा ।
तयोरन्तरनिर्मग्नां दृष्टिमुत्पाटयन्निव ॥ २ ॥

कस्यापि ।

3951

मत्तेभकुम्भपरिणाहिनि कुङ्कुमार्द्रे
कान्तापयोधरयुगे रतिखेदखिन्नः ।
वक्षो निधाय भुजपञ्जरमध्यवर्ती
धन्यः क्षपां क्षपयति क्षणलब्धनिद्रः ॥ ३ ॥

कस्यापि ।

3952

कर्णे तालदलं तनौ मलयजं कर्पूरवासोंशुके
चूले गुम्फितकेतकीदलभरः कण्ठे नवैकावली ।
वासः श्रीवनवाससीमनि वचश्रीः सत्कवेरुक्तयो
वक्त्रे नागरखण्डमस्तु पुरतः प्रेमाकुलाः कुन्तलाः ॥ ४ ॥

कस्यापि ।

3953

मधु च विकसितोत्पलावतंसं
शशिकरपल्लवितं च हर्म्यपृष्ठम् ।
मदनजनितविभ्रमा च कान्ता
फलमिदमर्थवतां विभूतयोन्याः ॥ ५ ॥

भर्तृमेण्ठस्य ।

3954

भ्रूचातुर्यात्कुञ्चितान्ताः कटाक्षाः
स्निग्धा हावा लज्जितान्ताश्च हासाः ।
लीलामन्दं प्रस्थितं च स्थितं च
स्त्रीणामेतद्भूषणं चायुधं च ॥ ६ ॥

भर्तृहरेः ।

3955

अधीतविद्यैर्विगते शिशुत्वे
धनोर्जिते हारिणि यौवने च ।
सेव्या नितम्बास्तु विलासिनीनां
ततस्तदर्थं धरणीधराणाम् ॥ ७ ॥

कस्यापि ।

3956

यत्रोदारा दारास्तत्र न कान्तः स्वतः कान्तः ।
यत्र तु कान्तः कान्तस्तत्र न दारा गुणोदाराः ॥ ८ ॥

श्रीदिनकरदेवानाम् ।

3957

अवचनं वचनं गुरुसंनिधा-
वनवलोकनमेव विलोकनम् ।
अवयवावरणं हि यदंशुक-
व्यतिकरेण तदङ्गसमर्पणम् ॥ ९ ॥

वामनस्वामिनः ।

3958

अनुदिनमभ्यासदृढैः सोढुं दीर्घोपि शक्यते विरहः ।
प्रत्यासन्नसमागममुहूर्तविघ्नस्तु दुर्विरहः ॥ १० ॥

कस्यापि ।

3959

ग्रामोपशल्यतटिनीतटमण्डपेस्मि-
न्मा पान्थ मन्थरगते रजनीं नयस्व ।

अस्मिन्निशीथविरहज्वरजागरूक-
कोकाङ्गनाकरुणकूजितकष्टमस्ति ॥ ११ ॥

कस्यापि ।

3960

अयं स्निग्धश्यामो य इह विहरत्यम्बुजवने
विनिद्रे व्यागुञ्जन्मधुप इति तं जल्पतु जनः ।
अहं शङ्के पङ्केरुहकुहरवासव्यसनिनीं
श्रियं भृङ्गच्छद्मा मुररिपुरुपेतो रमयितुम् ॥ १२ ॥

---

## अथ वीररसनिर्देशः ॥ १४० ॥

3961

भर्तृपिण्डानृणकरो यशःक्रयमहापणः ।
सुराङ्गनास्वयंग्राहो रम्यः कालोयमागतः ॥ १ ॥

शाण्डिल्यस्य ।

3962

प्रायेण सुकरं दानं प्रायेण सुकरं तपः ।
प्राणानपेक्षी व्यापारः पुनर्वीरस्य दुष्करः ॥ २ ॥

कस्यापि ।

3963

क्षत्रियस्योरसि क्षत्रं पृष्ठे ब्रह्म व्यवस्थितम् ।
तेन पृष्ठं न दातव्यं पृष्ठदो ब्रह्महा भवेत् ॥ ३ ॥

भगवतो व्यासस्य ।

3964

मा भैष्ट नैते निस्त्रिंशा नीलोत्पलदलत्विषः ।
एते वीरावलोकिन्या लक्ष्म्या नयनविभ्रमाः ॥ ४ ॥

कस्यापि ।

3965

धृतधनुषि शौर्यशालिनि शैला न नमन्ति यत्तदाश्चर्यम् ।
रिपुसंज्ञकेषु गणना कैव वराकेषु काकेषु ॥ ५ ॥

बाणभट्टस्य ।

3966

खड्गास्तिष्ठन्तु मत्तेभकुम्भकूटाट्टहासिनः ।
एकदोर्दण्डशेषोपि कः सहेत पराभवम् ॥ ६ ॥

कस्यापि।

3967

जीवन्नेव मृतोसौ यस्य जनो वीक्ष्य वदनमन्योन्यम् ।
कृतमुखभङ्गो दूरात्करोति निर्देशमङ्गुल्या ॥ ७ ॥

दामोदरगुप्तस्य।

3968

रविमणिरपि निश्चेष्टः पादैस्तिग्मद्युतेर्मनाक्स्पृष्टः ।
ज्वलतितरामिति को वा मन्युं सोढुं क्षमो मानी ॥ ८ ॥

इन्द्रसिंहस्य।

3969

लोकः शुभास्तिष्ठतु तावदन्यः
पराङ्मुखाणां समरेषु पुंसाम् ।
पत्न्योपि तेषां न ह्रिया मुखानि
पुरः सखीनामिह दर्शयन्ति ॥ ९ ॥

3970

हा तात तातेति स वेदनार्तः
क्वणन्हदन्मूत्रकफानुलिप्तः ।
वरं मृतः किं भवने किमाजौ
संदष्टदन्तच्छदभीमवक्त्रः ॥ १० ॥

3971

संमूर्छितं संयुगसंप्रहारैः
पश्यन्ति सुप्रप्रतिबुद्धतुल्यम् ।
आत्मानमङ्केषु सुराङ्गनानां
मन्दाकिनीमारुतवीजिताङ्गाः ॥ ११ ॥

एते वराहमिहिरस्य।

3972

यदि समरमपास्य नास्ति मृत्यो-
र्भयमिति युक्तमितोन्यतः प्रयातुम् ।
अथ मरणमवश्यमेव जन्तोः
किमिति मुधा मलिनं यशः क्रियेत ॥ १२ ॥

नारायणभट्टस्य ।

3973

अन्त्रैः स्वैरपि संयताग्रचरणो मूर्छाविरामक्षणे
स्वाधीनव्रणिताङ्गशस्त्रनिचितो रोमोद्गमं वर्मयन् ।
भग्नानुद्वलयञ्छितान्परभटानार्धर्यचिष्ठुरं
धन्यो धाम जयश्रियः पृथुरणस्तम्भे पताकायते ॥ १३ ॥

धनिकस्य ।

3974

वयस्याः क्रोष्टारः प्रतिशृणुत बद्धोञ्जलिरयं
किमप्याकाङ्क्षामः क्षरति न यथा वीरचरितम् ।
मृतानामस्माकं भवति परवश्यं वपुरिदं
भवद्भिः कर्तव्यं नहि नहि पराचीनचरणम् ॥ १४ ॥

हम्मीरनरेन्द्रस्य ।

3975

रक्तं नक्तंचरौघः पिबति वमति च ग्रस्तकुन्तः शकुन्तः
क्रव्यं नव्यं गृहीत्वा प्रणदति मुदितो मत्तवेतालबालः ।
क्रीडत्यव्रीडमस्मिन्नुधिरमधुवशात्पूतना नूतनाङ्गी
योगिन्यो मांसमेदःप्रमुदितमनसः शूरशक्तिं स्तुवन्ति ॥ १५ ॥

कवीश्वरस्य ।

3976

कोप्येष खण्डितशिरा विकसन्मुखश्रीः
प्रारब्धताण्डवविधिः सुरकामिनीभिः ।
आलोक्यते निजकराभिनयानुरूप-
व्यापारितेक्षणनिवेदितसत्त्वसारः ॥ १६ ॥

वादीश्वरकाञ्चनस्य ।

3977

परस्परेण क्षतयोः प्रहर्त्रो-
रुक्रान्तवाय्वोः समकालमेव ।
अमर्त्यभावेपि कयोश्चिदासी-
देकाप्सरःप्रार्थितयोर्विवादः ॥ १७ ॥

3978

कश्चिद्विषत्खड्गहतोत्तमाङ्गः
सद्यो विमानप्रभुतामुपेत्य ।
वामाङ्कसंसक्तसुराङ्गनः स्वं
नृत्यत्कबन्धं समरे ददर्श ॥ १८ ॥

कालिदासस्यैतौ ।

3979

ते क्षत्रियाः कुण्डलिनो युवानः
परस्परं सायकविक्षताङ्गाः ।
कुम्भेषु लग्नाः सुषुपुर्गजानां
कुचेषु लग्ना इव कामिनीनाम् ॥ १९ ॥

3980

भूरेणुदिग्धा नवपारिजात-
स्रजो रजोवासितबाहुमध्याः ।
गाढं शिवाभिः परिरभ्यमाणाः
सुराङ्गनाश्लिष्टभुजान्तरालाः ॥ २० ॥

भगवतो व्यासस्यैतौ ।

3981

जन्मेन्दोरमले कुले व्यपदिशस्यद्यापि धत्से गदां
मां दुःशासनकोष्णशोणितसुराक्षीबं रिपुं भाषसे ।
दर्पान्धो मधुकैटभद्विषि हरावप्युद्धतं चेष्टसे
मन्नासान्नृपशो विहाय समरं पङ्केधुना लीयसे ॥ २१ ॥

नारायणभट्टस्य ।

3982

हतेभिमन्यौ क्रुद्धेन तत्र पार्थेन संयुगे ।
अक्षौहिणीः सप्त हत्वा हतो राजा जयद्रथः ॥ २२ ॥

3983

लोहितायति चादित्ये त्वरमाणो धनंजयः ।
पञ्चविंशतिसाहस्रान्निजघान महारथान् ॥ २३ ॥

3984

रथेभ्यो गजवाजिभ्यः संग्रामे वीरसंकराः ।
पातिताः पात्यमानाश्च दृश्यन्तेर्जुनताडिताः ॥ २४ ॥

3985

पूर्णे शतसहस्रे द्वे पदातीनां नरोत्तमः ।
प्रजज्वाल रणे भीष्मो विधूम इव पावकः ॥ २५ ॥

3986

आकर्णपलितः श्यामो वयसाशीतिपञ्चकः ।
रणे पर्यचरद्द्रोणो वृद्धः षोडशवर्षवत् ॥ २६ ॥

भगवतो व्यासस्यैते ।

3987

लक्ष्मणो लघुसंधानी दूरपाती च राघवः ।
कर्णो दृढप्रहारी च पार्थस्यैते त्रयो गुणाः ॥ २७ ॥

क्षेमेन्द्रस्य ।

3988

न कालस्य न शक्रस्य न विष्णोर्वित्तदस्य च ।
श्रूयन्ते तानि कर्माणि यानि युद्धे हनूमतः ॥ २८ ॥

वाल्मीकिकवेः ।

3989

छिन्नेपि शस्त्रभिन्नेप्यापत्पतितेपि निर्विशेषेपि ।
हनुमति कृतप्रतिज्ञे दैवमदैवं यमोप्ययमः ॥ २९ ॥

3990

कपोले जानक्याः करिकलभदन्तद्युतिमुषि
स्मरस्मेरं गण्डोडुमरपुलकं वक्त्रकमलम् ।

मुहुः पश्यञ्शृण्वन्नजनिचरसेनाकलकलं
जटाजूटग्रन्थिद्रढयति रघूणां परिवृढः ॥ ३० ॥

महानाटकस्यैतौ ।

3991

वीरोसौ किमु वर्ण्यते दशमुखश्छिन्नैः शिरोभिः स्वयं
यः पूजास्रजमुत्सुको घटयितुं देवस्य खट्वाङ्गिनः ।
सूत्रार्थी हरकण्ठसूत्रभुजगव्याकर्षणायोद्यतः
साटोपं प्रमथैः कृतभ्रुकुटिभिः स्थित्वान्तरे वारितः ॥ ३१ ॥

बिल्हणस्य ।

3992

संतुष्टे तिसृणां पुरामपि रिपौ कण्डूलदोर्मण्डल-
क्रीडाकृत्तपुनःप्ररूढशिरसो वीरस्य लिप्सोर्वरम् ।
याच्ञादैन्यपराञ्चि यस्य कलहायन्ते मिथस्त्वं वृणु
त्वं वृण्वित्यभितो मुखानि स दशग्रीवः कथं वर्ण्यते ॥ ३२ ॥

मुरारेः ।

3993

सलीलयातानि न भर्तुरभ्रमो-
र्न चित्रमुच्चैःश्रवसः पदक्रमम् ।
अभिद्रुतः संयति येन केवलं
बलस्य शत्रुः प्रशशंस शीघ्रताम् ॥ ३३ ॥

माघकवेः ।

3994

आजन्मब्रह्मचारी पृथुलभुजशिलास्तम्भविभ्राजमान-
ज्याघातश्रेणिसंज्ञान्तरितवसुमतीचक्रजैत्रप्रशस्तिः ।
वक्षःपीठे घनास्त्रव्रणकिणकठिने संक्षुवानः पृषत्का-
न्प्राप्तो राजन्यगोष्ठीवनगजमृगयाकौतुकी जामदग्न्यः ॥ ३४ ॥

मुरारेः ।

3995

क्षुद्राः संत्रासमेते विजहत हरयः क्षुण्णशक्रेभकुम्भा
युष्मद्देहेषु लज्जां दधति परममी सायका निष्पतन्तः ।

सौमित्रे तिष्ठ पात्रं त्वमसि नहि रुषां नन्वहं मेघनादः
किंचिद्भ्रूभङ्गलीलानियमितजलधिं राममन्वेषयामि ॥ ३५ ॥
महानाटकस्य ।

3996

सप्तषष्टिर्हताः कोट्यो वानराणां तरस्विनाम् ।
पश्चिमेनाह्नि शेषेण मेघनादेन सायकैः ॥ ३६ ॥
वाल्मीकिमुनेः ।

---

## अथ करुणरसनिर्देशः ॥ १४१ ॥

3997

यस्याः कुसुमशय्यापि कोमलाङ्ग्या रुजाकरी ।
साधिशेते कथं देवी ज्वलन्तीमधुना चिताम् ॥ १ ॥
दण्डिनः ।

3998

गृहिणी सचिवः सखी मिथः
प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ ।
करुणाविमुखेन मृत्युना
हरता त्वां बत किं न मे हृतम् ॥ २ ॥
कालिदासस्य ।

3999

ध्वस्तः काव्योरुमेरुः कविविपणिमहारत्नराशिर्विशीर्णः
शुष्कः शब्दौघसिन्धुः प्रलयमुपगतो वाक्यमाणिक्यकोशः ।
दिव्योक्तीनां निधानं निधनमुपगतं हा हता दिव्यवाणी
बाणे गीर्वाणवाणीप्रणयिनि विधिना शायिते दीर्घनिद्राम् ॥ ३ ॥
कस्यापि ।

4000

सृजति तावदशेषगुणाकरं
पुरुषरत्नमलंकरणं भुवः ।
तदनु तत्क्षणभङ्गि करोति चे-
दहह कष्टमपण्डितता विधेः ॥ ४ ॥
कस्यापि ।

4001

सा रसवत्ता विगता नवका विलसन्ति चरति नो कं कः ।
सरसीव कीर्तिशेषं गतवति भुवि विक्रमादित्ये ॥ ५ ॥

सुबन्धोः ।

4002

मांधाता स महीपतिः कृतयुगेलंकारभूतो गतः
सेतुर्येन महोदधौ विरचितः क्वासौ दशास्यान्तकः ।
अन्ये चापि युधिष्ठिरप्रभृतयो यावन्त एवाभव-
न्नैकेनापि समं गता वसुमती मन्ये त्वया यास्यति ॥ ६ ॥

मुञ्जं प्रति भोजराजस्य लेखः ।

4003

भगीरथाद्याः सगरः ककुत्स्थो
दशाननो राघवलक्ष्मणौ च ।
युधिष्ठिराद्याश्च बभूवुरेते
सत्यं क्व याता बत ते नरेन्द्राः ॥ ७ ॥

भगवतो व्यासस्य ।

4004

उत्खातदैवतमिवायतनं पुरारे-
रस्ताचलान्तरितचन्द्रमिवान्तरिक्षम् ।
हम्मीरभूभुजि गते सुरवेश्म विश्वं
पश्यामि हारमिव नायकरत्नशून्यम् ॥ ८ ॥

देवेश्वरस्य ।

4005

इह खलु विषमः पुरा कृतानां
विलसति जन्तुषु कर्मणां विपाकः ।
हरशिरसि शिरांसि यानि रेजुः
शिव शिव तानि लुठन्ति गृध्रपादैः ॥ ९ ॥

कस्यापि ।

4006

मातुलो यस्य गोविन्दः पिता यस्य धनंजयः ।
सोपि मृत्युवशं यातः कालो हि दुरतिक्रमः ॥ १० ॥

4007

साक्षान्मघवतः पौत्रः पुत्रो गाण्डीवधन्वनः ।
स्वस्रीयो वासुदेवस्य तं गृध्राः पर्युपासते ॥ ११ ॥

4008

असहायः सहायार्थी मामनुध्यातवान्ध्रुवम् ।
पीड्यमानः शरैस्तीक्ष्णैर्द्रोणद्रौणिकृपादिभिः ॥ १२ ॥

भगवतो व्यासस्यैते ।

4009

अक्षुद्रारिकृताभिमन्युनिधनप्रोद्भूततीव्रभ्रुवः
पार्थस्याकृतशात्रवप्रतिकृतेरन्तः शुचा मुह्यतः ।
कीर्णा बाष्पकणैः पतन्ति धनुषि व्रीडाजडा दृष्टयो
हा वत्सेति गिरः स्फुरन्ति न पुनर्निर्यान्ति वक्त्राद्बहिः ॥ १३ ॥

निशानारायणस्य ।

4010

कोहं ब्रूहि सखे स एव भगवानार्यः सखे राघवः
के यूयं बत नाथ नाथ किमिदं दासोस्मि ते लक्ष्मणः ।
कान्तारे किमिहास्महे बत सखे देव्या गतिर्मृग्यते
का देवी जनकाधिराजतनया हा जानकि क्वासि हा ॥ १४ ॥

महानाटकस्य ।

4011

मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः ।
अमितस्य प्रदातारं भर्तारं का न शोचति ॥ १५ ॥

वाल्मीकिमुनेः ।

4012

मदेकपुत्रा जननी जरातुरा
नवप्रसूतिर्वरटा तपस्विनी ।
गतिस्तयोरेष जनस्तमर्दय-
न्नहो विधे त्वां करुणा रुणद्धि न ॥ १६ ॥

4013

मदर्थसंदष्टमृणालमन्थरः
प्रियः कियद्दूर इति त्वयोदिते ।

विलोकयन्त्या रुदतोथ पक्षिणः
प्रिये स कीदृग्भविता तव क्षणः ॥ १७ ॥

एतौ श्रीहर्षस्य ।

4014

मध्याह्ने दववह्निनोष्णसमये दन्दह्यमानाद्गिरेः
कृच्छ्रान्निर्गतमुत्तृषं जलमथो वीक्ष्यैकरक्षाक्षमम् ।
प्रेम्णा जीवयितुं मिथः पिब पिबेत्युच्चार्य मिथ्या पिब-
न्निर्मग्नास्यमपीतवारि हरिणद्वन्द्वं विपन्नं वने ॥ १८ ॥

कस्यापि ।

4015

आदाय मांसमखिलं स्तनवर्जमङ्गा-
न्मां मुञ्च वागुरिक यामि कुरु प्रसादम् ।
सीदन्ति शष्पकवलग्रहणानभिज्ञा
मन्मार्गवीक्षणपराः शिशवो मदीयाः ॥ १९ ॥

कस्यापि ।

---

# अथाद्भुतरसनिर्देशः ॥ १४२ ॥

4016

कृष्णेनाम्ब गतेन रन्तुमसकृन्मृद्भक्षिता स्वेच्छया
सत्यं कृष्ण क एवमाह मुसली मिथ्याम्ब पश्याननम् ।
व्यादेहीति विदारिते च वदने दृष्ट्वा समग्रं जग-
न्माता यस्य जगाम विस्मयपदं पायात्स वः केशवः ॥ १॥

कस्यापि ।

4017

पातुं त्रीणि जगन्ति संततमकूपारात्समभ्युद्धर-
न्धात्रीं कोलकलेवरः स भगवान्यस्यैकदंष्ट्राङ्कुरे ।
कूर्मः कन्दति नालति द्विरसनः पत्त्रन्ति दिग्दन्तिनो
मेरुः कोशति मेदिनी जलजति व्योमापि रोलम्बति ॥ २ ॥

कस्यापि ।

4018

काकुत्स्थेन शिरांसि यानि शतशश्छिन्नानि मायानिधेः
पौलस्त्यस्य विमानसीमनि तथा भ्रान्तानि नाकौकसाम् ।
तान्येवास्य धनुःश्रमप्रशमनं कुर्वन्ति सीतापतेः
क्रीडाचामरडम्बरानुकृतिभिर्दोलायमानैः कचैः ॥ ३ ॥

बिल्हणस्य ।

4019

तस्मिन्युद्धे क्षणेनैव त्वरितो वानरध्वजः ।
सरथं सध्वजं साश्वं भीष्ममन्तर्दधे शरैः ॥ ४ ॥

भगवतो व्यासस्य ।

4020

किं क्रमिष्यति किलैष वामनो
यावदित्थमहसन्त दानवाः ।
तावदस्य न ममौ नभस्तले
लङ्घितार्कशशिमण्डलः क्रमः ॥ ५ ॥

4021

युगान्तकालप्रतिसंहृतात्मनो
जगन्ति यस्यां सविकासमासत ।
तनौ ममुस्तत्र न कैटभद्विष-
स्तपोधनाभ्यागमसंभवा मुदः ॥ ६ ॥

4022

पाश्चात्यभागमिह सानुषु संनिषण्णाः
पश्यन्ति शान्तमलसान्द्रतरांशुजालम् ।
संपूर्णलम्बललनालपनोपमान-
मुत्सङ्गसङ्गिहरिणस्य मृगाङ्कमूर्तेः ॥ ७ ॥

एते माघकवेः ।

4023

रत्नभित्तिषु संक्रान्तैः प्रतिबिम्बशतैर्वृतः ।
ज्ञातो लङ्केश्वरः कृच्छ्रादाञ्जनेयेन तत्त्वतः ॥ ८ ॥

दण्डिकवेः ।

4024

चतुर्ष्वपि समुद्रेषु संध्यामन्वास्य तत्क्षणात् ।
कक्षाक्षिप्तं निशान्ते स्वे वालिः पौलस्त्यमत्यजत् ॥ ९ ॥

वाल्मीकिमुनेः ।

4025

किं ब्रूमो हरिमस्य विश्वमुदरे किं वा फणान्भोगिनः
शेते यत्र हरिः स्वयं जलनिधेः सोप्येकदेशे स्थितः ।
आश्चर्यं कलशोद्भवो मुनिरसौ यस्यैकहस्तेम्बुधि-
र्गण्डूषीयति पङ्कजीयति फणी भृङ्गीयति श्रीपतिः ॥ १० ॥

कस्यापि ।

---

## अथ हास्यरसनिर्देशः ॥ १४२ ॥

4026

पाणौ ताम्रघटी कुशाः करतले धौते सिते वाससी
भाले मृत्तिलकः सचन्दनरसन्यस्तैकपुष्पं शिरः ।
दूरात्क्षिप्तपदा गतिर्दृढतरव्याश्लिष्टदन्ता गिरः
सोयं वञ्चयितुं जगद्भगवतो दम्भस्य देहक्रमः ॥ १ ॥

कस्यापि ।

4027

वैराग्यभङ्गिरचनावचनैः प्रतार्य
रण्डाश्चिराय विकटस्तनसंनताङ्गीः ।
ब्रह्मोपदेशमिषसंगतगण्डभित्ति-
निःशङ्कचुम्बनरसैः कृतिनो द्रवन्ति ॥ २ ॥

कस्यापि ।

4028

पीठीप्रक्षालनेन क्षितिपतिकथया सज्जनानां प्रवादैः
प्रातर्नीत्वार्धयामं कुशकुसुमसमारम्भणव्यग्रहस्ताः ।
पश्चादेते निमज्ज्यत्पुरयुवतिकुचाभोगदत्तेक्षणार्धाः
प्राणायामापदेशादिह सरिति सदा वासराणि क्षिपन्ति ॥ ३ ॥

कस्यापि ।

4029

अङ्गुलिभङ्गविकल्पनविविधविवादप्रवृत्तपाण्डित्यः ।
जपचपलौष्ठः सजने ध्यानपरो नगररथ्यासु ॥ ४ ॥

4030

मुण्डो जटिलो नग्नश्छत्री दण्डी कषायचीरी वा ।
भस्मस्मेरशरीरो दिशि दिशि भोगी विजृम्भते दम्भः ॥५॥
एतौ क्षेमेन्द्रस्य ।

4031

जिह्वायाश्छेदनं नास्ति न तालुपतनाद्भयम् ।
निर्विशङ्केन वक्तव्यं निर्लज्जः को न पण्डितः ॥ ६ ॥
कस्यापि ।

4032

भ्रुकुटीकुटिललाटः कण्टकिताङ्गः कटाक्षविकटाक्षः ।
कवलयति पृथुलकवलैस्तण्डुलमचलं द्विजः क्रुद्धः ॥ ७ ॥
शार्ङ्गधरस्य ।

4033

धान्याकनागरनिशार्द्रकदाडिमत्व-
क्कुस्तुम्बरीलवणतैलसुसंस्कृतान्यः ।
मत्स्यान्सुशीतसितभक्ततले ददाति
स ब्रह्मलोकमधिरोहति पुण्यकर्मा ॥ ८ ॥
कस्यापि ।

4034

भोजनं प्राप्य दुर्बुद्धे मा प्राणेषु दयां कुरु ।
दुर्लभानि परान्नानि प्राणा जन्मनि जन्मनि ॥ ९ ॥
कस्यापि ।

4035

क्रयविक्रयकूटतुलालाघवनिक्षेपभक्षणव्याजैः ।
एते हि दिवसचौरा मुष्णन्ति महाजनं वणिजः ॥ १० ॥

4036

आख्यायिकानुरागी व्रजति सदा पुण्यपुस्तकं श्रोतुम् ।
दष्ट इव कृष्णसर्पैः पलायते दानधर्मेभ्यः ॥ ११ ॥

4037

दत्त्वा दिशि दिशि दृष्टिं याचकचकितोवगुण्ठनां कृत्वा ।
चौर इव कुटिलचारी पलायते कुटिलरथ्याभिः ॥ १२ ॥

एते क्षेमेन्द्रस्य ।

4038

वैद्यनाथ नमस्तुभ्यं क्षपिताशेषमानव ।
त्वयि विन्यस्तभारोयं कृतान्तः सुखमेधते ॥ १३ ॥

कस्यापि ।

4039

सत्कोणं लोलनेत्रं कुलयुवतिमुखं दृश्यते सानुकम्पै
रण्डानामर्धलज्जान्वितमधिपुलकं स्पृश्यते पीनमङ्गम् ।
क्लीबानां खाद्यतेन्तश्चिरनिहितधनं काष्ठमूलाग्नितोयैः
पूर्वा सिद्धा कलानां सकलसुखनिधिर्वैद्यविद्याभिवन्द्या॥१४॥

दीपकस्य ।

4040

गणयति गणने गणकश्चन्द्रेण समागमं विशाखायाः ।
विविधभुजंगक्रीडासक्तां गृहिणीं न जानाति ॥ १५ ॥

कस्यापि ।

4041

कलमाग्रनिर्गतमषीबिन्दुव्याजेन साञ्जनाश्रुकणा ।
कायस्थलुण्ठ्यमाना रोदिति खिन्नेव राजश्रीः ॥ १६ ॥

क्षेमेन्द्रस्य ।

4042

वाचयति नान्यलिखितं लिखितमनेनापि वाचयति नान्यः ।
अयमपरोस्य विशेषः स्वयमपि लिखितं न वाचयति ॥१७॥

4043

कायस्थेनोदरस्थेन मातुरामिषशङ्कया ।
अन्त्राणि यत्र भुक्तानि तत्र हेतुरदन्तता ॥ १८ ॥

4044

काकाक्षौल्यं यमात्क्रौर्यं स्थपतेर्दृढघातिताम् ।
आद्यक्षराणि संगृह्य कायस्थः केन निर्मितः ॥ १९ ॥

4045

विना मद्यं विना मांसं परस्वहरणं विना ।
विना परापवादेन दिविरो दिवि रोदिति ॥ २० ॥

केषामप्येते ।

4046

अर्थो नाम जनानां जीवितमखिलं क्रियाकलापश्च ।
तं च हरन्त्यतिधूर्ताश्छगलगला गायना लोके ॥ २१ ॥

4047

तमसि वराकश्चौरो हाहाकारेण याति संत्रस्तः ।
गायनचौरः कपटी हाहा कृत्वा न याति वैलक्ष्यम् ॥ २२॥

4048

आमन्त्रणजयशब्दैः प्रतिपदहुंकारघर्घरारावैः ।
स्वयमुक्तसाधुवादैरन्तरयति गायनो गीतम् ॥ २३ ॥

एते क्षेमेन्द्रस्य ।

4049

मेरुः स्थितोतिदूरे मनुष्यभूमिं परित्यज्य ।
भीतो भयेन चौर्याच्चौराणां हेमकाराणाम् ॥ २४ ॥

4050

तस्मान्महीपतीनामसंभवे चौरदस्यूनाम् ।
एकः सुवर्णकारो नित्याद्यः सर्वथा नित्यम् ॥ २५ ॥

एतौ क्षेमेन्द्रस्य ।

4051

उपयुक्तखदिरबीटकजनिताधररागभङ्गभयात् ।
पितरि मृतेपि हि वेश्या रोदिति हा तात तातेति ॥ २६ ॥

4052

पूर्वं चेटी ततो बेटी पश्चाद्भवति कुट्टिनी ।
सर्वोपायपरिक्षीणा वृद्धा वेश्या तपस्विनी ॥ २७ ॥

4053

वर्णनदयितः कश्चिद्धनदयितो दासकर्मदयितोन्यः ।
रक्षादयितश्चान्यो वेश्यानां नर्मदयितोन्यः ॥ २८ ॥

एते क्षेमेन्द्रस्य ।

4054

गत्वा द्वारवतीं नयामि दिवसानाराधयन्ती हरिं
दृष्ट्वा वानशनेन जीवितमिदं मुञ्चामि भागीरथीम् ।
प्रातः प्रातरिति प्रवर्तितकथा निर्वेदमातन्वती
रण्डा नक्तमनन्तजारसुरतप्रीता सुखायास्तु वः ॥ २९ ॥

4055

कटी मुष्टिग्राह्या द्विपुरुषभुजग्राह्यमुदरं
स्तनौ घण्टालोलौ जघनमधिगन्तुं व्यवसितौ ।
स्मितं भेरीनादो मुखमपि च यत्तद्भयकरं
तथाप्येषा रण्डा परिभवति संतापयति च ॥ ३० ॥

कयोरप्येतौ ।

4056

यत्नोत्थापनमात्रनिःसहजरच्चर्मावशेषश्लथ-
भ्रश्यच्छेफसि दुर्बलाङ्गवलनव्यर्थोद्यमालिङ्गने ।
लज्जाधायिनि खिद्यमानयुवतौ वृद्धस्य कृच्छ्रे रते
यत्स्यात्तत्प्रतिभाव्य किं नु हसितुं युक्तं किमारोदितुम् ॥ ३१ ॥

वृद्धेः ।

4057

खट्वा नितान्तलघुका शिथिलप्रताना
द्वेष्यः पतिः स च निरन्तरचाटुकारी ।
तत्रापि दैवहतिकाः खलु माधराह्नो
हा सह्यतां कथमयं व्यसनप्रपञ्चः ॥ ३२ ॥

कस्यापि ।

4058

शृणु सखि कौतुकमेकं माम्येण तु कामिना यदद्य कृतम् ।
सुरतसुखमीलिताक्षी मृतेति भीतेन मुक्तास्मि ॥ ३३ ॥

कस्यापि ।

4059

यदक्षिभ्रूलतापाङ्गैः स्त्रियः कुर्वन्ति कामिनाम् ।
जघनेष्वेव तत्सर्वं पतत्यनपराधिषु ॥ ३४ ॥

कस्यापि ।

4060
केशोल्लुञ्चनसाम्येपि हन्त पश्यैतदन्तरम् ।
उपस्थाः कीटमभ्यन्ति घृतमक्तं दिगम्बराः ॥ ३५ ॥

4061
भिक्षो मांसनिषेवणं प्रकुरुषे किं तेन मद्यं विना
मद्यं चापि तव प्रियं प्रियमहो वेश्याङ्गनाभिः सह ।
वेश्या द्रव्यरुचिः कुतस्तव धनं द्यूतेन चौर्येण वा
चौर्यद्यूतपरिग्रहोपि भवतो नष्टस्य कान्या गतिः ॥ ३६ ॥
कस्यापि ।

4062
सामगायनपूतं मे नोच्छिष्टमधरं कुरु ।
उत्कण्ठितासि चेद्भद्रे वामकर्णं दशस्व मे ॥ ३७ ॥
कस्यापि ।

4063
भस्माङ्गुलिर्बकोड्डायी बालशौची तथा हिहिः ।
धारावर्ती चक्रवर्ती षडेते पुरुषाधमाः ॥ ३८ ॥

4064
प्रेषकः प्रैष्यकः काण्डः किमेकः स्तम्भलीनकः ।
योगी तत्कालरोगी च षडेते सेवकाधमाः ॥ ३९ ॥

---

## अथ भयानकरसनिर्देशः ॥ १४४ ॥

4065
दीप्तक्षुद्वेगयोगाद्ग्रदनलहलहल्लम्बजिह्वाग्रलीढ-
ब्रह्माण्डक्षौद्रबिन्दुप्रबलतरभवज्ज्ञाठराग्निस्फुलिङ्गाम् ।
कालीं कङ्कालशेषामतुलगलचलन्मुण्डमालाकरालीं
गुह्यासंवादिनेत्रामजिननिवसनां नौमि पाशासिहस्ताम् ॥१॥
शार्ङ्गधरस्य ।

4066
दंष्ट्रासंकटवक्त्रकन्दललज्जिह्वस्य हव्याशन-
ज्वालाभासुरभूरिकेसरसटाभारस्य दैत्यद्विषः ।

व्यावल्गद्बलवद्भिरण्यकशिपुक्रोडस्थलास्फालन-
स्पष्टप्रस्फुटदस्थिपञ्जररवक्रूरा नखाः पान्तु वः ॥ २ ॥

हनूमतः ।

4067

अद्याप्युन्मदयातुधानतरुणीचञ्चत्करास्फालन-
व्यावल्गच्चकपालतालरणितैर्नृत्यत्पिशाचाङ्गनाः ।
उद्गायन्ति यशांसि यस्य वितताैर्नादैः प्रचण्डानिल-
प्रक्षुभ्यत्करिकुम्भकूटकुहरव्यक्तैः रणक्षोणयः ॥ ३ ॥

कृष्णमिश्रस्य ।

4068

इदं मघोनः कुलिशं धारासंनिहितानलम् ।
स्मरणं यस्य दैत्यस्त्रीगर्भपाताय कल्पते ॥ ४ ॥

दण्डिनः ।

4069

तपःपरामर्शविवृद्धमन्यो-
र्भ्रूभङ्गदुष्प्रेक्ष्यमुखस्य तस्य ।
स्फुरन्नुदर्चिः सहसा तृतीया-
दक्ष्णः कृशानुः किल निष्पपात ॥ ५ ॥

कालिदासस्य ।

4070

किंचित्कोपकलाकलापकलनाहंकारबिभ्रद्भुवो-
र्विक्षेपादकरोदसौ रघुपतिर्लङ्कापतेः पत्तनम् ।
क्रन्दत्फेरु रटत्करेटु विचटद्धारु स्फुटद्गुग्गुलु
प्रक्रीडत्कपि निःश्वसत्फणि रणज्झिल्लि भ्रमद्भीपि च ॥ ६ ॥

मुरारेः ।

4071

प्रौढच्छेदानुरूपोच्छलनरयवशात्सैंहिकेयोपमेय-
त्रासान्नष्टाश्वतिर्यग्वलितरविरथेनारुणेनेक्ष्यमाणम् ।
कुर्वत्काकुत्स्थवीर्यस्तुतिमिव मरुतां कंधरारन्ध्रभाजां
भांकारैर्भीममेतन्निपतति वियतः कुम्भकर्णोत्तमाङ्गम् ॥ ७ ॥

यशोवर्मणः ।

4072

माद्यन्मातङ्गकुम्भस्थलबहलवसावासनाविस्रगन्ध-
व्यासक्तव्यक्तमुक्ताफलशकललसत्केसरालीकरालः ।
एणीवैधव्यवेधाः स्वभुजबलमदग्रस्ततेजस्विधामा
गुञ्जन्कुञ्जे गिरीणां हरिरिह शबरीगर्भपातं विधत्ते ॥ ८ ॥

भट्टयशसः ।

4073

महाप्रलयमारुतक्षुभितपुष्करावर्तक-
प्रचण्डघनगर्जितप्रतिरवानुकारी मुहुः ।
रवः श्रवणभैरवः स्थगितरोदसीकंदरः
कुतोऽद्य समरोदधेरयमभूतपूर्वः पुरः ॥ ९ ॥

4074

मन्थायस्तार्णवाम्भःप्रतिकुहरवलन्मन्दरध्वानधीरः
कोणाघातेषु गर्जत्प्रलयघनघटान्योन्यसंघट्टचण्डः ।
कृष्णाक्रोधाग्रदूतः कुरुकुलनिधनोत्पातनिर्घातवातः
केनास्मत्सिंहनादप्रतिरसितसखो दुन्दुभिस्ताडितोऽयम् ॥१०॥

एतौ नारायणभट्टस्य ।

---

## अथ बीभत्सरसनिर्देशः ॥ १४५ ॥

4075

उत्कृत्योत्कृत्य कृत्तिं प्रथममथ पृथूच्छोफभूयांसि मांसा-
न्यंसस्फिक्पृष्ठपिण्डाद्यवयवसुलभान्युग्रपूतीनि जग्ध्वा ।
आत्तस्राग्व्यन्त्रनेत्रः प्रकटितदशनः प्रेतराङ्कः करङ्का-
दङ्कस्थादस्थिसंस्थं स्थपुटगतमपि क्रव्यमव्यग्रमत्ति ॥ १ ॥

भवभूतेः ।

4076

अन्त्रैः कल्पितमङ्गलप्रतिसराः स्त्रीहस्तरक्तोत्पल-
व्यक्तोत्तंसभृतः पिनद्ध शिरसा हृत्पुण्डरीकस्रजः ।

एताः शोणितपङ्ककुङ्कुमजुषः संभूय कान्तैः पिब-
न्त्यस्थिस्रेहसुरां कपालचषकैः प्रीताः पिशाचाङ्गनाः ॥ २ ॥
कस्यापि ।

4077

उत्कृत्य ज्वलितां शवात्कथमपि प्रेताशनः पैशितीं
पेशीमग्निमयीं निगीर्य सहसा दन्दह्यमानोदरः ।
धावत्युत्प्लवते मुहुर्निपतति प्रोत्तिष्ठति प्रेक्षते
विष्वक्क्रोशति संपिनष्टि जठरं मुष्ट्या चलन्मस्तकः ॥ ३ ॥
कस्यापि ।

4078

विकीर्णहरिचन्दनद्रविणि यत्र लीलारसा-
न्निपेतुरलिचञ्चलाश्चतुरकामिनीदृष्टयः ।
तदेतदुपरिभ्रमन्निबिडगृध्रजालं जनै-
र्लुठत्कृमि कलेवरं पिहितनासिकैर्वीक्ष्यते ॥ ४ ॥
इन्द्रकवेः ।

4079

प्रस्वेदमलदिग्धेन वहता मूत्रशोणितम् ।
व्रणेन विकृतेनेदं सर्वमन्धीकृतं जगत् ॥ ५ ॥
कस्यापि ।

---

## अथ रौद्ररसनिर्देशः ॥ १४६ ॥

4080

पातालतः किमु सुधारसमानयामि
निष्पीड्य चन्द्रममृतं किमुताहरामि ।
उद्यन्तमद्य तपनं किमु वारयामि
कीनाशमाशु कणशः किमु चूर्णयामि ॥ १ ॥
महानाटकात् ।

4081

यत्सत्यव्रतभङ्गभीतमनसा यत्नेन मन्दीकृतं
यद्विस्मर्तुमपीहितं शमवता शान्तिं कुलस्येच्छता ।

तद्दूतारणिसंभृतं नृपसुताकेशाम्बराकर्षणैः
क्रोधज्योतिरिदं महत्कुरुवने यौधिष्ठिरं जृम्भते ॥ २ ॥

नारायणभट्टस्य ।

4082

सरोषदष्टाधरलोहिताक्षै-
र्व्यक्तोर्ध्वरेखा भ्रुकुटीर्वहद्भिः ।
तस्तार गां भल्लनिकृत्तकण्ठै-
र्हुंकारगर्भैर्द्विषतां शिरोभिः ॥ ३ ॥

कालिदासस्य ।

4083

येन स्वां विनिहत्य मातरमपि क्षत्रास्रपूरासव-
स्वादोन्मत्तपरश्वधेन विदधे निःक्षत्रिया मेदिनी ।
यद्बाणव्रणवर्त्मनः शिखरिणः क्रौञ्चस्य हंसच्छला-
दद्याप्यस्थिकणाः पतन्ति स पुनः क्रुद्धो मुनिर्भार्गवः ॥४ ॥

4084

त्रैलोक्यत्राणशौण्डः सरसिजवसतेः संप्रसूतो भुजाभ्यां
सुक्षत्रं नाम वर्णैः कुलिशकठिनयोर्यस्य दोष्णोर्विलीनम् ।
ज्वालाजिह्वालकालानलकवलभयभ्रान्तदेवासुराणि
ख्यातन्वानो जगन्ति ज्वलति मुनिरयं पार्वतीधर्मपुत्रः ॥ ५ ॥

एतौ मुरारेः ।

4085

चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघात-
संचूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य ।
स्यानावनद्धघनशोणितशोणपाणि-
रुत्तंसयिष्यति कचांस्तव देवि भीमः ॥ ६ ॥

4086

अन्योन्यास्फालभिन्नद्विपरुधिरवसासान्द्रमस्तिष्कपङ्के
मग्नानां स्यन्दनानामुपरि कृतपदन्यासविक्रान्तपत्तौ ।

स्फीतासृक्पानगोष्ठीरसदशिवशिवातूर्यनृत्यत्कबन्धे
संग्रामैकार्णवान्तः प्रविचरितुमलं पण्डिताः पाण्डुपुत्राः ॥७॥

एतौ नारायणभट्टस्य ।

4087

रे धृष्टा धार्तराष्ट्राः प्रबलभुजबृहत्ताण्डवाः पाण्डवा रे
रे वार्ष्णेयाः सकृष्णाः शृणुत मम वचो यद्भवीम्यूर्ध्वबाहुः ।
एतस्योत्खातबाहोर्द्रुपदनृपसुतातापिनः पापिनोहं
पाता हृच्छोणितानां प्रभवति यदि वस्तत्किमेतं न पाथ ॥ ८ ॥

कस्यापि ।

4088

नाहं रक्षो न भूतो रिपुरुधिरजलाह्लादिताङ्गः प्रकाशं
निस्तीर्णोरुप्रतिज्ञाजलनिधिगहनः क्रोधनः क्षत्रियोस्मि ।
भो भो राजन्यवीराः समरशिखिशिखाभुक्तशेषाः कृतं व-
स्त्रासेनानेन लीनैर्हतकरितुरगान्तर्हितैरास्यते यत् ॥ ९ ॥

नारायणभट्टस्य ।

---

# अथ शान्तरसनिर्देशः ॥ १४७ ॥

## तत्र पूर्वं वैराग्यम् ।

4089

पुत्रमित्रकलत्रेषु सक्ताः सीदन्ति जन्तवः ।
सरःपङ्कान्तरे मग्ना जीर्णा वनगजा इव ॥ १ ॥

मार्कण्डेयमुनेः ।

4090

मन्ये मायेयमज्ञानं यत्सुखं स्वजनादपि ।
निदाघवारणायालं निजच्छाया न कस्यचित् ॥ २ ॥

4091

विपत्प्रशान्त्यै सेव्यन्ते यदि कष्टेन भूभृतः ।
तत्करिष्यति कष्टापि विपत्किमधिकं ततः ॥ ३ ॥

4092

मितमायुर्वयो नित्यं नैति यातं कदाचन ।
परामृशन्ति तदपि न भवं भोगलोलुपाः ॥ ४ ॥

केषामप्येते ।

4093

व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयन्ती
रोगाश्च शत्रव इव प्रहरन्ति देहम् ।
आयुः परिस्रवति भिन्नघटादिवाम्भो
लोकस्तथाप्यहितमाचरतीति चित्रम् ॥ ५ ॥

4094

क्षणं बालो भूत्वा क्षणमपि युवा कामरसिकः
क्षणं वित्तैर्हीनः क्षणमपि च संपूर्णविभवः ।
जराजीर्णैरङ्गैर्नट इव वलीमण्डिततनु-
र्नरः संसाराङ्के विशति यमधानीजवनिकाम् ॥ ६ ॥

4095

मातर्मेदिनि तात मारुत सखे तेजः सुबन्धो जल
भ्रातर्व्योम निबद्ध एष भवतामन्त्यः प्रणामाञ्जलिः ।
युष्मत्सङ्गवशोपजातसुकृतोद्रेकस्फुरन्निर्मल-
ज्ञानापास्तसमस्तमोहमहिमा लीये परे ब्रह्मणि ॥ ७ ॥

4096

किं कंदर्प करं कदर्थयसि रे कोदण्डटंकारितै
रे रे कोकिल कोमलैः कलरवैः किं त्वं वृथा वल्गसि ।
मुग्धे स्निग्धविदग्धमुग्धमधुरैर्लीलैः कटाक्षैरलं
चेतश्चुम्बितचन्द्रचूडचरणध्यानामृतं वर्तते ॥ ८ ॥

एते भर्तृहरेः ।

4097

भूः पर्यङ्को निजभुजलता कन्दुकं खं वितानं
दीपश्चन्द्रो विरतिवनितालब्धसङ्गप्रमोदः ।

दिक्कन्यानां व्यजनपवनैर्वीज्यमानोनुकूलै-
र्भिक्षुः शेते नृप इव सदा वीतरागो जितात्मा ॥ ९ ॥

कस्यापि ।

4098

क्वचित्कन्थाधारी क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरः
क्वचिद्भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्यङ्कशयनः ।
क्वचिद्भिक्षावृत्तिः क्वचिदपि च मृष्टाशनरुचि-
र्महात्मा योगज्ञो न गणयति दुःखं न च सुखम् ॥ १० ॥

भर्तृहरेः ।

4099

पाषाणखण्डेष्वपि रत्नबुद्धिः
कान्तेति धीः शोणितमांसपिण्डे ।
पञ्चात्मके वर्ष्मणि चात्मभावो
जयत्यसौ मोहनमोहलीला ॥ ११ ॥

श्रीगोपालदेवानाम् ।

4100

निःस्नेहो याति निर्वाणं स्नेहोनर्थस्य कारणम् ।
निःस्नेहेन प्रदीपेन यदेतत्प्रकटीकृतम् ॥ १२ ॥

श्रीदामोदरदेवानाम् ।

4101

वपुषः सुकृतातिवर्तिनो
विभवस्यापि दुरर्जितस्य नः ।
सुचिरं न विचारगोचरः
परिणामो भविता हि कीदृशः ॥ १३ ॥

श्रीदेवदासदेवानाम् ।

4102

अहौ वा हारे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा
मणौ वा लोष्टे वा कुसुमशयने वा दृषदि वा ।
तृणे वा स्त्रैणे वा मम समदृशो यान्तु दिवसाः
क्वचित्पुण्येरण्ये शिव शिव शिवेति प्रलपतः ॥ १४ ॥

4103

आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णातरंगाकुला
रागग्राहवती वितर्कविहगा धैर्यद्रुमध्वंसिनी ।
मोहावर्तसुदुस्तरातिगहना प्रोत्तुङ्गचिन्तातटी
तस्याः पारगता विशुद्धमनसो नन्दन्ति योगीश्वराः ॥ १५ ॥

4104

अश्नीमहि वयं भिक्षामाशावासो वसीमहि ।
शयीमहि महीपृष्ठे कुर्वीमहि किमीश्वरैः ॥ १६ ॥

4105

आसंसारं त्रिभुवनमिदं चिन्वतां तात तावन्
नैवास्माकं नयनपदवीं श्रोत्रवर्त्मागतो वा ।
योयं धत्ते विषयकरिणीगाढगूढाभिमान-
क्षीबस्यान्तःकरणकरिणः संयमालानलीलाम् ॥ १७ ॥

एते भर्तृहरेः ।

4106

येषां वल्लभया समं क्षणमिव क्षिप्रं क्षपा क्षीयते
तेषां शीतकरः शशी विरहिणामुल्केव संतापकृत् ।
अस्माकं न च वल्लभा न विरहस्तेनोभयभ्रंशिना-
मिन्दू राजति दर्पणाकृतिरयं नोष्णो न वा शीतलः ॥ १८ ॥

भोजराजचोरकविकृतं पद्यम् ।

4107

दैन्यं क्वचित्क्वचन मन्मथजा विकाराः
कुत्राप्यनेकविधबन्धुजनप्रपञ्चः ।
क्वापि प्रभूतधनकल्पितमीश्वरत्व-
मित्येकवैकृतमिदं जगदाविभाति ॥ १९ ॥

श्रीवत्सराजदेवानाम् ।

4108

गतास्तातभ्रातृप्रमुखसुखपीयूषमधुराः
पुरा लक्ष्मीक्षेप्यव्यसनसरसास्तेपि दिवसाः ।

अदः शान्तं स्वान्तं सपदि यदि निर्वेदपदवीं
भजत्यभ्यासोयं जनयति सुखं भावविमुखम् ॥ २० ॥

श्रीराघवदेवानाम् ।

4109

धावन्तः प्रतिवासरं दिशि दिशि प्रत्याशया संपदां
दृष्ट्वा कालवशेन हन्त फलितं कस्यापि दैवद्रुमम् ।
भावं भावमवज्ञयोपहसितं सर्वत्र भग्नोद्यमा
जीवामः परमार्थशून्यहृदयास्तृष्णा मनोमोदकैः ॥ २१ ॥

श्रीरामोदरदेवानाम् ।

4110

सन्त्येके धनलाभमात्रगहनव्यामोहसंमूर्छिताः
केचिद्दैवतसुन्दरीस्तनपरीरम्भभ्रमव्याकुलाः ।
अन्तर्भूतसमस्ततत्त्वनिवहं चिन्मात्रशेषं शिवं
दृष्ट्वा हृष्टतनूरुहाङ्कुरभराः कष्टं न शिष्टाः क्वचित् ॥ २२ ॥

श्रीदेवदासदेवानाम् ।

---

## अथानित्यतानिरूपणम् ॥ १४८ ॥

4111

येषां निमेषोन्मेषाभ्यां जगतां प्रलयोदयौ ।
तादृशाः पुरुषा याता मादृशां गणनैव का ॥ १ ॥

वासिष्ठरामायणात् ।

4112

प्राप्ताः श्रियः सकलकामदुघास्ततः किं
न्यस्तं पदं शिरसि विद्विषतां ततः किम् ।
संमानिताः प्रणयिनो विभवैस्ततः किं
कल्पं स्थितं तनुभृतां तनुभिस्ततः किम् ॥ २ ॥

4113

वयं येभ्यो जाताश्चिरतरगता एव खलु ते
समं यैः संवृद्धाः स्मरणपदवीं तेपि गमिताः ।

इदानीमेते स्मः प्रतिदिवसमासन्नपतना
गतास्तुल्यावस्थां सिकतिलनदीतीरतरुभिः ॥ ३ ॥

4114

रम्यं हर्म्यतलं न किं वसतये भव्यं न गेयादि किं
किं वा प्राणसमासमागमसुखं नैवाधिकं प्रीतये ।
किं तूद्भ्रान्तपतत्पतङ्गपवनव्यालोलदीपाङ्कुर-
च्छायाचञ्चलमाकलय्य सकलं सन्तो वनान्तं गताः ॥ ४ ॥

एते भर्तृहरेः ।

4115

न्यस्तं यथा मूर्ध्नि मुदाक्ति मेषो
दूर्वाक्षताद्यं बलिकल्पितः सन् ।
मृत्युं समीपस्थितमप्यजान-
न्भुनक्ति मर्त्यो विषयांस्तथैव ॥ ५ ॥

कस्यापि ।

4116

अहमिह कृतविद्यो वेदिता सत्कलानां
धनपतिरहमेको रूपलावण्ययुक्तः ।
इति कृतगुणगर्वः खिद्यते किं जनोयं
कतिपयदिनमध्ये सर्वमेतन्न किंचित् ॥ ६ ॥

श्रीरामोदरदेवानाम् ।

4117

गलितानीन्द्रलक्षाणि बुद्बुदानीव वारिणि ।
मां जीवितनिबद्धाशं विहसिष्यन्ति साधवः ॥ ७ ॥

4118

संसाररात्रिदुःस्वप्ने शून्ये देहमयभ्रमे ।
आस्थां चेदनुबध्नामि तन्मूर्खो नास्ति मत्परः ॥ ८ ॥

4119

एता याः प्रेक्षसे लक्ष्मीश्छत्रचामरचञ्चलाः ।
स्वप्न एष महाबुद्धे दिनानि त्रीणि पञ्च च ॥ ९ ॥

4120

येषु येषु दृढा भावा भावना दृष्टवस्तुषु ।
तानि तानि विनष्टानि दृष्टानि किमिहोत्तमम् ॥ १० ॥

4121

यन्मध्ये यच्च पर्यन्ते यदापाते मनोरमम् ।
सर्वमेवापवित्रं तद्विनाशामेध्यदूषितम् ॥ ११ ॥

4122

नीलोत्पलाभनयनाः परमप्रेमभूषणम् ।
हासायैव विलासिन्यः क्षणभङ्गितया स्थिताः ॥ १२ ॥

एते वासिष्ठात् ।

4123

गन्धर्वनगराकारः संसारः क्षणभङ्गुरः ।
मनसो वासनैवेयमुभयोर्भेदसाधनम् ॥ १३ ॥

4124

नन्दन्ति मन्दाः श्रियमाप्य नित्यं
परं विषीदन्ति विपद्गृहीताः ।
विवेकदृष्ट्या चरतां नराणां
श्रियो न किंचिद्विपदो न किंचित् ॥ १४ ॥

4125

मित्रं कलत्रममितः परिवारलोको
भोगैकसाधनमिमाः किल संपदो नः ।
एकः क्षणः स तु भविष्यति यत्र भूयो
नायं न यूयमितरे न वयं न चैते ॥ १५ ॥

4126

गतेनापि न संबन्धो न सुखेन भविष्यता ।
वर्तमानं क्षणातीतं संगतिः केन कस्य वा ॥ १६ ॥

एते श्रीदेवगणदेवानाम् ।

4127

इतो न किंचित्परतो न किंचि-
द्यतो यतो यामि ततो न किंचित् ।
स्वात्मावबोधादपरं न किंचि-
द्विचार्यमाणेपि जगन्न किंचित् ॥ १७ ॥

कस्यापि ।

4128

यदस्माभिर्दृष्टं क्षणिकमभवत्स्वप्न इव त-
त्क्रियन्तो भावास्तु स्मरणविषयादप्यपगताः ।
अहो पश्यत्पश्यत्स्वजनमखिलं यान्तमनिशं
हतव्रीडं चेतस्तदपि न भवेत्सङ्गरहितम् ॥ १८ ॥

श्रीशिवप्रसादेवानाम् ।

4129

साक्षात्प्रेमावतारः कमलदलदृशो दिक्षु लक्ष्मीरनन्ता
सत्पुत्राः संततिस्राः समविपदविपत्संविभागी कुटुम्बः ।
एतत्सर्वं हि तावत्सुकृतविलसितं दृश्यमानं मनोज्ञं
यावन्नैतत्प्रणाशप्रणयि बत मनाङ्म्लायते ते न चेतः ॥१९॥

हरिगणस्य ।

4130

चेतोहरा युवतयः सुहृदोनुकूलाः
सद्बान्धवाः प्रणयगर्भगिरश्च भृत्याः ।
वल्गन्ति दन्तिनिवहास्तरलास्तुरंगाः
संमीलने नयनयोर्नहि किंचिदस्ति ॥ २० ॥

कस्यापि ।

4131

पृथिवी दह्यते यत्र मेरुश्चापि विशीर्यते ।
सुशोषं सागरजलं शरीरे तत्र का कथा ॥ २१ ॥

4132

इदं युगसहस्रस्य भविष्यदभवद्दिनम् ।
तदप्यधत्वमापन्नं का कथा मरणावधेः ॥ २२ ॥

4133
लब्धास्त्यक्ताश्च संसारे यावन्तो बान्धवास्त्वया ।
न सन्ति खलु तावत्यो गङ्गायामपि वालुकाः ॥ २३ ॥

4134
आसन्नतामेति मृत्युरायुर्याति दिने दिने ।
आघातं नीयमानस्य वध्यस्येव पदे पदे ॥ २४ ॥
केषामप्येते ।

4135
अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥ २५ ॥

4136
एकसार्थप्रवृत्तानां सर्वेषां तत्र गामिनाम् ।
यद्येकस्त्वरितो याति का तत्र परिदेवना ॥ २६ ॥
एतौ भगवतो व्यासस्य ।

4137
एकेद्य प्रातरपरे पश्चादन्ये पुनः परे ।
सर्वे निःसीम्नि संसारे यान्ति कः केन शोच्यते ॥ २७ ॥
क्षेमेन्द्रस्य ।

---

## अथ विषयोपहासः ॥ १४९ ॥

4138
नित्यमाचरतः शौचं कुर्वतः पितृतर्पणम् ।
यस्य नोद्विजते चेतः शास्त्रं तस्य करोति किम् ॥ १ ॥
कस्यापि ।

4139
यावतः कुरुते जन्तुः स्वसुखार्थं परिग्रहान् ।
तावन्तोस्य निखन्यन्ते हृदये शोकशङ्कवः ॥ २ ॥

4140
दाराः परिभवकारा बन्धुजनो बन्धनं विषं विषयाः ।
कोयं जनस्य मोहो ये रिपवस्तेषु सुहृदाशा ॥ ३ ॥
कस्यापि ।

4141

कृमयो भस्म विष्ठा वा निष्ठा यस्येयमीदृशी ।
स कायः परतापाय युज्यतामिति को नयः ॥ ४ ॥

कस्यापि ।

4142

रक्तमांसमयः कायः स्त्रीणां स्पर्शसुखायनः ।
तमेवाश्नन्ति सिंहाद्या रम्यं नास्तीह वस्तुतः ॥ ५ ॥

4143

अङ्गमङ्गेन संपीड्य मांसं मांसेन तु स्त्रियाः ।
पुराहमभवं प्रीतो यत्तन्मोहविजृम्भितम् ॥ ६ ॥

एतौ वासिष्ठात् ।

4144

उत्तानोच्छूनमण्डूकपाटितोदरसंनिभे ।
क्लेदिनि स्त्रीव्रणे सक्तिरकृमेः कस्य जायते ॥ ७ ॥

कस्यापि ।

4145

दृष्ट्वैव विकृतं कायं वायुस्पन्दविवर्जितम् ।
येषु निर्व्याजमासक्तास्तेभ्योपि बिभिमो वयम् ॥ ८ ॥

श्रीदेवगणदेवानाम् ।

4146

श्वेतं पदं समभिवीक्ष्य शिरोरुहाणां
स्थानं परं परिभवस्य तदेव पुंसाम् ।
आरोपितास्थिशकलं परिहृत्य यान्ति
चण्डालकूपमिव दूरतरं तरुण्यः ॥ ९ ॥

4147

स्तनौ मांसग्रन्थी कनककलशावित्युपमितौ
मुखं श्लेष्मागारं तदपि च शशाङ्केन तुलितम् ।
स्रवन्मूत्रक्लिन्नं करिवरकरस्पर्धि जघनं
मुहुर्निन्द्यं रूपं कविजनविशेषैर्गुरु कृतम् ॥ १० ॥

एतौ भर्तृहरेः ।

4148

तृषा शुष्यत्यास्ये पिबति सलिलं स्वादु सुरभि
क्षुधार्तः सञ्शालीन्कवलयति मांसाज्यकलितान् ।
प्रदीप्ते कामाग्नौ सुदृढतरमाश्लिष्यति वधूं
प्रतीकारं व्याधेः सुखमिति विपर्यस्यति जनः ॥ ११ ॥

कस्यापि ।

4149

जन्मैव व्यर्थतां नीतं भवभोगप्रलोभिना ।
काचमूल्येन विक्रीतो हन्त चिन्तामणिर्मया ॥ १२ ॥

---

## अथ पश्चात्तापः ॥ १५० ॥

4150

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता-
स्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः ।
कालो न यातो वयमेव याता-
स्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः ॥ १ ॥

4151

नाभ्यस्ता भुवि वादिवृन्ददमनी विद्या विनीतोचिता
खड्गाग्रैः करिकुम्भपीठदलनैर्नाकं न नीतं यशः ।
कान्ताकोमलपल्लवाधररसः पीतो न चन्द्रोदये
तारुण्यं गतमेव निष्फलमहो शून्यालये दीपवत् ॥ २ ॥

4152

न ध्यातं पदमीश्वरस्य विधिवत्संसारविच्छित्तये
स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटुर्धर्मोपि नोपार्जितः ।
नारीपीनपयोधरोरुयुगलं स्वप्नेपि नालिङ्गितं
मातुः केवलमेव यौवनवनच्छेदे कुठारा वयम् ॥ ३ ॥

4153

क्षान्तं न क्षमया गृहोचितसुखं त्यक्तं न संतोषतः
सोढा दुःसहशीतवाततपनक्लेशा न तप्तं तपः ।

ध्यातं वित्तमहर्निशं नियमितप्राणैर्न शंभोः पदं
तत्तत्कर्म कृतं यदेव मुनिभिस्तैस्तैः फलैर्वञ्चिताः ॥ ४ ॥

4154

जातः कूर्मः स एकः पृथुभुवनभरायार्पितं येन पृष्ठं
श्राध्यं जन्म ध्रुवस्य भ्रमति नियमितं यत्र तेजस्विचक्रम् ।
संजातव्यर्थपक्षाः परहितकरणे नोपरिष्टान्न चाधो
ब्रह्माण्डोदुम्बरान्तर्मशकवदपरे जन्तवो जातनष्टाः ॥ ५ ॥

4155

धन्यानां गिरिकंदरे निवसतां ज्योतिः परं ध्यायता-
मानन्दाश्रुजलं पिबन्ति शकुना निःशङ्कमङ्केशयाः ।
अस्माकं तु मनोरथोपरचितप्रासादवापीतट-
क्रीडाकाननकेलिकौतुकजुषामायुः परं क्षीयते ॥ ६ ॥

4156

अजानन्माहात्म्यं पतति शलभस्तीव्रदहने
न मीनोपि ज्ञात्वा बडिशयुतमश्नाति पिशितम् ।
विजानन्तोप्येते वयमिह विपज्जालजटिला-
न्न मुञ्चामः कामानहह गहनो मोहमहिमा ॥ ७ ॥

एते भर्तृहरेः ।

4157

चलत्तरलतृष्णेन किमिवास्मिन्धरातले ।
मया तत्कृतमज्ञेन पश्चात्तापाभिवृद्धये ॥ ८ ॥

वासिष्ठात् ।

4158

मन्त्रोद्भावितदैवतैर्न विधिवद्दासीकृताः सिद्धयो
योगाभ्याससमाहितैरनुदिनं तीर्णो न मोहार्णवः ।
क्षुभ्यत्क्षुद्रनरेन्द्रदत्तविगलत्संपल्लवोल्लासितै-
र्धिङ्मूढैरिव पण्डितैरपि बलात्कालः कथं नीयते ॥ ९ ॥

4159

धावित्वा सुसमाहितेन मनसा दूरे शिरो नामितं
भूपानां प्रतिशब्दकैरिव चिरं प्रोद्घुष्टमिष्टं वचः ।
द्वाराध्यक्षनियन्त्रणापरिभवप्रम्लानवक्त्रैः स्थितं
भ्रातः किं करवाम मुञ्चति मनो नाद्याप्यविद्याग्रहम्॥१९॥

एतौ श्रीदेवगणदेवानाम् ।

4160

यातं यौवनमधुना वनमधुना शरणमेकमस्माकम् ।
स्फुरदुरुहारमणीनां हा रमणीनां गतः कालः ॥ १२ ॥

4161

गात्रं संकुचितं गतिर्विगलिता दन्ताश्च नाशं गता
दृष्टिर्नश्यति रूपमेव हसते वक्त्रं च लालायते ।
वाक्यं नैव करोति बान्धवजनः पत्नी न शुश्रूषते
हा कष्टं जरयाभिभूतपुरुषं पुत्रोप्यवज्ञायते ॥ १२ ॥

4162

नो धर्माय यतो न तत्र निरता नार्थाय येनेदृशाः
कामोप्यर्थवतां तदर्थमपि नो मोक्षः क्वचित्कस्यचित् ।
तत्के नाम वयं वृथैव घटिता ज्ञातं पुनः कारणं
जीवन्तोपि मृता इति प्रवदतां शब्दार्थसंसिद्धये ॥ १३ ॥

केषामप्येते ।

---

## अथ कालचरितम् ॥ १५१ ॥

4163

पुरंदरसहस्राणि चक्रवर्तिशतानि च ।
निर्वापितानि कालेन प्रदीपा इव वायुना ॥ १ ॥

4164

भ्रातः कष्टमहो महान्स नृपतिः सामन्तचक्रं च त-
त्पार्श्वे तस्य च सा विदग्धपरिषत्ताश्चन्द्रबिम्बाननाः ।

उद्रिक्तः स च राजपुत्रनिवहस्ते बन्दिनस्ताः कथाः
सर्वं यस्य वशादगात्स्मृतिपथं कालाय तस्मै नमः ॥ २ ॥

4165

प्राप्ता जरा यौवनमप्यतीतं
बुधा यतध्वं परमार्थसिद्धये ।
आयुर्गतप्रायमिदं यतोसौ
विश्रम्य विश्रम्य न याति कालः ॥ ३ ॥

एतौ भर्तृहरेः ।

4166

कांश्चित्कल्पशतं कृतस्थितिचयान्कांश्चिद्युगानां शतं
कांश्चिद्वर्षशतं तथा कतिपयाञ्छन्तून्दिनानां शतम् ।
तांस्तान्कर्मभिरात्मनः प्रतिदिनं संक्षीयमाणायुषः
कालोयं कवलीकरोति सकलान्भ्रातः कुतः कौशलम् ॥ ४ ॥

4167

कालेन क्षितिवारिवह्निपवनव्योमादियुक्तं जग-
द्ब्रह्माद्याश्च सुराः प्रयान्ति विलयं विघ्नो विचारादिति ।
पश्यामोपि विनश्यतोनवरतं लोकाननेकान्मुधा
मायामोहमयीं भवप्रणयिनीं नास्थां जहीमो वयम् ॥ ५ ॥

एतौ शार्ङ्गधरस्य ।

4168

अद्यैव हसितं गीतं पठितं यैः शरीरिभिः ।
अद्यैव ते न दृश्यन्ते कष्टं कालस्य चेष्टितम् ॥ ६ ॥

कस्यापि ।

4169

म्रियमाणं मृतं बन्धुं शोचन्ति परिदेवनैः ।
आत्मानं नानुशोचन्ति कालेन कवलीकृतम् ॥ ७ ॥

श्रीदेवगणदेवानाम् ।

4170

आराध्य भूपतिमवाप्य ततो धनानि
भुञ्जामहे वयमिह प्रसभं सुखानि ।

इत्याशया बत विमोहितमानसानां
कालो जगाम मरणावधिरेव पुंसाम् ॥ ८ ॥
कस्यापि ।

---

## अथ विवेकः ॥ १५२ ॥

4171
यस्मिन्वस्तुनि ममता मम तापस्तत्र तत्रैव ।
यत्रैवाहमुदासे तत्र मुदासे स्वभावसंतुष्टः ॥ १ ॥

4172
मृत्योर्बिभेषि किं मूढ भीतं मुञ्चति नो यमः ।
अजातं नैव गृह्णाति कुरु यत्नमजन्मनि ॥ २ ॥
कस्यापि ।

4173
मुण्डी जटी वल्कलवांस्त्रिदण्डी
कषायवासा व्रतकर्शिताङ्गः ।
त्यक्तैहिको वा यदि नाप्ततत्त्व-
स्तदा तु तस्योभयमेव नष्टम् ॥ ३ ॥

4174
अधीत्य चतुरो वेदान्व्याकृत्याष्टादश स्मृतीः ।
अहो भ्रमस्य वैफल्यमात्मापि कलितो न चेत् ॥ ४ ॥
एतौ हरिषणस्य ।

4175
जडास्तपोभिः शमयन्ति देहं
बुधा मनश्चापि विकारहेतुम् ।
श्वा मुक्तमस्त्रं दशतीति कोपा-
त्क्षेप्तारमुद्दिश्य हिनस्ति सिंहः ॥ ५ ॥
कस्यापि ।

4176
अग्रे गीतं सरसकवयः पार्श्वतो दाक्षिणात्याः
पृष्ठे लीलावलयरणितं चामरग्राहिणीनाम् ।

यद्यस्त्येवं कुरु भवरसास्वादने लम्पटत्वं
नो चेच्चेतः प्रविश सहसा निर्विकल्पे समाधौ ॥ ६ ॥

4177

यदा किंचिज्ज्ञोहं द्विप इव मदान्धः समभवं
तदा सर्वज्ञोस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः ।
यदा किंचित्किंचिद्बुधजनसकाशादवगतं
तदा मूर्खोस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः ॥ ७ ॥

4178

माने म्लायिनि खण्डिते च वसुनि व्यर्थं प्रयातेर्थिनि
क्षीणे बन्धुजने गते परिजने नष्टे शनैर्यौवने ।
युक्तं केवलमेतदेव सुधियां यज्जह्नुकन्यापयः-
पूतग्रावगिरीन्द्रकंदरदरीकुञ्जे निवासः क्वचित् ॥ ८ ॥

एते भर्तृहरेः ।

---

## अथोपदेशः ॥ १५३ ॥

4179

द्रविणस्पृहया दुरीश्वराणां
भरवित्तर्द्धिविशेषणं भजन्तः ।
अपुनर्भवसाधनं शरीरं
क्षपयामो वयमों नमः शिवाय ॥ १ ॥

4180

स वेदो निर्वेदः स्मृतिरपि च सा विस्मृतिरहो
स शास्त्रार्थो व्यर्थस्तदपि यजनं मोहजंननम् ।
स ऊहः प्रत्यूहो हरिहरकथा सा च वितथा
न यत्र स्यादात्मा स्फुरदनुभवप्रत्ययमयः ॥ २ ॥

कस्यापि ।

4181

कुले महति जातेन आत्मनः श्रेय इच्छता ।
आत्मज्ञाने भ्रमः कार्यो यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते ॥ ३ ॥

4182

पुंप्रकृत्योः कथामेव शिवशक्त्योस्तथैव च ।
यः शृणोति नरो भक्त्या निष्पापः सोपि जायते ॥ ४ ॥

4183

स गुणी स च धर्मिष्ठः स विवेकी स बुद्धिमान् ।
ब्रह्मज्ञाने मतिर्यस्य शेषाः पशुसमा नराः ॥ ५ ॥

4184

ग्रामे गोश्वखरोष्ट्राद्या अरण्ये हरिणादयः ।
यथैते पशवो मूढास्तथात्मानं न वेत्ति यः ॥ ६ ॥

4185

सर्वेषां तु पदार्थानामभ्यासः कारणं परम् ।
अनभ्यासेन मर्त्यस्य प्राप्तो योगोपि नश्यति ॥ ७ ॥

4186

अभ्यासेन स्थिरं चित्तमभ्यासेनानिलच्युतिः ।
अभ्यासेन परानन्दो ह्यभ्यासेनात्मदर्शनम् ॥ ८ ॥

4187

अभ्यासेनान्यसंचारो ह्यभ्यासेनान्यरूपता ।
अभ्यासेन समुत्क्रान्तिरभ्यासेनाणिमादयः ॥ ९ ॥

4188

श्रुत्वापि यदनभ्यासो लौल्यं निद्रा जने रतिः ।
विरुद्धशास्त्रश्रवणमेतद्योगविनाशनम् ॥ १० ॥

4189

असत्सङ्गाद्गुणज्ञोपि विषयासक्तमानसः ।
अकस्मात्प्रलयं याति गीतरक्तो यथा मृगः ॥ ११ ॥

4190

विषयेष्वपि कष्टोयं विषयः स्त्रीति नामतः ।
जीवत्यन्यैः किलाकृष्टः स्त्रियाकृष्टो न जीवति ॥ १२ ॥

4191

स्त्रीरत्नध्यानमात्रं तु ब्रह्मणोपि मनो हरेत् ।
किं पुनश्चेतरेषां तु विषयेच्छानुवर्तिनाम् ॥ १३ ॥

4192

स्त्रीरत्नं मोहनं सृष्टं दृष्टमाशीविषोपमम् ।
यदीच्छेदात्मनः श्रेयो मनसापि न चिन्तयेत् ॥ १४ ॥
एते योगरसायनात् ।

4193

संसार तव दुष्पारपदवी न दवीयसी ।
अन्तरा दुस्तरा न स्युर्यदि रे मदिरेक्षणाः ॥ १५ ॥
कस्यापि ।

4194

सङ्गः सर्वात्मना त्याज्यः स चेत्त्यक्तुं न शक्यते ।
स सद्भिः सह कर्तव्यः सन्तः सङ्गस्य भेषजम् ॥ १६ ॥

4195

कामः सर्वात्मना हेयः स चेत्त्यक्तुं न शक्यते ।
मुमुक्षां प्रति कर्तव्यः सा च तस्यापि भेषजम् ॥ १७ ॥
एतौ मार्कण्डेयपुराणात् ।

4196

मोक्षद्वारप्रतीहाराश्चत्वारः परिकीर्तिताः ।
शमो विवेकः संतोषश्चतुर्थः साधुसंगमः ॥ १८ ॥

4197

वासना द्विविधा प्रोक्ता शुद्धातिमलिना तथा ।
शुद्धा जन्मक्षये हेतुर्मलिना जन्मकारणम् ॥ १९ ॥

4198

शुभाशुभाभ्यां मार्गाभ्यां वहन्ती वासनासरित् ।
पौरुषेण प्रयत्नेन योजनीया शुभे पथि ॥ २० ॥

4199

न तदस्ति जगत्कोशे शुभकर्मानुपातिना ।
यत्पौरुषेण शुद्धेन न समासाद्यते जनैः ॥ २१ ॥

4200

शुभवासनया चेतो महत्या जायते महत् ।
आत्मानं चिन्तयन्रुद्रं नन्दी रुद्रत्वमागतः ॥ २२ ॥

4201

क्षुद्रवासनया चेतः क्षुद्रतामेति नित्यशः ।
पिशाचविभ्रमात्क्षुब्धः पिशाचान्निशि पश्यति ॥ २३ ॥

4202

सदातिशययुक्तेन विश्वामित्रेण विप्रता ।
भूयो भूयः प्रयुक्तेन दुष्प्रापा तपसार्जिता ॥ २४ ॥

4203

प्रणयेन यमं जित्वा कृत्वा वचनसंगरम् ।
परलोकादुपानीतः सावित्र्या सत्यवान्पतिः ॥ २५ ॥

4204

न सोस्त्यतिशयो लोके यस्यास्ति न फलोदयः ।
अतः कार्यः प्रयत्नस्तु सद्भिः शिवफलाप्तये ॥ २६ ॥

4205

युक्त्या संतरतो ज्ञस्य संसारो गोष्पदाकृतिः ।
दूरसंत्यक्तयुक्तेस्तु महागाधार्णवोपमः ॥ २७ ॥

4206

सुसंनद्धसमस्ताङ्गं प्रशमामृतवर्मणा ।
वेधयन्ति न दुःखानि शरा वज्रशिलामिव ॥ २८ ॥

4207

पुंसो निजमनोमोहकल्पितानल्पदुःखदः ।
संसारविषवेतालो विचारेणैव लीयते ॥ २९ ॥

4208

विचारदर्पणे लग्नां धियं धैर्यधुरं गताम् ।
आधयो न विलुम्पन्ति वाताश्चित्रानलं यथा ॥ ३० ॥

4209

यथोदिते दिनकरे क्वापि याति तमस्विनी ।
तथा विवेकेभ्युदिते क्वाप्यविद्या विलीयते ॥ ३१ ॥

4210

नाहं मांसं न चास्थीनि देहादन्यः परोप्यहम् ।
इति निश्चयवानन्तः क्षीणाविद्य इहोच्यते ॥ ३२ ॥

4211

सर्वा दृष्टीः परित्यज्य नियम्य मनसा मनः ।
सबाह्याभ्यन्तरार्थस्य संकल्पस्य क्षयं कुरु ॥ ३३ ॥

4212

यदि वर्षसहस्राणि तपश्चरसि दारुणम् ।
तथापि ते न सिद्धिः स्यात्संकल्पोपशमादृते ॥ ३४ ॥

4213

हरो यद्युपदेष्टा स्याद्धरिः कमलजोपि वा ।
तथापि ते न सिद्धिः स्यात्संकल्पोपशमादृते ॥ ३५ ॥

4214

संकल्पतन्तावखिला भावाः प्रोताः शुभाशुभाः ।
छिन्ने तन्तौ न जायन्ते कल्पान्तेपि शरीरिणः ॥ ३६ ॥

4215

शान्तसंदेहदौरात्म्यं गतकौतुकविभ्रमम् ।
परिपूर्णान्तरं चेतः पूर्णेन्दुरिव राजते ॥ ३७ ॥

4216

चेतश्चञ्चलया वृत्त्या चिन्तानिचयपञ्जरे ।
वृत्तिं बध्नाति नैकत्र पञ्जरे केसरी यथा ॥ ३८ ॥

4217

दृष्टमात्रेषु भावेषु यथा बत न रुध्यते ।
तथैव तदनायत्तं चिरं चित्ते न रुध्यते ॥ ३९ ॥

4218

घटात्पटमुपायाति पटाद्धटमनुत्कटम् ।
चित्तमर्थेषु चरति पादपेष्विव मर्कटः ॥ ४० ॥

4219

सफलो मांसदेहस्य न कश्चित्पौरुषक्रमः ।
मनोदेहस्य सफलं सर्वमेव स्वचेष्टितम् ॥ ४१ ॥

4220

मनोनिर्वाणमात्रेण जगन्नाम्ना महाधिना ।
त्यक्तेनार्थेन चान्तः स्याद्दुःखदारो महात्मनः ॥ ४२ ॥

4221

मनोमात्रं जगत्सर्वं मनः पर्वतमण्डलम् ।
मनो भूमिर्मनो जीवो मनो वायुर्मनो जलम् ॥ ४३ ॥

4222

कुसुमोल्लासिधम्मिल्ला हेलावलितलोचना ।
काष्ठकुड्योपमाङ्गेषु लग्नाप्यमनसोङ्गना ॥ ४४ ॥

4223

कल्पान्तपवना वान्तु यान्तु चैकत्वमर्णवाः ।
तपन्तु द्वादशादित्या नास्ति निर्मनसः क्षतिः ॥ ४५ ॥

4224

शास्त्रसत्सङ्गधीरेण चिन्तातप्तमतापिना ।
छिन्धि त्वमयसेवायो मनसैव मनोधुना ॥ ४६ ॥

4225

वासनावागुराकृष्टो मनोहरिणको नृणाम् ।
परां विवशतामेति संसारवनगुल्मके ॥ ४७ ॥

4226

सततोदारवृत्तासु कथासु परिशीलितम् ।
संपन्ननिर्मलं चेतो मोहपङ्कैर्न लिप्यते ॥ ४८ ॥

4227

तस्मात्प्रजागरः कार्यः प्रबुद्धेन दिवानिशम् ।
न मुष्णन्ति च्छलाद्यस्मात्कामक्रोधादयोरयः ॥ ४९ ॥

एते वासिष्ठात् ।

4228

पुरमेकं जगत्यस्मिन्नस्रङ्मांसास्थिनिर्मितम् ।
चर्मभित्ति महायामं सर्वतः स्नायुवेष्टितम् ॥ ५० ॥

4229

नवद्वारं महाभूतैः पञ्चभिः सर्वतो वृतम् ।
नृपश्च पुरुषस्तत्र चेतनावानवस्थितः ॥ ५१ ॥

4230

मन्त्रिणौ तस्य बुद्धिश्च मनश्चैव विरोधिनौ ।
यतेते तस्य नाशाय तावुभावितरेतरम् ॥ ५२ ॥

4231

नृपस्य तस्य चत्वारो नाशमिच्छन्ति विद्विषः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभो मोहश्चान्यो महारिपुः ॥ ५३ ॥

4232

यदा तु स नृपस्तानि द्वाराण्यावृत्य तिष्ठति ।
तदा स्वस्थबलश्चैव निरातङ्कश्च जायते ॥ ५४ ॥

एते मार्कण्डेयपुराणात् ।

4233

जयत्याविरतारम्भा नियतिः परमात्मनः ।
यद्वशादिदमाभोगि जगच्चक्रं प्रवर्तते ॥ ५५ ॥

4234

यश्च सर्वात्मको देवः परं ब्रह्म महेश्वरः ।
स्वच्छः स्वानुभवानन्दरूपाकारादिवर्जितः ॥ ५६ ॥

4235

एतस्मात्परमानन्दाच्छुद्धचिन्मात्ररूपिणः ।
जीवः संजायते पूर्वं तस्माच्चित्तं ततो जगत् ॥ ५७ ॥

4236

शान्तस्यापगतेच्छस्य मनाक्संवेदनात्मकम् ।
स्वाभाविकं यत्स्फुरणं चिद्व्योम्नः सोऽङ्ग जीवकः ॥ ५८ ॥

4237

यथा वातस्य चलनं कृशानोरुष्णता यथा ।
शीतता वा तुषारस्य तथा जीवत्वमात्मनः ॥ ५९ ॥

4238

जीवत्वाच्चित्तसांगत्यं चित्तत्वादिन्द्रियादिता ।
इन्द्रियादेः शरीरत्वं शरीरात्कर्मसंचयः ॥ ६० ॥

4239

कर्मणः संचयात्स्वर्गनरकौ मोक्षबन्धने ।
कर्मणो जायते जन्तुर्बीजादिव नवाङ्कुरः ॥ ६१ ॥

4240

जन्तोः प्रवर्तते कर्म पुनर्बीजमिवाङ्कुरात् ।
आदिसर्गेहि नियतिर्भाववैचित्र्यमक्षयम् ।
अनेनेत्थं सदा भाव्यमिति संपद्यते परम् ॥ ६२ ॥

4241

अनुत्कीर्णा यथा पङ्के पुत्रिका वाथ दारुणि ।
वर्णा यथा मषीकल्के तथा सर्गे स्थिताः परे ॥ ६३ ॥

4242

कटकत्वं पृथग्धेम्नस्तरंगत्वं पृथग्जलात् ।
यथा न संभवत्येवं न जगत्पृथगीश्वरात् ॥ ६४ ॥

4243

ताप एव यथा वारि मृगाणां भ्रमकारणम् ।
असत्यमेव सत्याभं तथा मूढमतेर्जगत् ॥ ६५ ॥

4244

न किंचित्केनचिद्व्याप्तं न च किंचित्क्वचित्स्थितम् ।
चिदाकाशमजं शान्तं सर्वमेतदभित्तिमत् ॥ ६६ ॥

4245

मुधैवैते वयमहो ससुरासुरमानवाः ।
असत्या एव वल्गामो याम आयाम एव च ॥ ६७ ॥

4246

अलीक एव त्वद्भावो मद्भावोलीक एव च ।
अनुभूतोप्यसद्रूपः स्वप्ने स्वमरणं यथा ॥ ६८ ॥

4247

शरीरातीतवृत्तिस्त्वं शरीरस्थो भवाभवः ।
मा गाः शोकं च हर्षं च त्वमात्मा विगतज्वरः ॥ ६९ ॥

4248

यथा रजोभिर्गगनं यथा कमलमम्बुभिः ।
न लिप्यतेतिसंश्लिष्टैर्देहैरात्मा तथैव च ॥ ७० ॥

4249

बहिःकृत्रिमसंरम्भो हृदि संरम्भवर्जितः ।
कर्ता बहिरकर्तान्तर्लोके विहर राघव ॥ ७१ ॥

4250

देशाद्देशं गते चित्ते मध्ये यच्चेतसो वपुः ।
अजाड्यसंचिन्मननं तन्मयो भव राघव ॥ ७२ ॥

4251

विविक्तः शान्तसंकल्पो धीरधीरूर्जिताशयः ।
यथाप्राप्तानुवर्ती च लोके विहर राघव ॥ ७३ ॥

4252

श्रूयतां ज्ञानसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम् ।
भागेच्छामात्रको बन्धस्तत्त्यागो मोक्ष उच्यते ॥ ७४ ॥

4253

प्राप्य ज्ञानदशामेतां पशुम्लेच्छादयोपि ये ।
सदेहा वाप्यदेहा वा ते मुक्ता नात्र संशयः ॥ ७५ ॥

4254

यच्चास्ति मितगम्भीरं न तेजो न तमिस्रकम् ।
अनाख्यमनभिव्यक्तं तद्रूपं पारमात्मिकम् ॥ ७६ ॥

4255

नेन्द्रियाणि न वा रूपं न मनःपरिकल्पना ।
यत्सर्वं न च यत्सर्वं तद्रूपं पारमात्मिकम् ॥ ७७ ॥

4256

परमाणोरपि परं तदणीयो ह्यणीयसः ।
शुद्धं सूक्ष्मं परं शान्तं तदाकाशोदरादपि ॥ ७८ ॥

4257

एतद्रहस्यं परममेतच्च परमं पदम् ।
एषा गतिर्विरक्तानामेषोसौ परमः शिवः ॥ ७९ ॥

एते वासिष्ठात् ।

---

# अथ कालसंख्यानम् ॥ १५४ ॥

4258

षड्भिः प्राणैः पलं प्रोक्तं षष्टिभिर्घटिका च तैः ।
षष्टिभिर्घटिकाभिः स्यादहोरात्रं तु मानवम् ॥ १ ॥

4259

दिनैः पञ्चदशैः पक्षः शुक्लः कृष्णश्च गीयते ।
पक्षद्वयेन मासः स्यात्पितॄणां तदहर्निशम् ॥ २ ॥

4260

ऋतुर्मासद्वयेनैव षण्मासैरयनं स्मृतम् ।
अयनद्वितयं वर्षो देवानां वासरो निशा ॥ ३ ॥

4261

तद्वात्रिंशत्सहस्रैस्तु चतुर्लक्षैः कलिः स्मृतः ।
शेषं युगत्रयं ज्ञेयं कलेर्द्वित्रिचतुर्गुणम् ॥ ४ ॥

4262

खचतुष्कं रदा वेदाश्चतुर्युगमुदाहृतम् ।
चातुर्युगैकसप्तत्या मन्वन्तरमुदाहृतम् ॥ ५ ॥

4263

चतुर्भिरर्बुदैः कल्पं द्वात्रिंशद्भिश्च कोटिभिः ।
चतुर्दश सुरेन्द्राश्च पतन्ति ब्रह्मणोहनि ॥ ६ ॥

4264

चतुर्युगसहस्रेण कल्पाख्यं ब्रह्मणो दिनम् ।
तत्प्रमाणा तथा रात्रिः सृष्टिसंहारकारिणी ॥ ७ ॥

4265

अथ कालाग्निरुद्रस्य तृतीयनयनोत्थिता ।
ज्वाला दहति तत्सर्वं निर्वाणं ब्रह्मणो यतः ॥ ८ ॥

4266

स्वपतो ब्रह्मणः स्वेदाद्भूमिरेकार्णवा भवेत् ।
निःश्वासैः शुष्यते सापि सृजेत्सुप्तोत्थितः पुनः ॥ ९ ॥

4267

स्वकालपरिमाणेन पूर्णे वर्षशते किल ।
ब्रह्मादीनां तथा शक्तेः क्षयो जन्म पुनः पुनः ॥ १० ॥

4268

ब्रह्मा हरौ हरी रुद्रे रुद्रो लीयत ईश्वरे ।
ईशः सदाशिवे सोपि शक्तौ शक्तिः परे शिवे ॥ ११ ॥

4269

पुनः सृष्टिः पुनर्नाशः पुनः कल्पपरम्परा ।
पुनः पुनरिदं सर्वं चक्रवत्परिवर्तते ॥ १२ ॥

4270

ये तत्र लीनाः परमे पदे शिवे
मुक्तिं गता देवि त एव नापरे ।

शक्तिप्रणाशे प्रलये महत्यहो
तेषां कदाचित्पतनं न विद्यते ॥ १३ ॥
एते शिवभाषिताद्योगरसायनात् ।

---

# अथ शारीरम् ॥ १५५ ॥

4271
अस्ति कारणमव्यक्तं सर्वव्यापि परापरम् ।
सांनिध्यादपि दुर्ग्राह्यं विश्वमूर्त्योपलक्षितम् ॥ १ ॥

4272
नाकारं न निराकारं न च स्त्रीपुंनपुंसकम् ।
नापस्तेजो मरुद्व्योम भूमिर्दूरे न चान्तिके ॥ २ ॥

4273
ततोनिच्छस्य देहस्य शक्तिरिच्छेत्यजायत ।
चिद्रूपिण्या तया क्रीडां कर्तुमैच्छत्स लीलया ॥ ३ ॥

4274
क्रियारूपा गुणमयी तस्या बुद्धिरजायत ।
ज्ञानशक्तिरिति ख्याता क्रियाशक्तिश्च सा स्मृता ॥ ४ ॥

4275
बुद्धेरहं ततश्चित्तं शक्तिस्तस्याः सदाशिवः ।
नभोरूपी ततो वायुरीश्वरः समजायत ॥ ५ ॥

4276
ईश्वरात्समभूद्रुद्रो ज्योतिर्मय उमापतिः ।
रुद्राद्विष्णुरभूदाद्यस्त्रैलोक्यपरिपालकः ॥ ६ ॥

4277
विष्णुनाप्यक्षयो जातो ब्रह्मायं पृथिवीमयः ।
तदर्थमभवत्पूर्वं ब्रह्माण्डं कनकप्रभम् ॥ ७ ॥

4278

तेन सृष्टं स्वशक्त्येदं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
पञ्चभिः सह संभूय पञ्चभूतमयात्मकैः ॥ ८ ॥

4279

ततो ब्रह्मा द्विधा भूतः शिवशक्तिविभागतः ।
स्त्रीपुंरूपेण सौख्यार्थं सुरतेनासृजत्प्रजाः ॥ ९ ॥

4280

ततश्चतुर्मुखस्यासन्दश पुत्रा मनोभवाः ।
तेषां दश ददौ कन्या मनोजाताः प्रजापतिः ॥ १० ॥

4281

ते सर्वे ज्ञाननिरताः सुसंतुष्टास्तपोधनाः ।
तेषां पुत्रैश्च पौत्रैश्च व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ॥ ११ ॥

4282

तत आत्मभुवः पुत्रो मरीचिरिति योभवत् ।
दशपुत्रेषु विख्यातस्तस्माज्जातश्च कश्यपः ॥ १२ ॥

4283

सोपि दक्षस्य कन्यासु कश्यपः समजीजनत् ।
उत्पत्तिहेतुर्विश्वस्य भूतग्रामांश्चतुर्दश ॥ १३ ॥

4284

अष्टधा देवतायोनिस्तिर्यग्योनिश्च पञ्चधा ।
एकधा मानुषी योनिरिमे भूताश्चतुर्दश ॥ १४ ॥

4285

तैजसा देवकार्येषु बभूवुः सप्त धातवः ।
अन्येषामपि कार्येषु पार्थिवाः सप्त धातवः ॥ १५ ॥

4286

सर्वे मिथुनरूपेण प्रजा उत्पादयन्ति ते ।
मैथुनानन्दनिरता विषयासक्तचेतसः ॥ १६ ॥

4287

भगस्तु वैष्णवी शक्तिर्लिङ्गरूपी सदाशिवः ।
उभयोर्योगतो बीजं ब्रह्मरूपं प्रवर्तते ॥ १७ ॥

4288

गर्भाशयो धरापीठं रजो रक्तं च भास्करः ।
सौम्यं रेतो ब्रह्मरूपं तस्मिंस्तत्र विलम्बते ॥ १८ ॥

4289

सूर्याचन्द्रमसोर्योगममावास्यां विदुर्बुधाः ।
तस्यां प्रजाः प्रजायन्ते यदीच्छा पारमेश्वरी ॥ १९ ॥

4290

शुक्रशोणितसंयोगो यदैव किल जायते ।
तदा संजायते जीवो वह्निः सूर्यमणेरिव ॥ २० ॥

4291

शुक्रेधिके भवेत्पुत्रो कन्या रक्तेधिके भवेत् ।
नपुसकं समत्वेन कर्मणो नियतिर्यथा ॥ २१ ॥

4292

अङ्गप्रत्यङ्गभागेन ततः पिण्डः प्रजायते ।
चर्मणाच्छादितः सप्त धातवः स्युरनुक्रमात् ॥ २२ ॥

4293

पिण्डं मज्जासुपूर्णानामस्थां षष्टिशतैस्त्रिभिः ।
द्वासप्ततिसहस्राभिर्नाडीभिः पञ्जरं कृतम् ॥ २३ ॥

4294

क्रियाशक्त्या विना क्वापि ज्ञानशक्तिर्न दृश्यते ।
तेनेदं ज्ञानशक्त्यर्थं कृतं वेदम क्रियामयम् ॥ २४ ॥

4295

चतुर्विंशतिभिस्तत्त्वैः क्रियाशक्तिरचेतना ।
ज्ञानशक्त्या युता वापि लक्ष्यते चेतनावती ॥ २५ ॥

4296

सर्वज्ञोपि शिवस्तत्र शक्तिसङ्गेन मोहितः ।
नात्मानं न परं वेत्ति विचेष्टति तदिच्छया ॥ २६ ॥

4297

प्राणापानमयी शक्तिः षट्चक्राधारसंयुतम् ।
शान्तं शिवं वशीकृत्य वर्तते कामकारतः ॥ २७ ॥

4298

आधारः कन्दमित्युक्तं स्वाधिष्ठानं च जन्मभूः ।
नाभिस्तु मणिपूराख्यं हृदयं विद्धचनाहतम् ॥ २८ ॥

4299

विशुद्धिः कण्ठ इत्युक्तमाज्ञाचक्रं भ्रुवोन्तरे ।
आधारो हि चतुर्भिन्नः स्वाधिष्ठानं च षड्दलैः ॥ २९ ॥

4300

दशभिर्मणिपूराख्यं द्वादशैस्तु अनाहतम् ।
विशुद्धिः षोडशैर्भिन्नमाज्ञाचक्रं द्वयेन तु ॥ ३० ॥

4301

कालाग्निरुद्र आधारे शक्तिः कुण्डलिनी तथा ।
आनन्दाख्या स्वधिष्ठाने शक्त्या कामाख्यया सह ॥ ३१ ॥

4302

नाभौ ब्रह्मा हृदि श्रीशः कण्ठे रुद्रो व्यवस्थितः ।
ईश्वरो लम्बिकायां च तदूर्ध्वे च सदाशिवः ॥ ३२ ॥

4303

ज्योतिःस्थानानि चैतानि षट्चक्राणि जगुर्बुधाः ।
नासामूलं विदुः स्थानं नादस्योत्पत्तिकारणम् ॥ ३३ ॥

4304

तस्योर्ध्वे योगिनीचक्रं तदूर्ध्वे शक्तिरास्थिता ।
शक्त्यूर्ध्वे तु शिखा प्रोक्ता शिखान्ते धूमवत्तमः ॥ ३४ ॥

4305

तमसोन्ते परं ज्योतिरलक्ष्यः परमेश्वरः ।
यं दृष्ट्वैव विलीयन्ते योगिनः स्थिरचेतसः ॥ ३५ ॥

4306

चराचरेषु पिण्डस्थं पदस्थं खानिलादिषु ।
भास्करादिषु रूपस्थं रूपातीतं परं विदुः ॥ ३६ ॥

4307

द्वासप्ततिसहस्राणि कन्दान्नाड्यो विनिर्गताः ।
प्रविश्य नाभिदेशेषु सर्वाङ्गेषु ततो गताः ॥ ३७ ॥

4308

इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्णा च सरस्वती ।
गान्धारी हस्तिजिह्वा च पूषा चैव निगद्यते ॥ ३८ ॥

4309

अलम्बुषा कुहूश्चैव शङ्खिनी दशमी मता ।
एताः प्राणवहा ज्ञेयाः प्रधाना दश नाडिकाः ॥ ३९ ॥

4310

इडा नासापुटे वामे पिङ्गला दक्षिणे भवेत् ।
सुषुम्णा तालु भित्त्वैव ब्रह्मद्वारं प्रवर्तिता ॥ ४० ॥

4311

सरस्वती च जिह्वायां गान्धारी वामकर्णके ।
दक्षिणे हस्तिजिह्वाख्या पूषा वामे च लोचने ॥ ४१ ॥

4312

अलम्बुषा दक्षिणे स्याद्गुजद्वारे कुहूर्भवेत् ।
आ ब्रह्मरन्ध्रान्मार्गेण ब्रह्मदण्डस्य शङ्खिनी ।
सदा बिन्दुवहा ज्ञेया लिङ्गद्वारे च शङ्खिनी ॥ ४२ ॥

4313

प्राणोपानः समानश्च उदानो व्यान एव च ।
नागः कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनंजयः ॥ ४३ ॥

4314

प्राणो हि दशधा ह्येष दशानामथवा प्रभुः ।
द्वासप्ततिसहस्रासु नाडीषु विचरत्यलम् ॥ ४४ ॥

4315

हृदि प्राणो गुदेपानः समानो नाभिसंस्थितः ।
उदानः कण्ठदेशे च व्यानः सर्वशरीरगः ॥ ४५ ॥

4316

सर्वाङ्गमोटको नागः कूर्म उन्मेषकारकः ।
कृकः क्षुतोद्गारकरो देवदत्तस्तु जृम्भकः ।
धनंजयो नादकरः स्यादेवं दशधा मरुत् ॥ ४६ ॥

4317

येन जीवति जीवोयं निर्जीवो यं विना भवेत् ।
स प्राण इति विख्यातो वायुः क्षेत्रचरः परः ॥ ४७ ॥

4318

कन्दाग्रात्प्रोत्थितः प्राणः सदा वहति देहिनाम् ।
हृद्गतं जीवमाश्वास्य बहिर्गत्वा निवर्तते ॥ ४८ ॥

4319

पिङ्गलेडापथं गत्वा पीत्वा च गगनामृतम् ।
निवृत्त्य जीवं संतर्प्य पुनः कन्दे प्रवर्तते ॥ ४९ ॥

4320

अपानेन पुनः कश्चित्प्रेरितः कालरूपिणा ।
निःश्वासोच्छ्वासकृद्याति जपन्हंसेत्यहर्निशम् ॥ ५० ॥

4321

हंसश्च द्वादशदले जीवात्मा हृदयाम्बुजे ।
तिष्ठन्करोति चैतन्यद्योतं दीपो घटे यथा ॥ ५१ ॥

4322

बद्धः कर्मगुणैर्बुद्धिसंयुतः त्रिगुणात्मकः ।
गृही पञ्चेन्द्रियार्थानां मनोदूतेन सर्वदा ॥ ५२ ॥

4323

चेतयन्निखिलं देहं जीवात्मा सुखदुःखभुक् ।
आत्मानं नैव जानाति कामक्रोधादिभिर्हृतम् ॥ ५३ ॥

4324

स एव जीवः स प्राणी स शरीरी निगद्यते ।
स एव गर्भदुःखस्य सोढा स्वेनैव कर्मणा ॥ ५४ ॥

4325

इत्यङ्गैः संयुतः सर्वैर्देहिनो बालकाकृतिः ।
मातुराहाररसतो देहे गर्भोभिवर्धते ॥ ५५ ॥

4326

ततो गर्भस्थितः प्राणी चिन्तयेत्किं कृतं मया ।
दुष्कृतं येन निरये गर्भाख्ये पतितोस्म्यहम् ॥ ५६ ॥

4327

निःसृतोहं करिष्यामि सुकृतानीति चिन्तयन् ।
उल्बणात्करपादाभ्यां कृत्वा द्वारं विनिर्गतः ॥ ५७ ॥

4328

योनिद्वारविनिष्क्रान्तो विसंज्ञः पतितः क्षितौ ।
न स पूर्वं स्मरेत्किंचिन्मायया बाध्यते पुनः ॥ ५८ ॥

4329

अज्ञानिकहतो बाल्ये यौवने गृहतत्परः ।
वार्धकेपत्यचिन्तार्तः कर्मभिर्बध्यते पुनः ॥ ५९ ॥

4330

तत आयुःक्षये कन्दादपानः कालरूपवान् ।
प्राणं बहिः करोत्येव शरीरात्कुपितः किल ॥ ६० ॥

4331

ऊर्ध्वं श्वसंस्ततः प्राणो यात्यलब्धस्थितिस्तनोः ।
तं यान्तमनुयात्येव जीवः कालप्रणोदितः ॥ ६१ ॥

4332

निर्गच्छन्नेव वपुषो गृह्यते यमकिंकरैः ।
ते तं नयन्ति बहुधा भीषयन्तो यमान्तिकम् ॥ ६२ ॥

4333

पञ्चेन्द्रियमनोबुद्धितन्मात्रैर्भूतपञ्चकैः ।
पुनः कर्मशरीरेण प्रयाति यमसंनिधिम् ॥ ६३ ॥

4334

ततो यमाज्ञया स्वर्गं नरकं वा प्रपद्यते ।
अवशिष्टेन पुण्येन पापेन च समन्वितः ।
तेभ्यो निर्गत्य भूतेषु जायते कर्मतः पुनः ॥ ६४ ॥

4335

एवं कदाचिन्नरकं स्वर्गं योन्यन्तराण्यपि ।
प्रयान्ति जीवा मोहेन मोहिता भवसंकटे ॥ ६५ ॥
एते योगरसायनात् ।

4336

एते हि जीवाश्चिद्भावा भवे भावनया हिताः ।
ब्रह्मणः कलिताकाराः सहस्रायुतकोटिशः ॥ ६६ ॥

4337

संख्यातीताः पुरा जाता जायन्तेद्यापि चाभितः ।
उत्पत्स्यन्तेपि चैवान्ये कणौघा इव निर्झरात् ॥ ६७ ॥

4338

स्ववासनावशावेशादाशाविवशतां गताः ।
दशास्वतिविचित्रासु स्वयं निगडिताशयाः ॥ ६८ ॥

4339

अनारतं प्रतिदिशं प्रतिदेशं जले स्थले ।
जायन्ते च म्रियन्ते च बुद्बुदा इव वारिणि ॥ ६९ ॥

4340

केचित्प्रथमजन्मानः केचिज्जन्मशताधिकाः ।
केचिच्चासंख्यजन्मानः केचिद्द्वित्रिभवा नराः ॥ ७० ॥

4341

विहरन्ति जगत्येके निपतन्त्युत्पतन्ति च ।
कन्दुका इव हस्तेन मृत्युनाविरतं हताः ॥ ७१ ॥

(युग्मम्)

4342

आशापाशशतैर्बद्धा वासनाभरवाहिनः ।
कायात्कायमुपायान्ति वृक्षाद्वृक्षमिवाण्डजाः ॥ ७२ ॥

4343

दिवि देवा भुवि नराः पाताले भोगिनोसुराः ।
ब्रह्माण्डोदुम्बरफले स्फुरन्मशकवत्स्थिताः ॥ ७३ ॥

4344

तावद्भ्रमन्ति संसारे प्राणिनो मनसो भ्रमात् ।
यावन्मूढा न पश्यन्ति स्वं चिदात्मानमात्मना ॥ ७४ ॥

4345

चिदानन्दमये देवे क्रियतां चित्तसंगतिः ।
दीर्घमोहमयी निद्रा त्यज्यतां संप्रबुध्यताम् ॥ ७५ ॥

4346

तत्कर्म यन्न बन्धाय सा विद्या या विमुक्तये ।
आयासायापरं कर्म विद्यान्या शिल्पनैपुणम् ॥ ७६ ॥

एते वासिष्ठात् ।

---

## अथ योगः ॥ १५६ ॥

### तत्र मन्त्रयोगः ।

4347

मन्त्रयोगो लयश्चैव राजयोगो हठस्तथा ।
योगश्चतुर्विधः प्रोक्तो योगिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ १ ॥

4348

आसनं प्राणसंरोधो ध्यानं चैव समाधिकः ।
एतच्चतुष्टयं विद्धि सर्वयोगेषु संमतम् ॥ २ ॥

4349

ब्रह्मविष्णुशिवादीनां मन्त्रजाप्यविशारदैः ।
साध्यते मन्त्रयोगस्तु वत्सराजादिभिर्यथा ॥ ३ ॥

## अथ लययोगः ।

4350

कृष्णद्वैपायनाद्यैस्तु साधितो लयसंज्ञितः ।
नवस्वेव हि चक्रेषु लयं कृत्वा महात्मभिः ॥ ४ ॥

4351

प्रथमं ब्रह्मचक्रं स्यात्त्रिरावर्तं भगाकृति ।
अपाने मूलकन्दाख्ये कामरूपं च तज्जगुः ॥ ५ ॥

4352

तदेव वह्निकुण्डं स्याच्छक्तिः कुण्डलिनी तथा ।
तां जीवरूपिणीं ध्यायेज्ज्योतिष्कां मुक्तिहेतवे ॥ ६ ॥

4353

स्वाधिष्ठानं द्वितीयं स्याच्चक्रं तन्मध्यगं विदुः ।
पश्चिमाभिमुखं लिङ्गं प्रवालाङ्कुरसंनिभम् ।
तत्रोड्डीयाणपीठे तु तद्ध्यात्वा कर्षयेज्जगत् ॥ ७ ॥

4354

तृतीयं नाभिचक्रं स्यात्तन्मध्ये भुजगी स्थिता ।
पञ्चावर्ता मध्यशक्तिश्चिद्रूपा विद्युदाकृतिः ।
तां ध्यात्वा सर्वसिद्धीनां भाजनं जायते बुधः ॥ ८ ॥

4355

चतुर्थं हृदये चक्रं विज्ञेयं तदधोमुखम् ।
ज्योतीरूपं च तन्मध्ये हंसं ध्यायेत्प्रयत्नतः ।
तं ध्यायतो जगत्सर्वं वश्यं स्यान्नात्र संशयः ॥ ९ ।

4356

पञ्चमं कण्ठचक्रं स्यात्तत्र वामे इडा भवेत् ।
दक्षिणे पिङ्गला ज्ञेया सुषुम्णा मध्यतः स्थिता ।
तत्र ध्यात्वा शुचिर्ज्योतिः सिद्धीनां भाजनं भवेत् ॥ १० ॥

4357
षष्ठं तु तालुकाचक्रं घण्टिकास्थानमुच्यते ।
दशमद्वारमार्गं तु राजदन्तं च तज्ज्ञगुः ।
तत्र शून्ये लयं कृत्वा मुक्तो भवति निश्चितम् ॥ ११ ॥

4358
भ्रूचक्रं सप्तमं विद्याद्विन्दुस्थानं च तद्विदुः ।
भ्रुवोर्मध्ये वर्तुलं च ध्यात्वा ज्योतिः प्रमुच्यते ॥ १२ ॥

4359
अष्टमं ब्रह्मरन्ध्रं स्यात्परं निर्वाणसूचकम् ।
तद्ध्यात्वा सूचिकाभ्राभं धूमाकारं विमुच्यते ।
तच्च जालंधरं ज्ञेयं मोक्षदं लीनचेतसाम् ॥ १३ ॥

4360
नवमं ब्रह्मचक्रं स्याद्दलैः षोडशभिर्युतम् ।
संविद्रूपा च तन्मध्ये शक्तिरूर्ध्वा स्थिता परा ।
तत्र पूर्णगिरौ पीठे शक्तिं ध्यात्वा विमुच्यते ॥ १४ ॥

4361
एतेषां नवचक्राणामेकैकं ध्यायतो मुनेः ।
सिद्धयो मुक्तिसहिताः करस्थाः स्युर्दिने दिने ॥ १५ ॥

4362
कोदण्डद्वयमध्यस्थं पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषा ।
कदम्बगोलकाकारं ब्रह्मलोकं व्रजन्ति ते ॥ १६ ॥

4363
ऊर्ध्वशक्तिनिपातेन अधःशक्तेर्निकुञ्चनात् ।
मध्यशक्तिप्रबोधेन जायते परमं सुखम् ॥ १७ ॥

## अथ राजयोगः ।

4364
दत्तात्रेयादिभिः पूर्वं साधितोयं महात्मभिः ।
राजयोगो मनोवायू स्थिरौ कृत्वा प्रयत्नतः ॥ १८ ॥

4365

पूर्वाभ्यस्तौ मनोवातौ मूलाधारानिकुञ्चनात् ।
पश्चिमे दण्डमार्गे तु शक्तिन्यन्तः प्रवेशयेत् ॥ १९ ॥

4366

ग्रन्थित्रयं भेदयित्वा नीत्वा भ्रमरकंदरम् ।
ततस्तु नादजो बिन्दुस्ततः शून्ये लयं व्रजेत् ॥ २० ॥

4367

अभ्यासात्तु स्थिरस्वान्त ऊर्ध्वरेताश्च जायते ।
परानन्दमयो योगी जरामरणवर्जितः ॥ २१ ॥

4368

अथवा मूलसंस्थानामुद्बुद्धैस्तु प्रबोधयेत् ।
सुप्तां कुण्डलिनीं शक्तिं बिसतन्तुनिभाकृतिम् ॥ २२ ॥

4369

सुषुम्णान्तः प्रवेश्यैव पञ्च चक्राणि भेदयेत् ।
ततः शिवे शशाङ्काभे स्फुरच्चिर्मलतेजसि ॥ २३ ॥

4370

सहस्रदलपद्मान्तःस्थिते शक्तिं नियोजयेत् ।
अथ तत्सुधया सर्वां सबाह्याभ्यन्तरां तनुम् ॥ २४ ॥

4371

प्लावयित्वा ततो योगी न किंचिदपि चिन्तयेत् ।
तत उत्पद्यते तस्य समाधिर्निस्तरंगितः ।
एवं निरन्तराभ्यासाद्योगी सिद्धः स जायते ॥ २५ ॥

एते शार्ङ्गधरस्य।

---

## अथ हठयोगः ॥ १५७ ॥

4372

द्विधा हठः स्यादेकस्तु गोरक्षादिभिसाधितः ।
अन्यो मृकण्डपुत्राद्यैः साधितोनिशमुद्यतैः ॥ १ ॥

4373

तत्र गोरक्षसदृशैः साधितो यः स कथ्यते ।
धीरैरपि हि दुःसाध्यः किं पुनः प्राकृतैर्जनैः ॥ २ ॥

4374

आसनं प्राणसंरोधः प्रत्याहारश्च धारणा ।
ध्यानं समाधिरेतानि योगाङ्गानि स्मृतानि षट् ॥ ३ ॥

## अथासनम् ।

4375

एकान्ते विजने देशे पवित्रे निरुपद्रवे ।
कम्बलाजिनवस्त्राणामुपर्यासनमभ्यसेत् ॥ ४ ॥

4376

उत्तानौ चरणौ कृत्वा ऊरुसंस्थौ प्रयत्नतः ।
ऊरुमध्ये तथोत्तानौ पाणी पद्मासनं त्विदम् ॥ ५ ॥

## अथ प्राणायामः ।

4377

तत्र पद्मासनं बद्ध्वा ततः संकोचयेत्त्वधः ।
समदण्डं शिरः कृत्वा नासिकान्तर्दृशं नयेत् ॥ ६ ॥

4378

यथैवोत्पलनालेन आकर्षति नरो जलम् ।
योगी योगसमाविष्टस्तथा कर्षति मारुतम् ॥ ७ ॥

4379

काकचञ्चुपुटीकृत्य ओष्ठौ प्रोक्तानिलं पिबेत् ।
ओंकारध्वनिनाकृष्य पूरयेद्यावदन्तरम् ॥ ८ ॥

4380

पूरणात्पूरकं प्रोक्तं कुम्भकस्तु निकुम्भनात् ।
रेचकं रेचनासूक्ष्मं ततोन्तः शोध्यते त्रिभिः ॥ ९ ॥

4381

प्राणायामाञ्चरः षष्टिं कुर्यादेवमहर्मुखे ।
चत्वारिंशच्च मध्याह्ने संध्यायां विंशतिर्भवेत् ।
अर्धरात्रे विंशतिः स्यादेवं प्राणविनिग्रहः ॥ १० ॥

4382

शरीरलघुता दीप्तिर्जठराग्निविवर्धनम् ।
कृशत्वं च शरीरस्य जायते वै ध्रुवं तदा ॥ ११ ॥

4383

लवणं सरसं साम्लमुष्णं रूक्षं च तीक्ष्णकम् ।
स्त्रीसेवामग्निसेवां च बह्वाशित्वं च वर्जयेत् ॥ १२ ॥

4384

क्षीरं घृतं च मृष्टान्नं मिताहारश्च शस्यते ।
मितोक्तिः पवनाभ्यासो निद्रायाश्च जयस्तथा ॥ १३ ॥

4385

केवले कुम्भके सिद्धे रेचपूरकवर्जिते ।
न तस्य दुर्लभं किंचित्त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ १४ ॥

4386

ततोधिकतराभ्यासाद्भवतः स्वेदकम्पने ।
ततोधिकतराभ्यासाद्दर्दुरी जायते ध्रुवम् ॥ १५ ॥

4387

यथैव दर्दुरो गच्छेदुत्प्लुत्योत्प्लुत्य भूतले ।
पद्मासनस्थितो योगी तथा गच्छति भूतले ॥ १६ ॥

4388

ततोधिकतराभ्यासाद्भूमित्यागश्च जायते ।
स्वल्पं वा बहु वा भुक्त्वा योगी न व्यथते तदा ॥ १७ ॥

4389

अल्पमूत्रपुरीषश्च स्वल्पनिद्रश्च जायते ।
कोटिलो दूषिका लाला स्वेदो दुर्गन्धिता तनोः ॥ १८ ॥

4390

एतानि सर्वदा तस्य न जायन्ते ततः परम् ।
स्त्रीसङ्गं वर्जयेद्यत्नाद्बिन्दुं रक्षेत्प्रयत्नतः ।
आयुःक्षयो बिन्दुनाशादसामर्थ्यं च जायते ॥ १९ ॥

## अथ प्रत्याहारः ।

4391

विषयद्वारनिष्क्रान्तं यावत्स्वविषयान्प्रति ।
चित्तं निवार्यते यत्र प्रत्याहारः स उच्यते ॥ २० ॥

## अथ पञ्च धारणाः ।

4392

गुरूपदेशतश्चित्तमेकस्मिन्स्थानके यदि ।
वायुश्च रुध्यते यत्र धारणा सा विधीयते ॥ २१ ॥

## अथ पृथ्वीधारणा ।

4393

नाभेरधो गुदस्योर्ध्वं घटिकाः पञ्च धारयेत् ।
वायुं ततो लभेत्पृथ्वीधारणां तद्भयापहाम् ।
पृथिवीसंभवो मृत्युर्न भवेदस्य योगिनः ॥ २२ ॥

## अथ जलधारणा ।

4394

नाभिस्थाने ततो वायुं धारयेत्पञ्च नाडिकाः ।
ततो जलाद्भयं नास्ति जलमृत्युर्न योगिनः ॥ २३ ॥

## अथ तेजोधारणा ।

4395

नाभ्यूर्ध्वमण्डले वायुं धारयेत्पञ्च नाडिकाः ।
आग्नेयी धारणा सेयं मृत्युस्तस्य न वह्निना ॥ २४ ॥

## अथ वायुधारणा ।

4396

नासाभ्रूमध्यदेशे तु वायुं तथैव धारयेत् ।
वायवी धारणा सेयं मृत्युस्तस्य न वायुना ॥ २५ ॥

## अथाकाशधारणा ।

4397

भ्रूमध्यस्योपरिष्टाच्च धारयेत्पञ्च नाडिकाः ।
वायुं योगी प्रयत्नेन सेयमाकाशधारणा ॥ २६ ॥

4398

आकाशधारणां कुर्वन्मृत्युं जयति निश्चितम् ।
यत्र तत्र स्थितो वापि सुखमत्यन्तमश्नुते ॥ २७ ॥

## अथ ध्यानम् ।

4499

वायुः परिचितो यत्नादग्निना सह कुण्डलीम् ।
बोधयित्वा सुषुम्णायां प्रविशेदग्निरोधतः ॥ २८ ॥

4400

महापथं प्रविश्यैवं शून्यस्थाने लयं व्रजेत् ।
यदा तदा भवेद्योगी त्रिकालामलदर्शनः ॥ २९ ॥

## अथ समाधिः ।

4401

यदेतद्ध्यानमाख्यातं तच्चेत्परिणमत्यपि ।
चैतन्यानन्दरूपेण स समाधिरुदीरितः ॥ ३० ॥

## अथ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुरीयावस्थाः ।

4402

बुद्धिपूर्वं तु यज्ज्ञानं बाह्यविषयसेवितम् ।
प्रत्यक्षमनिरुद्धं च तज्जागरितमुच्यते ॥ ३१ ॥

4403

अर्थाभावे तु यज्ज्ञानं प्रत्यक्षमिव दृश्यते ।
गन्धर्वनगराकारं स्वप्नं तदुपलक्षयेत् ॥ ३२ ॥

4404

जाग्रत्स्वप्नावुभावेतौ नित्यं यत्र प्रतिष्ठितौ ।
उत्पत्तिः प्रलयश्चैव सौषुप्तमवधारयेत् ॥ ३३ ॥

4405

जीवाभावो विनिद्रा च द्वयं यत्र न विद्यते ।
तत्तुरीयमिति प्रोक्तमुत्पत्तिलयवर्जितम् ॥ ३४ ॥

4406

अथ देहं स्थिरीकर्तुं योगिनां सिद्धिमिच्छताम् ।
कथ्यन्ते शुद्धकर्माणि यैः सिद्धिं प्रापुरुत्तमाः ॥ ३५ ॥

4407

महामुद्रां नभोमुद्रामुड्डीयाणं जालंधरम् ।
मूलबन्धं स्थिरं दण्डं यः करोति स सिध्यति ॥ ३६ ॥

## अथ महामुद्रा ।

4408

पार्ष्णिं तु वामपादस्य योनिस्थाने नियोजयेत् ।
प्रसार्य दक्षिणं पादं हस्ताभ्यां धारयेद्दृढम् ॥ ३७ ॥

4409

चिबुकं हृदि विन्यस्य पूरयेद्वायुना पुनः ।
कुम्भकेन यथाशक्त्या धारयित्वा तु रेचयेत् ।
वामाङ्गेन समभ्यस्य दक्षिणाङ्गेन चाभ्यसेत् ॥ ३८ ॥

## अथ नभोमुद्रा ।

4410

अन्तः कपालविवरे जिह्वामाकुञ्च्य चार्पयेत् ।
भ्रूमध्यदृष्टिरमृतं पिबेत्खेचरमुद्रया ॥ ३९ ॥

## अथ जालंधरम् ।

4411

कण्ठमाकुञ्च्य हृदये स्थापयेद्दृढमिच्छया ।
जालंधरो बन्ध एष सुधाव्ययनिवारणः ॥ ४० ॥

4412

नाभिस्थोग्निः कपालस्थसहस्रकमलाच्युतम् ।
अमृतं सर्वदा सर्वं पिबञ्ज्वलति देहिनाम् ॥ ४१ ॥

4413

यथा सोग्निस्तदमृतं न पिबेत्तद्विधिस्त्वयम् ।
याति पश्चिममार्गेण एवमभ्यसतः सदा ।
अमृतीकुरुते देहं जालंधरमिति स्मृतम् ॥ ४२ ॥

## अथोड्डीयाणम् ।

4414

उड्डीयाणं तु सहजं कथितं गुरुणा सदा ।
अभ्यसेदस्ततन्द्रस्तु वृद्धोपि तरुणो भवेत् ॥ ४३ ॥

4415

नाभेरूर्ध्वमधश्चापि तानं कुर्यात्प्रयत्नतः ।
षण्मासाभ्यासतो मृत्युं जयत्येव न संशयः ॥ ४४ ॥

## अथ मूलबन्धः ।

4416

मूलबन्धं च यो नित्यमभ्यसेत्स हि योगवित् ।
गुदं पार्ष्ण्या तु संपीड्य वायुमाकुञ्चयेद्बलात् ।
वारं वारं यथा चोर्ध्वं समायाति समीरणः ॥ ४५ ॥

4417

प्राणापानौ नादबिन्दू मूलबन्धेन चैकताम् ।
गत्वा योगस्य संसिद्धिं गच्छतो नात्र संशयः ॥ ४६ ॥

4418
अपानप्राणयोरैक्यं क्षयो मूत्रपुरीषयोः ।
युवा भवति वृद्धोपि सततं मूलबन्धनात् ॥ ४७ ॥

अथ दण्डधारणम् ।

4419
पृष्ठबन्धं स्थिरं कुर्यादनम्रं स्थिरसंचयम् ।
दण्डधारणमेतद्धि योगिनां परमं स्मृतम् ॥ ४८ ॥

एते योगशास्त्रेभ्यः ।

---

## अथ मार्कण्डेयादिसाधितो द्वितीयो हठयोगः ॥ १५८ ॥

4420
श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यद्योक्तं व्यासकोटिभिः ।
ममेति मूलं दुःखस्य न ममेति च निर्वृतिः ॥ १ ॥

4421
निर्ममत्वं विरागाय वैराग्याद्योगसंगतिः ।
योगाच्च जायते ज्ञानं ज्ञानान्मुक्तिः प्रजायते ॥ २ ॥

4422
उपभोगेन पुण्यानां प्राक्तनानां तथांहसाम् ।
कर्तव्यमिति नित्यानामकामकरणात्तथा ॥ ३ ॥

4423
असंचयादपूर्वस्य क्षयात्पूर्वार्जितस्य च ।
कर्मणो बन्धमाप्नोति शारीरं न पुनः पुनः ॥ ४ ॥

4424
अथेह कथ्यतेस्माभिः कर्मणा येन बन्धनम् ।
छिद्यते सदुपायेन श्रुत्वा तत्र प्रवर्त्यताम् ॥ ५ ॥

4425
अष्टावङ्गानि योगस्य यमो नियम आसनम् ।
प्राणायामः प्रत्याहारो धारणा ध्यानतन्मयः ॥ ६ ॥

अथ यमः ।

4426

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यपरिग्रहः ।
इष्टानिष्टपरा चिन्ता यम एष प्रकीर्तितः ॥ ७ ॥

अथ नियमः ।

4427

स्वाध्यायशौचसंतोषा देवताराधनं तपः ।
वैराग्यं च जनासङ्गो नियमोप्येष उच्यते ॥ ८ ॥

अथासनम् ।

4428

नाध्यातः क्षुधितः श्रान्तो न च व्याकुलचेतनः ।
युञ्जीत योगं योगज्ञो नित्यं सिद्ध्यर्थमादृतः ॥ ९ ॥

4429

न शीते नाति चैवोष्णे न दुर्गे नाम्बुनस्तटे ।
न सोपद्रवदेशेषु योगं संसाधयेत्क्वचित् ॥ १० ॥

4430

एकान्ते विजने रम्ये पवित्रे निरुपद्रवे ।
सुखासने समाधिः स्याद्दृक्त्राजिनकुशोत्तरे ॥ ११ ॥

4431

पद्ममर्धासनं चापि तथा सिद्धासनादिकम् ।
आस्थाय योगं युञ्जीत कृत्वा च प्रणवं हृदि ॥ १२ ॥

4432

समः समासनो भूत्वा संहत्य चरणावुभौ ।
संवृतास्यस्तथा चोरः सम्यग्विष्टभ्य चाग्रतः ॥ १३ ॥

4433

पार्ष्णिभ्यां लिङ्गवृषणावस्पृशन्प्रयतः स्थितः ।
किंचिदुन्नामिताशिरा दन्तैर्दन्तान्न संस्पृशेत् ॥ १४ ॥

4434

संपश्यन्नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ।
कुर्याद्दृढं पृष्ठवंशमुड्डीयाणं तथोदरे ॥ १५ ॥

विशेषकम् ।

4435

उत्तानौ चरणौ कृत्वा ऊरुसंस्थौ प्रयत्नतः ।
ऊरुमध्ये तथोत्तानौ पाणी पद्मासनं त्विदम् ॥ १६ ॥

4436

दक्षिणोरुतले वामं पादं न्यस्य तु दक्षिणम् ।
वामोरोरुपरि स्थाप्यमेतदर्धासनं मतम् ॥ १७ ॥

4437

पार्ष्णिं तु वामपादस्य योनिस्थाने नियोजयेत् ।
वामोरोरुपरि स्थाप्यो दक्षिणः सैद्धमासनम् ॥ १८ ॥

## अथ प्राणायामः ।

4438

प्राणायामैर्दहेद्दोषान्प्रत्याहारेण पातकम् ।
धारणाभिश्च दुःखानि ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ॥ १९ ॥

4439

यथा पर्वतधातूनां ध्मातानां दह्यते मलम् ।
तथेन्द्रियकृता दोषा दह्यन्ते प्राणनिग्रहात् ॥ २० ॥

4440

वश्यं कर्तुं यथेच्छातो नागं नयति हस्तिपः ।
तथैव योगी छन्देन प्राणान्नयति साधितुम् ॥ २१ ॥

4441

यथा हि साधितः सिंहो मृगान्हन्ति न मानवान् ।
तथा हि साधिताः प्राणाः किल्बिषं न नृणां तनुम् ॥२२॥

4442

प्राणायामं विना योगं साधयेद्यस्तु मन्दधीः ।
न स सिद्धगतिं याति पङ्गुर्वाजिगतिं यथा ॥ २३ ॥

4443

तस्मात्तु साधनं कुर्यात्प्राणायामस्य योगवित् ।
प्राणापाननिरोधश्च प्राणायामः प्रकीर्तितः ॥ २४ ॥

4444

सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह ।
त्रिः पठेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥ २५ ॥

4445

चक्षुःस्पन्दनमात्रस्य यावद्द्वादशसंज्ञिकाः ।
तावन्निरुध्यते प्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥ २६ ॥

4446

स्वजानुतः करावर्तं यावद्द्वादश छोटिकाः ।
यावन्निरुध्यते प्राणः प्राणायामः स कीर्तितः ॥ २७ ॥

4447

प्राणायामो लघुस्त्वेको द्विगुणो मध्यमः स्मृतः ।
उत्तमस्त्रिगुणो ज्ञेय इत्येषा वैदिकी स्थितिः ॥ २८ ॥

4448

प्रथमेन जयेत्स्वेदं द्वितीयेन च वेपथुम् ।
विषादं च तृतीयेन जयेद्दोषाननुक्रमात् ॥ २९ ॥

4449

द्विगुणोत्तरया वृद्ध्या प्रत्याहारस्तु धारणा ।
ध्यानं समाधिरित्येवं प्राणायामादनुक्रमात् ॥ ३० ॥

4450

तस्माद्युक्तः सदा योगी प्राणायामपरो भवेत् ।
भूयतां मुक्तिफलदं तस्यावस्थाचतुष्टयम् ॥ ३१ ॥

4451

ध्वस्तिः प्राप्तिस्तथा संवित्प्रसादश्च महामते ।
स्वरूपं शृणु चैतेषां कथ्यमानमनुक्रमात् ॥ ३२ ॥

4452

कर्मणामिष्टदुष्टानां जायते फलसंक्षयः ।
चेतसोऽर्थकषायत्वाद्यत्र सा ध्वस्तिरुच्यते ॥ ३३ ॥

4453

ऐहिकामुष्मिकान्कामांल्लोभमोहात्मकांश्च यान् ।
निरुध्यास्ते सदा योगी प्राप्तिः स्यात्सार्वकामिकी ॥ ३४ ॥

4454

अतीतानागतानर्थान्विप्रकृष्टतिरोहितान् ।
विजानाति यदा योगी तदा संविदिति स्मृता ॥ ३५ ॥

4455

यान्ति प्रलादं येनास्य मनः पञ्च च वायवः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च स प्रसाद इति स्मृतः ॥ ३६ ॥

4456

प्राणायामस्य युक्तिस्तु पूर्वाभ्यासस्य कथ्यते ।
यां चक्रुर्मुनयः सर्वे नाडीसंशुद्धिहेतवे ॥ ३७ ॥

4457

पूर्वं दक्षिणहस्तस्य स्वाङ्गुष्ठेनैव पिङ्गलाम् ।
निरुध्य पूरयेद्वायुमिडया तु शनैः सुधीः ॥ ३८ ॥

4458

यथाशक्ति निरोधेन ततः कुर्याच्च कुम्भकम् ।
पुनस्त्यजेत्पिङ्गलया शनै रेचनकं मतम् ॥ ३९ ॥

4459

पुनः पिङ्गलया पूर्वं पूरयेदुदरं शनैः ।
धारयित्वा यथाशक्त्या रेचयेदिडया शनैः ॥ ४० ॥

4460

यथा त्यजेत्तथा पूर्वं धारयेदनिरोधतः ।
नाडीविशुद्धौ जातायां ततः कुर्याद्यथेच्छया ॥ ४१ ॥

## अथ प्रत्याहारः ।

4461

शब्दादिभ्यः प्रवृत्तानि यदक्षाणि यतात्मभिः ।
प्रत्याह्रियन्ते योगेन प्रत्याहारस्ततः स्मृतः ॥ ४२ ॥

4462

सबाह्याभ्यन्तरं शौचं निष्पाद्याकण्ठनाभितः ।
पूरयित्वा बुधः प्राणौ प्रत्याहारमुपक्रमेत् ॥ ४३ ॥

4463

रजसा तमसो वृत्तिं सत्त्वेन रजसस्तथा ।
संछाद्य निर्मले सत्त्वे स्थितो युञ्जीत योगवित् ॥ ४४ ॥

4464

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः प्राणादीन्मन एव च ।
निगृह्य समवायेन प्रत्याहारमुपक्रमेत् ॥ ४५ ॥

4465

यस्तु प्रत्याहरेत्कामान्सर्वाङ्गाणीव कच्छपः ।
स त्वात्मरतिरेकस्थः पश्यत्यात्मानमात्मना ॥ ४६ ॥

## अथ धारणा ।

4466

प्राणायामा दश द्वौ च धारणा साभिधीयते ।
द्वे धारणे स्मृतो योगो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ४७ ॥

4467

आधारजन्मभूतानि हृत्कण्ठस्तालुनासिके ।
भ्रूमध्ये मस्तकद्वारं दशस्थानेषु धारणा ॥ ४८ ॥

4468

गुरूपदेशमासाद्य एकस्मिन्स्थानके यदि ।
रुध्येते यन्मनोवातौ धारणा साभिधीयते ॥ ४९ ॥

4469

जितां जितां शनैर्भूमिमारोहेत यथाक्रमम् ।
दोषान्व्याधींस्तथामोहमादत्ते भूरनिर्जिता ॥ ५० ॥

अथ ध्यानम् ।

4470

शून्येषु चावकाशेषु गुहासु च वनेषु च ।
नित्ययुक्तः सदा योगी ध्यानं सम्यगुपक्रमेत् ॥ ५१ ॥

4471

त्यक्तसङ्गो जितमना लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ।
पिधाय बुद्ध्या द्वाराणि मनो ध्याने नियोजयेत् ॥५२॥

4472

आत्मानं च जगत्सर्वं दृशा नित्याविभिन्नया ।
चिदाकाशमयं ध्यायन्योगी याति परां गतिम् ॥ ५३ ॥

4473

अथवा प्रोच्यते ध्यानमन्यदेवात्र योगिनाम् ।
रहस्यं परमं मुक्तेः कारणं प्रथमं च यत् ॥ ५४ ॥

4474

वायुवच्चञ्चलं चित्तं स्थिरीकर्तुं न शक्यते ।
तदर्थं सकले योज्यं तस्माद्भवति निष्कलम् ॥ ५५ ॥

4475

मूलाधारस्थितं जीवं प्रदीपकलिकाकृतिम् ।
प्रणवेन समाकृष्य दशमान्ते निवेशयेत् ॥ ५६ ॥

4476

ततो जपेच्च प्रणवं मूलाधारात्समुत्थितम् ।
नियतिं दशमद्वारे मनसादानरूपिणम् ॥ ५७ ॥

4477

यथा प्रयुक्त ओंकारः प्रतिनिर्याति मूर्धनि ।
तथोंकारमयो योगी अक्षरे त्वक्षरो भवेत् ॥ ५८ ॥

4478

कुर्वन्नेवं यदा पश्येन्मनोनेत्रेण योगवित् ।
हंसं बिन्दुं शिखां ज्योतिस्ततो लयमवाप्नुयात् ॥ ५९ ॥

4479

ब्रह्मद्वारमुखे सूक्ष्मं निर्विकल्पं परावरम् ।
परमं ज्योतिरासाद्य योगी तन्मयतां व्रजेत् ॥ ६० ॥

4480

निर्विकल्पे पदे प्राप्ते जीवे तल्लयतां गते ।
नश्यन्ति सर्वकर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥ ६१ ॥

4481

वृक्षमूर्ध्नि यथा पक्षी अकस्मादेव दृश्यते ।
बुद्धिस्थो दृश्यतामेति झगित्येव तथा विभुः ॥ ६२ ॥

4482

अग्रतः पृष्ठतो मध्ये पार्श्वतोथ समन्ततः ।
विद्युच्चकितवद्भाति सूर्यकोटिसमप्रभः ॥ ६३ ॥

4483

रतान्ते स्त्री यथात्मानं क्षणं काहं न बुध्यते ।
रमणोपि न जानाति कोहं योगे तथा पुमान् ॥ ६४ ॥

4484

शृणोत्याश्चर्यवत्कोपि कोप्याश्चर्यवदीक्षते ।
श्रुत्वा दृष्ट्वा तथाप्येनं न सम्यग्वेद कश्चन ॥ ६५ ॥

4485

गुरुप्रसादतो लक्ष्यं लब्ध्वा यत्नात्समभ्यसेत् ।
अभ्यासाद्दृश्यते देवो ज्ञानदृष्ट्या महेश्वरः ॥ ६६ ॥

4486

तेजः परं द्युतिमतां तमसः परस्ता-
दादित्यवर्णममलं कनकस्वरूपम् ।
आत्मानमात्मनि गतं प्रकृतेर्विभिन्न-
मानन्दमात्रमिति पश्यति यः स मुक्तः ॥ ६७ ॥

4487

यथा वेदे ।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्त-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यतेयनाय ॥ ६८ ॥

## अथ समाधिः ।

4488

समाधिः समतावस्था जीवात्मपरमात्मनोः ।
निस्तरंगपदप्राप्तिः परमानन्दरूपिणी ॥ ६९ ॥

4489

निःश्वासोच्छ्वासयुक्तो वा निस्पन्दोचललोचनः ।
शिवध्यायी सुलीनश्च स समाधिस्थ उच्यते ॥ ७० ॥

4490

न शृणोति यदा किंचिन्न पश्यति न जिघ्रति ।
न च स्पर्शं विजानाति स समाधिस्थ उच्यते ॥ ७१ ॥

## अथ तुर्यातीतम् ।

4491

अत्यन्तशुद्धचिन्मात्रे परिणामश्चिराय यः ।
तुर्यातीतं पदं तत्स्थात्तत्स्थो भूयो न शोचति ॥ ७२ ॥

4492

निद्रादौ जागरस्यान्ते यो भाव उपपद्यते ।
तद्भावभावतो योगी मुक्तो भवति नान्यथा ॥ ७३ ॥

4493

यथाकाशवदेकात्मा सर्वभावगतोपि सन् ।
न भावरञ्जनामेति स महात्मा महेश्वरः ॥ ७४ ॥

4494

यथा जलं जलेनैक्यान्निक्षिप्तमुपगम्यते ।
तथात्मा सत्यतामेति योगिनः परमात्मना ॥ ७५ ॥

4495

ततो न जायते नैव वर्धते न विनश्यति ।
नापि क्षयमवाप्नोति परिणामं न गच्छति ॥ ७६ ॥

4496

छेदं क्लेदं तथा दाहं शोषं भूरादितो न च ।
भूतचक्रादवाप्नोति शब्दाद्यैर्दूयते न च ॥ ७७ ॥

एते पुराणेभ्यो योगशास्त्रेभ्यश्च ।

---

## अथ मनःस्थिरीकरणप्रभावः ॥ १५९ ॥

4497

यदान्यत्र मनो याति ध्यायते योगिनस्तदा ।
तत्रैव हि लयं कुर्याच्छिवः सर्वगतो यतः ॥ १ ॥

4498

युक्त्यानया भवेच्चेतश्छिन्नपक्षमचञ्चलम् ।
सर्वत्रैकं शिवं ज्ञात्वा निर्विकल्पं विधीयते ॥ २ ॥

4499

कामक्रोधादयः सर्वे मतिरक्षाण्यहंकृतिः ।
गुणा विविधकर्माणि विलीयन्ते मनःक्षयात् ॥ ३ ॥

4500

अमनस्कं गते चित्ते जायते कर्मणां क्षयः ।
यथा चित्रपटे दग्धे दह्यते चित्रसंचयः ॥ ४ ॥

4501

तक्रयोगाद्यथा क्षीरं काठिन्यमुपगच्छति ।
तथा जीवो मनःस्थैर्यात्परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ ५ ॥

4502

यथा हिमप्रभावेण जलं स्थानत्वमाप्नुयात् ।
तथा मनःस्थिरत्वेन जीवः शिवमयो भवेत् ॥ ६ ॥

4503

शिवस्य शक्तिर्जीवोस्ति जीवशक्तिर्मनः स्मृतम् ।
जीवं शिवं प्रापयितुं मन एव हि कारणम् ॥ ७ ॥

4504

जीवः शिवः शिवो जीवो न भेदोस्त्यनयोः क्वचित् ।
मनोलिप्तो भवेज्जीवो मनोयुक्तः सदाशिवः ॥ ८ ॥

एते शार्ङ्गधरस्य ।

---

## अथ योगिमहिमा ॥ १६० ॥

4505

अलौल्यमारोग्यमनिष्ठुरत्वं
गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पम् ।
कान्तिः प्रसादः स्वरसौम्यता च
यागप्रवृत्तेः प्रथमं हि चिह्नम् ॥ १ ॥

4506

अनुरागं जनो याति परोक्षे गुणकीर्तनम् ।
न बिभ्यति च सत्त्वानि सिद्धेर्लक्षणमुत्तमम् ॥ २ ॥

4507

शीतोष्णादिभिरत्युग्रैर्यस्य बाधा न जायते ।
न भीतिमेति चान्येभ्यस्तस्य सिद्धिरुपस्थिता ॥ ३ ॥

## अथ दोषोपसर्गचिकित्सा ।

4508
प्रमादाद्योगिनो दोषा यद्येते स्युश्चिकित्सितम् ।
तेषां नाशाय कर्तव्यं योगनीतिं निबोध मे ॥ ४ ॥

4509
बाधिर्यं जडता लोपः स्मृतेर्मूकत्वमन्धता ।
ज्वरश्च जायते सद्यस्तद्वदज्ञानयोगिनः ॥ ५ ॥

4510
स्निग्धां यवागूं नात्युष्णां चित्ते तत्रैव धारयेत् ।
तावद्यथाप्रशान्त्यर्थं गुदावर्ते यथाविधि ॥ ६ ॥

4511
यवागूं चापि पवने वायुग्रन्थ्युपरि क्षिपेत् ।
तद्वत्कम्पे महाशैलं स्थिरं मनसि धारयेत् ॥ ७ ॥

4512
विघाते वचसो वाचं बाधिर्ये श्रवणेन्द्रियम् ।
तथैवाम्लं फलं ध्यायेत्तृषार्तो रसनेन्द्रिये ॥ ८ ॥

4513
यस्मिन्यस्मिन्यदा देशे तस्मिंस्तदुपकारिणम् ।
धारयेद्धारणामुष्णे शीतां शीते विदाहिनीम् ॥ ९ ॥

4514
काष्ठं शिरसि संस्थाप्य तथा काष्ठेन ताडयेत् ।
लुप्तस्मृतेः स्मृतिः सद्यो योगिनस्तेन जायते ॥ १० ॥

4515
अमानुषं सत्त्वमन्तर्योगिनं प्रविशेद्यदि ।
वाय्वग्निधारणा चैनं देहसंस्थं विनिर्दहेत् ॥ ११ ॥

4516
एवं सर्वात्मना कार्या रक्षा योगविदानिशम् ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यतः ॥ १२ ॥

4517

प्रवृत्तिलक्षणाख्यानाद्योगिनो विस्मयात्तथा ।
विज्ञानं विलयं याति तस्माद्धेयाः प्रवृत्तयः ॥ १३ ॥

4518

उपसर्गाः प्रवर्तन्ते दृष्टेष्वात्मनि योगिनः ।
ये तांस्ते संप्रवक्ष्यामि समासेन निबोध मे ॥ १४ ॥

4519

काम्याः क्रियास्तथा कामान्मानुषानभिवाञ्छति ।
स्त्रियो दानफलं विद्यामायुर्दैर्घ्यं धनं दिवम् ॥ १५ ॥

4520

देवत्वममरेशत्वं रसायनवयःक्रियाः ।
मरुत्प्रपतनं यज्ञं जलाग्न्यावेशनं तथा ॥ १६ ॥

4521

चित्तमित्थं प्रवृत्तं हि लयाद्योगी निवर्तयेत् ।
ब्रह्मासङ्गि मनः कुर्वन्नुपसर्गात्प्रमुच्यते ॥ १७ ॥

4522

उपसर्गैर्जितैरेभिरुपसर्गास्ततः पुनः ।
योगिनः संप्रवर्तन्ते सात्त्वराजसतामसाः ॥ १८ ॥

4523

प्रातिभः श्रावणो दैवो भ्रमावर्तौ तथापरौ ।
पञ्चैते योगिनो योगविघ्नाय कटुकोदयाः ॥ १९ ॥

4524

वेदार्थशास्त्रकाव्यार्था विद्या शिल्पान्यशेषतः ।
प्रभवन्ति यदस्येति प्रातिभः स तु योगिनः ॥ २० ॥

4525

शब्दार्थानखिलान्वेत्ति शब्दं गृह्णाति चैव यत् ।
योजनानां सहस्रेभ्यः श्रावणः सोभिधीयते ॥ २१ ॥

4526
अष्टौ यदा तु दृश्यन्ते समन्ताद्देवयोनयः ।
उपसर्गं तमित्याहुर्दैवमुन्मत्तवद्बुधाः ॥ २२ ॥

4527
भ्राम्यते यन्निरालम्बं मनो दोषेण योगिनः ।
समस्ताधारविभ्रंशाद्भ्रमः स परिकीर्तितः ॥ २३ ॥

4528
आवर्त इव तोयस्य ज्ञानावर्तो यदाकुलः ।
चित्तमास कृतावर्तमुपसर्गः स उच्यते ॥ २४ ॥

4529
एभिर्नाशितयोगास्तु सकला देवयोनयः ।
उपसर्गैर्महाघोरैरावर्तन्ते पुनः पुनः ॥ २५ ॥

4530
प्रावृत्य केवलं युक्तं योगी तस्मान्मनोमयम् ।
चिन्तयेत्परमं ब्रह्म कृत्वा तत्प्रवणं मनः ॥ २६ ॥

अथ सप्तधारणाः ।

4531
योगयुक्तः सदा योगी लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ।
सूक्ष्मास्तु धारणाः सप्त भूराद्या मूर्ध्नि धारयेत् ॥ २७ ॥

4532
धरित्रीं धारयेद्योगी ततः सौक्ष्म्यं प्रवर्तते ।
आत्मानं मन्यते चोर्वीं तद्गन्धं च जहाति सः ॥ २८ ॥

4533
तथैवाप्सु रसं सूक्ष्मं तद्द्रवं च तेजसि ।
स्पर्शं वायौ तथा तद्वद्विभ्रतस्तस्य धारणाः ॥ २९ ॥

4534
व्योम्नि सूक्ष्मप्रवृत्तेश्च शब्दं तद्वज्जहाति सः ।
मनसा सर्वभूतानां मनश्चाविशते यदा ।
मानसीं धारणां बिभ्रन्मनःसौक्ष्म्यं च जायते ॥ ३० ॥

4535

तद्वद्बुद्धिमशेषाणां सत्त्वामातन्य योगवित् ।
परित्यजति संप्राप्य बुद्धिसौक्ष्म्यमनुत्तमम् ॥ ३१ ॥

4536

यस्मिन्यस्मिंस्तु कुरुते भूते रागं महामते ।
तस्मिंस्तस्मिन्समासक्तिं संप्राप्य स विनश्यति ॥ ३२ ॥

4537

तस्माद्विदित्वा सूक्ष्माणि संसक्तानि परस्परम् ।
परित्यजति यो योगी स परं प्राप्नुयात्पदम् ॥ ३३ ॥

4538

एतान्येव तु बन्धाय सप्त सूक्ष्माणि सर्वदा ।
भूरादीनां विरागोत्र संभवेद्यस्तु मुक्तये ॥ ३४ ॥

4539

गन्धादिषु समासक्तमित्येतदखिलं जगत् ।
पुनरावर्तते मौर्ख्यात्सब्रह्मामरमानुषम् ॥ ३५ ॥

4540

सप्तैता धारणा योगी समतीत्य यदीच्छति ।
तस्मिंस्तस्मिंस्तदा भूते लयं याति विधानतः ॥ ३६ ॥

4541

देवानामसुराणां च गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
देहेषु लयमायाति सङ्गमाप्नोति न क्वचित् ॥ ३७ ॥

## अथाष्टमहासिद्धिप्राप्तिः ।

4542

अणिमा लघिमा चैव महिमा प्राप्तिरेव च ।
प्राकाम्यं च तथेशित्वं वशित्वं च तथापरम् ॥ ३८ ॥

4543

यत्र कामावसायित्वं गुणानेतांस्तथेतरान् ।
प्राप्नोत्यष्टावनायासात्परं निर्वाणसूचकान् ॥ ३९ ॥

4544

सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरोणीयाञ्छीघ्रत्वाल्लघिमा गुणः ।
महिमाशेषपूज्यत्वात्प्राप्तिर्नाप्राप्यमस्य यत् ॥ ४० ॥

4545

प्राकाम्यमस्य व्यापित्वादीशित्वं चेश्वरो यतः ।
वशित्वाद्वशिता नाम योगिनः सप्तमो गुणः ॥ ४१ ॥

4546

यत्रास्य स्थानमप्युक्तं यत्र कामावसायिता ।
ऐश्वर्यकारणैरेभिर्योगिनः प्रोक्तमष्टधा ॥ ४२ ॥

एते मार्कण्डेयपुराणात ।

---

## अथ योगिचर्या ॥ १६१ ॥

4547

वाग्दण्डः कर्मदण्डश्च मनोदण्डश्च ते त्रयः ।
यस्यैते नियता दण्डाः स त्रिदण्डी निगद्यते ॥ १ ॥

4548

या निशा सर्वजन्तूनां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥ २ ॥

4549

येन केनचिदाच्छन्नो येन केनचिदाशितः ।
यत्र सायंगृहो यश्च तं देवा योगिनं विदुः ॥ ३ ॥

4550

मानापमानौ यावेतौ प्रीत्युद्वेगकरौ नृणाम् ।
तावेव विपरीतार्थौ योगिनः सिद्धिकारकौ ॥ ४ ॥

4551

चक्षुःपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं पिबेज्जलम् ।
सत्यपूतां वदेद्वाणीं बुद्धिपूतं विचिन्तयेत् ॥ ५ ॥

4552

सर्वसङ्गविहीनश्च सर्वपापविवर्जितः ।
जडवन्मूकवद्योगी विचरेत महीतलम् ॥ ६ ॥

4553

असिधारां विषं वह्निं समत्वे यः प्रपश्यति ।
मालासुधातुषाराणां स योगी कथ्यते बुधैः ॥ ७ ॥

4554

यस्मिन्स्थाने क्षणं तिष्ठेदीदृग्योगी कथंचन ।
आयोजनं चतुर्दिक्षु पवित्रं तत्प्रचक्षते ॥ ८ ॥

4555

चतुःसागरपर्यन्तां पृथिवीं यो ददाति च ।
तत्त्वज्ञस्य च यो भिक्षां समां वा नाथवा समाम् ॥ ९ ॥

4556

आतिथ्ये श्राद्धयज्ञेषु देवयात्रोत्सवेषु च ।
महाजने च सिद्धार्थो न गच्छेद्योगवित्क्वचित् ॥ १० ॥

4557

जाते विधूमे चाङ्गारे सर्वस्मिन्भुक्तवज्जने ।
अटेत योगविद्भैक्षं न तु तेष्वेव नित्यशः ॥ ११ ॥

4558

यथैनमवमन्यन्ते जनाः परिभवन्ति च ।
तथा युक्तश्चरेद्योगी सतां धर्ममदूषयन् ॥ १२ ॥

4559

भैक्षं गृह्णन्गृहस्थेषु श्रोत्रियेषु चरेद्यतिः ।
फलमूलं यवाग्वन्नं पयस्तक्रं च सक्तवः ॥ १३ ॥

4560

ब्रह्मचर्यमलोभश्च दया क्रोधः सुचित्तता ।
आहारलाघवं शौचं योगिनां नियमाः स्मृताः ॥ १४ ॥

4561
सारभूतमुपासीत ज्ञानं तत्कार्यसाधनम् ।
ज्ञानानां बहुता येयं योगविघ्नकरी हि सा ॥ १५ ॥

4562
इदं ज्ञेयमिदं ज्ञेयमिति यस्तृषितश्चरेत् ।
अपि कल्पसहस्रेषु नैव ज्ञेयमवाप्नुयात् ॥ १६ ॥

4563
समाहितो ब्रह्मपरोऽप्रमादी
बुधस्तथैकान्तरतिर्जितेन्द्रियः ।
विशुद्धबुद्धिः समलोष्टकाञ्चनः
प्राप्नोति योगी परमव्ययं पदम् ॥ १७ ॥

एते मार्कण्डेयपुराणात् ।

---

## अथारिष्टज्ञानम् ॥ १६२ ॥

4564
अक्षीणकर्मबन्धस्तु ज्ञात्वा मृत्युमुपस्थितम् ।
उत्क्रान्तिकाले संस्मृत्य पुनर्योगित्वमृच्छति ॥ १ ॥

4565
तस्मादसिद्धयोगेन सिद्धयोगेन वा पुनः ।
ज्ञेयान्यरिष्टानि सदा येनोत्क्रान्तौ न सीदति ॥ २ ॥

4566
अरिष्टानि विशिष्टानि शृणु वक्ष्यामि तानि ते ।
येषामालोकनान्मृत्युं निजं जानाति योगवित् ॥ ३ ॥

4567
देवमार्गं ध्रुवं शुक्रं सोमच्छायामरुन्धतीम् ।
यो न पश्येच्च जीवेत्स नरः संवत्सरात्परम् ॥ ४ ॥

4568
अरश्मिं बिम्बं सूर्यस्य वह्निं चैवांशुमालिनम् ।
दृष्ट्वैकादश मासांश्च नरो नोर्ध्वं स जीवति ॥ ५ ॥

4569

वान्त्या मूत्रपुरीषं यः सुवर्णरजतं वमेत् ।
प्रत्यक्षमथवा स्वप्ने जीवितं दशमासिकम् ॥ ६ ॥

4570

दृष्ट्वा प्रेतपिशाचादीन्गन्धर्वनगराणि च ।
सुवर्णवर्णवृक्षांश्च नव मासान्स जीवति ॥ ७ ॥

4571

स्थूलः कृशः कृशः स्थूलो योकस्मादेव जायते ।
प्रकृतेश्च निवर्तेत तस्यायुश्चाष्टमासिकम् ॥ ८ ॥

4572

खण्डं यस्य पदं पाष्ण्र्योः पादस्याग्रेथवा भवेत् ।
पांसुकर्दममध्ये वा सप्त मासान्स जीवति ॥ ९ ॥

4573

कपोतगृध्रकाकोला वायसो वापि मूर्धनि ।
क्रव्यादो वापरो लीनः षण्मासायुःप्रदर्शकः ॥ १० ॥

4574

हन्यते काकपङ्क्तिभिः पांसुवर्षेण वा नरः ।
स्वच्छायां चान्यथा दृष्ट्वा चतुर्मासान्स जीवति ॥ ११ ॥

4575

अनभ्रे विद्युतं दृष्ट्वा दक्षिणां दिशमाश्रिताम् ।
पयसीन्द्रधनुर्वापि जीवितं त्रिद्विमासिकम् ॥ १२ ॥

4576

घृते तैले तथादर्शे तोये वाप्यात्मनस्तनुम् ।
यः पश्येदशिरःस्कन्धां मासादूर्ध्वं न जीवति ॥ १३ ॥

4577

यस्य बस्तसमो गन्धो गात्रे शवसमोपि वा ।
तस्य मासार्धकं ज्ञेयं योगिनः किल जीवितम् ॥ १४ ॥

4578

यस्य वै स्नातमात्रस्य हस्तोयमवशुष्यति ।
पिबतश्च जलं शोषो दशाहं सोपि जीवति ॥ १५ ॥

4579

यस्यापि हन्यते दृष्टिर्भूतै रात्रावथो दिवा ।
स मृत्युं सप्तरात्रान्ते पुमान्प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ १६ ॥

4580

पिधाय कर्णौ च निजौ न शृणोत्यात्मसंभवम् ।
नश्यते चक्षुषोर्ज्योतिर्यस्य सोपि न जीवति ॥ १७ ॥

4581

रक्तकृष्णाम्बरधरा गीतहास्यपरा च यम् ।
दक्षिणाशां नयेन्नारी स्वप्ने सोपि न जीवति ॥ १८ ॥

4582

नग्नं क्षपणकं स्वप्ने हसन्तं नृत्यतत्परम् ।
एकं विलक्षं विभ्रान्तं विद्यान्मृत्युमुपस्थितम् ॥ १९ ॥

4583

पततो यस्य वै गर्ते स्वप्ने द्वारं पिधीयते ।
न चोत्तिष्ठति यः श्वभ्रात्तदन्तं तस्य जीवितम् ॥ २० ॥

4584

स्वप्नेग्निं प्रविशेद्यस्तु न च निष्क्रमते पुनः ।
जलप्रवेशादपि वा तदन्तं तस्य जीवितम् ॥ २१ ॥

4585

करालैः पुरुषैः कृष्णैर्विकटैरुद्यतायुधैः ।
पाषाणैस्ताडितः स्वप्ने सद्योमृत्युर्भवेन्नरः ॥ २२ ॥

4586

दीपादिगन्धं नो वेत्ति पश्यत्यग्निं तथा निशि ।
नात्मानं परनेत्रस्थं वीक्षते यः स मृत्युमान् ॥ २३ ॥

4587

स्वभाववैपरीत्येन शरीरस्य विपर्यये ।
कथयन्ति मनुष्याणां समासन्नौ यमान्तकौ ॥ २४ ॥

4588

आरक्तामेति मुखं जिह्वा वाप्यसिता भवेत् ।
तदा प्राज्ञो विजानीयान्मृत्युमासन्नमागतम् ॥ २५ ॥

4589

नासिका वक्रतामेति कर्णयोर्नमनोन्नती ।
नेत्रं च वामं स्रवति यस्य तस्यायुरुद्गतम् ॥ २६ ॥

4590

योगिनां ज्ञानविदुषामन्येषां वा महात्मनाम् ।
प्राप्ते च काले पुरुषैस्तद्विचार्यं विचक्षणैः ॥ २७ ॥

एते मार्कण्डेयपुराणात् ।

---

## अथ विदेहमुक्तिकथनम् ॥ १६३ ॥

4591

पूर्वाह्णे वा पराह्णे वा मध्याह्ने वा परे क्वचित् ।
यत्र वा रजनीभागे तदरिष्टं निरीक्षितम् ॥ १ ॥

4592

तस्य भागे तथैवाह्नो योगं युञ्जीत योगवित् ।
विदेहमुक्तये ज्ञानी त्यक्त्वा मरणजं भयम् ॥ २ ॥

(युग्मम्)

4593

बद्धपद्मासनो धीमान्समसंस्थानकंधरः ।
निरुद्धप्राणपवनो दन्तैर्दन्तान्न संस्पृशेत् ॥ ३ ॥

4594

बुद्ध्या निरुध्य द्वाराणि नव मीलितलोचनः ।
ओंकारं तु धनुः कृत्वा गुणं सत्त्वं नियोज्य च ॥ ४ ॥

4595
तत्रात्मानं शरं सोपि वृतो भूतेन्द्रियादिभिः ।
प्राणवायुमनःक्षेपैः क्षिप्तो हृत्कमलस्थितः ॥ ५ ॥

4596
दशमद्वारमार्गेण लक्ष्यं प्राप्य ततः परम् ।
षट्त्रिंशत्तत्त्वसंयुक्तः परमात्मनि लीयते ॥ ६ ॥
(कलापकम्)

4597
ततः परममाकाशमतीन्द्रियमगोचरम् ।
यद्बुद्ध्या नैव चाख्यातुं शक्यतेनन्तमश्नुते ॥ ७ ॥

## अथ कालवञ्चना ।

4598
जीवन्मुक्तः सदेहोहं विचरामि जगत्त्रयम् ।
इति चेज्जायते वाञ्छा योगिनस्तन्निबोध मे ॥ ८ ॥

4599
शरीरं न नयत्येव कालः कस्यापि कुत्रचित् ।
अतः शरीररक्षार्थं यत्नः कार्यस्तु योगिना ॥ ९ ॥

4600
योगिना सततं यत्नादरिष्टानां विचारणा ।
कर्तव्या येन कालोसौ ज्ञातो हन्ति च्छलान्न तम् ॥ १० ॥

4601
ज्ञात्वा कालं च तं सम्यग्लयस्थानं समाश्रितः ।
युञ्जीत योगं कालोस्य यथासौ जायतेफलः ॥ ११ ॥

4602
बद्धसिद्धासनो देहं पूरयेत्प्राणवायुना ।
कृत्वा दण्डं स्थिरं बुद्ध्या दश द्वाराणि रुन्धयेत् ॥ १२ ॥

4603
बन्धयेत्खेचरीं मुद्रां ग्रीवायां च जलंधरम् ।
अपाने मूलबन्धं च उड्डीयाणं तथोदरे ॥ १३ ॥

4604

उत्थाप्य भुजगीं शक्तिं मूलवातैरधःस्थिताम् ।
सुषुम्णान्तर्गतां पञ्चचक्राणां भेदिनीं शिवाम् ॥ १४ ॥

4605

जीवं हृदाभयं नीत्वा यान्तीं बुद्धिं मनोयुताम् ।
सहस्रदलपद्मस्थशिवे लीनां सुधामये ॥ १५ ॥

4606

पीत्वा सुधाकरोद्भूतममृतं तेन मूलतः ।
सिञ्चन्तीं सकलं देहं प्लावयन्तीं विचिन्तयेत् ॥ १६ ॥

4607

तया सार्धं ततो योगी शिवेनैकात्मतां व्रजेत् ।
परानन्दमयो भूत्वा चिद्वृत्तिमपि संत्यजेत् ॥ १७ ॥

4608

ततो लक्ष्यमनाभासमहंभावविवर्जितम् ।
सर्वाङ्गकल्पनाहीनं कथं कालो निहन्ति तम् ॥ १८ ॥

4609

स एव कालः स शिवः स सर्वं नापि किंचन ।
कः केन हन्यते तत्र म्रियते नापि कश्चन ॥ १९ ॥

4610

ततो व्यतीते समये कालस्य भ्रान्तिरूपिणः ।
योगी सुप्तोत्थित इव प्रबोधं याति बोधितः ॥ २० ॥

4611

एवं सिद्धो भवेद्योगी वञ्चयित्वा विधानतः ।
कालं कलितसंसारं पौरुषेणाद्भुतेन हि ॥ २१ ॥

4612

ततस्त्रिभुवने योगी विचरत्येक एव सः ।
पश्यन्संसारवैचित्र्यं स्वेच्छया निरहंकृतिः ॥ २२ ॥

4613

यथार्करश्मिसंयोगादर्ककान्तो हुताशनम् ।
आविष्करोति नैकः सन्दृष्टान्तः स तु योगिनः ॥ २३ ॥

4614

मृद्देहिकाल्पदेहापि मुखाग्रेणात्यणीयसा ।
करोति मृद्भारचयमुपदेशः स योगिनः ॥ २४ ॥

4615

पिङ्गला कुररः सर्पः सारङ्गान्वेषको वने ।
इषुकारः कुमारी च षडेते गुरवो मताः ॥ २५ ॥

4616

रुरुशावविषाणाग्रमालोक्य तिलकाकृति ।
सह तेन विवर्धन्ते योगी सिद्धिमुपाश्नुते ॥ २६ ॥

# अथ ग्रन्थप्रशंसा ।

4617

इति विरचितबन्धा पद्धतिर्या मयेयं
सकलगुणिगणानां प्रीतये सास्तु नित्यम् ।
त्रिपुलविमलदीव्यत्सत्कलानां निधानं
तरुणतरणिरुद्धा विद्विषत्कौशिकानाम् ॥ १ ॥

4618

क्षीराब्धेः कमलेव केशवपदाद्वङ्केव साधोर्मुखा-
त्सद्वाणीव सुधाकरादिव सुधा भानोरिवोद्द्योतिता ।
माकन्दादिव मञ्जरी जलधराद्वर्षेव या निर्गता
सेयं शार्ङ्गधरात्तनोतु जगतश्चेतोमुदं पद्धतिः ॥ २ ॥

4619

अस्याभ्यासाद्ग्रन्थवर्यस्य शिष्यः
सर्वज्ञः स्याद्विस्फुरच्चारुबुद्धिः ।
अर्थं कामं वेत्ति धर्मं च मोक्षं
निःसंदेहं शीलितुं पण्डितोपि ॥ ३ ॥

4620

शास्त्राब्धिं सकलं विलोड्य नितरां ग्रन्थः कृतोयं मया
लोकानन्दकरः समस्तसुकलासंतानजैवातृकः ।
अस्यास्वाद्य सुभाषितामृतरसानानन्दपूर्णान्तराः
सन्तः संप्रति नाकवासनिरतान्देवान्हसन्तु ध्रुवम् ॥ ४ ॥

---

इति शार्ङ्गधरपद्धतिः समाप्ता

## अथ खड्गपरीक्षा ।

4621

खड्गाल्लक्ष्मीस्तथा राज्यं यशः खड्गादवाप्यते ।
खड्गाद्वैरिविनाशश्च यत्नात्तमभिदध्महे ॥ १ ॥

नकुलस्य ।

## अथ लक्षणानि ।

4622

लोहानां लक्षणं वक्ष्ये यथोक्तं मुनिपुंगवैः ।
निरङ्गसाङ्गभेदेन ते लोहा विविधा मताः ॥ २ ॥

4623

निरङ्गाः काञ्चिपाण्ड्यादिभेदाद्बहुविधा मताः ।
रसकर्मसु ते शस्ता नानाव्याधिविनाशनाः ॥ ३ ॥

4624

वक्ष्यन्ते प्रायशो यस्मात्साङ्गाः खड्गादिकर्मसु ।
नामभेदेन चिह्नानि लोहानामभिदध्महे ॥ ४ ॥

4625

क्षुद्राङ्गं सुदृढं यस्य नीलमीषत्प्रतीयते
रोहिणीं तां विजानीयात्तक्षणे बहु वेदनाम् ॥ ५ ॥

4626

नीलपिण्डसमाङ्गं च नीलपिण्डं विदुर्बुधाः ।
मयूरकण्ठसंस्थानमङ्गं यस्य प्रतीयते ।
मयूरग्रीवकं लोहं तं विदुर्मुनिपुंगवाः ॥ ६ ॥

4627

नागकेसरपुष्पाभमङ्गं यस्य प्रतीयते ।
मयूरचञ्चकं प्राहुर्लोहशास्त्रविदो जनाः ॥ ७ ॥

4628

यस्मिंस्तित्तिरपक्षाभमङ्गं लोहे प्रतीयते ।
दुर्लभं तन्महामूल्यं तित्तिराङ्गं सुपाकजम् ॥ ८ ॥

4629

सुवर्णसदृशाकारा त्वङ्नभूमिः प्रतीयते ।
सुवर्णवज्रकं विद्याद्बहुमूल्यं महागुणम् ॥ ९ ॥

4630

अविच्छिन्नं सुसूक्ष्माङ्गं दूर्वाभागं सुपाकजम् ।
यस्मिञ्शैवालमालानमाहुस्तं मुनिपुंगवाः ॥ १० ॥

4631

शुक्लं पार्श्वद्वयं यस्य मध्ये स्वर्णसमाङ्गकम् ।
धूमवत्सीमसंस्थानं मौसलं वज्रकं विदुः ॥ ११ ॥

4632

मृणालनालप्रतिमं विवरैरयसंस्थितैः ।
कङ्कोलवज्रकं प्राहुः स्वर्णकं वज्रचिन्तकाः ॥ १२ ॥

4633

अङ्गं प्रतीयते यत्र बहुग्रन्थिसमन्वितम् ।
दुर्लभं तन्महामूल्यं ग्रन्थिवज्रकमुच्यते ॥ १३ ॥
लोहार्णवस्यैते ।

4634

रूप्यपत्रसमा भूमिरङ्गं श्वेतं प्रतीयते ।
तं धवलगिरिं पाण्डि पाण्डिज्ञाः प्रवदन्ति हि ॥ १४ ॥

4635

तन्वी पत्रावली काला सौवर्णाङ्गासिपत्रिका ।
प्राहुः कालगिरिं पाण्डि लोहशास्त्रविशारदाः ॥ १५ ॥

4636

धारा शुभ्रा भवेद्यस्य मध्यं कज्जलसंनिभम् ।
कृष्णैरङ्गैश्चितं गात्रं विद्यात्कज्जलवज्रकम् ॥ १६ ॥

4637

सूक्ष्मं रजतपत्राभमङ्गं कृष्णासिपत्रिका ।
कुटीरकः समाख्यातस्तत्क्षते श्वयथुर्भवेत् ॥ १७ ॥

4638

केतकीपत्रसदृशमङ्गं यस्य प्रतीयते ।
विद्यात्केतकिवज्रं तु तीक्ष्णधारं महागुणम् ॥ १८ ॥

4639

निरङ्गं रौप्यपत्राभमीषन्नीलनिभं च यत् ।
दुर्लभं तन्महामौल्यं कान्तिलोहं प्रचक्षते ॥ १९ ॥

4640

अङ्गं दमनपत्राभमङ्गे यस्मिन्प्रतीयते ।
विद्याद्दमनवज्रं तु तीक्ष्णधारं महागुणम् ॥ २० ॥

4641

कृष्णभूमिसुवर्णाभमीषद्व्याङ्गसंगतम् ।
डाहुनीवज्रकं विद्यात्कालसंज्ञमथापरे ॥ २१ ॥

4642

ऊर्ध्वगं कपिलाभासमङ्गं यस्मिन्प्रतीयते ।
नकुलाङ्गं तु तं विद्यात्स्पर्शस्तस्याहिनाशनः ॥ २२ ॥

4643

आसीमा कालिका यस्य क्षुद्राङ्गं कुण्डलीकृतम् ।
क्षुद्रवज्रकनामानं प्राह नागार्जुनो मुनिः ॥ २३ ॥

खड्गकोशस्य।

4644

अन्तर्गाढं चिह्नहीनं विशालं
मध्ये स्थूलं स्थूलधारातितीक्ष्णम् ।
रक्षोवक्षश्छेदनार्थं महान्तं
कृत्वा खड्गं देवराजोतिहृष्टः ॥ २४ ॥

4645

वामनाख्यं महान्तं तु येन तन्तुर्न जायते ।
छेदे गाढं चिह्नहीनं प्राहुः खड्गं विचक्षणाः ॥ २५ ॥

4646

घृष्टे यस्मिन्भवेत्खड्गे शरीरं प्रतिबिम्बितम् ।
अङ्गपत्राभिधं खड्गं प्राहुः खड्गविचक्षणाः ॥ २६ ॥

4647

एरण्डबीजप्रतिममङ्गं यस्मिन्प्रतीयते ।
महिषाख्यः स वै खड्गो नीलमेघसमच्छविः ॥ २७ ॥

4648

यस्याङ्के स्थूलरेखा घनमसृणरुचिः सर्वतो व्याप्य तिष्ठे-
द्धारा तीक्ष्णातिसूक्ष्मा प्रविशति रुधिरस्पर्शमात्रेण खड्गः ।
यस्याम्भः पीयमानं शमयति निखिलं व्याधिमाधिं समग्रां
वैरिश्रेणीं विशन्तीं प्रवदति गिरिशो वज्रमेतद्वजादि ॥ २८ ॥

4649

यं प्राप्य क्षितिपः समग्रधरणिं शास्ति प्रशान्तद्विष-
त्सार्थः सार्थः कृतार्थीकृतनिखिलकुलः संपदा वर्धमानः ।
यस्मिँल्लक्ष्मीः स्थिरात्मा वसति रतिपतिं सर्वलोकाधिनाथं
हत्वा तस्मात्प्रयत्नादयमतुलगुणः पूजनीयो नरेन्द्रैः ॥ २९ ॥

लोहरत्नाकरस्यैते ।

4650

गुणदोषाश्च खड्गानां वक्ष्यन्ते क्रमशो मया ।
यान्विज्ञाय बुधः कुर्यात्खड्गजालविवेचनम् ॥ ३० ॥

4651

अविज्ञातो धृतः खड्गः शुभसंपत्तिनाशकः ।
विज्ञातः सकलैश्वर्यदायको भवति प्रभोः ।
तस्मात्तेषां गुणान्वक्ष्ये यथोक्तं मुनिपुंगवैः ॥ ३१ ॥

मभैतौ ।

अथ गुणाः ।

4652

यस्य यस्य तु यच्चिह्नं तच्चेत्सर्वाङ्गसुन्दरम् ।
तं खड्गमुत्तमं प्राहुः सर्वसंपत्तिकारकम् ॥ ३२ ॥

4653

अर्धचन्द्राकृतिर्यस्मिन्खड्गे स्वाभाविकी भवेत् ।
अपि दोषसहस्राणि हन्ति चन्द्रस्तमो यथा ॥ ३३ ॥

4654

गदा चक्रं तथा शूलं डमरुर्मण्डलं तथा ।
यत्र स्वाभाविकं खड्गे स खड्गो नृपदुर्लभः ॥ ३४ ॥

4655

एकवर्णो भवेद्यस्तु लक्षणैकेन संयुतः ।
स खड्गराजो नृपतेर्विज्ञेयः शुभकारकः ॥ ३५ ॥

4656

पीतं नीलं तथा कृष्णं सचुबीजाकृतिं तथा ।
यच्च दाडिमबीजाभं तद्वज्रं प्रवरं विदुः ॥ ३६ ॥

4657

निम्बकल्को भवेद्यत्र दिवारात्रं विलेपितः ।
मधुरो मधुवर्णाभः स खड्गो देवदुर्लभः ॥ ३७ ॥

4658

आहते यत्र मधुरो ध्वनिः समुपजाते ।
पूज्यः स खड्गो नृपतेः शत्रुसंचयनाशनः ॥ ३८ ॥

4659

कांस्यस्वन इवाभाति यस्मिन्खड्गे हते ध्वनिः ।
खड्गोत्तमं तं वदति गिरिशः शुभवर्धनम् ॥ ३९ ॥

4660

यस्मिन्खड्गे शरीरं प्रतिफलति यथा खड्गराजोभिवन्द्यो
वन्द्योयं देववृन्दैरपि यदि स भवेदर्धचन्द्रोपपन्नः ।

नानावर्णैर्युतश्चेत्स भवति नृपतेः शत्रुनाशैकहेतुः
सेतुर्लक्ष्मीप्रवाहे निखिलरिपुकुलध्वंसने धूमकेतुः ॥ ४० ।
लोहरत्नाकरस्यैते ।

## अथ दोषाः ।

4661

खड्गेषु लक्षणं यद्यद्येषु येषु प्रकाशितम् ।
तच्छुद्धं प्रभुसंपत्त्यै मिश्रितं शत्रुसंपदे ॥ ४१ ॥

4662

यस्याधो दृश्यते चिह्नं मध्ये येन प्रकाश्यते ।
स्वहितार्थं न गृह्णन्ति तं खड्गं नरपुंगवाः ॥ ४२ ॥

4663

यस्याग्रे दृश्यते चिह्नं मध्ये नाधोपि दृश्यते ।
खड्गं मध्यगुणं प्राहुः खड्गशास्त्रविशारदाः ॥ ४३ ॥

4664

अधोर्धे लक्षणं यस्य परार्धे नैव दृश्यते ।
अधमः स भवेत्खड्गः क्षितीशानां भयावहः ॥ ४४ ॥

4665

ऊर्ध्वार्धे लक्षणं यस्य नाधोर्धे लक्षणं भवेत् ।
तं खड्गं मध्यमं प्राहुः प्रवीणमतयो बुधाः ॥ ४५ ॥

4666

तिर्यग्यस्य भवेच्चिह्नमपि सर्वाङ्गगोचरम् ।
खड्गाधमं तं नृपतिर्दूरादेव विवर्जयेत् ॥ ४६ ॥

4667

तिर्यक्चिह्नमधोर्धे स्यादुपर्यर्धे न वा भवेत् ।
नापकृष्टं न प्रकृष्टं तं प्राहुः खड्गकोविदाः ॥ ४७ ॥

4668

अधोर्धे वर्ण एकः स्यादूर्ध्वार्धे भिन्नवर्णकः ।
वर्णसंकरवान्खड्गो नृपाणां भयवर्धनः ॥ ४८ ॥

4669

आहते यत्र खड्गे स्याद्ध्वनिः काकस्वरोपमः ।
अं आकारध्वनिर्वा स्यात्स वर्ज्यो नरपुंगवैः ॥ ४९ ॥

4670

इति निखिलमुदारमर्थसार्थ-
प्रणिहितमेकमिहैव खड्गशास्त्रे ।
गिरिशमतमिदं निषेव्य चक्रे
क्षितिपतिमन्त्रिसमूहचक्रवर्ती ॥ ५० ॥

4671

अतः परं प्रवक्ष्यामि खड्गलक्षणमुत्तमम् ।
प्रधानदेहसंभूतैर्दैत्यास्थिभिररिंदम ॥ ५१ ॥

4672

लोहं प्रधानं खड्गार्थे प्रशस्तं तद्विशेषतः ।
खटीखट्टरऋषिकवंशशूर्पारकेषु च ॥ ५२ ॥

4673

विदेहेषु तथाङ्गेषु मध्यमग्रामचेदिषु ।
सह्यग्रामेषु चीनेषु तथा कालञ्जरेषु च ॥ ५३ ॥

4674

लोहप्रधानं तज्ज्ञानं खड्गानां शृणु लक्षणम् ।
खटीखट्टरजाता ये दर्शनीयास्तु ते मताः ॥ ५४ ॥

4675

कायच्छिदस्त्वार्षिका ये मर्मघ्ना गुरवस्तथा ।
तीक्ष्णाश्छेदसहा वंशा दृढाः शूर्पारकोद्भवाः ॥ ५५ ॥

4676

असहाश्चैव विज्ञेयाः प्रभावन्तो विदेहजाः ।
अङ्गदेशोद्भवास्तीक्ष्णाः सुहस्ताः सुदृढास्तथा ॥ ५६ ॥

4677

लघवश्च तथा तीक्ष्णा मध्यमग्रामसंभवाः ।
असारा लघवस्तीक्ष्णाचेदिदेशसमुद्भवाः ॥ ५७ ॥

4678

सहग्रामोद्भवाः खड्गाः सुतीक्ष्णा लघवस्तथा ।
निर्व्रणा निर्मलास्तीक्ष्णाश्चेदिदेशसमुद्भवाः ॥ ५८ ॥

4679

कालज्ञराः कालसहास्तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ।
शतार्धमङ्गुलानां तु श्रेष्ठं खड्गं प्रकीर्तितम् ॥ ५९ ॥

4680

तदर्धं मध्यमं ज्ञेयं ततो हीनं न कारयेत् ।
प्रमाणाभ्यधिकं चैव च्छन्नवंशं तथैव च ॥ ६० ॥

4681

दीर्घः सुमधुरः शब्दो यस्य खड्गस्य भार्गव ।
किङ्किणीसदृशस्तस्य धारणं श्रेष्ठमुच्यते ॥ ६१ ॥

4682

खड्गः पद्मपलाशाभो मण्डलाग्रश्च शस्यते ।
करवीरपलाशाग्रसदृशश्च विशेषतः ॥ ६२ ॥

4683

महीघृतसुगन्धाश्च पद्मोत्पलसुगन्धिनः ।
वर्णतश्चोत्पलाकाराः सवर्णा गगनस्य च ॥ ६३ ॥

4684

समाङ्गुलस्थाः शस्यन्ते व्रणाः खड्गेषु भार्गव ।
श्रीवृक्षपर्वताकारा लिङ्गपद्मनिभाश्चये ॥ ६४ ॥

4685

मङ्गल्यानां तथान्येषां सदृशा ये च भार्गव ।
काकोलूकसवर्णाभा विषमाङ्गुलिसंस्थिताः ।
वंशानुगाः प्रशस्ताश्च न शस्तास्ते कदाचन ॥ ६५ ॥

4686

खड्गे न पश्येद्वदनं वृथा विवृणुयान्न च ।
न चास्य कथयेन्मूल्यं जातिं देशं कथंचन ॥ ६६ ॥

4687

उच्छिष्टो न स्पृशेत्खड्गं निशि कुर्यान्न शीर्षके ।
दिवा च पूजयेदेनं गन्धमाल्यादिसंपदा ॥ ६७ ॥

4688

खड्गं प्रशस्तं मणिहेमयुक्तं
कोशे सदा चन्दनचूर्णयुक्तम् ।
संस्थापयेद्भूमिपतिः प्रयत्ना-
द्रक्षेत्तथैनं स्वशरीरवच्च ॥ ६८ ॥

4689

श्रीविष्णुधर्मोत्तरभाषितानि
चिह्नानि खड्गस्य शुभाशुभानि ।
विज्ञाय भूमीपतयः सदैव
संधारयेयुः सुमुदे कृपाणम् ॥ ६९ ॥

# श्लोकानुक्रमणिका


अ

अंशुकमिव शीत० ..... 3935
अंसके स्कन्धनामा ..... 1805
अंसाकृष्टदुकूलया..... 3674
अकाले गर्जिते ..... 1825
अकूचौरम्भोपि ..... 577
अकृतज्ञमकार्य० ..... 703
अकृत्रिमप्रेमरसा ..... 3090
अकृत्वा निज० ..... 1295
अकृत्वा पर०..... 307
अकृशं नितम्बभागे ..... 3376
अक्षीणकर्म० ..... 4564
अक्षुद्वारि कृता० ..... 4009
अखर्वपर्व० ..... 1075
अगदैः सर्व० ..... 2925
अगुरुरिति ..... 1000
अग्रतः पृष्ठतो मध्ये ..... 4482
अग्रतो वामपार्श्वं ..... 1790
अग्रे गीतं सरस० ..... 4176
अग्रेसरी कुमारी ..... 2697
अङ्कोल्लकथितं ..... 2305
अङ्कोल्लकाथ० ..... 2248
अङ्कोल्लतैलभावित० ..... 2310
अङ्कोल्लतैलसूकर० ..... 2289
अङ्कोल्लपत्रभूर्पेनं..... 2959
अङ्कोल्लबीजमज्जानां..... 3003
अङ्कं दक्षिणमारुह्य ..... ..... 2532
अङ्कं दमनपत्र०..... 4640
अङ्कं प्रतीयते..... 4633
अङ्गणं तादृद० ..... 567
अङ्गणवेदी वसुधा..... 230
अङ्गन्यासस्ततः ..... 1731
अङ्गप्रत्यङ्गभागेन..... 4292
अङ्गमङ्गेन सं० ..... 4143
अङ्गानि मे दहन्तु..... 3483
अङ्गारशूलाइम० ..... 2629
अङ्गारैः खचितेव ..... 3827
अङ्गारैः शाकवृक्षस्य..... 2850
अङ्गुष्ठनखमूले ..... 1800
अङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां ..... 2857
अङ्गुष्ठाग्रे तु तर्जन्या ..... 1801
अङ्गुष्ठे पदगुल्फ०..... 3191
अङ्गुलिभङ्गविकल्पन० ..... 4029
अङ्गुलीकिसलया० ..... 3566
अङ्गुलीषु कुरङ्गाक्ष्याः ..... 3334
अङ्गुल्यग्रनिरोधित० ..... 3858
अङ्गेनङ्गज्वर० ..... 3474
अचिन्तितानि..... 315
अचिन्त्याः पन्थानः..... 222
अच्छिन्नं नयना० ..... 3486
अजरामरवत्..... 669
अजातमृतमूर्खेभ्यो ..... 1483
अजानन्माहात्म्यं ..... 4156
अजामिव प्रजां ..... 1290
अजामूत्रं च ..... 2919
अजायुद्धमृषि० ..... 1455
अजालघुस्मरा० ..... 3100
अजाश्च मुखतो ..... 605
अजैडकासूकर०..... 2240
अज्ञः सुख० ..... 208
अज्ञानाज्ज्ञानतो..... 2102
अज्ञानैकहतो ..... 4329
अञ्जनमुस्तोशीरैः ..... 2173
अञ्जनस्य क्षयं ..... 650
अञ्जलिस्थानि ..... 199
अणिमा लघिमा ..... 4542
अण्डाभ्यां लोमशाभ्यां ..... 1663
अतः परं० खड्ग० ..... 4671
अतः परं०शराणां ..... 1768
अतः प्रशस्ते ..... 2981
अतः संदेहदोलायां ..... 1716
अतः सुस्थितचित्तेन..... 2562
अतसीपुष्प० ..... 512
अताडयत्पल्लव० ..... 3800
अतिकुपिता अपि..... 238
अतिजीर्णमपक्वं ..... 1751
अतिनामसो०..... 3120
अतितेजस्व्यपि राजा..... 1388
अतिदानाद्बलि० ..... 1445

| | | | |
|---|---|---|---|
| अतिपक्वकपित्थेन | 3011 | अद्यैवं दैवतं | 1315 |
| अतिपरिचयात् | 1502 | अद्यतने योद्धव्ये | 2758 |
| अतिमलिने | 350 | अद्य द्यूतजिताधर० | 3662 |
| अतिविपुलं कुच० | 76 | अद्यापि तत्प्रचल० | 3467 |
| अतिसाहस० | 429 | अद्यापि तां कनक० | 3469 |
| अतीतानागत० | 4454 | अद्यापि नो० | 246 |
| अतीव सौख्यशुभदा | 2448 | अद्यापि सा मनसि | 3470 |
| अतृणे सतृणा | 2201 | अद्यापि स्तनशैल० | 3636 |
| अतो निजबलो० | 1744 | अद्याप्युन्मदयातु० | 4067 |
| अत्यच्छं सितमंशुकं | 3833 | अद्यारभ्य यदि | 3541 |
| अत्यन्तकण्डूति० | 2627 | अद्यैव हसितं | 4168 |
| अत्यन्तनिर्गते चैव | 1621 | अधः करोषि यद्यत्नं | 1081 |
| अत्यन्तशुद्ध० | 4491 | अधः पुष्पी शङ्खु० | 1887 |
| अत्यासन्ना विनाशाय | 1380 | अधमो मातृकार० | 1956 |
| अत्युक्तौ यदि न | 1246 | अधरोष्ठे च पोणायां | 1665 |
| अत्युन्नतपदारूढः | 1522 | अधमो लक्षणज्ञः | 1957 |
| अत्रस्तो निजपक्षैः | 2484 | अधश्च दूरपातित्वं | 1803 |
| अत्रस्थः सखि | 888 | अधाक्षीन्नो लङ्का० | 1267 |
| अथ कालाग्नि० | 4265 | अधिगतपर० | 197 |
| अथ घूकस्वरो | 2650 | अधिरजनि जगाम | 3570 |
| अथ देहं स्थिरीकर्तुं | 4406 | अधीतविद्यैर्विगते | 3955 |
| अथ पथिकवधू० | 3623 | अधीत्य चतुरो | 4174 |
| अथ प्रसन्नेन्दु० | 3902 | अधोर्भे लक्षणं | 4664 |
| अथ मन्त्रमिमं | 2950 | अधोर्धे वर्ण० | 4668 |
| अथ मन्मथ० | 3622 | अध्ययनमित्रसङ्ग० | 2797 |
| अथर्तुपक्वात् | 2132 | अध्यास्य शान्तां | 2642 |
| अथवा प्रोच्यते | 4473 | अध्वन्यध्वनि भूरुहः | 1030 |
| अथवा मूलसं० | 4368 | अध्वन्यस्य वधू० | 3823 |
| अथ सामान्यशृङ्गारे | 35 | अनङ्गेनाबला० | 3076 |
| अथागत्य भुवं | 1604 | अनङ्गोयमनङ्गत्व० | 3798 |
| अथातः० लक्षणानि | 1642 | अनभिध्यां पर० | 634 |
| अथातः० हया० | 1678 | अनभ्रे विद्युतं | 4575 |
| अथाप्रशस्ताः खर० | 2824 | अनलस्तम्भनविद्यां | 3443 |
| अथाशुक्लोद्भवः | 3154 | अनवसरे गुण० | 306 |
| अथाश्वानां जन्म० | 1674 | अनसि सीदति | 962 |
| अथेह कथ्यते | 4424 | अनस्तमितसारस्य | 1098 |
| अथोच्यते श्वानरूतस्य | 2328 | अनाकाशे चन्द्रः | 3324 |
| अथोदारप्रशंसा | 17 | अनाकृतैरेव प्रिय० | 3279 |
| अथोपगूढे शरदा | 3911 | अनागतविधातार० | 1430 |
| अदाता पुरुषः | 468 | अनाघ्रातं पुष्पं | 3271 |
| अदुष्टापतितां | 706 | अनायके न वस्तव्यं | 1466 |
| अदृष्टपूर्वैमस्माभि० | 3896 | अनारतं प्रति० | 4339 |
| अदृष्टमुख० | 253 | अनार्यप्रज्ञानामिह | 3778 |
| अदृष्टिव्यापारे | 898 | अनास्था वस्तूनां | 3162 |

| | | | |
|---|---|---|---|
| अनित्यतासमाख्यानं | 51 | अन्वेतं वायवो | 1939 |
| अनिल निखिल० | 1200 | अपकुर्वन्न० | 219 |
| अनिशं मनङ्गजानां | 909 | अपक्वं भङ्ग० | 1753 |
| अनुकुरूतः खल० | 239 | अपक्वमपि | 3005 |
| अनुगन्तुं सतां | 1420 | अपदो दूरगामी | 514 |
| अनुत्कीर्णो यथा | 4241 | अपरीक्ष्य न कर्तव्यं | 1442 |
| अनुदिनमभ्यास० | 3958 | अपसरणमेव | 798 |
| अनुरागं जनो | 4506 | अपसरति न | 3459 |
| अनुरागवन्त० | 3585 | अपसर मधुकर | 831 |
| अनुसरति करि० | 828 | अपाङ्गात्पुच्छमूलं | 1641 |
| अनेन मर्त्यदेहेन | 648 | अपानप्राणयोः | 4418 |
| अनेन योगराजेन | 3208 | अपानेन पुनः | 4320 |
| अनेन रम्भोरू तव | 3321 | अपि त्यक्तासि | 1201 |
| अनेनैव प्रकारेण | 1652 | अपि पञ्चशतं | 1927 |
| अन्तः कटुरपि | 478 | अपि ब्रह्मपरानन्दा० | 1949 |
| अन्तः कपालवि० | 4410 | अपि सुदमुपयान्तो | 164 |
| अन्तः कुटिलतां | 1116 | अपि मेरूपमं | 427 |
| अन्तः प्रतप्तमरू० | 1002 | अपूजितैवास्तु गिरीन्द्र० | 3438 |
| अन्तःसारै० | 1352 | अपूर्णे नैव मर्तव्यं | 1940 |
| अन्तर्गाढं चिह्न० | 4644 | अपूर्वः कोपि | 359 |
| अन्तश्छिद्राणि | 1142 | अपेक्षन्ते न च | 235 |
| अन्तैः कल्पितमङ्गल० | 4076 | अप्रगल्भाः पद० | 191 |
| अन्तैः स्वैरपि | 3973 | अप्राप्तवल्लभ० | 3167 |
| अन्धकारगरलं | 3635 | अप्स्वात्मानं न | 618 |
| अन्नपानादि० | 1729 | अबुद्धिमाश्रितानां | 1398 |
| अन्नवस्त्रसुवर्णानि | 536 | अब्जं त्वब्जमथाब्ज० | 1166 |
| अन्नादिवर्ज फल० | 2471 | अब्दायनर्तुष्वथ | 2348 |
| अन्नादिविष्ठानव० | 2607 | अभावे पट्टसूत्रस्य | 1763 |
| अन्नादिविष्ठापिशित० | 2663 | अभिनवनलिनी० | 819 |
| अन्यद्रोपुच्छकं | 1781 | अभिमतफल० | 1241 |
| अन्यमुखे दुर्वादो | 466 | अभिमतवस्तूप० | 3161 |
| अन्यवर्ण शिरो यस्य | 1655 | अभिमन्त्र्य शुचि० | 3039 |
| अन्यवर्णपरा० | 196 | अभूत्प्राची पिङ्गा | 3717 |
| अन्यानपि तरू० | 2103 | अभ्यासः कर्मणां | 3264 |
| अन्या सा सरसी | 806 | अभ्यासात्तु स्थिर० | 4367 |
| अन्यासु तावः | 823 | अभ्यासेन स्थिरं | 4186 |
| अन्ये च बहवो रागा | 2059 | अभ्यासेनान्य० | 4187 |
| अन्ये ते जलदायिनो | 862 | अभ्युत्थानमुपागते | 3757 |
| अन्येपि सन्ति | 861 | अभ्युन्नतेपि | 1158 |
| अन्योन्यलक्षणैः | 3108 | अमनस्कं गते | 4500 |
| अन्योन्यास्फाल० | 4086 | अमन्दमणिनूपुर० | 3929 |
| अन्योन्याहति० | 3934 | अमानुषं सत्त्व० | 4515 |
| अन्योपि चन्दन० | 774 | अमी तिलास्तैलिक० | 1189 |
| अन्वर्थवेदी शूरश्च | 1581 | अमुं कालक्षेपं | 784 |

| | |
|---|---|
| अमुष्मिन्नुद्याने | 879 |
| अमुष्मिल्लावण्य० | 3349 |
| अमूल्यस्य मम | 3360 |
| अमृतममृतं | 3519 |
| अमृतस्यैव कुण्डानि | 3088 |
| अमृतोत्प्रेक्षणे | 170 |
| अम्बरमम्बुनि | 528 |
| अम्बा तुष्यति | 411 |
| अम्भःकुम्भाम्भो० | 2564 |
| अम्भसः प्रसृती० | 3047 |
| अम्भस्तत्त्वं भूमि० | 2802 |
| अम्भोजाक्ष्याः पुर० | 3615 |
| अम्भोजिनीवन० | 797 |
| अम्भोधिः स्थलतां | 445 |
| अम्भोमुचां सलिल० | 593 |
| अयं निजः | 273 |
| अयं वारामेको | 1091 |
| अयं स्निग्धश्यामो | 3960 |
| अयःपिण्ड० | 366 |
| अयथाविहितानां | 2138 |
| अयमङ्कुरभाव० | 3272 |
| अयमवसरः सरस्ते | 1128 |
| अयमुदयति मुद्रा० | 3738 |
| अयश्चयं घट० | 1858 |
| अयस्तु काक० | 1862 |
| अये जलद यदि | 779 |
| अयि मृगाक्षि तव | 3313 |
| अये केयं लीला० | 3518 |
| अये नीलग्रीव | 870 |
| अये वारां राशे | 1095 |
| अये हेलावेला० | 775 |
| अरक्षितं तिष्ठति | 446 |
| अरतिरियमुपैति | 3427 |
| अरलूवृक्षपत्राणां | 2852 |
| अरश्मिबिम्बं | 4568 |
| अरावप्युचितं कार्यं | 1401 |
| अरिष्टानि वि० | 4566 |
| अरुणाङ्गी श्यामा | 3105 |
| अर्कैकपौसयो० | 2913 |
| अर्चिष्मन्ति विदार्य | 105 |
| अर्जुनः फाल्गुनः पार्थः | 1910 |
| अर्जुनः फाल्गुनः पार्थः | 2557 |
| अर्थः सुखं | 229 |
| अर्थनाशं मन० | 1458 |
| अर्था न सन्ति | 407 |
| अर्थानामर्जनं कार्यं | 1393 |
| अर्थान्केचिदु० | 168 |
| अर्थाभावे तु यज्ज्ञानं | 4403 |
| अर्थार्थी जीव० | 336 |
| अर्थिनां कृपणा | 275 |
| अर्थी करोति | 319 |
| अर्थो नाम जनानां | 4046 |
| अर्धं दानवैरिणा | 1259 |
| अर्धं सुप्त्वा निशायाः | 3908 |
| अर्धचन्द्रं च चक्रं | 1923 |
| अर्धचन्द्राकृति | 4653 |
| अर्धपञ्चमहस्तं | 1745 |
| अर्धपूरुषे च मत्स्यः | 2179 |
| अर्धप्रोथस्थिता ... | 1706 |
| अर्धहस्तेन हीनस्तु | 1639 |
| अर्धोन्मीलित० | 115 |
| अलब्ध्वापि फलं | 1450 |
| अलमतिचपल० | 566 |
| अलमलमघृणस्य | 3513 |
| अलम्बुषा कुहू० | 4309 |
| अलम्बुषा दक्षिण० | 4312 |
| अलसवलितैः प्रेमा० | 3416 |
| अलाबुं वर्तुलाकारं | 652 |
| अलाबुबीजं | 2932 |
| अलिपटलैरनु० | 791 |
| अलीक एव त्वद्० | 4246 |
| अलोमशाः स० | 3139 |
| अलौल्यमारोग्य० | 4505 |
| अल्पमूत्रपुरीष० | 4389 |
| अल्पायां वा महत्यां | 1938 |
| अल्पीयःस्खलनेन | 943 |
| अल्पीयसैव | 1076 |
| अल्पेनापि सुरक्तेन | 3311 |
| अवक्के मांसहीने | 1626 |
| अवचनं वचनं | 3957 |
| अवध्यो ब्राह्मणो | 1348 |
| अवयवेषु परस्पर० | 3367 |
| अवलम्बि सुवृत्तं | 1628 |
| अवलोकनमपि | 3369 |
| अवलोक्य स्तनौ | 521 |
| अवामभागेन यदा | 2403 |
| अवालुकाश्चक्ष्ण० | 2141 |
| अवाहिता विनश्यन्ति | 1691 |

अविकृतकृत० ..... 2694
अविच्छिन्नं सु० ..... 4630
अविज्ञातविशेषस्य..... ..... 3604
अविज्ञानो धृतः ..... 4651
अविदितगुणापि ..... 145
अविधेयो भृत्य० ..... 1531
अविरतमविरामा..... 3723
अविरतमिदमम्भः ..... 3846
अविरलपरि० ..... 3484
अविवेकिनि भूपाले ..... 1371
अविशीतम० ..... 1784
अवृत्तिकं त्यजेद्देशं ..... 1459
अवृत्तिव्याधि० ..... 645
अव्यक्तादीनि ..... 4135
अव्याजसुन्दरी तां ..... 3377
अशठमलोल० ..... 470
अशस्त्रं पुरुषं ..... 727
अशुचीक्षणेशु० ..... 602
अशृण्वन्नपि बोद्धव्यो ..... 1358
अश्नीमहि वयं..... 4104
अश्मानकस्य वामे ..... 2196
अश्वः शस्त्रं ..... 331
अश्वगन्धापलं ..... 3042
अश्वत्थमेकं ..... 2104
अश्वप्रशंसा विख्याता ..... 32
अश्वमध्ये कृतरवा ..... 2450
अश्वशालां समासाद्य..... 1672
अश्वा यस्य जयस्तस्य..... 1606
अश्वाश्वतरकोटि०..... 1919
अश्विनीमैत्रदेवत्यो ..... 2555
अष्टदिशो रवि०..... 2443
अष्टधा देवता..... 4284
अष्टमं ब्रह्मरन्ध्रं..... 4359
अष्टमी च अमा० ..... 1824
अष्टावङ्गानि योगस्य..... 4425
अष्टाङ्गुलस्य कथितो..... 2804
अष्टादश तथा मध्ये ..... 1637
अष्टौ यदा तु ..... 4526
अष्टौ हाटक०..... 565
असंख्यपुष्पोपि ..... 3799
असंचयादपूर्व० ..... 4423
असंपादयनः ..... 462
असतीचरितं..... 47
असत्प्रतिग्रह० ..... 710
असत्प्रलापं पारुष्यं..... 636
असत्सङ्गाद्गुण० ..... 4189
असद्वृत्तो नायं ..... 3552
असमाने समानत्वं ..... 496
असहायः सहायार्थी ..... 4008
असहाश्चैव विज्ञेयाः ..... 4676
असाधुः साधु० ..... 329
असितखुर० ..... 1712
असितविपाण्डु० ..... 2116
असिधारां विषं ..... 4553
असेकतोत्यन्त० ..... 2271
असौ मरुच्चुम्बित० ..... 3783
अस्तं गतोयमरविन्द० ..... 1180
अस्तमितविषय०..... 3400
अस्तावलम्बिरवि० ..... 3584
अस्ताविलरूक्षाक्ष्यो ..... 2827
अस्ति कारणम०..... 4271
अस्ति यद्यपि..... 812
अस्ते शिवा पश्चिमायां ..... 2449
अस्थाने ताडितो..... 1690
अस्थिरमनेकरागं ..... 3863
अस्माकं जल० ..... 506
अस्माकं सखि ..... 3754
अस्मिन्कुक्षे विनापि..... 116
अस्मिन्नम्भोद० ..... 912
अस्यां सखे ..... 840
अस्याः सर्गविधौ..... 3268
अस्याननस्य ..... 958
अस्या ललाटे रचितो ..... 3292
अस्याभ्यासाद्ग्रन्थ० ..... 4619
अस्या मनोहराकार० ..... 3286
अहमिह कृत० ..... 4116
अहिंसा सत्यमस्तेयं ..... 4426
अहिंसा सत्यवचनं..... 637
अहिरहिरिति ..... 1163
अहिराज पुरुषे०..... 2193
अहो किमपि ..... 212
अहो नक्षत्रराजस्य ..... 750
अहो प्रभावो वा०..... 189
अहो बत महत्०..... 467
अहो वैचित्र्य० ..... 305
अहौ वा हारे वा ..... 4102

## आ


| | |
|---|---|
| आः कष्टं वन० | 946 |
| आकर्णपलितः | 3986 |
| आकर्ण्य गुञ्जितरवं | 1217 |
| आकर्ण्य स्मरयौव० | 3865 |
| आकर्षन्निव | 583 |
| आकर्षैकैशिक० | 1839 |
| आकारः कमनीय० | 813 |
| आकारणाय | 2899 |
| आकारमात्र० | 268 |
| आकाशधारणां | 4398 |
| आकाशवापीसित० | 3628 |
| आकुञ्चितौरू० | 1794 |
| आकृष्य यद्विजै० | 1317 |
| आखुना भक्षिता० | 2956 |
| आख्यायिकानुरागी | 4036 |
| आगच्छन्सूचितो | 3527 |
| आगताः पाण्डवाः | 534 |
| आगत्य प्रणिपात० | 3576 |
| आगत्य संप्रति | 3735 |
| आगन्तो जाङ्घिके | 2656 |
| आगमिष्यन्ति | 311 |
| आगारदाही | 711 |
| आग्नेये यदि | 2224 |
| आग्नेय्यामनला० | 2475 |
| आघ्रातं परिलीढ० | 1106 |
| आघ्रायाघ्राय | 585 |
| आचक्ष्महे वत | 1066 |
| आचार्यैः सप्त० | 1722 |
| आचार्येण धनु० | 1719 |
| आचार्यैमानीय | 2333 |
| आजन्मब्रह्मचारी | 3994 |
| आजन्मास्थितयो | 1122 |
| आजानुलम्बि० | 3111 |
| आतपासहनः | 2259 |
| आताम्रौ पूजितावोष्ठौ | 1619 |
| आतिथ्ये श्राद्ध० | 4556 |
| आत्तमात्तमधि० | 3845 |
| आत्ते सीमंन्त० | 1276 |
| आत्माधीन० | 315 |
| आत्मानं च जगत्० | 4472 |
| आत्मानं प्रथमं | 1285 |
| आत्मानं सुस्थिरं | 1808 |
| आत्मार्थं यः पशुं | 633 |
| आदानं चैव तूणीरा० | 1842 |
| आदाय पत्त्रं त्वरितं | 2611 |
| आदाय मांसम० | 4015 |
| आदाय वारि परितः | 1083 |
| आदितालो जयन्त० | 1980 |
| आदित्यरथवेगेन | 2951 |
| आदिमध्य० | 247 |
| आदौ दर्शयति नर्तिं | 2701 |
| आद्यन्तौ च | 2883 |
| आद्ये जगमुषि ताम्र० | 3727 |
| आद्ये यामे तु | 3144 |
| आद्यैर्मद्विहितैः | 12 |
| आद्यो ध्रुवस्ततो | 1964 |
| आधारः कन्द० | 4298 |
| आधारजन्मभूतानि | 4467 |
| आध्मातोद्भूतदाव० | 3853 |
| आनन्दमादधत० | 70 |
| आनन्दाय सतां | 11 |
| आनृशंस्यं क्षमा | 674 |
| आपत्स्वेव हि | 214 |
| आपाण्डुरा च मृन्मना | 2185 |
| आ पुष्पप्रसरात् | 1028 |
| आपूर्यैत पुनः | 1179 |
| आबध्नत्परिवेष० | 3309 |
| आभुग्नाङ्गुलि० | 3291 |
| आभोगश्चैकखण्डः | 1971 |
| आभोगे च पदैकं | 1973 |
| आमन्त्रणजय० | 4048 |
| आ मरणादपि | 882 |
| आमोदीनि सु० | 1050 |
| आमोदैस्ते० | 998 |
| आम्नाया ना० | 548 |
| आम्रैः क्षेमं भल्लातकै० | 2317 |
| आयाच्चतुर्थभागेन | 1392 |
| आयातासि विमुञ्च | 3779 |
| आयाति हृष्टो | 2602 |
| आयाते दयिते मनो० | 3680 |
| आयाते दयिते मरु० | 3528 |
| आयाते श्रुतिगोचरं | 3382 |
| आयातो भवतः | 576 |
| आरक्तामेति मुखं | 4588 |
| आरब्धे दयिता० | 3325 |
| आरात्कारीष० | 3948 |

| | |
|---|---|
| आराध्य भूपति० | 4170 |
| आरामाभरणस्य | 1001 |
| आरामुखं क्षुरप्रं | 1777 |
| आरामुखेन वै | 1779 |
| आरामोय० | 930 |
| आरूढस्वामिको | 2568 |
| आरोग्यं विद्वत्ता | 317 |
| आर्तध्वनस्वरज्ञा | 2576 |
| आर्द्रकीकसमुखः | 2622 |
| आलवाले स्थितं | 2156 |
| आलापः स्मित० | 2156 |
| आलिङ्गिताः परै० | 3178 |
| आलिङ्ग्यौषधी | 342 |
| आलोकवस्तनारी० | 2934 |
| आलोकवन्तः सन्त्येव | 574 |
| आलोलामलकावली | 748 |
| आवासरमहि० | 3702 |
| आवर्त इव तोयस्य | 2946 |
| आवर्तैः ककुदे यस्य | 4528 |
| आवासो विपिनायते | 1662 |
| आ विन्ध्यादा हिमाद्रे० | 3481 |
| आशङ्क्य प्रणतिं | 1255 |
| आशा नाम नदी | 3537 |
| आशापाशशतैः | 4103 |
| आशीर्वादमुखा | 4342 |
| आ श्मशानात् | 2565 |
| आश्रयवशेन | 677 |
| आश्लेषचुम्बनरत० | 327 |
| आश्लेषे प्रथमं | 3661 |
| आश्वास्य पर्वतकुलं | 3664 |
| आषाढशुक्ल० | 778 |
| आषाढे शशका | 2945 |
| आषाढे श्रावणे | 2520 |
| आसाद्य स्वयमेव | 2144 |
| आसनं प्राणसंरोधः प्र० | 3158 |
| आसनं प्राणसंरोधो ध्या० | 4378 |
| आसंसारं त्रिभुवन० | 4348 |
| आसन्नतामेति | 4105 |
| आसन्नमार्ग० | 4134 |
| आसन्नमेव नृपति० | 3471 |
| आसन्नाः कण्टकिनो | 3381 |
| आसन्नामवलम्ब्य | 2111 |
| आसन्ने फलमासन्नं | 3415 |
| आसन्नो वल्मीको | 2587 |
| आसवरतिराति० | 2186 |
| आसामुपरि | 3119 |
| आसीनं पूष्णि | 3053 |
| आसीने लालये० | 93 |
| आसीमाकालिका | 3140 |
| आस्तां दूरेण विश्लेषः | 4643 |
| आस्तां माद्य भवे | 3679 |
| आस्तामन्यत् | 3166 |
| आस्तीकवचनं | 243 |
| आहते यत्र खड्गे | 2940 |
| आहते यत्र मधुरो | 4669 |
| आहत्याहत्य | 4658 |
| आहारदोषाय | 597 |
| आहारे विरतिः | 2491 |
| आहूतोपि सहायै० | 3423 |
| | 3932 |

इ

| | |
|---|---|
| इङ्गिताकार० | 1337 |
| इड्याध्ययनदानादि | 673 |
| इडया संचरन्वायुः | 2796 |
| इडा च पिङ्गला | 4308 |
| इडा नासापुटे | 4310 |
| इडायां यदि भू० | 2811 |
| इडा सोमस्य नाडी | 2794 |
| इतः स्वपिति केशवः | 1093 |
| इति निखिलमुदार० | 4670 |
| इति विरचित० | 4617 |
| इतो न किंचित्पर० | 4127 |
| इतो विद्युत्सुञ्ज० | 3457 |
| इत्यङ्गैः संयुतः | 4325 |
| इदं कृष्णं कृष्णं | 3544 |
| इदं ज्ञेयमिदं | 4562 |
| इदं त्विहोत्पात० | 2493 |
| इदं नभसि भीषण० | 3605 |
| इदं मघोनः कुलिशं | 4068 |
| इदं युगसहस्रस्य | 4132 |
| इदमनुचितम० | 564 |
| इदमपटु कपाटं | 878 |
| इदमिदमिति भू० | 3805 |
| इदानीं तीव्राभिर्दहन० | 3436 |
| इन्दुः प्रयास्यति | 897 |
| इन्दुं करैरविणैव | 1557 |
| इन्दुं निन्दति चन्दनं | 1238 |
| इन्दुप्रभा० | 181 |

इन्दुर्यत्र न निन्द्यते ..... 3782
इन्दोरेककलाया ..... 3637
इन्द्रनीलशुक० ..... 2118
इन्द्रियाणीन्द्रिय० ..... 4464
इयमुन्नत० ..... 210
इष्टकचिते समन्तात् ..... 2312
इह किं कुरङ्गशावक ..... 939
इह खलु विषमः ..... 4005
इह तुरग० ..... 198
इह निचुलनिकुञ्जे ..... 3918
इह लोकेपि ..... 403
इह वटवृक्षे यक्षः ..... 3772
इह सरसि सहर्षं ..... 836
इह स्फुटं तिष्ठति ..... 3582

ई

ईदृशं कार्ये० ..... 1734
ईशानोत्थैः शकुनैर्धीरा ..... 2788
ईशानोत्थैः शकुनैर्विशेषतः ..... 2789
ईश्वरात्समभूत् ..... 4276
ईश्वरोक्ताद्धनु० ..... 1714
ईषत्कम्पयोधरं ..... 3701
ईषत्प्रकटितौ ..... 3153
ईषन्मीलितदृष्टि० ..... 3687

उ

उचितं नाम नारङ्गाः ..... 1057
उच्चं प्रदेशं भषण० ..... 2377
उच्चात्प्रदेशादव० ..... 2605
उच्चित्य प्रथममधः ..... 3801
उच्चैः स्थानकृतो० ..... 764
उच्चैरुच्चर रुचिरं ..... 1114
उच्चैरुड्डीयमाना ..... 2702
उच्चैरुच्चालखेलद्० ..... 66
उच्चैर्निषाद० ..... 2046
उच्चैर्ब्रह्माण्डखण्ड० ..... 58
उच्छिष्टे शिव० ..... 517
उच्छिष्टो न स्पृशेत् ..... 4687
उच्छीर्षे पदकं कृत्वा ..... 2408
उच्छ्वासहिक्काश्रय० ..... 2398
उज्जाडितो यदा ..... 2458
उज्जृम्भाननमुल्लसत्० ..... 3417
उड्डीना गुणप० ..... 395
उड्डीयाणं तु सह० ..... 4414
उड्डीयोर्ध्वं गमने ..... 2709
उत्कृत्य ज्वलितां ..... 4077
उत्कृत्योत्कृत्य कृत्तिं ..... 4075
उत्खातदैवत० ..... 4004
उत्खातान्प्रति० ..... 1017
उत्तंसकीतुकरसेन ..... 1107
उत्तंसेषु ननर्त ..... 1294
उत्तमः षट्पदः ..... 1966
उत्तमा आत्मना ..... 1487
उत्तमास्ताजिकाः ..... 1675
उत्तरंगय कुरङ्ग० ..... 3557
उत्तरतश्च मधूका० ..... 2192
उत्तरेण सदा कार्यं ..... 1818
उत्तानोच्छून० ..... 4144
उत्तानौ चरणौ ..... 4376
उत्तानौ चरणौ ..... 4435
उत्तिष्ठन्त्या रतान्ते ..... 135
उत्तीर्य दक्षिणे पूर्वे ..... 2747
उत्तीर्य पृष्ठतो याति ..... 2750
उत्तुङ्गैस्तरुभिः ..... 1059
उत्थाप्य भुजगीं ..... 4604
उत्थाय हृदि ..... 401
उत्थायोत्थाय बोद्धव्यं ..... 668
उत्पाताय च काव्ये ..... 2578
उत्फुल्लगल्लैरालापाः ..... 162
उत्सरङ्क० ..... 549
उत्साहः स्याद्रसे ..... 1982
उत्साहस्य प्रभो० ..... 1409
उत्साहोद्भिन्नमनसां ..... 2781
उदक्यापतित० ..... 601
उदङ्मुखो वक्ति ..... 2420
उदञ्चत्कावेरी० ..... 3810
उदयतटान्तरित० ..... 3621
उदयति विततोर्ध्व० ..... 3737
उदयास्तौ मूलाख्यौ ..... 2770
उदरद्वयभरण० ..... 64
उदस्योच्चैः पुच्छं ..... 1212
उदारचरित० ..... 389
उदितवति द्विज० ..... 1141
उदिते भास्करे ..... 1817
उद्दिष्टं वस्तु ..... 2037
उदीच्यां सस्यानि० ..... 2517
उदीरितोर्थः ..... 200
उदुम्बरद्रुमा० ..... 2099

उद्ग्राहक्षान्यभानुः ..... 2035
उद्ग्राहस्याद्य० ..... 1969
उद्ग्राहो ध्रुपदश्च ..... 1996
उद्घाट्येहक्षिण० ..... 2352
उद्घाट्य चेहक्षिणं ..... 2374
उद्यत्करकरवालः ..... 132
उद्यद्दंषि दर्दुरा० ..... 3397
उद्यद्बालांकूरश्री० ..... 1235
उद्यद्विद्रुमकान्तिभिः ..... 3790
उद्यन्त्वमनि ..... 741
उद्यमाख्यानमपरं ..... 20
उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति ..... 457
उद्योगिनं पुरुष० ..... 455
उद्वासयितुं वेश्मनि ..... 2552
उन्नतदक्षिणपक्षा ..... 2696
उन्नमय्य सकच० ..... 509
उन्नम्य दूरं ..... 3879
उन्निद्रकन्दलदला० ..... 3875
उन्निद्रकोकनद० ..... 3736
उन्निद्रनां मत्स्य० ..... 2272
उन्मीलन्ति नखि० ..... 3489
उन्मीलन्मधुगन्ध० ..... 3820
उन्मृत्य सित० ..... 3072
उन्मृष्टपत्त्राः कलिता० ..... 3848
उपकर्तुं प्रियं ..... 231
उपकारः परो ..... 649
उपकारगृहीतेन ..... 1303
उपकारिषु यः ..... 233
उपकृतमनेन ..... 352
उपचरितव्याः ..... 236
उपदेशो हि ..... 418
उपप्राकारार्थं ..... 3516
उपभोगेन पुण्यानां ..... 4422
उपयुक्तखदिर० ..... 4051
उपरि पयोधर० ..... 3884
उपर्यष्टौ शनां० ..... 1912
उपवनमिव ..... 2170
उपसर्गाः प्रवर्तन्ते ..... 4518
उपसर्गैर्जिते० ..... 4522
उपस्थितः प्राकृत० ..... 2397
उपहरणं विभवानां ..... 92
उपहासादिकं ..... 40
उपोढरागेण विलोल० ..... 3634
उपौषैकादशी ..... 694

उभावेवं चलौ ..... 1811
उभौ श्वेतौ पक्षौ ..... 894
उमा तिलकतालं तु ..... 2020
उरः पृष्ठं कटिश्चैव ..... 1635
उरसि निहितस्तारो ..... 3613
उरोजातश्च ..... 1676
उरो विशालं शस्तं ..... 1625
उल्लङ्घ्यापि सखी० ..... 3444
उल्लापयन्त्या ..... 3511
उष्णं जलं क्षिपे० ..... 2255
उष्णकाले जलं ..... 644

ऊ

ऊने दद्याद्वृत्तेनैव ..... 2067
ऊर्णा नैष दधाति ..... 1210
ऊर्ध्वं यानि चाप० ..... 1852
ऊर्ध्वे व्रीहित्रयं ..... 1631
ऊर्ध्वे श्वसंस्ततः ..... 4331
ऊर्ध्वगं कपिल० ..... 4642
ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष ..... 665
ऊर्ध्ववेधी भवे० ..... 1823
ऊर्ध्वशक्तिनिपातेन ..... 4363
ऊर्ध्वानना भास्कर० ..... 2423
ऊर्ध्वार्धे लक्षणं ..... 4665
ऊष्मा यस्यां धान्यां ..... 2208

ऋ

ऋणशेषश्चाग्निशेषः ..... 1491
ऋतुर्मासद्वयेनैव ..... 4260
ऋतुलोकपाल० ..... 3123
ऋतुस्नातां तु ..... 705
ऋतुस्नाता पिबे० ..... 2999

ए

एकं हन्यान्न वा ..... 1355
एकः कापुरुषो दीर्णो ..... 1930
एकः स एव जीवति ..... 258
एकः स एव तेजस्वी ..... 285
एकं एव खगो ..... 852
एक एव लघु० ..... 2024
एकच्छागं द्विरावेयं ..... 658
एकतालीं त्रिधा ..... 2028
एकत्र सार्थे व्रजतां ..... 2715
एकत्रासनसंस्थितिः ..... 3534
एकदन्तद्युतिं० ..... 88
एकभानुर्द्विखण्डः ..... 1967

| | |
|---|---|
| एकनिभा यत्र | 2222 |
| एकमात्रो लघुः | 2069 |
| एकमेव बलिं दत्त्वा | 3347 |
| एकवर्णो भवेद्यस्तु | 4655 |
| एकविंशतिवर्णा० | 1990 |
| एकसार्थप्रवृत्तानां | 4136 |
| एकविंशतिवारेण | 2292 |
| एकविंशतिसंजप्तं | 2917 |
| एकशक्तिप्रहारेण | 567 |
| एकस्मिञ्छयने | 3715 |
| एकस्य तस्य मन्ये | 765 |
| एकस्यायमुदेति | 1070 |
| एकाकिनी वन० | 905 |
| एकाकिनी यदबला | 3773 |
| एकादशाक्षरान् | 1976 |
| एकान्तशान्तमेकं | 2773 |
| एकान्तसुन्दरविधान० | 3267 |
| एकान्ते वन नो गृहं | 3775 |
| एकान्ते विजने देशे | 4375 |
| एकान्ते विजने रम्ये | 4430 |
| एकापि पञ्चशान्ता | 2698 |
| एकारौकारयुक्ता | 3195 |
| एकावलीकालित० | 3343 |
| एका वा दुग्धिका | 3247 |
| एकेन चुलुकेनाब्धि० | 3905 |
| एकेन निघृता० | 271 |
| एकेनाक्ष्णा प्रवितत० | 3596 |
| एके सत्पुरुषाः | 465 |
| एकैव प्रातरपरे | 4137 |
| एकैकस्य शरस्यैव० | 1772 |
| एकोपि यत्र | 1718 |
| एको ललाटे द्वौ मूर्ध्नि | 1648 |
| एकोहमसहायो | 900 |
| एणः क्रीडति | 914 |
| एतच्चतुर्गुणं | 3069 |
| एतत्तकैय कैरव० | 3639 |
| एतत्सर्वं परिज्ञाय | 2088 |
| एतदनूपे वाच्यं | 2221 |
| एतदत्र | 783 |
| एतद्बुद्धिमशेषाणां | 4535 |
| एतद्रहस्यं | 4257 |
| एतस्मात्परमानन्दात् | 4235 |
| एतस्मादमृते सुरैः | 1085 |
| एतस्मिन्दाक्षिण्या० | 3819 |
| एतस्मिन्मरुमण्डले | 1129 |
| एतस्मिन्मलया० | 867 |
| एतस्मिन्वनमार्ग० | 1020 |
| एतानि निःसहत्नो० | 3410 |
| एतानि बालधवल० | 969 |
| एतानि सर्वदा | 4390 |
| एतान्येव नु बन्धाय | 4538 |
| एना याः प्रेक्षसे | 4119 |
| एनासु केतकि | 1013 |
| एने ते दुरतिक्रम० | 3882 |
| एनेन गुणाः पङ्कज | 1143 |
| एनेषां नव चक्राणां | 4361 |
| एते हि जीवाः | 4336 |
| एतैरक्षिण० | 994 |
| एतैर्यदि सुस्निग्धै० | 2200 |
| एभिर्दिनैस्तु | 1727 |
| एभिर्नाशितयो० | 4529 |
| एरण्डबीजप्रति० | 4647 |
| एलाकरणढेकीभि० | 2033 |
| एवं कदाचिन्नरकं | 4335 |
| एवं लेपत्रयं | 3060 |
| एवं विधान्गजज्ञात्या | 1594 |
| एवंविधे भावि न | 2349 |
| एवं वेधत्रयं | 1741 |
| एवं श्रमविधिं | 1877 |
| एवं सर्वात्मना | 4516 |
| एवं सिद्धो भवेत् | 4611 |
| एवमेव हि यो० | 2091 |
| एष बकः | 890 |
| एष सूर्यांशुसंतप्तो | 3836 |
| एष स्वर्गतरंगिणी० | 3632 |
| एषा धर्मपताकिनी | 107 |
| एहि हे रमणि | 537 |


## ऐ


| | |
|---|---|
| ऐन्दवी वहनि | 2717 |
| ऐन्द्र्यां दिगवलोकि० | 2481 |
| ऐशान्यां पतनं | 1740 |
| ऐशान्यां संप्राप्ति० | 2478 |
| ऐहिकामुष्मिकान् | 4453 |


## ओ


| | |
|---|---|
| ओंकारो मदनद्विजस्य | 3629 |
| ओं ह्रीं श्रिखा० | 1735 |

औ

और्वो हवातिलुब्धा ..... 431

क

कंसारिचरणो० ..... 796
कः प्रार्थ्यते मदन० ..... 555
ककुभकरीरावेकत्र ..... 2216
ककुभस्य फलं ..... 3015
कङ्कहंसशशादानां ..... 1771
कटकत्वं पृथग्० ..... 4242
कटी मुष्टिग्राह्या ..... 4055
कटुतिक्तकषाय० ..... 2261
कठिनं वा मधुरं ..... 1453
कण्टक्यकण्टकानां ..... 2202
कण्टमाकुञ्च्य हृदये ..... 4411
कण्ठस्य तस्याः स्तन० ..... 3329
कण्ठस्य विदधे ..... 3327
कण्ठे क एष तव ..... 3176
कण्ठे चिन्तामणिर्ज्ञेय० ..... 1653
कण्ठे रज्जुं बद्ध्वा ..... 2984
कण्डूयते दक्षिण० ..... 2354
कण्डूयमानः खलु ..... 2350
कति कति न ..... 938
कतिपयदिन० ..... 697
कतिपयदिवस० ..... 1124
कतिपयनिमेष० ..... 155
काने पल्लविना ..... 1018
कथमपि सखि ..... 3546
कथं ते व्यक्त० ..... 696
कथय निपुणे ..... 3512
कथमिह मनुष्य० ..... 140
कदम्बवृक्ष० ..... 3025
कदर्थितस्या० ..... 227
कनकरसमसृण० ..... 3231
कनकस्य तु पञ्चाङ्गं ..... 3198
कनिष्ठास्तं नमस्येरन् ..... 1489
कन्दायात्योत्थितः ..... 4318
कन्याकर्तित० ..... 2988
कपिकच्छू च निज० ..... 3221
कपिकच्छू० मद० ..... 3225
कपोतगृध्रकाकोल० ..... 4573
कपोले जानक्याः ..... 3990
कपोले मार्जारीपय० ..... 3640
कमलिनीमलिनी ..... 3793
कम्पितं भीत० ..... 1960
कम्पते गुण० ..... 1850
कम्पन्ते गिरयः ..... 1074
करकिसलयं धूत्वा ..... 3706
करञ्जारग्वधा० ..... 2265
करभदयिते यत्तत्पीतं ..... 960
करभदयिते योसौ ..... 953
करबदरसदृश० ..... 59
करान्प्रसार्य रविणा ..... 742
करालैः पुरुषैः ..... 4585
करिकृष्णाश्वगन्धा ..... 3233
करिणश्च हस्तिकर्णै० ..... 2316
करिमदगन्धि० ..... 3104
करिवरमृदित० ..... 2286
करीषमध्ये ..... 3065
करे च दक्षिणे ..... 2531
करेण कण्डूयति ..... 2351
करोति निर्मला० ..... 477
करोति नीडं भुवि ..... 2509
करोति हुं हुं शुगिति ..... 2652
करौ धुनाना नव० ..... 3841
कर्कशेन तु चापेन ..... 1847
कर्कोटिकार्कयो० ..... 2864
कर्णस्त्वचं ..... 279
कर्णामृतं सूक्ति० ..... 144
कर्णाग्रे पीडिते ..... 1702
कर्णिकं काक० ..... 1778
कर्णिकारस० ..... 2958
कर्णे चामर० ..... 919
कर्णे तालदलं ..... 3952
कर्णे बद्धा रवौ ..... 2989
कर्पासबीजमज्जानां ..... 3237
कर्पूरं चन्दनं कुष्ठं ..... 3206
कर्पूरभल्लातक० ..... 3002
कर्पूरमिश्रसेहुण्ड० ..... 3234
कर्पूरमिश्रेण च ..... 3210
कर्पूराम्बुनिषेक० ..... 3448
कर्मणः संचयात् ..... 4239
कर्मणा मनसा वाचा ..... 1394
कर्मणामिष्टदुष्टानां ..... 4452
कर्षणान्वेषणे यातुः ..... 2768
कर्षद्भिः सिचया० ..... 1277
कलकणितगर्भेण ..... 570

| | |
|---|---|
| कलमाग्रनिर्गत० | 4041 |
| कलहप्रियाति० | 3106 |
| कलुषं कटुकं | 2174 |
| कल्पद्रुमो न जानाति | 1242 |
| कल्पद्रुमोपि कालेन | 987 |
| कल्याणं नः किमधिक० | 1183 |
| कल्याणदो भवेत्० | 1989 |
| कल्पान्तपवना० | 4223 |
| कल्पान्ते क्रोधनस्य | 97 |
| कल्पान्ते शमित० | 98 |
| कल्लोलैः स्थगयन् | 1089 |
| कवयः कालिदासाद्याः | 175 |
| कवयः परितुष्यन्ति | 158 |
| कविभिर्नृपसेवा० | 195 |
| कविरमरः | 176 |
| कविवाक्या० | 169 |
| कवीन्दुं नौमि | 172 |
| कश्चिद्विषत्खड्ग० | 3978 |
| कष्टदश्चिरिचिरीति | 2687 |
| कस्तूरीतिलकं बाले | 3294 |
| कस्त्वं भोः कथयामि | 1046 |
| कस्त्वं शूली मृगय | 95 |
| कस्मिन्स्वपिति | 560 |
| कस्य मरौ | 556 |
| कांस्यस्वन इव | 4659 |
| काकचञ्चुपुटी | 4379 |
| काकजङ्घाजटा० | 2986 |
| काकजङ्घारसः | 2991 |
| काकतालीययोगेन | 1435 |
| काकमाची तथा | 2921 |
| काकमाची शिफा० | 2990 |
| काकस्य वृष्टिहेतो० | 2497 |
| काकाक्षौत्यं यमा० | 4044 |
| काकिन्याः पत्र० | 3063 |
| काकुत्स्थेन शिरांसि | 4018 |
| काकः सह | 838 |
| काकोदुम्बरिकायां | 2184 |
| काकोलः कलकण्ठिका | 3602 |
| काचिन्निवारित० | 3523 |
| काचिन्मृगाक्षी | 519 |
| काञ्चीगुणैर्विरचिता | 3345 |
| काञ्जिकेन समा० | 3037 |
| काठिन्यमङ्गैरखिलैः | 3341 |
| काणाः कुब्जाश्च | 1339 |
| कानि स्थानानि दग्धा० | 3828 |
| कान्ताकेलिं कलयतु | 991 |
| कान्तामुखं सुरत० | 3466 |
| कान्तारः समरा० | 2009 |
| कान्ते कथंचिद्दिन० | 3384 |
| कान्ते तल्पमुपा० | 3747 |
| कान्तेच्छामः सुराः | 147 |
| काम्याः क्रियास्तथा | 4519 |
| कामं कामदुघे | 495 |
| कामं प्रिया० | 252 |
| कामं भवन्तु मधु० | 1144 |
| कामं वनेषु | 261 |
| कामः सर्वात्मना | 4195 |
| कामक्रोधादयः | 4499 |
| कामदो विजया० | 1979 |
| कामपि श्रियमासाद्य | 460 |
| कामुके भ्रमरः | 3149 |
| कायः कण्टक० | 1039 |
| कायच्छिदस्त्वार्षिका | 4675 |
| कायस्थेनोदर० | 4043 |
| कारणोत्पन्न० | 3938 |
| कारञ्जीः कुञ्जयन्ती | 3851 |
| कार्ये च शान्त० | 2682 |
| कार्याकार्येषु काकोल० | 2657 |
| कार्यान्तरेष्वप्यनु० | 2644 |
| कालकूटादयो | 2861 |
| कालज्वराः काल० | 4679 |
| कालाग्निरुद्र० | 4301 |
| कालातिक्रमणं | 786 |
| कालेन क्षितिवारि० | 4167 |
| काले नीलबलाहके | 3876 |
| कावेरीतीरभूमीरुह० | 3811 |
| कावेरीवारिवेल्ल० | 3809 |
| काव्यमय्यौ | 171 |
| काशाः क्षीरनिकाशाः | 3906 |
| काश्चित्कल्पशतं | 4166 |
| काश्मीरगौरवपुषा० | 3609 |
| कासाचिद्धवल० | 965 |
| काष्ठं शिरसि सं० | 4514 |
| काष्ठगोलयुगं | 1869 |
| काष्ठैश्चकेशौ | 1866 |
| किंशुककलिका० | 8794 |
| किंशुकादपि गन्धाशा | 1540 |
| किंशुकाद्रच्छ मा | 1045 |

किंशुके किं शुकः ..... 1372
किं कंदर्प करं ..... 4096
किं करोति नरः ..... 452
किं कवेस्तस्य ..... 159
किं कान्त निर्दयतरं ..... 3182
किं कुलेन विशालेन ..... 1485
किं कृतेन न यत्र ..... 1220
किं केकीव ..... 887
किं कौमुदीः शशि० ..... 3269
किं क्रमिष्यति ..... 4020
किं क्रूरं स्त्री० ..... 558
किं क्वापि प्रलया० ..... 827
किंचित्कम्पित० ..... 3530
किंचित्कोपकला० ..... 4070
किंचिदाश्रय० ..... 326
किंचिन्मुद्रितपांसवः ..... 3872
किं जातोसि ..... 971
किं तया क्रियते ..... 277
कितवा यं प्रशंसन्ति ..... 1323
किं तेन किल ..... 151
किं तेन जातु जातेन ..... 1482
किं ते नम्रतया ..... 1004
किं त्वं न वोस्सि ..... 440
किं त्वं निगूहसे ..... 3510
किं दूरेण पयोधरा ..... 872
किं दोर्भ्यां किमु ..... 128
किं पुष्पैः किं फलैः ..... 1049
किं पृष्टेन द्रुततर० ..... 3493
किं ब्रूमो हरि० ..... 4025
किं भूमौ परितः ..... 3606
किं मालति ..... 821
किं मालतीकुसुम० ..... 1006
किं वाच्यौ महिमा ..... 1096
किं वा परेण ..... 213
किं वीरुधो भुवि ..... 1062
किं वृत्तान्तैः पर० ..... 1227
किं व्यक्तीकुरुषे ..... 1190
किमपि कान्त० ..... 3749
किमप्यसाध्यं महतां ..... 1400
किमसि विमनाः ..... 1154
किमाद्यन्तगुरु० ..... 479
कियन्मात्रं जलं ..... 561
कीटगृहं कुटिलो ..... 1115
कीटजग्धोन्नि० ..... 2257
कीर्तकीर्त इति यो ..... 2686
कीर्तिः कैतववीर० ..... 1263
कुङ्कुमाद्रैरसो० ..... 2130
कुचकुम्भौ समालम्ब्य ..... 3351
कुचावालोक्य ..... 3950
कुचेलिनं दन्त० ..... 657
कुणपजलपयो० ..... 2266
कुपिते पुच्छसंस्थानं ..... 1689
कुभोज्येन दिनं ..... 1492
कुमुदवनमपश्रि ..... 3734
कुमुदशबलैः ..... 951
कुमुदेष्वधिकं भान्ति ..... 3643
कुम्भकेन स्थिरं ..... 1833
कुम्भे विद्यां ..... 3017
कुरबक कराघात० ..... 1269
कुरङ्गकिटिमत्स्यानां ..... 2252
कुरङ्गकिटि सारङ्ग० ..... 2231
कुरु गम्भीराशयतां ..... 1125
कुर्यादाचमनाभावे ..... 603
कुर्यान्नीचजनाभ्यस्तां ..... 1514
कुर्वन्ति स्मरमन्दिरे ..... 3193
कुर्वन्तु नाम जन० ..... 1082
कुर्वञ्जेवं यदा ..... 4478
कुलगुरूरबलानां ..... 3077
कुलत्थकाथतो ..... 2295
कुले महति जातेन ..... 4181
कुल्माषदन्ति० ..... 2245
कुशं स्वर्णं सदा ..... 626
कुष्ठपत्त्रसुरा० ..... 2244
कुष्ठसैन्धवसं० ..... 2841
कुष्ठिले मलयज० ..... 2881
कुसुमं कोशातकया ..... 1135
कुसुमं फलमप्युप० ..... 2148
कुसुमशयनेप्यङ्गं ..... 3476
कुसुमसुकुमार० ..... 3797
कुसुमस्तवक० ..... 264
कुसुमस्तवकैर्नेम्याः ..... 1009
कुसुमोल्लासिषमिल्ला ..... 4222
कुस्तुम्बरु निशा० ..... 2957
कूटसाक्षी मृषा० ..... 707
कूपे पानमधो० ..... 859
कूर्मः प्रथमे पुरुषे ..... 2197
कूर्मसंस्थानगमनो ..... 1585
कूर्मः पादौत्र यष्टि० ..... 1248

| | |
|---|---|
| कूर्मो मूलवदालवाल० | 129 |
| कूष्माण्डवार्ताक० | 2298 |
| कूष्माण्डीफलवत्० | 1022 |
| कृच्छ्राच्चाप्यायते | 1592 |
| कृच्छ्रेण कापि | 3524 |
| कृतकृतकै० | 3560 |
| कृतज्ञ एव्होहि | 2345 |
| कृते पापेनु० | 714 |
| कृते युगे महा० | 1747 |
| कृतोपकारं प्रिय० | 3589 |
| कृतोपवासः | 1730 |
| कृत्तिकाभर० | 2897 |
| कृत्वापि कोशपानं | 835 |
| कृत्वा च सप्तखण्डं | 3243 |
| कृत्वापि पातकं | 676 |
| कृत्वा रवं यः पुरतः | 2660 |
| कृत्वा विग्रह० | 3716 |
| कृत्वा शिरो द्वारि | 2429 |
| कृपणसमृ० | 383 |
| कृपणेन मृतेना० | 388 |
| कृपणेन समो | 386 |
| कृमयो भस्म विष्ठा | 4141 |
| कृमिरिव्यवयष्टी | 2308 |
| कृशा केनासि त्वं | 3531 |
| कृशास्तीत्यालीना | 3532 |
| कृशो दीर्घो लघू० | 2258 |
| कृष्णं तालु भवेद्यस्य | 1659 |
| कृष्णं वपुर्वहन् | 886 |
| कृष्णतित्तिरिरितीह | 2729 |
| कृष्ण त्वं घन० | 1239 |
| कृष्ण त्वं नवयौवनोसि | 130 |
| कृष्णद्वैपायनाद्यै० | 4350 |
| कृष्णभूमिसु० | 4641 |
| कृष्णशिरोरुह० | 2823 |
| कृष्णाकसेरु० | 2968 |
| कृष्णार्जुनानुरक्तापि | 3655 |
| कृष्णेनाम्ब गतेन | 4016 |
| कृष्णोरुणो वा | 3117 |
| कृष्णो वाजी भवेद्यः | 1647 |
| कृष्यारम्भादिने | 2516 |
| केका कर्णामृतं | 868 |
| केकानिनाद० | 2167 |
| के गृह्णन्ति कचौ० | 3192 |
| केचित्प्रथमजन्मानः | 4340 |
| केचिदज्ञानतो | 1437 |
| केतकीकुसुमं | 822 |
| केतकीपत्रकुड्मला० | 3007 |
| केतकीपत्रसदृशं | 4638 |
| केदारगाहसमये | 2521 |
| केदारपाल्यां गेहे | 2519 |
| के द्रुमास्ते क | 3184 |
| केनापि चम्पकतरौ | 1003 |
| केनासीनः सुख० | 1110 |
| केपि स्वभाव० | 430 |
| के भूषयन्ति | 553 |
| केलिं कुरुष्व | 920 |
| केवले कुम्भके | 4385 |
| केशवं पतितं दृष्ट्वा | 527 |
| केशस्तनादि० | 3181 |
| केशाः कालालि० | 3067 |
| केशानाकुलयन् | 3944 |
| केशाश्मभस्मोलमुक० | 2623 |
| केशैः केसरमालिका० | 3458 |
| केशोच्छ्वचन० | 4060 |
| केसरं च जटाहीनं | 1624 |
| कैलासायितमद्रिभि० | 3641 |
| कैशिकः केशमूले | 1804 |
| कोकिल कल० | 841 |
| कोकिलक्षूतशिखरे | 3784 |
| कोकिलप्रिय० | 2031 |
| कोऽयस्त्वयोदश | 1916 |
| कोदण्डद्वयमध्य० | 4362 |
| कोपार्किंचिदु० | 3567 |
| कोपो यत्र भ्रुकुटि० | 3562 |
| कोप्यन्यः कल्पवृक्षोयं | 1222 |
| कोप्येष खण्डित० | 3976 |
| कोयं द्वारि हरिः | 122 |
| कोयं भ्रान्तिप्रकार० | 794 |
| कोर्थान्प्राप्य न | 1534 |
| कोलशौणितमेदो० | 2303 |
| कोशः स्फीततरः | 3322 |
| कोशानकीदल० | 2238 |
| कोहं कौ देशकालौ | 1404 |
| कोहं ब्रूहि सखे | 4010 |
| को हि तुलामधि० | 1196 |
| कौपं वारि | 933 |
| कौपे पयसि | 932 |
| कौमैं संकोच० | 1305 |

कौलेयके दक्षिण० ..... 2368
कौलेयको दक्षिण० ..... 2353
कौशिको दक्षिण ..... 2651
कौशेयं कृमिजं ..... 301
कौस्तुभमुरासि ..... 1203
क्रन्दन्यबाष्प० ..... 3164
क्रमागतो हित० ..... 1334
क्रयविक्रयकूट० ..... 4035
क्राक्का हाने क्रोरिने ..... 2673
क्रामन्त्यः क्षतकोमल० ..... 1270
क्रियतेनुक्रमः स्पष्टः ..... 13
क्रियाकलापान्वक्ष्यामि ..... 1828
क्रियागुणादिकं ..... 21
क्रियामिच्छन्ति ..... 1836
क्रियारूपा गुण० ..... 4274
क्रियाशक्त्या विना ..... 4291
क्रीं क्रीमिनि क्रीमिति ..... 2674
क्रीं क्रीमिनीष्टार्थं० ..... 2490
क्रीडानाले ध्रुवः ..... 1984
क्रीडारामं नृ यः ..... 2087
क्रीडासु च नरेन्द्राणां ..... 1568
क्रूरं व्यसनिनं ..... 1331
क्लीं क्लीमिनीदं ..... 2666
क्लीवः स्त्रिमनं च ..... 3165
क्लेशादन्तर्बली० ..... 2585
क्लैच्यः क्रीडनु ..... 1127
क्व चाम्भोधौ जन्म ..... 1120
क्वचिद्विझल्ली० ..... 845
क्वचित्कन्थाधारी ..... 4098
क्वचिच्चाम्बूलाक्तः ..... 3700
क्वचिदपि कूपं ..... 2172
क्व प्रस्थितासि ..... 3610
क्व यासि खलु ..... 74
क्वांक्वामिनि क्षम ..... 2479
क्वांक्वामिनि क्लीमिति ..... 2665
क्वेवे धैर्यं मद्य० ..... 1535
क्षणं कान्तारागा० ..... 1271
क्षणं बालो भूत्वा ..... 4094
क्षणदृष्टनष्ट० ..... 767
क्षणमपि विरहः ..... 3482
क्षत्रसारभृतं ..... 1926
क्षत्रियस्यौरसि ..... 3963
क्षपाः क्षमीकृत्य ..... 3869
क्षान्तं न क्षमया ..... 4153
क्षिपेद्बाक्यशरान् ..... 1512
क्षिप्त्वा शिरसि ..... 3070
क्षीणः क्षीणः समीप० ..... 757
क्षीणांशुः शश० ..... 3714
क्षीरं घृतं च ..... 4384
क्षीरनिर्मिक्तं बीजं ..... 2133
क्षीरसागर० ..... 3515
क्षीराब्धेः कमलेव ..... 4618
क्षीरिकाकदली० ..... 2101
क्षुतं प्रेतक्रियान्ते ..... 2766
क्षुत्क्षामोपि ..... 907
क्षुद्रवासनया ..... 4201
क्षुद्राः सन्ति ..... 773
क्षुद्राः संत्रासमेते ..... 3995
क्षुद्राङ्गं सुदृढं .. ..... 4625
क्षेत्रपालस्य ..... 1897
क्षेत्रे ग्रामो ग्रामे ..... 2699
क्षेत्रे याताः काणुक ..... 2742
क्षेमं विभत्ते कर० ... ..... 2667
क्षोभं भत्ते यदपि ..... 3283
क्षोभपलायनभङ्ग० ..... 2581
क्षौमी लेखावती ..... 3201


## ख


खं तथा स्वर० ..... 1911
खचतुष्कं रदा ..... 4262
खदा नितान्त० ..... 4057
खड्गं चर्म गदां ..... 1906
खड्गं प्रशस्तं ..... 4688
खड्गः पद्मपलाश० ..... 4682
खड्गशूलगदा० ..... 1901
खड्गहस्तोरि० ..... 578
खड्गाक्षमीभ्तथा ..... 4621
खड्गास्तिष्ठन्तु मत्ते० ..... 3966
खड्गे न पश्येत्० ..... 4686
खड्गेषु लक्षणं य० ..... 4661
खण्डं यस्य पदं ..... 4572
खदिरस्याम्भसा ..... 3034
खद्योतो द्योतते ..... 738
खद्वयं निधि० ..... 1915
खनन्युत्तीर्य भूमिं ..... 2749
खननान्नाख० ..... 911
खरतुरगविण्निवेशित० ..... 2302
खर्जूरबिल्वलकुचा० ..... 2229

| | |
|---|---|
| खर्जूरालीद० | 2953 |
| खर्जूरी द्विशिरस्का | 2206 |
| खलः सत्क्रिय० | 376 |
| खलः सर्षप० | 345 |
| खलानां कण्ट० | 357 |
| खल्वाटो दिवसे० | 437 |
| खादति किंचन | 2619 |
| खिद्यसि मुञ्च | 78 |
| खगानां वयं समभुंग | 3646 |
| खयति गमयति | 148 |

## ग

| | |
|---|---|
| गङ्गेद्विदे कुरु० | 682 |
| गच्छ गच्छसि चेत्कान्त | 3393 |
| गच्छतां दक्षिणे | 2418 |
| गच्छन्ति कालि० | 551 |
| गच्छाम्यच्युत० | 118 |
| गच्छेदेकां न पन्थानं | 613 |
| गजभुजंग० | 443 |
| गजाश्वशय्यासन० | 2600 |
| गणयति गणने गणक० | 4040 |
| गणयन्ति नाप० | 192 |
| गण्डस्थलीगल० | 89 |
| गतं तद्वाम्भोर्यं | 810 |
| गतः स कालो | 489 |
| गतप्रायां रात्रिः | 3713 |
| गतश्रीर्गणकान् | 1318 |
| गतास्तानभ्रातृ० | 4108 |
| गतास्ते विस्तीर्ण० | 974 |
| गतिर्वामा प्रयाणे | 2649 |
| गते तस्मिन्भानौ | 746 |
| गतेनापि न संबन्धो | 4126 |
| गते प्रेमाबन्धे | 3515 |
| गतेपि वयसि ग्राह्या | 1425 |
| गत्वा गत्वा नि० | 692 |
| गत्वा द्वारवतीं | 4054 |
| गदा चक्रं तथा | 4654 |
| गन्तव्यं राजकुलं | 1379 |
| गन्तुं सत्वरमीहसे | 3860 |
| गन्तुर्विवस्वदुदये | 3383 |
| गन्धरसागिरि० | 3263 |
| गन्धवैनगरां कारः | 4123 |
| गन्धादिषु समा० | 4539 |
| गन्धार्या उत्तरं० | 1894 |
| गभीरनाभीह्रदस० | 3348 |
| गरीयः सौरभ्ये | 1024 |
| गर्जेन्हरिः | 591 |
| गर्जे वा वर्षे वा | 3883 |
| गर्जित्वा बधिरी० | 860 |
| गर्जित्वा मेघधीरं | 596 |
| गर्ने सरिद्रोधसि | 2511 |
| गर्भेभो जायते | 719 |
| गर्भगृहे शय्यादौ | 2548 |
| गर्भीशयो धरा० | 4288 |
| गर्भिणीगर्भनी | 3242 |
| गलत्येका मूर्छा | 3477 |
| गलग्रन्थि तल० | 1756 |
| गलितानीन्द्र० | 4117 |
| गले पाशस्तीव्र० | 931 |
| गवादीनां | 217 |
| गवा सह क्रीडति | 2608 |
| गां पङ्कादुज्जाह्मणी | 646 |
| गांडनरनिषद्ध० | 382 |
| गाढालिङ्गनपूर्वं० | 3663 |
| गाढालिङ्गनवामनीकृत० | 3683 |
| गाता कोकिल एव | 1015 |
| गात्रं कण्टकसंकटे | 1042 |
| गात्रं संकुचितं | 4161 |
| गात्रं ते मलिनं | 880 |
| गान्धारश्च निषाद० | 2050 |
| गायति हसति | 579 |
| गायन्ति देवाः | 688 |
| गायन्त किंनर० | 1247 |
| गार्ग्यतालेन ध्रुवः | 1983 |
| गीतनृत्यप्रिया | 3098 |
| गीतशास्त्र० | 202 |
| गीते वाद्ये च | 2076 |
| गीत्वा किमपि व्याजः | 522 |
| गुञ्जाफलानि विंशति० | 2879 |
| गुटिकात्रितयं | 2880 |
| गुडूचीपर्पामार्ग० | 2077 |
| गुणदोषाश्च खड्गानां | 4650 |
| गुणयुक्तोप्यधो | 344 |
| गुणवज्जन० | 291 |
| गुणवद्गुणवद्भा | 1391 |
| गुणवन्तः क्लिश्यन्ते | 303 |
| गुणहीने गुणा० | 1752 |

गुणाः कुर्वन्ति ..... 290
गुणाः सर्वत्र ..... 292
गुणा गुणज्ञेषु ..... 295
गुणानां लक्षणं ..... 1761
गुणिनं जन० ..... 296
गुणिनि गुण० ..... 293
गुणेषु क्रियतां ..... 298
गुणैः सर्वज्ञ० ..... 297
गुणैरुत्तुङ्गतां .. ..... 302
गुणैर्गौरव० ..... 299
गुणो दूषणतां ..... 304
गुरूनामुप० ..... 398
गुरूद्वयं भवे० ..... 2030
गुरूद्वन्द्वं लघु० ..... 2001
गुरूप्रसादनो ..... 4485
गुरूरेको भवे० ..... 2006
गुरूर्नार्यं भारः ..... 966
गुरूर्लघुद्वयं ..... 2003
गुरूपदेशतः ..... 4392
गुरूपदेशमा० ..... 4468
गृध्राकारोपि सेव्यः ..... 1377
गृहभित्तिवप्र० ..... 2588
गृहस्थ पूर्वादि० ..... 2105
गृहिणी सचिवः ..... 3998
गृहीतं ताम्बूलं ..... 3475
गृहीतं यौगनक्षत्रै० ..... 1886
गृहीतं रेवति० ..... 2992
गृहीतं हस्तनक्षत्रे ..... 1890
गृहीत्वा गोमयं गेहे ..... 2436
गृहेपि निवसन् ..... 632
गृहे प्रविश्य चेद्० ..... 2431
गृहोपरि गृह० ..... 2467
गेहादङ्गणम० ..... 3478
गेहान्तर्भवनिता ..... 2505
गोकीलास्थिकरीषैः ..... 2311
गोक्षुरकेक्षुरकं ..... 3214
गोक्षुरविदारिकाभव० ..... 3215
गोत्रस्थिति न ..... 241
गोपायन्ती विरहज० ..... 3421
गोपालदामोदर० ..... 4
गोपालो न च ..... 516
गोपुच्छवल्मीक० ..... 2482
गोपृष्ठदूर्वातरु० ... ..... 2472
गोमयगादो० ..... 3232
गौर इन्द्रोरुणो वह्नि० ..... 2338
गौरी चम्पक० ..... 816
गौरीनखर० ..... 535
ग्रन्थित्रयं भे२० ..... 4366
ग्रन्थिप्रचुरा ..... 2218
ग्रहणं शिथिलं ..... 1851
ग्रामं निशायां खर० ..... 2425
ग्रामरागौद्भवा ..... 2040
ग्रामाणामुपशल्य० ..... 913
ग्रामादौ गच्छतां वामः ..... 2733
ग्रामाद्बहिर्व्रजित्वा ..... 2675
ग्रामारामाम्र० ..... 2787
ग्रामे गोश्वखरोष्ट्राद्या ..... 4184
ग्रामे पुरे वा दिशि ..... 2513
ग्रामेस्मिन्पथिकाय ... ..... 3893
ग्रामोपशल्यनदिनी०..... 3959
ग्रामोद्वासनहेनो०..... 2553
ग्रावाणो मणयो ..... 1084
ग्रासादर्धमपि..... 643
ग्रासाद्गलित०..... 1208
ग्रीवास्तम्भभृतः ..... 207
ग्रीष्मादित्य०..... 588
ग्रीष्मोष्मसङ्गेष० ..... 3855


## घ


घटं भिन्द्यात्पटं ..... 1468
घटात्पटमुपायाति..... 4218
घटो जन्मस्थानं ..... 505
घण्टाकर्णे वटे शेते ..... 2856
घनघनमपि ..... 3573
घनप्रवाल० ..... 2164
घनसंतमस० ..... 899
घनस्निग्धाः सुवर्णाश्च ..... 1620
घासग्रासं गृहाण ..... 928
घूघूशब्दःसदा..... 2465
घृतकुणपवचा० ..... 2232
घृतमधुसह० ..... 3218
घृताक्तदुग्ध० ..... 2949
घृते तैले तथादर्शे ..... 4576
घृतोद्वर्तनतो यानि ..... 2877
घृष्टं यस्मिन्भवेत्..... 4646
घ्नन्तः शृङ्गैर्विषाणाभ्यां ..... 2751
घ्राता श्रोणी०..... 586

## च


| | |
|---|---|
| चक्रं सेव्यं नृपः सेव्यो | 1378 |
| चक्रः पप्रच्छ पान्थं | 1261 |
| चक्राह्वो विरही | 3595 |
| चक्षुःपूतं न्यसेत्० | 4551 |
| चक्षुः स्पन्दनमात्रस्य | 4445 |
| चक्षुर्दद्यान्मनो | 641 |
| चक्षुषी स्पन्दये० | 1840 |
| चङ्क्रपालो गुण० | 2053 |
| चञ्चच्चञ्चलचञ्चु० | 572 |
| चञ्चल्लोलाञ्चलानि | 3926 |
| चञ्चत्कर्पूरचौरा | 3812 |
| चञ्चद्भुजभ्रमित० | 4085 |
| चटचटिति चर्मणि | 126 |
| चण्डालश्च | 412 |
| चतुः पर्व च | 1750 |
| चतुः शतैश्च | 1821 |
| चतुः श्रुतिस्थिः० | 2051 |
| चतुःसागरपर्यन्तां | 4555 |
| चतुरः सृजता | 1493 |
| चतुर्णां प्लक्षवृक्षाणां | 2095 |
| चतुर्थं हृदये | 4355 |
| चतुर्थेह्नि स्नातां | 3758 |
| चतुर्दशैव श्रुतय० | 2044 |
| चतुर्धा रासकः | 2023 |
| चतुर्भिरब्दैः | 4263 |
| चतुर्युगसहस्रेण | 4264 |
| चतुर्विंशति चर्माणि | 1860 |
| चतुर्विंशतिभिः | 4295 |
| चतुर्विंशाङ्गलो | 1748 |
| चतुर्विधः स चा० | 3075 |
| चतुर्विधा तु सा | 3029 |
| चतुर्ष्वपि समुद्रेषु | 4024 |
| चतुष्पथे राज० | 2441 |
| चतुष्पादस्य तूद्वहे | 1972 |
| चत्वारिंशत्सडधिका | 1634 |
| चत्वारि प्राक्तनानि | 2326 |
| चत्वारोप्सिताः | 1654 |
| चन्दनं स्तनतटे० | 3739 |
| चन्दनागरुकुङ्कुमानि | 3256 |
| चन्दनागरुकुङ्कुमैश्च | 2843 |
| चन्दने विषधरान् | 1043 |
| चन्दनैलादलो० | 3008 |
| चन्द्रमुखी मृग० | 3092 |
| चन्द्रस्यान्योक्तयो | 23 |
| चन्द्रार्कौ प्रेक्ष्य | 2416 |
| चपलतरतरंगै० | 1092 |
| चरणादूर्ध्वगीभूय | 2534 |
| चराचरेषु पिण्ड० | 4306 |
| चर्वित्वा लक्ष्मणा | 2845 |
| चलकिसलयपादः | 1685 |
| चलं तु वेधसे० | 1809 |
| चलत्कर्णानिलोद्धूत० | 57 |
| चलत्कामिमनोमीन० | 3290 |
| चलत्तरलतृष्णेन | 4157 |
| चलत्येकेन पादेन | 1463 |
| चलन्ति येषां न | 1571 |
| चातकः स्वानुमानेन | 770 |
| चातक धूम० | 857 |
| चातकस्य खलु | 854 |
| चापच्युतेव गुलिका | 2712 |
| चामरं श्रीकरं दिव्यं | 1413 |
| चारुनूपुररणत्कृतं | 3689 |
| चारोष्टादशवर्णा० | 1987 |
| चिकित्सा कथ्यते तेषां | 2860 |
| चित्तमित्थं प्र० | 4521 |
| चित्रं न तद्यदय० | 1145 |
| चित्रोत्कीर्णादपि | 3494 |
| चित्रोत्तरविष्णव० | 2858 |
| चिदानन्दमये | 4345 |
| चिन्तनीया हि | 1440 |
| चिन्तां मुञ्च | 954 |
| चिन्तिताभ्यधिकं | 2535 |
| चिन्वंक्षीरचिकीर्षिता० | 3608 |
| चिबुकं हृदि वि० | 4409 |
| चिबुके यस्य लोमानि | 1476 |
| चिरविरहिणो रत्यु० | 3682 |
| चिलि शूलि स्वौ | 2683 |
| चिवीति स्वो मारुतः | 2684 |
| चिह्नं दर्दुर आदौ | 2212 |
| चिह्नध्वजच्छत्र० | 2664 |
| चिह्नमपि चार्धपुरुषे | 2177 |
| चीत्कारैः सर्वतोपि | 1570 |
| चुम्बनेषु परि० | 3676 |
| चुम्बन्तो गण्डभित्ती० | 3945 |
| चुलुकैर्जलपानेन | 2876 |

चुल्लीसीमनि गोरसा..... 3941
चूतश्रेणी परिमल०..... 3813
चूर्ण कुष्ठमुरा०..... 3253
चूर्ण तक्रभवं..... 2920
चूर्णीकृत्य पलानि..... 3041
चूर्णीकृत्य खलि०..... 2254
चूर्णीकृतेषुच्छाया..... 2839
चूर्णं दत्ते वशकृत्..... 3200
चूर्णितेष्टकणो०..... 3211
चेतः कर्षन्ति सप्त०..... 3910
चेतयन्निखिलं..... 4323
चेतश्चञ्चलया..... 4216
चेतोहरा युवतयः..... 4130
चेलाञ्चलेन चल०..... 3912
चौरस्यान्यस्य वा पुंसः..... 2744
चौर्यावस्कन्दाहत०..... 2782
च्युता दन्ताः..... 423
च्युतामिन्दोर्लेखां..... 96

छ

छागशुभाशुभ०..... 2818
छागदुग्धेन संपिष्य..... 2874
छागी हरिणं..... 3126
छायां प्रकुर्वन्ति..... 1123
छाया फलानि..... 1021
छायावन्तो गत०..... 978
छायाशुष्का रक्ति०..... 2911
छायासुप्तमृगः..... 972
छायासु लाभं भुवि..... 2489
छित्त्वा पाशं०..... 940
छिद्रान्वेषणतत्परः..... 3619
छिन्धि पक्षानमीषां..... 1600
छिन्नवस्त्रं तु..... 3151
छिन्नेपि शस्त्र०..... 3989
छिन्त्से ब्रह्मशिरो०..... 1161
छुच्छुन्दरीथी०..... 1891
छेदं क्लेदं तथा..... 4496

ज

जङ्घे तदीये संतापं..... 3358
जडास्तपोभिः शम०..... 4175
जनयित्वा फल०..... 2270
जनानां रञ्जने..... 1837
जनो दुर्वैदग्ध्यायं..... 3618
जन्तोः प्रवर्तते..... 4240
जन्मस्थानं न खलु..... 1202
जन्मस्थे च तृतीये..... 1724
जन्मेन्दोरमले..... 3981
जन्मैव व्यर्थतां..... 4149
जम्बूचम्पक०..... 2127
जम्बूत्रिवृता..... 2219
जम्बूपनसचूतानां..... 2135
जम्बूभिः स्थलभाषाः..... 2315
जम्बूवृक्षस्य प्रा०..... 2178
जम्भारातीभकुम्भो०..... 137
जम्भारिरेव जानाति..... 1169
जयति शार्ङ्गधर०..... 7
जयत्यविरता०..... 4233
जयन्तः शेखरो..... 1978
जयन्तश्च तथो०..... 2032
जयन्ति ते..... 166
जयप्रियः कलापश्च..... 1997
जयाय यक्षः कृत०..... 2393
जये धरित्र्याः..... 3085
जरायुजं मृतं..... 3245
जर्जरतृणा०..... 896
जलधर जलभर०..... 769
जलनिबिडितवस्त्र०..... 3850
जलं पिबन्नाञ्जलिना..... 622
जलरहिते यदि..... 2198
जलवसुधातत्त्व०..... 2808
जल्पन्ति सार्धमन्येन..... 1497
जवो हि सप्तेः..... 1556
जाङ्गलानूप०..... 2115
जातः कूर्मः स..... 4154
जातिर्यातु..... 332
जातिस्तस्य न..... 893
जातीफलं च कस्तूरी..... 3250
जाते प्रवेशे भवति..... 2598
जाते वाश्वयुजे..... 1879
जाते विधूमे..... 4557
जानन्ति पशवो..... 1448
जानन्नपि नरो..... 1321
जाने कोपपरा०..... 3454
जाग्रतः कमलालक्ष्मीं..... 3361
जाग्रत्स्वप्नावुभावेतौ..... 4404
जिघ्रेद्वा नासया..... 2924
जितरोष०..... 216

| | |
|---|---|
| जिनां जितां शनै० | 4469 |
| जितेन्दुपद्मलावण्यं | 3326 |
| जिते लक्ष्मीमृते | 1941 |
| जिह्वाग्रच्छेदने | 4031 |
| जीयासुः शकुलाकृते० | 81 |
| जीर्णोपि क्रम० | 910 |
| जीवं हृदाश्रयं | 4605 |
| जीवः शिवः शिवो | 4504 |
| जीवति जीवति नाथे | 3755 |
| जीवत्वाच्चित्न० | 4238 |
| जीवन्नेव मृतो० | 3967 |
| जीवन्तोपि मृताः पञ्च | 1375 |
| जीवन्मुक्तः सदेहोहं | 4598 |
| जीवाभावो विनि० | 4405 |
| जीवामीति वियोगिनी | 3442 |
| जृम्भणवमन० | 2361 |
| जृम्भां कृत्वा नभः | 2434 |
| जृम्भां प्रकुर्वन् | 2375 |
| जैमिनिश्च सुमन्तु० | 3023 |
| ज्ञातं ज्ञातिजनैः | 3616 |
| ज्ञात्वा कालं च | 4601 |
| ज्ञात्वा तु गर्भं | 2997 |
| ज्ञात्वानङ्गस्थितिं | 3194 |
| ज्ञेयं लक्षं पदातीनां | 1913 |
| ज्येष्ठं पितृस० | 725 |
| ज्येष्ठः शार्ङ्गधर० | 6 |
| ज्येष्ठो भ्राता पितृ० | 1488 |
| ज्योतिःस्थानानि च | 4303 |
| ज्वरदोषे समुत्पन्ने | 2853 |


## त


| | |
|---|---|
| तं सारमेयं पुरुषो | 2335 |
| तक्रयोगाद्यथा | 4501 |
| तक्रवत्सातृण० | 2583 |
| तटस्थमुद्धृतं | 733 |
| तटाकान्योक्तय० | 29 |
| तण्डुलीयं गडूचीं | 2872 |
| तण्डुलीयकमूलानि | 2842 |
| तत आत्मभुवः | 4282 |
| तत आनीय शुनके | 2344 |
| तत आयुःक्षये | 4330 |
| ततः किंचित्कृतं | 1875 |
| ततः कुमुदनाथेन | 3624 |
| ततः कोकवधू० | 3733 |
| ततः परमाकाशं | 4597 |
| ततः प्रभाते नव० | 2337 |
| ततः प्रसादितैस्तैस्तु | 1601 |
| ततश्चतुर्मुखस्य | 4280 |
| ततश्चतुर्विधे | 53 |
| ततस्तान्पिठरी० | 3052 |
| ततस्तु साधये० | 1881 |
| तत्तस्त्रिभुवने योगी | 4612 |
| ततो गर्भास्थितः | 4326 |
| ततो जपेच्च प्रणवं | 4476 |
| ततो दावानलान्योक्तिः | 30 |
| ततो द्विखण्ड० | 1968 |
| ततोधिकतराभ्यासाद्व्रतः | 4386 |
| ततोधिकतराभ्यासाद्भूमि० | 4388 |
| ततो न जायते | 4495 |
| ततो नरो निजं | 2346 |
| ततोनिच्छस्य | 4273 |
| ततोपि ह्यङ्कुलं | 1633 |
| ततोप्यनुक्रमो ज्ञेयो | 14 |
| ततो बाणेन | 1876 |
| ततो ब्रह्मा द्विधा | 4279 |
| ततो यमाज्ञया | 4334 |
| ततोर्जुनस्य नामानि | 1908 |
| ततो लक्ष्यमना० | 4608 |
| ततो विवेककथन० | 52 |
| ततो वीररसोक्तिः | 49 |
| ततो व्यनीते | 4610 |
| ततोस्य छर्दिरेकौ | 2863 |
| तत्कर्म यन्न बन्धाय० | 4346 |
| तत्कालनिहतस्यो० | 2285 |
| तत्कालहतगो० | 1764 |
| तत्कृतं यन्न केनापि | 1249 |
| तत्तद्वदन्यपि | 3536 |
| तत्तेजस्तरणेर्नि० | 1036 |
| तत्र गोरक्षस० | 4373 |
| तत्र पद्मासनं | 4377 |
| तत्रात्मानं शरं | 4595 |
| तत्रापि चिन्तनीयं | 2810 |
| तत्त्वबलान्नाडी० | 2816 |
| तथा न पूर्वं कृत० | 3842 |
| तथा सामान्यवृक्षोक्ति० | 27 |
| तथास्य तुल्यसंस्थानौ | 1578 |
| तथैवाप्सु रसं | 4533 |

| | |
|---|---|
| तयैव शकुन० | 33 |
| तदन्वयेद्भवाः | 2886 |
| तदपकृतं | 250 |
| तदर्धं मध्यमं | 4680 |
| तदा तदङ्गस्य बिभर्ति | 3379 |
| तदात्वस्नानानां | 3834 |
| तदूर्ध्वमधिरूढा | 3136 |
| तदेतन्नारदादिभ्यो | 1947 |
| तदेव वह्निकुण्डं | 4352 |
| तदेवाजिह्माक्षं | 3538 |
| तद्वक्त्रं यदि मुद्रिता | 3373 |
| तद्वक्त्राभिमुखं मुखं | 3535 |
| तद्वात्रिंशत्सहस्रैस्तु | 4261 |
| तनुत्वकर्णपादो | 1587 |
| तनुभूस्थम्बालधयो | 2834 |
| तन्नास्ति कारयति | 3694 |
| तन्निंदस्य निन्दति | 3352 |
| तन्मूलं गुरु० | 320 |
| तन्मूलशूलं | 2273 |
| तन्वङ्ग्याः स्तनयुग्मेन | 3340 |
| तन्वङ्ग्या गुरुसं० | 3408 |
| तन्वी पत्त्रावली | 4635 |
| तन्वीमुड्डिझनभूषणां | 1272 |
| तपःपरामर्श० | 4069 |
| तप्ता मही विरहिणा० | 3824 |
| तप्ते महाविरह० | 3455 |
| तमःस्तोमः पूर्वं | 3521 |
| तमसि वराक० | 4047 |
| तमसोन्ते परं | 4305 |
| तया सार्धं तनौ | 4607 |
| तरंगय दृशोङ्गने | 3659 |
| तरवः किं न जीवन्ति | 1479 |
| तरूणतरणितेजः० | 3839 |
| तरूणीवर्णनं | 37 |
| तरूण्यालिङ्गितः | 520 |
| तरूमूलादिषु | 221 |
| तरूविटपलता० | 2166 |
| तरौ तीरोद्भवे | 803 |
| तर्जनी मध्यमा | 1799 |
| तं वंदे पद्म० | 85 |
| तवाङ्गणे सुन्दर | 1265 |
| तवैतद्वाचि | 842 |
| तवैष विद्रुमच्छायो | 3310 |
| तस्मात्तु साधनं | 4443 |
| तस्मात्परशुरामेण | 1746 |
| तस्मात्प्रजागरः | 4227 |
| तस्मादसिद्ध० | 4565 |
| तस्माद्युक्तः सदा | 4450 |
| तस्माद्राज्ञां हि | 2114 |
| तस्माद्विदित्वा | 4537 |
| तस्माद्वेगयुतं | 1680 |
| तस्मान्महीपतीना० | 4050 |
| तस्मात्सभ्यः | 1346 |
| तस्मिन्युद्धे क्षणेनैव | 4019 |
| तस्य भागे तयैव | 4592 |
| तस्याः शलाकाञ्जन० | 3296 |
| तस्याद्वितियं | 3180 |
| तस्याभवत्सभ्य० | 3 |
| तस्या महाविरह० | 3479 |
| तस्याः पद्मपलाशाक्ष्या० | 3355 |
| तस्याः पादनख० | 3362 |
| तस्या मुखस्यातिं० | 3320 |
| तस्यैव पश्चिमायां | 2187 |
| तस्यैवाभ्युदयो | 739 |
| तस्योर्ध्वं योगि० | 4304 |
| ताडङ्कमस्यास्तरले० | 3308 |
| ताडितोपि | 1327 |
| तातः क्षीरनिधिः | 1117 |
| तान्सर्वानेकतः | 2253 |
| ताप एव यथा | 4243 |
| तापापहे सहृदये | 1168 |
| तापो नापगतः | 923 |
| तां भक्षयित्वा | 3217 |
| ताम्बूलं मुखरोग० | 1416 |
| तारतारतरै० | 544 |
| तारश्चाप्यमर० | 2004 |
| तारा यान्ती सोमनाड्यां | 2725 |
| तारास्ताः सर्प० | 2898 |
| तारेकां सैन्धवं | 3051 |
| तालीतरोरनुपकारि | 1025 |
| तालीदलं काञ्चन० | 3307 |
| ताले पादस्थिता | 2071 |
| ताले पादस्थिते | 2072 |
| तावत्कवि० | 187 |
| तावत्सप्तसमुद्र० | 1097 |
| तावद्गर्जन्ति वीर्यात्० | 1574 |
| तावद्भयस्य | 1306 |
| तावद्भ्रमन्ति सं० | 4344 |

| | |
|---|---|
| तिरोहितान्तानि नितान्त० | 3843 |
| तिर्यक्चिबुकमधो० | 4667 |
| तिर्यग्यस्य भवेत् | 4666 |
| तिलकास्रातक० | 2199 |
| तिलखलिवेडङ्ग० | 2282 |
| तिलयष्टिमधुक० | 2239 |
| तिलान्वितमहा० | 3061 |
| तिष्ठतां प्रचलतां | 2618 |
| तिस्रः कोट्यर्ध० | 608 |
| तीक्ष्णं रविस्तपति | 3907 |
| तीरान्तीरमुपैति | 3597 |
| तीव्रे तपसि लीना | 1516 |
| तीव्रो निदाघ० | 975 |
| तुण्डेन पुच्छं वि० | 2671 |
| तुम्बीबीजयव० | 3238 |
| तुलनं धनु० | 1830 |
| तुलामारुह्य रविणा | 1219 |
| तुल्यं भूभृति | 1204 |
| तुल्यवर्णच्छदः | 883 |
| तुल्यार्थं तुल्यसामर्थ्यं | 1367 |
| तुल्येपराधे | 287 |
| तूलिकोच्छीर्षके | 2432 |
| तृणादपि लघु० | 400 |
| तृणानि भूमिरुदकं | 642 |
| तृतीयं नाभिचक्रं | 4354 |
| तृतीया पञ्चमी | 1725 |
| तृतीया पूषैकण्ठी | 1693 |
| तृषं धरायाः शमय० | 1088 |
| तृषार्तैः सारङ्गैः | 1205 |
| तृषाश्रुष्यत्यास्ये | 4148 |
| तृष्णे त्वमपि | 424 |
| तृष्णे देवि नमस्तुभ्यं धैर्य० | 420 |
| तृष्णे देवि नमस्तुभ्यं या | 426 |
| ते कौपीनधनाः | 1224 |
| ते क्षत्रियाः कुण्डलिनो | 3979 |
| तेजस्विनि क्षमासारे | 288 |
| तेजस्विनि क्षमोपेते | 1399 |
| तेजः परं द्युतिमतां | 4486 |
| तेजांसि यस्य | 284 |
| तेजोवाय्वम्बुदगणै० | 1599 |
| तेजोहीने मही० | 289 |
| ते धन्यास्ते | 165 |
| तेन सृष्टं स्व० | 4278 |
| तेनेश बहवो० | 2092 |
| तेनैकस्मिन्नेव | 2726 |
| तेभ्यश्च प्रच्युतं | 687 |
| ते वनस्पतयः | 2125 |
| तेषां मध्ये यस्तु | 5 |
| ते सज्जनाः सुकवि० | 9 |
| ते सर्वे ज्ञाननिरताः | 4281 |
| तेजसादेव | 4285 |
| तैर्यक्त्रितयचातुर्यं | 1954 |
| त्यक्तसङ्गो जित० | 4471 |
| त्यजत मानमलं | 3795 |
| त्यजति भयमकृत० | 1545 |
| त्यज दुर्जन० | 734 |
| त्यज निजगुणाभि० | 1104 |
| त्यजेत्स्वाभिनमत्युग्रं | 1370 |
| त्यजेदेकं कुलस्य | 1462 |
| त्यागभोगवि० | 385 |
| त्रयेणाप्ययस्त्व० | 174 |
| त्रयो यस्य ललाटस्था | 1651 |
| त्रयोविंशतिवर्णा० | 1992 |
| त्रासिता पक्षिणान्येन | 2732 |
| त्रिनयनचूडा० | 541 |
| त्रिनयनजटावल्ली० | 3630 |
| त्रिपर्वं पञ्चपर्वं | 1749 |
| त्रिफला नाग० | 3068 |
| त्रिफलां भावयित्वे० | 3035 |
| त्रिफलायास्तु | 3055 |
| त्रिभिर्वर्षैः | 700 |
| त्रिविधमिह भवति | 2322 |
| त्रिविधाः पुरुषा राजन् | 1366 |
| त्रिवृच्चिन्ना० | 2918 |
| त्रिशतैर्मेध्यम० | 1822 |
| त्रुट्यते वा गुणो | 1827 |
| त्रैलोक्यत्राणशौण्डः | 4084 |
| त्वक्पत्त्राभ्यां जाती० | 3252 |
| त्वद्गुणैर्ग्रथितः श्रुद्धैः | 1230 |
| त्वं तावद्बहुवल्लभो | 3571 |
| त्वद्रूपामृतपान० | 3501 |
| त्वद्वक्त्रं नेत्रपद्म० | 3363 |
| त्वद्वैरिणो वीर | 1278 |
| त्वमेव चातका० | 782 |
| त्वयि वर्षति | 781 |
| त्वं राजा वय० | 204 |
| त्वरितं याति त्वरितं | 2693 |
| त्वरितः शिष्यको | 1958 |

त्वां चिन्तेन सदा ... ..... 3550
त्वां चिन्तापरि० ..... 3487
त्वामालिख्य प्रणय० ..... 3503
त्र्यङ्गुलायां दशा० ..... 1707
त्र्यहं गृहद्वारि ..... 2463

द

दंशकाहिं दशे० ..... 2902
दंशाच्च याति ..... 2892
दंशे स्थित्वा द्वि० ..... 2891
दंष्ट्रासंकटवक्त्र० ..... 4066
दक्षिणं चेष्टितं ..... 2360
दक्षिणगः प्रथमं ..... 2634
दक्षिणतः प्रथमं ..... 2643
दक्षिणदेशे शब्दं ..... 2658
दक्षिणनाडी पूर्णा ..... 2724
दक्षिणकटेन ..... 2358
दक्षिणमङ्गं पुंसः ..... 2542
दक्षिणाशाप्रवृत्त० ..... 397
दक्षिणाङ्गं यदा ..... 2414
दक्षिणे कलहः ..... 1739
दक्षिणेनाङ्घ्रिणा कर्णं ..... 2407
दक्षिणे निजपक्षघ्नो ..... 2626
दक्षिणोरुतले ..... 4436
दग्धा सा बकुला ..... 832
दग्धेन दह्यते ..... 1754
दग्धो विधिर्विभत्ते ..... 3265
दत्तात्रेयादिभिः ..... 4364
दत्त्वा दिशि दिशि ..... 4037
ददतो युध्यमानस्य ..... 474
दधिदूर्वाक्षत० ..... 2563
दधि मधु नव० ..... 2931
दधिमस्तु काञ्जिक० ..... 2234
दन्ताः सप्त चलं ..... 964
दन्ताग्रनिर्भिन्न० ..... 87
दन्तोद्वेदं प्रवक्ष्यामि ..... 1698
दंपत्योर्निशि ..... 3743
दम्भारम्भोद्भुरं ..... 1510
दयिताबाहुपाशस्य ..... 3330
दयितस्य कथा० ..... 3179
दरिद्रनिन्दा विज्ञेया० ..... 19
दरिद्रस्य परा० ..... 309
दर्दुरक्रममास्थाय ..... 1844
दर्पणार्पितमालोक्य ..... 117
दर्पणेषु परिभोग० ..... 3744
दर्पान्धगन्धगज० ..... 1237
दर्वीकरस्य दंशः ..... 2889
दर्वीकरास्तु ..... 2888
दशैनचेष्टास्वर० ..... 2688
दर्शितानि कलत्राणि ..... 1471
दलं मलयजं मांसी ..... 3255
दशकूपसमा वापी ..... 2086
दशभिर्मणि० ..... 4300
दशमद्वारमार्गेण ..... 4596
दशविंशति० ..... 2146
दशसप्तचतुर्दैत्यः ..... 2828
दशाङ्गुलमिताः ..... 1773
दशाङ्गोयं महाधूपो ..... 3258
दशाष्टपञ्च० ..... 2884
दष्टकर अष्टकर० ..... 2943
दह्यमानाः सुनी० ..... 375
दह्यमानेपि हृदये ..... 3402
दाडिमं तु द्विजे ..... 3146
दातव्यं भोक्तव्यं ..... 469
दाता नीचोपि ..... 281
दाता बलिः प्रार्थयिता ..... 448
दाता सत्यवचाः ..... 3110
दात्यूहाः सरसं ..... 850
दानं सन्त्वाश्रितं दद्याच्च ..... 1508
दानं भोगो ..... 390
दानाय लक्ष्मीः ..... 463
दानार्थिनो ..... 929
दाने तपसि शौर्ये ..... 1477
दामोदरकराघात० ..... 498
दामोदरमुदर० ..... 1162
दाराः परिभव० ..... 4140
दारिद्र्यानल० ..... 406
दासे कृतागसि ..... 3657
दासेरकस्य ..... 1027
दासेरको रसत्येष ..... 959
दिक्कालस्वरचेष्टा ..... 2678
दिक्चेष्टितस्थान० ..... 2364
दिक्ष्वारटन्ती ..... 2454
दिक्स्थानचेष्टा० प्रदीप्तो ..... 2395
दिक्स्थानचेष्टा० प्रशान्तैः प्रश्नेषु ... 2401
दिक्स्थानचेष्टा० प्रशान्तैर्यैर्योचरं. 2388
दिनकराभिमुखो ..... 2416
दिनमवसितं ..... 1146

| | |
|---|---|
| दिनानि त्रीणि वा..... | 2453 |
| दिनैः पञ्चदशैः..... | 4259 |
| दिवा निरीक्ष्य कर्तव्यं ..... | 1443 |
| दिवि देवा भुवि ..... | 4343 |
| दिव्यचक्षुरहं जातः ..... | 3450 |
| दिव्यौषधीनां लेपं..... | 1902 |
| दिशां हाराकाराः ..... | 3870 |
| दिशि ज्वलन्त्यां ..... | 2446 |
| दिशि दिशि मृगयन्ते ..... | 3720 |
| दिश्याद्वः शकुलाकृतिः..... | 123 |
| दीनक्षपणोन्मत्त०..... | 2574 |
| दीनेषु दाता०..... | 3116 |
| दीनोन्नतचल०..... | 853 |
| दीपादिगन्धं नो ..... | 4586 |
| दीपोत्सवे दैव०..... | 2540 |
| दीपो पशमनं पुंसां ..... | 651 |
| दीप्तदिगाश्रय०..... | 2363 |
| दीप्ते कार्ये नाडी ..... | 2801 |
| दीप्ते तु ध्वनिता ..... | 2502 |
| दीप्तोद्विग्नो विटपे ..... | 2486 |
| दीप्तक्षुद्वेगयोगा०..... | 4065 |
| दीर्घैः सुमधुरः ..... | 4681 |
| दीर्घैर्जिह्वाविषाणश्च ..... | 1588 |
| दीर्घपादः पथि ..... | 2624 |
| दीर्घा तु तर्जनी ..... | 1798 |
| दीर्घास्यदन्त०..... | 3103 |
| दुःखेन श्लिष्यते ..... | 1474 |
| दुःसहतापभयादिव ..... | 3835 |
| दुग्धसेके च ..... | 2251 |
| दुग्धस्थाल्युपरि ..... | 2539 |
| दुर्गं बहुविधं ज्ञेयं ..... | 1362 |
| दुर्गाणि राज्ञा कार्याणि ..... | 1361 |
| दुर्गा नदी शिथिल०..... | 1186 |
| दुर्जनः परि०..... | 354 |
| दुर्जनहुताश०..... | 153 |
| दुर्जनदूषित०..... | 476 |
| दुर्दिवसे घनतिमिरे ..... | 3767 |
| दुर्दैवप्रभवप्र०..... | 1157 |
| दुर्निवारतरा चैव..... | 1931 |
| दुर्मन्त्राद्भूपति०..... | 1533 |
| दुर्योधनः समर्थोपि ..... | 1357 |
| दुर्वाराः स्मरमार्गणाः ..... | 3753 |
| दुश्चरितैरेव ..... | 1175 |
| दुश्चिनीतशत्रूणां ..... | 1411 |
| दुष्टैरपि निजैरेव ..... | 1439 |
| दुष्प्रापमम्बु ..... | 957 |
| दूतिकाप्रेषणं ..... | 39 |
| दूति त्वं तरुणी युवा ..... | 3439 |
| दूर्वा घृतं यवा०..... | 1711 |
| दूर्वाङ्कुरनृणा०..... | 937 |
| दूर्वा सतिक्ता ..... | 2975 |
| दूरं सुन्दरि निर्गतासि ..... | 3390 |
| दूरस्थोपि बली शत्रु०..... | 1609 |
| दूरादुड्डयते चम्पकं ..... | 833 |
| दूरादेव कृतेञ्जलि०..... | 3859 |
| दृक्पातः कमलासने०..... | 75 |
| दृग्भङ्गभङ्गिमशतै०..... | 3777 |
| दृढकायो०..... | 3032 |
| दृढतरगलक०..... | 1197 |
| दृढमण्डूकिका कृष्णा..... | 1627 |
| दृढासनोश्वतत्त्वज्ञः ..... | 1684 |
| दृप्यद्धैन्यकुटुम्बिनी०..... | 125 |
| दृशा किंचिदिंकाचि०..... | 3764 |
| दृशा दग्धं मनसिजं ..... | 3078 |
| दृशा सपदि मीलितं ..... | 3684 |
| दृश्यं दृशा सहस्रै०..... | 3273 |
| दृश्यते पानगोष्ठीषु ..... | 3647 |
| दृष्टः कातरनेत्रया ..... | 3386 |
| दृष्टः शवः प्रवासे..... | 2573 |
| दृष्टः श्रुतो वा भू०..... | 2570 |
| दृष्टमात्रेषु भावेषु ..... | 4217 |
| दृष्टमौलौ सुधां०..... | 2929 |
| दृष्टा दृष्टिमधो ददाति ..... | 3672 |
| दृष्टिं हे प्रतिवेशिनि ..... | 3769 |
| दृष्टे चन्द्रमसि ..... | 3480 |
| दृष्टे लोचनवन्मना०..... | 3581 |
| दृष्ट्वाप्रेतपिशाच०..... | 4570 |
| दृष्ट्वा शास्त्रसमूहान् ..... | 2319 |
| दृष्टैकासनसंस्थिते ..... | 3575 |
| दृष्ट्वैव विकृतं ..... | 4145 |
| देवगन्धर्वयक्षाणां ..... | 3109 |
| देवतातिथिविप्राणां पूजनं ..... | 1417 |
| देवतातिथिविप्राणामदत्त्वा ..... | 724 |
| देव त्वं जय यस्य..... | 1223 |
| देव त्वद्यशसि..... | 1226 |
| देवत्वममरेश०..... | 4520 |
| देवे त्वद्विजयप्रयाण०..... | 1245 |
| देवदानवगन्धर्वाः..... | 2107 |

देवदारुदलो० ..... 2078
देवब्रह्मस्व० ..... 1313
देवमार्गं ध्रुवं ..... 4567
देवा दिक्पतयः ..... 108
देवाधिकारिणो ..... 604
देवानामसुराणां ..... 4541
देवान्पितॄन्मनुष्यांश्च ..... 638
देवालयं चत्वरं ..... 621
देवीं चतुर्थयामे ..... 3132
देवीमप्सरसो ..... 3091
देवो हरिर्व० ..... 740
देशाद्देशं गते ..... 4250
देशीरागेषु ..... 1955
देशैरन्तरिता शतैश्च ..... 3445
देशोदयाय प्रनिम० ..... 2554
देहार्पणे रक्त० ..... 3150
देहि देहीति ..... 269
देहीति वक्तु० ..... 392
दैन्यानामधिपे ..... 84
दैन्यं क्वचित्कचन ..... 4107
दैवं पुरुषकारेण ..... 459
दैवाद्यद्यपि तुल्यो ..... 749
दोर्भ्यां संयमितः ..... 3686
दोलायां जघन० ..... 3278
दोषैर्यस्य विना ..... 2264
दौर्जन्यमात्मनि ..... 1031
द्यामारोहति वाञ्छति ..... 1094
द्रव्यात्सर्व० ..... 822
द्रविणस्पृहया ..... 4179
द्राक्षावल्लीसमाकारः ..... 2306
द्राघीयसा ..... 193
द्रुततरमितो० ..... 941
द्रुतद्वन्द्वं गुरु० ..... 2012
द्रुतद्वयं० ताले ..... 2019
द्रुतद्वयं० लघुने० ..... 2018
द्रुतमेकं भवे० तालोयं ..... 2029
द्रुतमेकं भवे० स तालः ..... 2008
द्रुतस्तु न भवेन्मूल० ..... 2075
द्वयमिदमत्यन्त० ..... 3909
द्वात्रिंशद्दशन० ..... 1199
द्वादशाक्षरपादो० ..... 1981
द्वादशैव सहस्राणि ..... 1918
द्वारं गृहस्य ..... 3940
द्वारप्रदेशे जघनं ..... 2409
द्वारादिदेशेषु ..... 2510
द्वार्विंशदङ्गुले ..... 1632
द्वाविमावम्भसि० ..... 1551
द्वाविमौ पुरुषौ लोके न भूतौ ... 1550
द्वाविमौ पुरुषौ लोके पर० ..... 1546
द्वाविमौ पुरुषौ लोके शिरः० ... 1549
द्वाविमौ पुरुषौ लोके सुखिनौ... 1547
द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्य०..... 1933
द्वाविमौ पुरुषौ लोके स्वर्ग० ... 1548
द्वासप्ततिसह०..... 4307
द्विः शरं नाभि०..... 280
द्विगुणोत्तरया ..... 4449
द्विघ्नद्वादशवर्णा०..... 1993
द्विजा अपि न..... 1385
द्विनीयो हठयोगश्च..... 54
द्विश्चिचतुःशावर्त्व ..... 2500
द्विधा विधाय शीतांशुं ..... 3315
द्विधा हठः स्यात्..... 4372
द्विपदशनः पुट० ..... 3001
द्विषष्टि च सहस्राणि ..... 1921
द्वीपादन्यस्मादपि..... 441
द्वौ हस्तौ मुष्टि०..... 1770
द्व्यङ्गुलोन्मानमाकाशं ..... 2805


## ध


धत्तूरमूलिका..... 2993
धत्ते पङ्कजिनीतले ..... 3837
धनप्रशंसा विज्ञेया ..... 18
धनं मित्रं प्रियं ..... 2451
धनमस्तीति वाणिज्यं ..... 1446
धनवृद्धिरन्न० ..... 2543
धनुः संगति०..... 1928
धनुःप्रमाणो निःसंधिः ..... 1762
धनुश्चक्रं च कुन्तं..... 1721
धर्मेषु जीविन० ..... 425
धन्याः सूक्ष्मफला ..... 1047
धन्यानां गिरिकन्दरे ..... 4155
धन्यासि या कथयसि ..... 3746
धन्यास्ताः सखि ..... 3748
धन्वी तु चलते ..... 1810
धम्मिल्लं बद्ध० ..... 3174
धम्मिल्लो भङ्गमेतु ..... 3685
धरित्री धारयेत् ..... 4532
धरोद्भवं तु शकुनं ..... 2784

| | |
|---|---|
| धर्मः प्रागेव चिन्त्यः | 1405 |
| धर्मशास्त्रार्थ० | 1343 |
| धर्मस्य विवृति० | 22 |
| धर्माज्जन्म कुले | 680 |
| धर्मे मतिर्भवतु वः | 678 |
| धवलान्यातपत्राणि | 1383 |
| धाटीभयं स ऐशाने | 2515 |
| धातुवादेषु वित्ताशा | 1539 |
| धातोर्धात्वन्तर० | 2893 |
| धात्रीफलरसै० | 3012 |
| धान्यं पयो वा | 2473 |
| धान्यस्य राशौ | 2527 |
| धान्याकनागर० | 4033 |
| धाम्नः कुमारिका | 2840 |
| धारा पीतं धुनानाः | 3881 |
| धारा शुभ्रा भवेत् | 4636 |
| धार्मिकं पालन० | 1282 |
| धावन्तः प्रतिवासरं | 4109 |
| धावित्वा सुसमाहितेन | 4159 |
| धिक्चेष्टितानि | 996 |
| धिक्तस्य मन्दमनसः | 3323 |
| धिक्त्वां रे कलि० | 194 |
| धिग्वारिदं | 865 |
| धीरोनुरक्तो हस्तिन्यां | 1586 |
| धूपः सर्जरसो० | 3016 |
| धूपो घृतस्य | 2247 |
| धूलीधूसर० | 575 |
| धृतधनुषि शौर्यं० | 3965 |
| ध्यानव्याजमुपेत्य | 131 |
| ध्यानेन जल० | 2930 |
| ध्रुवं जयोस्तीति | 2387 |
| ध्रुवमृदुमूल० | 2139 |
| ध्रुवाक्तौ दश प्रोक्ता | 1649 |
| ध्वस्तः काव्यैरुमेरुः | 3999 |
| ध्वस्तिः प्राप्तिस्तथा | 4451 |

## न

| | |
|---|---|
| न कश्चिच्चण्डकोपानां | 1376 |
| न कश्चिदपि जानाति | 647 |
| न कालःखड्ग० | 1320 |
| न कालस्य न शक्रस्य | 3988 |
| न किंचित्केनचित् | 4241 |
| न कुर्यात्परदारेच्छां | 1506 |
| न कुर्यादभिचारो० | 1526 |
| न कुर्युर्यांग्य० | 2113 |
| न कुलानामपि | 2754 |
| न केवलं मनुष्येषु | 444 |
| न कोकिलाना० | 892 |
| न क्रोधयातुधानस्य | 1518 |
| नखगुरुसिंहक० | 3260 |
| नखदन्तविकारी० | 2974 |
| न खनति खुरैः | 970 |
| न गजानां सहस्रेण | 1363 |
| न गजैर्न नरैः | 1610 |
| न गणस्याग्रतो | 1464 |
| न गृह्णाति | 926 |
| नग्नं क्षपणकं | 4582 |
| न च गन्धवहेन | 1010 |
| न च स्वर्गे न | 1758 |
| न चात्र परिहारो० | 3044 |
| न जाङ्गला न | 2120 |
| न जाने संमुखा० | 3522 |
| नटनारायणः | 2055 |
| न तादृक्पूरे | 1016 |
| न तच्छस्त्रैर्न | 1356 |
| न तज्जलं यन्न | 3904 |
| न तदस्ति जगत्० | 4199 |
| न तद्भूतं न | 475 |
| न तु हन्यान्मही० | 1349 |
| नतौषधं निशा० | 2909 |
| नदीज लङ्घेशं० | 531 |
| नदीतटे वाथ रटन् | 2670 |
| न दैवमिति संचिन्त्य | 454 |
| नद्या यद्यत्परिभ्रष्टं | 615 |
| नद्यो नीचरता | 814 |
| न द्विषन्ति न | 1423 |
| न ध्यातं पदं | 4152 |
| न ध्वानं कुरुषे | 967 |
| ननु संदिशेति | 3140 |
| नन्दद्वयेन्दुवर्णा० | 1988 |
| नन्दनरेन्द्र० | 381 |
| नन्दन्ति मन्दाः श्रिय० | 4124 |
| नन्दयति कस्य | 3866 |
| न पङ्क्तिरालेपं | 83 |
| न पाणिप्रच्छाद्यं | 3943 |
| नपुंसकमिति | 3451 |
| न पुत्रः पितरं | 1484 |
| न पुत्रत्वेन पूज्यन्ते | 1486 |

न पुत्रायत्तमैश्वर्यं ..... 1524
न प्रारब्धं सिध्यति ..... 2776
नभो जिघ्रन्ति ये..... 1704
न मद्यव्यसनैः क्षीवः..... 1507
न मया गोरस० ..... 540
नमस्तुङ्गशिरश्चुम्बि० ..... 60
नमस्यामो देवा०..... 436
न मातरि न दारेषु ..... 1472
नमामि माम० ..... 543
न मुग्धदयिता० ..... 183
न मे दुःखं ..... 3456
नमो भगवते ..... 2347
नमो भगवासाय ..... 3190
न यत्र गुणवत्..... 1194
नयननिपाते०..... 3555
नयननीरज किं ..... 3336
नयनपथनिरो० ..... 594
नयनमसि जना०..... 755
नयनविकारैरन्यं..... 3765
नरकेभ्यः समु० ..... 715
न रथा न गजा ..... 1907
नरपतिहित० ..... 1353
नरमांसवसारक्त० ..... 2304
नरस्यात्यन्तिके कार्ये..... 2594
न रागाणां ..... 2060
नराणामिव वृक्षाणां ..... 2256
नलिनं मलिनं वि० ..... 3301
नलिनीदल० ..... 557
न लोकायतवादेन..... 1521
नवं वयो हरि ..... 2083
नवद्वारं महा० ..... 4229
नवनीलमेघ०..... 73
नवमं ब्रह्मचक्रं ..... 4360
न वित्तं दर्शयेत् ..... 339
न विना परवा० ..... 346
न विवेकं विना ..... 1965
न विश्वसेदमित्रस्य ..... 1301
न विषमृतं ..... 377
न विष्किरन्ति ये..... 1705
नवोक्तिजातिः० ..... 152
न शार्ङ्गधरपद्धतिः ..... 10
न शिवाय शिवा ..... 2445
न शीले नीति० ..... 4429
न शृणोति यदा ..... 4490
न श्वेताशुवदन्ध०..... 1111
न संपत्तिक्रिया०..... 3046
न सा विद्या ..... 337
न सा सभा ..... 1344
न सौख्यतिशयो ..... 4204
न सौख्यसौ०..... 300
न स्त्रीजितः प्रमूढः ..... 1511
न स्थातव्यं ..... 324
न स्नानमाचरेद्भुक्त्वा ..... 614
नष्टान्वेषे गच्छतां ..... 2764
न हया न च..... 3080
नहीदृशं संवननं ..... 1470
नाकारं न निरा० ..... 4272
नागकेसरपुष्प०..... 4627
नागकेसरपुष्पाणां ..... 3239
नागच्छति प्रिय०..... 3185
नागपत्राणि ..... 3064
नागविशेषे ..... 545
नागानां जज्ञिरे ..... 2885
नागेन रुक्मं ..... 3049
नाग्निं मुखेनोपधमेत्..... 620
नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां ..... 1498
नाडिका वहति तापनी ..... 2721
नातः परं कुल०..... 3752
नात्यर्थमर्थी०..... 433
नाधन्यानां निवासं ..... 1073
नाध्यातः क्षुधितः..... 4428
नानावर्णैर्घटितं ..... 2296
नाभिं यावद्वये०..... 2803
नाभिस्थाने ततो ..... 4394
नाभिस्थोग्निः कपाल०..... 4412
नाभिहृत्कण्ठ०..... 3189
नाभूवन्भुवि ..... 924
नाभेरधो गुद०..... 4393
नाभेरूर्ध्वमध०..... 4415
नाभौ पुत्रफलं दत्ते ..... 2533
नाभौ ब्रह्मा हृदि ..... 4302
नाभ्यस्ता भुवि..... 4151
नाभ्यूर्ध्वमण्डले ..... 4395
नायातः सखि निर्दयो ..... 3617
नायाते प्रहरार्धे०..... 3186
नायिकावचनं ..... 38
नालसाः प्राप्नुवन्त्य०..... 1432
नालस्यप्रसरो..... 1137

| | |
|---|---|
| नालिङ्गन्ति कुच० | 1243 |
| नालीका लघवो | 1788 |
| नालेनेव स्थित्वा | 889 |
| नाल्पीयसि | 211 |
| नावज्ञानादवैदग्ध्या० | 1077 |
| नाश्नयति घोणसीय० | 2937 |
| नासाभ्रूमध्यदेशे | 4396 |
| नासिका वक्रतां | 4589 |
| नास्ति यज्ञः स्त्रिया: | 606 |
| नास्य भारग्रहे | 961 |
| नास्योच्छ्वासवती | 906 |
| नास्त्यन्या तृष्णया | 422 |
| नाहं मांसं न चा० | 4210 |
| नाहं रक्षो न भूतो | 4088 |
| निःशेषच्युत० | 3508 |
| निःश्वासा वदनं | 3543 |
| निःश्वासोच्छ्वासयुक्तो | 4489 |
| निःसरत्युदरतो | 2720 |
| निःसारस्य पदार्थस्य | 481 |
| निःसृतोहं करिष्यामि | 4327 |
| निःस्नेहो याति | 4100 |
| निखिलेष्वपि या | 3133 |
| निच्छल्लिदारितं | 3006 |
| निज करनिकर० | 752 |
| निजबीजेन रतान्ते | 3204 |
| निजांशुकावृतां | 3734 |
| निजा कायच्छाया | 3832 |
| नित्यं न सान्त्वयेदेनं | 1593 |
| नित्यं ब्रह्म यथा | 1558 |
| नित्यं वा सेव्यमाना० | 3138 |
| नित्यमामलके | 627 |
| नित्यमाचरतः | 4138 |
| नित्यमास्यं शुचि | 612 |
| निदाघशरदो० | 3137 |
| निद्रादौ जागर० | 4492 |
| निद्रार्धमीलित० | 3468 |
| निभिदेवमहीपानां | 2123 |
| निन्दन्तु नीति० | 225 |
| निन्द्यानि लोहशृङ्खल० | 2582 |
| निपत्य युधि | 1607 |
| निपाने गोचरस्थाने | 1589 |
| निपीयमानस्तबका | 3806 |
| निम्बकल्को भवेत् | 4657 |
| निम्ब किं बहुनो० | 1040 |
| निम्बत्रयं समा० | 2094 |
| निम्बपत्रवचा० | 2969 |
| निमित्तमु० | 360 |
| निमीलनाय पद्मानां० | 743 |
| नियोगिनः क्षत्रिय० | 2508 |
| नियोगिभिर्विना | 1332 |
| निरङ्गं रौप्यपत्र० | 4639 |
| निरङ्गाः काञ्चिपाण्ड्या० | 4623 |
| निरर्थकं जन्म | 568 |
| निरर्थके जन्म | 762 |
| निरवद्यानि पद्यानि | 146 |
| निरूपद्रवनिष्पत्त्यै | 2526 |
| निर्गच्छन्नेव | 4382 |
| निर्गत्य तीयादधि० | 2376 |
| निर्गुणेष्वपि | 232 |
| निर्गुण्ड्याः सह० | 2987 |
| निर्दोषः शब्द० | 1855 |
| निर्ममत्वं विरागाय | 4421 |
| निर्यादःसलिलां | 2169 |
| निर्यान्त्या रतिवेश्मनः | 3728 |
| निर्विकल्पे पदे | 4480 |
| निर्विशेषं यदा राजा | 1368 |
| निर्विषोपि यथा | 1297 |
| निर्वृत्ते सुरतोत्सव० | 3709 |
| निर्वेदाय नृप० | 2525 |
| निर्व्याजा दयिते | 3750 |
| निविशत्यर्धमार्गे | 2625 |
| निवृत्तिः सुरत० | 45 |
| निशीथे लीनानां | 3892 |
| निष्कन्दामरविन्दिनीं | 1214 |
| निष्कलङ्ककलत्रे | 464 |
| निष्कारणं निशान्ते | 1669 |
| निष्कारणं यः प्र० | 2426 |
| निष्कारणं संमिलितां | 2494 |
| निष्पेषोत्थमहा० | 1055 |
| निष्प्रत्यूहमनल्प० | 124 |
| नीचः समाश्रि० | 356 |
| नीचेषु यावनी | 559 |
| नीचैरवरोहन्त० | 2546 |
| नीचैर्यान्ती नीचं | 2700 |
| नीरं वर्तुलमुर्वी | 2807 |
| नीरतीर्थे तटस्थ० | 2417 |
| नीरन्ध्रं परिरभ्यते | 3670 |
| नीरसान्यपि | 294 |

| | |
|---|---|
| नीरस्याधो भूमे० | 2806 |
| नीरागा मृगलाञ्छने | 3488 |
| नीलपिण्डसमाङ्गं | 4626 |
| नीलीं हरिद्रां | 2112 |
| नीलोत्पलदल० | 180 |
| नीलोत्पलाभ० | 4122 |
| नीवारप्रसवा० | 918 |
| नीहाराकरसार० | 772 |
| नीहाराच्चण्ड० | 2158 |
| नूनं दुग्धाब्धि० | 251 |
| नूनं बादलछाद | 550 |
| नूनमयं मे पापः | 3452 |
| नूनमाज्ञाकरस्तस्याः | 3298 |
| नृणां प्रयाणे भव | 2603 |
| नृत्यच्चन्द्रकिणि | 3888 |
| नृपः कामासक्तो | 1390 |
| नृपस्य तस्य | 4231 |
| नृपाणां च नराणां | 1287 |
| नृपातिरोषागमनं | 2639 |
| नेत्ररोगाय यद्येको | 2748 |
| नेन्द्रियाणि न | 4255 |
| नेपथ्यादपि राजते | 3705 |
| नेष्टो गृहोपविष्ट० | 2549 |
| नैतस्याः प्रसृति० | 3942 |
| नैताः स्वयमुप० | 788 |
| नैर्ऋतकोणे | 2225 |
| नैर्ऋत्यां दूता | 2476 |
| नैवात्मनो विनाशं | 374 |
| नैषा वेगं मृदु० | 3690 |
| नो कामः प्रति० | 1233 |
| नोत्तरस्यां प्रतीच्यां | 1505 |
| नोत्सङ्गे भक्षयेत् | 629 |
| नोदन्वानर्थितामेति | 1433 |
| नो धर्मीय यतो | 4162 |
| नोपभोक्तुमपि | 391 |
| नोपेक्षितव्यो | 1304 |
| नो मन्ये दृढबन्धनात् | 934 |
| नो मल्लीमय० | 820 |
| नो रमेत रतं | 3141 |
| नो रविर्न च तमो | 3590 |
| नोर्ध्वजानुश्चिरं | 624 |
| नौश्च दुर्जन० | 362 |
| न्यग्रोधेन तु यवका० | 2314 |
| न्यस्तं यथा मूर्ध्नि | 4115 |
| न्यस्तानि दन्तवलयानि | 3333 |
| न्यासापहर्ता | 721 |

## प

| | |
|---|---|
| पक्वंशाल्यो च | 1765 |
| पक्वान्नमिव राजेन्द्र | 1340 |
| पक्षावुत्क्षिप्य | 573 |
| पक्षे भक्ष्यग्रहणं | 2710 |
| पक्ष्मालीपिङ्ग० | 99 |
| पङ्कज जलेषु | 1134 |
| पङ्कजासनलयेन | 3142 |
| पङ्कानुषङ्गं पथि | 3917 |
| पङ्क्तिमध्ये तु | 2159 |
| पञ्चत्वं तनुरेतु | 3428 |
| पञ्च धाराः प्रवक्ष्यामि | 1692 |
| पञ्चपादस्य तूद्गाहे | 1970 |
| पञ्चभिः सप्तभिर्दन्तै० | 1658 |
| पञ्चभिर्लवणै० | 1785 |
| पञ्चमं कण्ठचक्रं | 4356 |
| पञ्चमेहनि | 314 |
| पञ्च यत्र न | 1465 |
| पञ्चविंशति० | 3131 |
| पञ्चविंशाक्षरै० | 1994 |
| पञ्चषष्टिसहस्राणि | 1914 |
| पञ्चहस्तप्रमाणेन | 1640 |
| पञ्चाङ्गं कृष्णा० | 2910 |
| पञ्चाम्राम्रोपये० | 2096 |
| पञ्चेन्द्रियमनो | 4333 |
| पटालग्नै पत्यौ नम० | 3673 |
| पठतो नास्ति मूर्खत्वं | 1424 |
| पण्डिते हि गुणाः | 201 |
| पततु तवोरसि | 3695 |
| पतती यस्य वै | 4583 |
| पतन्ति खड्ग० | 343 |
| पताका वज्रमुष्टि० | 1797 |
| पतितान्प्रति० | 718 |
| पतिता मस्तके | 2537 |
| पतितोपि करा० | 486 |
| पतितोपि राहु० | 480 |
| पत्युर्यत्पतिता० | 935 |
| पत्रपुष्पफल० | 977 |
| पत्रमूलान्विता | 3030 |
| पत्रे मनुं समालिख्य | 2163 |
| पत्राणि कण्टकशतैः | 1012 |

| | | | |
|---|---|---|---|
| पथि निपतितां | 881 | पल्लिकाया गृह० | 2538 |
| पदं तदिह नास्ति | 1044 | पल्लीभुजेपसर्प्ये | 2530 |
| पदद्वये यदा वर्ण० | 1975 | पवनाब्जायते | 1945 |
| पदशब्दलीन० | 3497 | पश्चिममूलं शान्तै | 2779 |
| पदस्थः स्वरसंघात० | 1946 | पश्चिममूले शान्ते | 2790 |
| पदस्थितस्य | 487 | पश्चिमायां भवेत् | 2760 |
| पद्भ्यां मुक्तास्तरल० | 3282 | पश्यति जिघ्रति | 2357 |
| पद्ममधोसनं | 4431 | पश्यन्हतो मन्मथ० | 3356 |
| पद्मासनं प्रसिद्धं | 1796 | पश्योदेति वियोगिनां | 3626 |
| पनसलकुच० | 2121 | पाटलया वनमध्ये | 1014 |
| पनसाम्रमधूका० | 2128 | पाटलादाडिमी० | 2129 |
| पन्नगाः सन्ति बहुशो | 1480 | पाठापथ्यावचा० | 2970 |
| पयसि निषिक्तं | 2134 | पाठामूलं लिप्तं | 2965 |
| पयोधराकारधरो | 3927 | पाठामूलं वि० | 2916 |
| परदारपरद्रव्य० | 667 | पाठीनः कमठः कटि० | 133 |
| परदारा न गन्तव्याः | 653 | पाणौ ताम्रघटी | 4026 |
| परदाराभि० | 723 | पाणौ मा कुरु | 3461 |
| परमाणोरपि | 4256 | पाणौ पद्माधिया | 3803 |
| परमिममुप० | 72 | पातः पूष्णो भवति | 745 |
| परमो मरुत्स० | 793 | पाताघात० | 927 |
| परलोकहितं | 671 | पातालतः किमु | 4080 |
| परस्परगुणा० | 3121 | पातालादूर्ध्वगमः | 2175 |
| परस्परानु० | 1929 | पातालान्न वि० | 257 |
| परस्परेण क्षतयोः | 3977 | पातुं त्रीणि जगन्ति | 4017 |
| परस्य योनिं गच्छन्तो | 2551 | पातुं यस्य च दद्यात् | 2869 |
| परात्परतरं | 690 | पात्रमपात्री० | 370 |
| परार्थे यः पीडा० | 1052 | पादन्यासं क्षिति० | 760 |
| परिचुम्बति संश्लिष्य | 3785 | पादांशपञ्च० | 3009 |
| परितोषयिता | 347 | पादाङ्गुष्ठेन भूमिं | 3463 |
| परिपतति पयो० | 3588 | पादाः पञ्चनखा० | 2825 |
| परिभ्रमन्त्या भ्रमरी० | 3914 | पादाहतं यदु० | 265 |
| परिमलसुरभि० | 990 | पादाहतोपि | 361 |
| परिम्लानं पीन० | 3401 | पादे पादे पञ्च | 2826 |
| परिशुद्धामपि | 355 | पादे मूर्धनि | 3569 |
| परिहरति वयो | 3275 | पादौ सुविस्तरौ | 1792 |
| परीक्ष्य सत्कुलं | 405 | पानमक्षास्तथा | 1389 |
| परेषां क्लेशदं | 1513 | पानीयं नालिकेरी० | 3807 |
| परोपकारशून्यस्य | 1478 | पानीयं पातुमिच्छामि | 530 |
| पर्जन्य इव भूतानां | 1283 | पान्तु वो जलद० | 113 |
| पर्यङ्कः स्वास्तरणः | 3766 | पान्थजननी तथेमा | 2677 |
| पलायनमरीणां | 31 | पान्थाधार इति | 983 |
| पलाशबीज० | 2947 | पापिष्ठं दुर्भगा० | 599 |
| पलाशशाखिनः | 2098 | पायं पायं पिब | 1151 |
| पलाशाः काञ्चनारा० | 2110 | | |

| | |
|---|---|
| पायात्पयोधि० | 134 |
| पार्वती तोषिता | 2100 |
| पार्श्वस्फाला० | 587 |
| पार्श्वाभ्यां स० | 3505 |
| पार्ष्णि तु वाम० | 4408 |
| पार्ष्णि तु वाम० | 4437 |
| पार्ष्णिभ्यां लिङ्ग० | 4433 |
| पालने बालकष्टाय | 2506 |
| पाश्चात्यभाग० | 4022 |
| पाश्चात्यैर्भरुमाहृते० | 3831 |
| पाषाणखण्डेष्वपि | 4099 |
| पिङ्गला कुररः सर्पः | 4615 |
| पिङ्गलाफेरुजम्बुकयो | 2550 |
| पिङ्गलायां धरानीर० | 2814 |
| पिङ्गलायां यदा | 2812 |
| पिङ्गलायामिडायां | 2815 |
| पिङ्गला वामनिनदा | 2654 |
| पिङ्गलेडापथं | 4319 |
| पिचुमन्दनागकुसुमै० | 2318 |
| पिण्डं मज्जासु | 4293 |
| पितृमातृविनाशाय | 2741 |
| पिदधति तिमिरे | 3601 |
| पिधाय कर्णौ च | 4580 |
| पिनाकफणिबालेन्दु० | 63 |
| पिपि प्रिय सस० | 3651 |
| पिप्पलीमाष० | 3216 |
| पिप्पली सैन्धवं | 1783 |
| पिबतस्ते शरा० | 538 |
| पिबति प्रसूति० | 2995 |
| पिब पयः प्रसर | 1211 |
| पिशुनाच्चस्करा० | 3021 |
| पिष्टां गृहीतां च | 2998 |
| पिष्टाः क्षीराम्बु० | 2269 |
| पिष्टान्नमशुभं सर्वं | 2575 |
| पीठीप्रक्षालनेन | 4028 |
| पीतं नीलं तथा | 4656 |
| पीते यत्र हिमं | 921 |
| पीतस्तुषारकिरणो | 3648 |
| पीते च तिलकषाये | 3236 |
| पीत्वा सुधाकर० | 4606 |
| पीना कटिः सुवृत्त० | 1629 |
| पीनोत्तुङ्गपयोधराः | 3939 |
| पीयूषं वपुषोस्य | 761 |
| पीलूनां फलव० | 956 |
| पुंप्रकृत्योः कथं | 4182 |
| पुंसः संबोधनं | 552 |
| पुंसां सुखैक० | 2082 |
| पुंसो निजमनो० | 4207 |
| पुंस्कोकिलमधुरो० | 3093 |
| पुच्छीभूतं प्रेम | 71 |
| पुच्छे जानुनिं कक्षायां | 1664 |
| पुटदग्धपद्मिनी० | 3229 |
| पुण्याग्नौ पूर्ण० | 3946 |
| पुण्ये ग्रामे | 254 |
| पुत्रमित्रकलत्रेषु | 4089 |
| पुनः कृत्वाद्रुतं | 689 |
| पुनः पिङ्गलया | 4459 |
| पुनःपुनर्दक्षिण० | 2404 |
| पुनः शार्करया | 1874 |
| पुनः सृष्टिः पुन० | 4269 |
| पुमनैवाजटा० | 3045 |
| पुरंदरहरिहरी० | 3633 |
| पुरंदरसहस्राणि | 4163 |
| पुरः स्थित्वा | 3517 |
| पुरमेकं जगति | 4228 |
| पुरस्तादुच्छ्रितश्चापि | 1579 |
| पुराणवाणत्यागाय | 3304 |
| पुराभूदस्माकं | 3558 |
| पुरा शाकंभरी० | 2 |
| पुरा सपक्षा हरयो | 1598 |
| पुरा स्वर्गे सुखे | 1561 |
| पुरो नुन्नः | 588 |
| पुलकाङ्कित० | 1670 |
| पुष्पं प्रवालोपहितं | 3318 |
| पुष्पगन्धः सदा | 1613 |
| पुष्पवद्धारये० | 1835 |
| पुष्पसाधारणे | 2048 |
| पुष्पेषोरभिषेक० | 3337 |
| पुष्पैरपि न योद्धव्यं | 1298 |
| पुष्पार्के मूला० | 2982 |
| पुष्पार्कौत्पाटिते | 1893 |
| पुष्येपराजिता० | 2983 |
| पूरणात्पूरकं | 4380 |
| पूरणाय विधि० | 2074 |
| पूर्णग्रन्थि सुपक्वं | 1769 |
| पूर्णानना समूढ्यै | 2547 |
| पूर्णे शतसहस्रे | 3985 |
| पूर्वं गृहीत्वा व्यापारं | 2743 |

| | |
|---|---|
| पूर्वं चेटी ततो | 4052 |
| पूर्वं दक्षिण० | 4457 |
| पूर्वं दक्षिणशब्दा | 2655 |
| पूर्वं द्विरेफपरि० | 3802 |
| पूर्वं यत्र समं | 3500 |
| पूर्वं सारथिमारोप्य | 1904 |
| पूर्वजन्मजनितं | 458 |
| पूर्वरूपकसंसिद्ध० | 2038 |
| पूर्वस्मिन्दिवसे दृष्टा | 2522 |
| पूर्वस्यां करमर्द० | 2151 |
| पूर्वाभ्यस्तो मर्मो | 4365 |
| पूर्वाभ्यासस्य | 1878 |
| पूर्वाह्णे वा पराह्णे | 4591 |
| पूर्वेण यदि बद्धयो | 2182 |
| पूर्वोत्तरेण पीलो० | 2211 |
| पृच्छाशकुनं वह्निम | 2327 |
| पृथक्चितां समारुह्य | 610 |
| पृथिवी दह्यते | 4131 |
| पृथुगगनकबन्ध० | 3583 |
| पृथुजठरललाटः | 3115 |
| पृथुतरनितम्ब० | 3095 |
| पृथिव्यां कीचिकी चीति | 2469 |
| पृथ्वी श्रीमदनङ्ग० | 1260 |
| पृष्ठबन्धं स्थिरं | 4419 |
| पृष्ठादागच्छन्ती | 2731 |
| पृष्ठाभिमुखी पृष्ठे | 2707 |
| पृष्ठे च वामे | 2653 |
| पृष्ठे निमित्ते श्रवणे | 2402 |
| पृष्ठे पुरो वा नव | 2470 |
| पृष्ठो ब्रूते न सत्यं | 1359 |
| पृष्ट्वाचार्यं तु तत्पूजां | 2340 |
| पोतकी पिङ्गला काको | 2325 |
| पौनःपुनिकं | 2762 |
| पौरस्त्यैर्दीक्षिणात्यैः | 1108 |
| पौरुषेयं तु यच्छास्त्रं | 1759 |
| प्रकीर्णकेशामनवेक्ष्य | 655 |
| प्रगल्भानामन्त० | 3281 |
| प्रजां संरक्षति नृपः | 1284 |
| प्रजा न रञ्जये० | 1289 |
| प्रजापीडनसंताप० | 1291 |
| प्रज्ञागुप्तशरीरस्य | 1325 |
| प्रणम्य सर्वदेवेशं | 1942 |
| प्रणयेन यमं | 4203 |
| प्रणश्यति गुडं | 2875 |
| प्रणीतश्चाप्रणीत० | 1314 |
| प्रतिकूलतामुप० | 450 |
| प्रतिक्षणसमुल्लसत् | 3667 |
| प्रतिगतमर्थि० | 3825 |
| प्रतिमानेषु विपुल० | 1577 |
| प्रतिरजनि प्रति० | 3760 |
| प्रतिसूर्यवहौनोल्का | 2580 |
| प्रत्यङ्गणं प्रतितरु | 885 |
| प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत | 1421 |
| प्रत्यालीढं तु | 1791 |
| प्रत्यालीढे कृते | 1843 |
| प्रत्यासन्नविवाह० | 102 |
| प्रत्यासन्नसखी० | 3880 |
| प्रत्युपकुर्वन् | 260 |
| प्रत्यूहोपहतानां | 2778 |
| प्रत्येकमेकं सततं | 2444 |
| प्रथमं क्रियते | 1896 |
| प्रथमं चापमारोप्य | 1829 |
| प्रथमं पुष्पवेधं | 1736 |
| प्रथमं ब्रह्मचक्रं | 4351 |
| प्रथमं यौगिकं | 1742 |
| प्रथमं वामहस्तेन | 1814 |
| प्रथममवयसि पीतं | 1029 |
| प्रथममुरुषे भुजंगः | 2190 |
| प्रथमेन जयेत् | 4448 |
| प्रदक्षिणाद्युत्तर० | 2389 |
| प्रबन्धगात्रनिष्णातः | 1959 |
| प्रभवति मनसि | 3081 |
| प्रभुप्रसादे विश्वासं | 1520 |
| प्रमाणं निष्प्रमाणानां | 2774 |
| प्रमादाद्योगिनो | 4508 |
| प्रयाति वामे यदि | 2669 |
| प्रयातेस्तं भानौ श्रित० | 3404 |
| प्रयोगे चोपसंहारे | 1884 |
| प्रलयसहाय० | 510 |
| प्रवहद्ब्राह्मणे | 617 |
| प्रवीणो वाक्पटु० | 1335 |
| प्रवृत्तिलक्षणा० | 4517 |
| प्रवेशे निर्गमे चैव | 2735 |
| प्रवेशेऽल्पफला सैव | 2737 |
| प्रवेशो स्याद्दक्षिणः | 2734 |
| प्रशंसा महतां | 16 |
| प्रशस्तचित्ते शुनि | 2394 |
| प्रशान्तनादः शिखरे | 2662 |

प्रशान्ते नूपुरारावे ..... 3696
प्रश्ने वरार्थं विहिते ..... 2370
प्रसन्नाः कान्ति०..... 142
प्रसरदलकाकीर्णे..... 3899
प्रसरन्ति प्रतानै० ..... 2126
प्रसह्य मणि०..... 416
प्रसादे वर्तस्व ..... 3565
प्रसादो निष्फलो यस्य ..... 1369
प्रसाधनानां दयिता०..... 3159
प्रसारितकरे ..... 1138
प्रसार्य पादौ विहित०..... 3878
प्रसूनशृङ्गैर्मकरन्द०..... 3791
प्रसृतियुगल०..... 3048
प्रस्थातुरग्रे यदि ..... 2628
प्रस्थानं वलयैः कृतं ..... 3424
प्रस्वेदमलदिग्धेन ..... 4079
प्रहरनि न पञ्च० ..... 526
प्रहरविरतौ मध्य० ..... 3389
प्रहरिष्यन्प्रियं ..... 1429
प्राकाम्यमस्य व्यापि० ..... 4545
प्राकारगोपुर० ..... 1565
प्राचीनामलक० ..... 2230
प्राच्यं दीर्घं मूलं ..... 2772
प्राच्यां रक्ष ..... 1899
प्राणातिपातं स्तैन्यं ..... 635
प्राणानां च प्रियाया०..... 3089
प्राणापानमयी ..... 4297
प्राणापानौ नाद० ..... 4417
प्राणायामं विना ..... 4442
प्राणायामस्य युक्तिस्तु ..... 4456
प्राणायामा दश ..... 4466
प्राणायामान्नरः ..... 4381
प्राणायामाष्टकं..... 2590
प्राणायामैर्दहेद्दोषान् ..... 4438
प्राणायामो लघुस्त्वेको..... 4447
प्राणेशमभिसरन्ती ..... 3612
प्राणेश विज्ञप्तिरियं ..... 3441
प्राणोपानः समान० ..... 4313
प्राणो हि दशधा ..... 4314
प्रातःकुङ्कुमजश्रूणं ..... 3254
प्रातः सीमन्तिनीनां ..... 3731
प्रातर्दिनेशाभिमुखो ..... 2421
प्रातिभः श्रावणो ..... 4523
प्राप्ताः श्रियः सकल० ..... 4112
प्राप्ता जरा यौवन०..... 4165
प्राप्तानपि न ..... 384
प्राप्ते भाद्रपदे ..... 1766
प्राप्तेषु शृङ्गार० ..... 3172
प्राप्य ज्ञानद०..... 4253
प्राप्यते गुणवतापि..... 3649
प्राप्य प्रमाणकोणं ..... 2775
प्रायः प्रमाणमेता ..... 2635
प्रायेण धनिना०..... 434
प्रायेण ब्राह्मणः ..... 1612
प्रायेण सुकरं ..... 3962
प्रायो योग्यं धनु० ..... 1760
प्रारब्धे रतिकेलि० ..... 3697
प्रालेयशैल०..... 3925
प्रावरणैरङ्गारै०..... 3937
प्रावृष केवलं ..... 4530
प्रावृषेण्यस्य मालिन्यं..... 768
प्रासादशैलद्रुम०..... 2512
प्रियङ्गुगुञ्जा०..... 2235
प्रियङ्गुवरकर्कारी ..... 2275
प्रियशतपटस्तेय०..... 3708
प्रियसंगमाय बाह्वोः ..... 2544
प्रियसखि विपद्०..... 451
प्रियसखीसदृशं ..... 3796
प्रियस्य शिक्षा०..... 42
प्रियातिथ्यादिकं ..... 41
प्रियादर्शनमेवा०..... 3514
प्रियाविरहित०..... 3447
प्रीतोवदातवेषः ..... 2556
प्रेतधूमे विरेके ..... 600
प्रेरयति पर०..... 364
प्रेषकः प्रेष्यकः..... 4064
प्रोद्यत्सौदारविन्द०..... 3924
प्रौढच्छेदानुरूपो०..... 4071
प्रौढे वयसि ..... 3157
प्लक्षार्कोदुम्बर०..... 2267
प्लावयित्वा ततो ..... 4371
प्लुतमेकं द्वितौ ..... 2021
प्लुतमेकं भवे०..... 2015
प्लुतश्च गुरुरेकत्र ..... 2026


## फ


फलं गृहीत्वा सहसा ..... 2613
फलं तु शुद्ध०..... 1776

फले दूरतरे०..... 1048
फलकुसुमपत्र०..... 2313
फलकुसुमविकारो..... 2204
फलकुसुमसंपदु०..... 2228
फलस्य पायनं..... 1782
फलान्यनेक०..... 3014
फलिन्यशोक०..... 2150
फणिमण्डलि०..... 2887
फुल्लेषु यः..... 825
फेफे नगरनाशाय..... 2456
फेफे हूहू भुभू..... 2455

ब

बकोट ब्रूमः..... 891
बदरी कदली०..... 2109
बदरी रोहित०..... 2213
बद्धः कर्मगुणैः..... 4322
बद्धपद्मासनो..... 4593
बद्धसिद्धासनो..... 4602
बद्धस्य द्रव्यनि०..... 2738
बद्ध्वा चर्मतृणाभ्यां..... 2287
बन्धनस्थोपि मातङ्ग०..... 1209
बन्धयेत्खेचरीं..... 4603
बन्धाय धावतां..... 2461
बन्धूकद्युतिबान्धवो०..... 3658
बब्बूलबन्दकं..... 2985
बब्बूलवृक्ष०..... 2996
बर्बरश्च तपस्वी..... 1496
बर्ही रौति बका..... 3887
बलान्नीता पार्श्वं..... 3678
बलिकर्णेदधीचाद्याः..... 1229
बलिभिर्मुख०..... 419
बलिर्मद्येन..... 2972
बलेन वामो यदि..... 2620
बल्वलान्तस्त्वचं पिष्टां..... 2873
बहलैर्मृदुभिर्युक्तः..... 1583
बहिः कृत्रिम०..... 4249
बहु जगद पुरस्ता०..... 3742
बहुनात्र किमुक्तेन..... 3506
बहुभिर्बत किं..... 2085
बहूनामप्यसाराणां..... 1326
बह्वाशी बहुलीकश्च..... 1591
बाणभङ्ग करा०..... 1863
बाधिर्यं जडता..... 4509
बालग्रहोपशमनं..... 34
बाला तन्वी मृदु०..... 3671
बालस्यापि रवेः..... 282
बाला चन्दनमालिका०..... 3529
बालार्कं प्रेतधूमं..... 628
बालेति गीयते..... 3135
बाले नाथ विमुञ्च..... 3554
बाले मालेयमुच्चैर्न..... 3829
बाले ललामलेखेयं..... 3293
बिडालाक्षः सुरा०..... 3118
बिभेमि सखि सं०..... 3433
बिभ्राणे त्वयि..... 1160
बीजं नरपलाङ्कौल्ल०..... 2309
बीजधानीं तृणा०..... 2137
बीजपूरक०..... 2122
बीजपूरदलं..... 2081
बीजमाम्रादिवृक्षाणां..... 2290
बीजैरङ्कुरितं..... 856
बुद्धिपूर्वं तु यज्ज्ञानं..... 4402
बुद्धेरहं ततः..... 4275
बुध्नौ कलुष०..... 1319
बुद्ध्या निरूप्य..... 4594
बोधयन्ति न..... 274
बोलला इति..... 3020
ब्रह्मघ्ने च सुरा०..... 704
ब्रह्मचर्यमलोभश्च..... 4560
ब्रह्मदण्डीशिफार्के..... 2849
ब्रह्मद्वारमुखे..... 4479
ब्रह्मविष्णुशिव०..... 4349
ब्रह्महत्या सु०..... 702
ब्रह्माण्डं किं०..... 256
ब्रह्माण्डच्छत्रदण्डः..... 127
ब्रह्माण्डमण्डली०..... 263
ब्रह्मा येन कु०..... 435
ब्रह्मा हरौ हरौ..... 4268
ब्राह्मं नारायणं..... 1882
ब्राह्मणं भक्तिदानेन..... 1686
ब्राह्मणक्षत्रियविशां..... 1611
ब्राह्मणाः क्षेमकृत्येषु..... 1615
ब्राह्मणान्नावमन्येत..... 1509
ब्राह्मणान्भोजये०..... 1728
ब्राह्मणाय धनु०..... 1720
ब्राह्मणेषु च ये..... 1312
ब्राह्मणो ब्रह्मतीर्थेन..... 630

| | |
|---|---|
| ब्राह्मण्यजागो० | 616 |
| ब्राह्मण्यां कुन्द० | 3148 |
| ब्राह्मे मुहूर्ते पुरुष० | 1504 |
| ब्रूत नूतन० | 262 |
| ब्रूतन्यस्या० | 242 |
| ब्रूते संप्रति चाहुवाण० | 1256 |

## भ

| | |
|---|---|
| भक्तं रक्तं सदा | 1517 |
| भक्तिः प्रेयसि संश्रितेषु | 3756 |
| भक्तिप्रह्वाय दातुं | 138 |
| भक्ते द्वेषी जडे | 341 |
| भक्षयेन्मधु० | 3031 |
| भगवत्या भद्रकाल्या | 2595 |
| भगवन्तौ जगन्नेत्रे | 449 |
| भगस्तु वैष्णवी | 4287 |
| भगिनि मदनः श्री० | 3418 |
| भगीरथाद्याः | 4003 |
| भग्नासु रिपुसेनासु | 1244 |
| भङ्क्त्वा भोक्तुं न | 3598 |
| भजन्त्यास्तल्यान्तं | 3681 |
| भट्टिणि रिणि | 2901 |
| भद्रं तस्य तरोः | 3771 |
| भद्रं ते सदृशं | 581 |
| भद्रात्र ग्रामके त्वं | 3895 |
| भद्रो मन्दो मृगो | 1562 |
| भयानकश्च बीभत्स० | 50 |
| भयोद्यमे दीप्तदिशि | 2645 |
| भर्तृपिण्डं | 720 |
| भर्तृपिण्डानृण० | 3961 |
| भल्लातकं समादाय | 3040 |
| भल्लातकवृहती० | 3228 |
| भल्लेन हृदयं | 1780 |
| भवति हृदयहारी | 1008 |
| भवन्त्यवामा | 2365 |
| भवभूति० | 178 |
| भवेद्वृकाणां शकुनौ | 2745 |
| भवेयुः श्यामलाः | 3071 |
| भषन्तिनेशाभिमुखः | 2422 |
| भषन्नभीक्ष्णं | 2439 |
| भस्मन्यामेलितं | 2291 |
| भस्माङ्गुलि० | 4063 |
| भस्मीकृतेन० | 2679 |
| भस्मीढूलन० | 2362 |
| भागं षष्ठिक० | 3056 |
| भाग्यवन्तं प्रसूयेथाः | 442 |
| भाति विन्यस्तकह्लारः | 3287 |
| भानुयुक्ता दिशो | 2636 |
| भावशुद्धिर्मनुष्यैः | 675 |
| भासो रामिल० | 188 |
| भिक्षौ मांसनिषेवणं | 4061 |
| भिन्दन्तश्चन्दनालीं | 3814 |
| भिन्दानो मानिनीनां | 3722 |
| भीतानां परचक्रे | 2529 |
| भीमश्यामप्रतनु० | 1147 |
| भीरुः पलायमानो० | 1936 |
| भीष्मग्रीष्मर्तु० | 500 |
| भुक्तं स्वादु फलं | 979 |
| भुक्तानि यै० | 980 |
| भुजद्वयं जिघ्रति | 2438 |
| भूः पर्यङ्को निज० | 4097 |
| भूतानि यानीह | 2973 |
| भूनागलज्जा० | 3000 |
| भूनारी काञ्चन० | 730 |
| भूपानां धनिनां | 2817 |
| भूपानां रसिकानां | 2978 |
| भूपाली हरिपाल० | 2058 |
| भूमिं गतोपि जीवति | 2783 |
| भूमिर्मित्रं | 1299 |
| भूमौ चाश्वसकृ० | 3058 |
| भूमौ लग्नमही० | 2499 |
| भूयो गर्जित० | 787 |
| भूरिभारभरा० | 562 |
| भूरेणुदिग्धा नव० | 3980 |
| भूर्जः परोपकृतये | 1056 |
| भूसंपर्करजो० | 1274 |
| भूस्पृग्बालधिरातास्र० | 2838 |
| भृङ्गरजः कन्यायां | 3219 |
| भृङ्गाङ्गनाजन० | 799 |
| भेकेन क्षणता | 1177 |
| भेकैः कोटरशायिभिः | 777 |
| भैक्ष गृह्णन्गृह० | 4559 |
| भैरवः पञ्चमो | 2052 |
| भोगा न भुक्ता | 4150 |
| भोजनं प्राप्य | 4034 |
| भोज्यं भोजन० | 490 |
| भो भोः करीन्द्र | 925 |
| भो भोः किं किम० | 1152 |

| | |
|---|---|
| भो भोः श्रीभोजदेव | 1252 |
| भो हंसास्ता० | 807 |
| भ्रमन्वनान्ते | 817 |
| भ्रमय जलदा० | 3453 |
| भ्रमर भ्रमता | 818 |
| भ्रमरान्योक्तय० | 24 |
| भ्रमरी कथिता | 1848 |
| भ्रमात्प्रकीर्णि | 3913 |
| भ्रष्टं नृपतिकिरीटा० | 1105 |
| भ्रातः कष्टमहो | 4164 |
| भ्रातः काञ्चनलेप० | 1193 |
| भ्रातः कीर | 876 |
| भ्रातः कोकिल | 851 |
| भ्रातः पञ्जरलावक० | 1206 |
| भ्रातः पान्थ पथि | 3406 |
| भ्रातः पान्थ प्रसीद | 3894 |
| भ्रातर्धात० | 394 |
| भ्रातर्ग्राम्यकुविन्द० | 1184 |
| भ्रातश्चन्दन | 993 |
| भ्रान्तं याचन० | 421 |
| भ्राम्यच्चीत्कारचक्र० | 3857 |
| भ्राम्यज्जले घटी | 1861 |
| भ्राम्यते यन्निरा० | 4527 |
| भ्राम्यन्मन्दर० | 114 |
| भ्रुकुटीकुटिललाट० | 4032 |
| भ्रुवोः काचिल्लीला० | 3274 |
| भ्रूचक्रं सप्तमं | 4358 |
| भ्रूचातुर्यात्कुञ्चिता० | 3954 |
| भ्रूचापे निहितः | 3502 |
| भ्रूनेत्रादिक्रिया | 3187 |
| भ्रूपल्लवं धनु० | 3380 |
| भ्रूभङ्गे रचितेपि | 3540 |
| भ्रूभेदैः कतिचि० | 3763 |
| भ्रूमध्यस्योपरि० | 4397 |
| भ्रूरेखायुगलं भाति | 3297 |


## म


| | |
|---|---|
| मकरीविरचन० | 77 |
| मक्षिकाया विष | 2961 |
| मङ्गल्यानां तथा | 4685 |
| मज्जत्वम्भसि | 438 |
| मञ्जिष्ठातिल० | 2280 |
| मञ्जिष्ठोग्रासपूल | 2967 |
| मणिः शाणोल्लीढः | 1529 |
| मण्डपनन्द्यावर्त० | 2145 |
| मण्डलीकृत्य | 569 |
| मण्डाय स्वाहा इति चन्दनम् | 2343 |
| मत्ताः शरदृतौ श्वानः | 2424 |
| मत्तेभकुम्भपरि० | 3693 |
| मत्तेभकुम्भपरि० | 3951 |
| मत्स्यकोलवसामांस० | 2293 |
| मदनदहनशुष्यत्० | 3413 |
| मदनमवलोक्य | 824 |
| मदर्थसंदष्टमृणाल० | 4013 |
| मदेकपुत्रा जननी | 4012 |
| मधुकरगणश्रुतं | 829 |
| मधुकर तव | 815 |
| मधुककुसुमगुच्छा० | 2284 |
| मधुगन्धिरत० | 3099 |
| मधु च विकसिते० | 3953 |
| मधुजीरकगोरम्भा० | 2847 |
| मधुतगरगौर० | 3226 |
| मधुपानमदे | 3177 |
| मधुयष्टिसिता० | 2283 |
| मधूरया मधु० | 547 |
| मधुसैन्धवकल० | 3213 |
| मधुहा ग्राम० | 712 |
| मध्यं पृष्ठाश्रितैः | 2073 |
| मध्यत्रिवलीत्रिपथे | 3346 |
| मध्यात्तयोर्मण्डलयो० | 2385 |
| मध्याह्नयोरेक० | 2384 |
| मध्याह्नेतिखरे | 3861 |
| मध्याह्ने दव० | 4014 |
| मध्ये तस्मिञ्शिशिर० | 2171 |
| मध्येदिनं वेश्मनि | 2488 |
| मनसि निविशते | 3381 |
| मनो दृष्टिगतं ज्ञात्वा | 1841 |
| मनोनिर्वाण० | 4220 |
| मनोमात्रं जगत्सर्वं | 4221 |
| मनोवाक्कर्मभि० | 1883 |
| मन्थायस्तार्णवा० | 4074 |
| मन्दं निधेहि चरणौ | 3620 |
| मन्दं मुद्रितपांसवः | 3871 |
| मन्दश्चन्द्रकिरीट० | 1254 |
| मन्दारद्रुमरन्ध्रे | 2300 |
| मन्दारमाला० | 67 |
| मन्दोयं मलयानिलः | 3789 |
| मन्लतन्लार्पित० | 1351 |

| | |
|---|---|
| मन्त्रमिति सप्त | 2596 |
| मन्त्रयोगो लय० | 4347 |
| मन्त्रेणानेन सलिल० | 2927 |
| मन्त्रोद्भावित० | 4158 |
| मन्त्रिणो नस्य | 4230 |
| मन्यामहे मलय० | 1067 |
| मन्ये तदुरु संभाव्य | 3357 |
| मन्ये मायेय० | 4090 |
| मन्ये समाप्तलावण्ये | 3350 |
| मम करग्रहणाय | 513 |
| मया कुमार्यापि | 3762 |
| मयूरचूलिका० | 3246 |
| मयूरो वर्षकान् | 729 |
| मरिचं सैन्धवं सर्पि० | 2862 |
| मरुदेशे भवति | 2210 |
| मरौ नास्त्येव | 1150 |
| मर्त्यप्राक्तनपुण्यस्य | 2792 |
| मर्दयिन्नोष्ण० | 3004 |
| मलदीपे समुत्पन्ने | 2855 |
| मलयजगन्ध० | 3112 |
| मलयाख्ये भवे० | 2002 |
| मलयानिलमिलनो० | 3788 |
| मलिनहुनभु० | 3867 |
| मलोत्सर्गं गजेन्द्रस्य | 1207 |
| मल्लिकामुकुले | 3786 |
| मल्लिकामालभारिण्यः | 3642 |
| मस्त्रिगुरुस्त्रिलघु० | 2064 |
| महतां प्रार्थनैनैव | 220 |
| महद्भिरेवैस्तमसा० | 3594 |
| महाक्षौद्रिणिका | 1917 |
| महाग्रीवो महावक्षो | 1582 |
| महाघोणा महा० | 1701 |
| महातरुर्वा भवति | 1035 |
| महात्मानोनु० | 223 |
| महानुभाव० | 321 |
| महापथं प्रवि० | 4400 |
| महाप्रलयमारुत० | 4073 |
| महामुद्रां नभो० | 4407 |
| महिषीमलमिलित० | 3230 |
| महिष्या हृष्टया | 1342 |
| महीघृतसुगन्धाश्च | 4683 |
| महीपतेः सन्ति | 167 |
| महेशस्त्वां भक्ते | 1058 |
| महोदयं पञ्च० | 2366 |
| माकन्दमूल० | 3249 |
| मा गच्छ प्रमदा० | 3496 |
| माघेन वि० | 185 |
| मा चक्र चक्रि० | 1257 |
| मा जीवन्यः | 266 |
| माणिक्यं तरणे० | 1418 |
| माणिक्यद्रव० | 877 |
| मातङ्गकुम्भमं० | 3328 |
| मातङ्गैरपि वै० | 1576 |
| मातर्धर्मपरे | 580 |
| मातर्मेदिनि तात | 4095 |
| मा तात संपदा० | 1322 |
| मा तात साहसं | 1309 |
| माता पिता गुरु० | 1347 |
| मातुलुङ्गरजनी | 2149 |
| मातुलो यस्य | 4006 |
| मात्रा स्वस्रा दुहित्रा | 654 |
| मा त्वं तात | 1310 |
| माद्यद्दिग्गजदान० | 1131 |
| माद्यन्मातङ्गकुम्भ० | 4072 |
| मांधाता स महीं० | 4002 |
| मानवावयव० | 2606 |
| मानव्याधिनिपीडिता० | 3542 |
| मानापमानौ यावेतौ | 4550 |
| मानिनीजनविलोचन० | 3645 |
| मानुष्यं प्राप्य | 716 |
| मानं म्लायिनि | 4178 |
| मानोन्नतेत्यसहने० | 3547 |
| मा भैष्ट नैते० | 3964 |
| मारयन्त्या जनं | 3365 |
| मारुते विशति दक्षिण० | 2719 |
| मारून्यां शब्दसरो० | 2477 |
| मारोदीश्चिरमेहि | 408 |
| मार्गं देहि पदं | 589 |
| मार्गं कर्दम० | 963 |
| मार्गं पङ्कचिते | 3614 |
| मार्गो भूरिमरु० | 776 |
| मार्जारमहिषयुद्धं | 2579 |
| मार्जाराक्षः कपिलः | 2830 |
| मार्जारी हिमवालुका | 3261 |
| मांसं मृगाणां | 1536 |
| मांसवेधं ततः | 1737 |
| मासि मासि समा | 483 |
| माहिषकरीषमूत्रि० | 2297 |

| | |
|---|---|
| माहिषघृतसह० | 3224 |
| मितं ददाति हि | 4011 |
| मितमायुर्वयो | 4092 |
| मित्रं कलत्र० | 4125 |
| मित्रं स्वच्छतया | 1554 |
| मित्रद्रुहः कृत० | 701 |
| मित्रस्वजनबन्धूनां | 1438 |
| मित्रे क्वापि गते | 3599 |
| मीनकोलवसा० | 2288 |
| मुकुन्द दामोदर | 732 |
| मुक्ताफलं तरोः | 3183 |
| मुक्ताभा नृकपाल० | 106 |
| मुक्तो मनपरि० | 3574 |
| मुखं तस्याः स्मितं | 3472 |
| मुखं पाण्डुच्छायं | 3422 |
| मुखं विकसित० | 3277 |
| मुखकृतविस० | 3826 |
| मुखमात्रेण | 160 |
| मुखे चन्द्रकसंवीतो | 1646 |
| मुखेन चन्द्रकान्तेन | 3371 |
| मुखेन नोद्गिरत्यूर्ध्वं | 249 |
| मुखे यद्वैरस्यं | 1053 |
| मुखे रथा गजा० | 1922 |
| मुखे हारावाप्ति० | 1262 |
| मुग्धस्य ते वद | 3430 |
| मुग्धा स्वप्नसमागते | 3409 |
| मुग्धे किं नखरैः | 3553 |
| मुग्धे तवास्मि दयिता | 3699 |
| मुग्धे दौर्लतिकां निधाय | 3419 |
| मुग्धे धानुष्कता | 3654 |
| मुग्धे प्रसारयसि | 3332 |
| मुञ्चति मुञ्चति कोशं | 1266 |
| मुञ्चतो घुरघुरा० | 2382 |
| मुण्डनवपन० | 2560 |
| मुण्डाः सर्वे शुभदाः | 2820 |
| मुण्डीचूर्णकषायेण | 3248 |
| मुण्डी जटी वल्कल० | 4173 |
| मुण्डो जटिलो नग्न० | 4030 |
| मुधैवैते वय० | 4245 |
| मुनेः कल्याण० | 3024 |
| मुरारातिर्लक्ष्मीं | 1068 |
| मुसलोलूखले | 2433 |
| मूकीभूय तमेव | 843 |
| मूत्रं निजं लेढि | 2371 |
| मूत्रं विधायाभिमुखं | 2599 |
| मूर्खो हि जल्पतां | 417 |
| मूर्छितं नैव विकलं | 1935 |
| मूर्तिमन्तमपि | 3653 |
| मूर्ध्नि तरोर्बहु | 2498 |
| मूलं भुजंगै० | 999 |
| मूलं सुवर्ण० | 2914 |
| मूलं हि शालपर्ण्याः | 2844 |
| मूलबन्धं च यो | 4416 |
| मूलादेव फलस्य | 1037 |
| मूलाधारस्थितं | 4475 |
| मृगच्छागादि० | 713 |
| मृगयुर्मृगयां गच्छन् | 2713 |
| मृगाङ्कीयं धत्ते | 3627 |
| मृगी खरं यदा | 3130 |
| मृगी वृषमजा | 3127 |
| मृगेन्द्रं वा | 901 |
| मृगेभ्यो रक्ष्यते | 902 |
| मृगैर्नष्टं | 903 |
| मृगो वेत्ति शिशु० | 1948 |
| मृग्यो वा कृष्ण० | 2753 |
| मृणालनाल० | 4632 |
| मृते भर्तरि या | 607 |
| मृत्युः शरीर० | 380 |
| मृत्योर्बिभेषि किं | 4172 |
| मृदुसंहतताश्लेष्ठा | 2833 |
| मृदूनां स्वादूनां | 1005 |
| मृदोः परिभवो नित्यं | 1397 |
| मृद्देहिकाल्पदेहापि | 4614 |
| मृद्भङ्गि कठिनौ | 3339 |
| मेघाटोपैः स्तनित० | 3873 |
| मेघैर्मेदुरमम्बरं | 69 |
| मेघो मल्लारिका | 2056 |
| मेधावी वाक्पटु० | 1336 |
| मेहति शुभप्रदेशे | 2359 |
| मेघैर्व्योम नवा० | 3900 |
| मेरूः स्थितोति० | 4049 |
| मोक्षणे चैव | 1853 |
| मोक्षद्वार प्र० | 4196 |
| मोहायितं कुटुमिनं | 3156 |
| मो भूमिः श्रिय० | 2065 |
| मोहादवाचि | 695 |
| मौनादस्तमितेव | 61 |
| मौनी पादप्र० | 286 |

मौलेः स्वर्णकिरीट०..... 1188
मौली सन्मणयो ..... 1174
म्यरस्तजभ्न० ..... 2062
स्वदीयस्त्वाभिवयाज्ञ ..... 1007
म्रियमाणं मृतं ..... 4169

य

यः करोत्यसकृन्मूत्रं ..... 1668
यः कृष्णं कुरुते ..... 864
यः कृष्णाण्डः श्वेतो ..... 2822
यः कौमारहरः स एव ..... 3768
यक्षः पुरस्तादवनि० ..... 2609
यक्षो भयन्नम्बरं ..... 2390
यक्षोर्चनीयो विधिना..... 2341
यक्षो हरिद्राभिष० ..... 2612
यच्चास्ति मित० ..... 4254
यच्छक्यं ग्रसितुं ..... 1308
यज्जानोसि पयो०..... 758
यज्जीव्यते क्षणमपि ..... 1481
यज्ञदाननपस्तीर्थ० ..... 685
यतः सत्यं ततो..... 1563
यतो गजैर्विना..... 1560
यतोयं सर्वजन्तूनां..... 3074
यतो यतोऽहादप०..... 3375
यत्कण्ठे गरलं..... 502
यत्करोत्यरतिं ..... 379
यत्नादपि कः ..... 873
यत्नोत्थापनमात्र० ..... 4056
यत्पद्ममादिन्दु तव० ..... 3660
यत्पादाः शिरसा ..... 747
यत्पूर्वं पवनाग्नि० ..... 1172
यत्र कामावसायित्वं ..... 4543
यत्र तत्र स्थितो०..... 2507
यत्र न मदनविकारः..... 3666
यत्र यत्र हनः ..... 1934
यत्रास्य स्थानं..... 4546
यत्रैवोत्पद्यते ..... 1873
यत्रोदारा दारा० ..... 3956
यत्सत्यव्रतभङ्ग० ..... 4081
यत्सद्भुजोपि सरलो० ..... 1198
यत्का इति त्रि० ..... 2480
यथाकाशवदेकात्मा ..... 4493
यथा जलं जलेन ..... 4494
यथा त्वजेत्तथा ..... 4460
यथा नयति कैलासं ..... 2061
यथा निशा सर्व०..... 4548
यथा पर्वतधातूनां ..... 4439
यथा प्रयुक्तः ..... 4477
यथाबीजाङ्कुरः ..... 1292
यथाम्भसि जले..... 338
यथा यथा विशत्य० ..... 3270
यथा यथास्याः कुचयोः..... 3285
यथा यथैव..... 372
यथा रजोभिः..... 4248
यथार्करश्मिसं० ..... 4613
यथा वातस्य ..... 4237
यथाशक्ति नि० ..... 4458
यथा सोम्निस्तदमृतं ..... 4413
यथा हिमप्रभा..... 4502
यथा हि साधितः..... 4441
यथेयं वाग्देवी ..... 182
यथैव ददुरो ..... 4387
यथैवमवमन्यन्ते ..... 4558
यथैवोत्पलनालेन ..... 4378
यथोदिते दिनकरे..... 4209
यदर्काशुक्रान्तः ..... 595
यदक्षिभ्रूलता०..... 4059
यदमी दशन्ति ..... 244
यदमरशैतैः सिन्धोः ..... 3319
यदम्बुकणमादाय ..... 789
यदर्ध्यते परि० ..... 378
यदस्माभिर्दृष्टं ..... 4128
यदा किंचिदज्ञोहं ..... 4177
यदा च नहुत्तरणे ..... 2646
यदा तु स नृप० ..... 4232
यदा त्वं चन्द्रोभूः..... 3564
यदा दक्षिणपादस्य ..... 2356
यदान्यत्र मनो ..... 4497
यदि कण्टकहीना..... 2205
यदि नाम दैव० ..... 811
यदि प्रियावियोगे० ..... 3449
यदि भवति कर्णिकारः ..... 2207
यदि मत्तोसि ..... 936
यदि वर्ष सहस्राणि ..... 4212
यदि वहति वामनाडी० ..... 2723
यदि वा मधु०..... 3209
यदि वेतसो० ..... 2176
यदि श्वा निजपुंश्चिह्नं ..... 2428

| | |
|---|---|
| यदिं श्वा पललं कृत्वा..... | 2435 |
| यदि समरमपास्य ..... | 3972 |
| यदि सहदेवी०..... | 3202 |
| यदि स्मरामि तां..... | 3462 |
| यदीच्छसि वशीकर्तुं ..... | 1426 |
| यदुक्तं ब्रह्मणः ..... | 1943 |
| यद्गम्यं गुरू ..... | 3561 |
| यद्दासि विशि०..... | 276 |
| यदेडायां मरूत्तस्वं..... | 2813 |
| यदेतच्चन्द्रान्त०..... | 1563 |
| यदेतत्कामिन्या ..... | 4170 |
| यदेतद्ब्रह्मज्ञानमाख्यातं ..... | 1401 |
| यदेतन्नेत्राभ्यः..... | 1171 |
| यदैव भर्ता जानीयात्..... | 495 |
| यद्यपि गुणैाघ०..... | 8 |
| यद्यपि चन्दन०..... | 1995 |
| यद्यपि दिशि दिशि..... | 1121 |
| यद्यपि न भवति..... | 1026 |
| यद्यपि बद्धः शैलैः..... | 1078 |
| यद्यपि बहुगुण०..... | 149 |
| यद्यपि शिरोधिरोहति ..... | 1756 |
| यद्यपि स्वच्छभावेन ..... | 2079 |
| यद्यददाति च बलिं ..... | 380 |
| यद्युत्तरन्तरूस्यन्ते ..... | 2752 |
| यद्येका दक्षिणगा ..... | 2706 |
| यद्वैरूप्यमनाथ०..... | 698 |
| यद्वद्वनमसिंहं ..... | 1564 |
| यद्वीचीभिः स्पृशसि ..... | 1090 |
| यद्वात्रौ रहसि..... | 3741 |
| यन्न माति तदङ्गेषु ..... | 3342 |
| यन्नागा मदभिन्न०..... | 681 |
| यन्नामकः श्वा प्र०..... | 2381 |
| यन्निमित्तं भवेत्..... | 1461 |
| यन्मनोरथशतैः..... | 453 |
| यन्मध्ये यच्च ..... | 4121 |
| यन्मुक्तामणयो०..... | 1112 |
| यन्लाकृष्टसुवर्ण०..... | 154 |
| यः पक्वैः क्रीडति ..... | 2614 |
| यः पीयूषसहो..... | 1164 |
| यं प्राप्य क्षितिपः..... | 4649 |
| यं लोकं वाजि०..... | 1697 |
| ययोरेव समं..... | 1475 |
| यवातिलनिशा०..... | 2278 |
| यवागूं चापि पक्वे ..... | 4511 |
| यः शौर्यावधि०..... | 917 |
| यः षड्विंशतिवर्षा०..... | 1995 |
| यः संतापमपा०..... | 809 |
| यः संबद्धो हयो..... | 1667 |
| यः सैन्ये स्मर०..... | 3721 |
| यशोदया मण्डित०..... | 1231 |
| यश्च सर्वात्मको..... | 4234 |
| यष्टीमधूकपुष्पाणि..... | 2250 |
| यशस्करे कर्मणि..... | 1406 |
| यस्तु प्रत्याहरेत्..... | 4465 |
| यस्तु भग्नेषु सैन्येषु ..... | 1932 |
| यस्तु संरोपये०..... | 2090 |
| यः स्नाति धूल्यां..... | 2495 |
| यस्मादर्थिजनो..... | 1041 |
| यस्मिंस्तित्तिरपक्षः..... | 4628 |
| यस्मिन्कुले यः..... | 1925 |
| यस्मिन्क्षेत्रे..... | 2209 |
| यस्मिन्खड्गे शरीरं ..... | 4660 |
| यस्मिन्देशे यथा..... | 2791 |
| यस्मिन्नुचै०..... | 952 |
| यस्मिन्नेवाधिकं ..... | 1382 |
| यस्मिन्बुद्बुद०..... | 1 |
| यस्मिन्यस्मिंस्तु कु०..... | 4536 |
| यस्मिन्यस्मिन्यदा..... | 4513 |
| यस्मिन्वेशे ..... | 363 |
| यस्मिन्वस्तुनि ममता..... | 4171 |
| यस्मिन्स्थाने क्षणं..... | 4554 |
| यस्मै ददाति विवरं ..... | 1176 |
| यस्य कस्यापि पुष्पस्य..... | 2243 |
| यस्य चाप्रिय०..... | 1428 |
| यस्य तृणसमा..... | 1857 |
| यस्य धर्मविहीनस्य ..... | 666 |
| यस्य नास्ति स्वयं..... | 413 |
| यस्य पादाः सिताः सर्वे तथा..... | 1644 |
| यस्य पादाः सिताः सर्वे पुच्छं ... | 1645 |
| यस्य प्रानः सुस्थितस्य ..... | 2440 |
| यस्य वस्तसमो ..... | 4577 |
| यस्य यस्य तु..... | 4652 |
| यस्य वज्रमणेर्भेदे ..... | 1099 |
| यस्य वै स्नात०..... | 4578 |
| यस्यां स केसरि०..... | 1213 |
| यस्याः कुसुमशय्यापि ..... | 3997 |
| यस्याः संगम०..... | 830 |
| यस्याकर्ण्य वचः..... | 846 |

| | | | |
|---|---|---|---|
| यस्याङ्गानां | 2895 | युक्तियुक्तं प्रगृह्णीयात् | 1452 |
| यस्याङ्के स्थूलरेखा | 4648 | युक्त्यानया भवेत् | 4498 |
| यस्याग्रे दृश्यते | 4663 | युक्त्या संतरतो | 4205 |
| यस्यादौ व्रज० | 968 | युगान्तकाल० | 4021 |
| यस्याभ्यासप्रसादेन | 1717 | युगे युगे च | 1316 |
| यस्याधो दृश्यते | 4662 | युधिष्ठिरोसि भीमोसि | 1228 |
| यस्यां प्रवहति | 2800 | युद्धं विधातुं चलित० | 2615 |
| यस्यापि हन्यते | 4579 | युद्धवादरत० | 2798 |
| यस्या महत्त्वभाजो | 1155 | युद्धार्थिनोनाम० | 2379 |
| यस्यावन्ध्य० | 916 | युद्धोद्यतयो राज्ञोः | 2378 |
| यस्यासीन्नव० | 955 | युद्ध्यन्ते पक्षि० | 270 |
| यस्यास्ति वित्तं | 333 | यूयं शाकारिदेवानां | 1602 |
| यस्योटजेपि वसतो | 2786 | ये कुण्ठीकृतवल्लभ० | 3726 |
| यास्त्रिफलाशफरी० | 2233 | ये गृह्णन्ति हठा० | 1109 |
| याः पश्यन्ति प्रियं | 3434 | ये जन्मादिशुभाशुभं | 3320 |
| यचिनव्या गुरो० | 1832 | ये जाने व्यसने | 248 |
| यातं यौवनमधुना | 4160 | ये जान्या लघवः | 792 |
| याताः किं न मिलन्ति | 3465 | ये तत्र लीनाः | 4270 |
| याता यान्ति च | 150 | ये दीनेषु दया० | 228 |
| यातीतः पान्थ पन्थाः | 1273 | ये दोलाकेलिकाराः | 3816 |
| यात्रामङ्गलसंविधान० | 3437 | येन केनचिदा० | 4549 |
| यात्रायां गच्छतां | 2647 | येन जीवति जीवो | 4317 |
| यात्रायां निश्चिरि० | 2727 | येन स्वां विनिहत्य | 4083 |
| यात्रायामुच्चरन्नाम० | 2739 | येनाहूतः समभ्येति | 1328 |
| यात्रास्वपि वाम० | 2640 | येनानन्दमये | 844 |
| यात्रोद्यमे सैन्य० | 2672 | येनानर्गल० | 908 |
| यानि मिथ्या० | 1311 | येनामोदिनि | 837 |
| यान्ति प्रसादं | 4455 | येनोन्मथ्य तमांसि | 744 |
| या बिम्बोष्ठरुचिः क | 3396 | ये पूर्वं परिपालिताः | 985 |
| यामीनि प्रियपृष्टायाः | 3387 | ये राजपुत्राः | 1924 |
| या मेदिनी काश० | 2226 | ये वर्धिनाः | 834 |
| यां यां प्रियः | 3525 | येषां निमेषो० | 4111 |
| या यानि मौनिनी | 2705 | येषां वल्लभया समं | 4106 |
| यावतः कुरुते | 4139 | येषु येषु दृढा | 4120 |
| यावत्फलोदय० | 1023 | ये संतोषसुख० | 1065 |
| यावत्स्वस्थमिदं | 679 | ये संसत्सु | 206 |
| यावद्दिनानि | 2089 | ये सूक्तीन्दुकला | 143 |
| यावद्यावत्कुवलय० | 3316 | यैर्बुधाः कथयन्त्याशु | 1666 |
| या वहनि तत्र | 2558 | योगयुक्तः सदा | 4531 |
| या संख्या रोमकूपाणां | 1696 | योगिचर्या ततः | 55 |
| यासां कटाक्षविशिखैः | 3299 | योगिनां ज्ञान० | 4590 |
| यासां सत्यपि | 3079 | योगिना सततं | 4600 |
| यास्यामीति समुद्यतस्य | 3435 | योजनेशेषे नगर० | 2559 |
| या स्वसद्मनि | 471 | यो दिव्याम्बु० | 805 |

| | |
|---|---|
| यो दृष्टः स्फुटदस्थि० | 1019 |
| योद्धव्यमद्यैव० | 2616 |
| यो न कामान् | 684 |
| यो न ददाति | 387 |
| यो न दीर्घ० | 3949 |
| योनिद्वारविनिष्क्रान्तो | 4328 |
| यो मे गर्भगतस्या० | 312 |
| योयमर्थं प्रार्थयते | 1436 |
| यो राजा भक्तां | 1603 |
| यो वल्लभासन्न० | 3169 |
| यो हन्ति शर० | 1870 |
| यौ तौ शङ्खकपाल० | 111 |

र

| | |
|---|---|
| रक्तकपिलिङ्ग० | 3212 |
| रक्तकृष्णाम्बर० | 4581 |
| रक्तं नक्तंचरौघः | 3975 |
| रक्तमांसमयः | 4142 |
| रक्ताब्जपुञ्ज० | 858 |
| रक्ष पात्रगतं स्नेहं | 1195 |
| रक्षन्ति कृपणाः | 472 |
| रक्षन्ति पक्षं मुदिताः | 1573 |
| रक्षां कुर्वीत | 3022 |
| रक्षामालिकया बाले | 3669 |
| रङ्गताले च विजयो | 1999 |
| रजन्यामन्यस्यां | 3509 |
| रजसा तमसो | 4463 |
| रटतु जलधरः | 3874 |
| रतखिन्नतनुं | 3745 |
| रतान्ते स्त्री यथात्मानं | 4483 |
| रतिकृति गते | 3712 |
| रतिरभसनितान्त० | 3688 |
| रत्नभित्तिषु | 4023 |
| रत्नाकरतनु० | 1140 |
| रत्नानां न किमालयो | 1072 |
| रत्नानि विभूषयन्ति | 3086 |
| रत्नैरापूरितस्यापि | 1080 |
| रथस्थेन गजस्थेन | 1871 |
| रथस्थैकं चक्रं | 503 |
| रथे च धारये० | 1905 |
| रथेभ्यो गज० | 3984 |
| रथ्याकूपतरु० | 2979 |
| रथ्या रजोरुणित० | 3407 |
| रभायाः सुपरिणतेः | 2142 |
| रम्भोरुहंस० | 3096 |
| रम्यं हर्म्यतलं | 4114 |
| रविमणिरपि | 3968 |
| रविर्नृपविलोकने | 664 |
| रवेः कवेः | 554 |
| रवेरेवोदय० | 737 |
| रवेर्मयूखैरभि० | 3838 |
| रसतालादिवर्ण० | 1977 |
| रसति तरूणी० | 3890 |
| रसवदमृतं कः सं० | 3312 |
| रसालशिखरा० | 848 |
| रसोनरस० | 2941 |
| रहो नास्ति क्षणो | 1499 |
| राजतालाभिधाने | 2022 |
| राजन्द्विषस्ते | 1279 |
| राजन्राजमृगाङ्क | 1258 |
| राजन्राजसुता न | 1268 |
| राजपुत्रे द्वितीयेन्दुः | 3147 |
| राजमातरि देव्यां | 1384 |
| राजविनोदनाले | 2027 |
| राजा घृणी ब्राह्मणः | 1541 |
| राजा तुष्टोपि भृत्यानां | 1386 |
| राजानो यं प्रशंसन्ति | 1324 |
| राजास्य जगतो | 1231 |
| राजिका तिल० | 2994 |
| राजीकरञ्ज० | 2966 |
| राज्ञा दत्त्वा तु षड्भागं | 640 |
| राज्ञि धर्मिणि | 1286 |
| राज्ञो रणं नैव | 2391 |
| रात्रावेरण्डपत्रै० | 3059 |
| रात्रिर्गमिष्यति | 1181 |
| रात्रिसंभोगचेष्टायाः | 46 |
| रात्रौ गृहस्योपरि | 2462 |
| रात्रौ वारिभरा० | 3891 |
| रामं दूर्वा० | 736 |
| रामरक्षां पठे० | 3026 |
| रामस्त पञ्चमे | 3145 |
| रामाणां रमणीय० | 3732 |
| रामाभिषेके मद० | 508 |
| रामो नाम बभूव | 120 |
| रिक्ताः कर्मणि | 1330 |
| रिक्तीकरोति पूर्णं | 2780 |
| रिपुरिव सखीसं० | 3431 |
| रुचिरस्वरवर्ण० | 523 |

रुजं शोकं भये ..... 2452
रुदन्ती नाम० ..... 3028
रूक्षशावविषाण० ..... 4616
रूक्ष्मश्यामपुरस्य ..... 884
रूढस्य सिन्धुनट० ..... 1060
रूढे चैव भवेन्नो ..... 2771
रूपावनेर्गतिच्छाया: ..... 1679
रूप्यपत्रसमा ..... 4634
रे कीर कैतव० ..... 849
रेखया कुण्डलं ..... 3019
रे धृष्टा धार्तराष्ट्रा: ..... 4087
रे पद्माकर याव० ..... 1132
रे पद्मिनीदल ..... 1133
रे बालकोकिल ..... 847
रे मातङ्ग मदा० ..... 915
रे राजहंस किमिति ..... 804
रे रे शिष्ट बकोट ..... 895
रे लाङ्गलिक ..... 1185
रेवावारिणि ..... 922
रोगार्त: क्षुधितो ..... 2589
रोगार्दिते भेषज० ..... 2617
रोगी चिरप्रवासी ..... 404
रोचनामीन० ..... 3197
रोमन्थमारचय ..... 949
रोलम्बस्य चिराय ..... 1011
रोलम्बैर्न ..... 976
रोहणाचलशैलेषु ..... 1071
रोहिणीषु कर० ..... 663
रोहिणीसहित० ..... 662
रोहितमत्स्यौघ० ..... 2181
रौक्ष्यं ग्रन्थि: कुटिलता ..... 2263
रौरवं कूट० ..... 708

## ल

लङ्कापते: ..... 161
लक्ष्मणा शिखि० ..... 3240
लक्ष्मणो लघु० ..... 3987
लक्ष्मीक्रीडानडागो ..... 3644
लक्ष्मीपयोधरो० ..... 278
लक्ष्मीर्यादोनिधे: ..... 529
लक्ष्मीसंपर्कजातो ..... 1139
लक्ष्यं चतुर्विधं ..... 1807
लक्ष्यबाणाग्र० ..... 1854
लक्ष्यस्थाने धृतं ..... 1864
लक्ष्यस्थाने न्यसेत्कार्यं ..... 1867
लक्ष्यस्थाने न्यसेत्काष्ठं ..... 1872
लक्ष्ये बिन्दुं न्यसे० ..... 1868
लक्ष्म्या परिपूर्णोहं ..... 340
लक्ष्म्या परिपूर्णोहं ..... 1501
लज्जा नांशुकपल्लवे ..... 3388
लघवश्च तथा ..... 4677
लघु: शुक्रो गुरू० ..... 2068
लघुत्रयं द्रुत० ..... 2013
लघुत्रयं विरामान्तं ..... 2014
लघुत्वं मातृदोषेण ..... 1700
लघुद्वयं गुरुश्चैक० ..... 2000
लघुद्वयं विरामान्तं ..... 2007
लघुद्वयं० द्रुतलयेन ..... 2010
लघुद्वयं० समरो० ..... 2011
लघुनि तृणकुटीरे ..... 3922
लघुर्गुरुर्लघु० ..... 1998
लघुर्गुरुश्च भवति ..... 2017
लघुर्वृत्तौ गुरू० ..... 2025
लघोर्गुरो: प्लुतस्या० ..... 2070
लज्जालुधातकी० ..... 3241
लज्जां विहाय रुदितं ..... 3385
लज्जावशावनत० ..... 3759
लट्वा दक्षिणगमना ..... 2730
लब्धं जन्म सह ..... 759
लब्धास्त्यक्ताश्च ..... 4133
लब्धोच्छ्रायो ..... 351
लभेत सिकतासु ..... 415
लम्बैर्वृषणमेषोदरैश्च ..... 2836
ललितमुरसा तरन्ती ..... 3847
ललितो गुर्जरी ..... 2054
लवणं सरसं ..... 4383
लाक्षालक्ष्म ललाट० ..... 3740
लाजा: कुर्श्वं नखं ..... 2854
लाभं हानिं विदधति ..... 2321
लाभकारि भवेदैन्द्र्यां ..... 2759
लाभदश्चिलचिलीति ..... 2685
लाभस्तेषां जय० ..... 1909
लालास्रुति: सित० ..... 2896
लावण्यामृतदीर्घिका ..... 3266
लावण्यामृतनिर्झरेण ..... 3284
लिखति न गणयति ..... 3403
लिखन्नास्ते भूमिं ..... 3551
लिप्तपूरितचतुष्क० ..... 2410
लिम्पतीव तमोङ्गानि ..... 3603

| | |
|---|---|
| लीढव्यस्त० | 592 |
| लीलादोलातिखेला० | 3815 |
| लीलास्मितेन | 546 |
| लुलितनयनतारः | 3725 |
| लोकः शुभस्तिष्ठतु | 3969 |
| लोभः सदा | 428 |
| लोभश्चेदगुणेन | 1553 |
| लोलैर्लोचनवारिभि० | 3395 |
| लोहं प्रधानं | 4672 |
| लोहप्रधानं तनू | 4674 |
| लोहानां लक्षणं | 4622 |
| लोहितायति चादित्ये | 3983 |


## व


| | |
|---|---|
| वंशः प्रांशुरसौ | 1187 |
| वंशत्वग्जतु० | 2976 |
| वक्तां बिभ्रतः | 368 |
| वक्रादिदोषरहिता० | 2681 |
| वक्रा नैष तनू | 1191 |
| वक्रेण शिरसि | 3818 |
| वक्रैः क्रूरतरै० | 1515 |
| वक्त्रं शीतकरो० | 94 |
| वक्त्रश्रीर्जित० | 3928 |
| वक्षःपीठे निरीक्ष्य | 103 |
| वक्षस्यावरणादरः | 3280 |
| वक्षोथ कण्डूयति | 2355 |
| वक्ष्यन्ते प्रायशो | 4624 |
| वचा सौवर्चलं | 3205 |
| वज्रादपि | 215 |
| वज्रेण त्रिजगत्पते | 3868 |
| वटनिवशमीक० | 2964 |
| वटवृक्षद्वयं | 2093 |
| वटवृक्षो महा० | 539 |
| वत्सकर्णैः स | 1806 |
| वदनशनिनः स्पर्शो | 3711 |
| वधं बन्धं रुजं ब्रूते | 2637 |
| वनस्पतिद्रुम० | 2124 |
| वनानि दहतो | 488 |
| वने जाता वनं | 515 |
| वन्ध्याकर्कोटिका | 2865 |
| वपुः परीणाहगुणेन | 1103 |
| वपुरनुपमं नाभे० | 3354 |
| वपुर्विषम० | 950 |
| वपुषः सुकृता० | 4101 |
| वयं बाल्ये बालां | 3761 |
| वयं येभ्यो जाता० | 4113 |
| वयःप्रकर्षादुप० | 3344 |
| वयमिह परि० | 308 |
| वयस्याः क्रीष्टारः | 3974 |
| वयोवृद्धाः | 334 |
| वरं दारिद्र्यमन्याय० | 1441 |
| वरं प्राणाधिको | 1743 |
| वरं वनं वरं भैक्ष्यं | 1374 |
| वरं हालाहलं | 259 |
| वरत्रूविघट० | 790 |
| वरमश्रीकता | 1136 |
| वरमसौ दिवसो | 3426 |
| वरमहिमुखे | 255 |
| वरमुन्नतलाङ्गूलात् | 493 |
| वरस्य कन्यावर० | 2367 |
| वरस्य परिणीतस्य | 2740 |
| वरूणस्य फलात् | 2851 |
| वरोपि हित० | 1307 |
| वर्जनीयो मति० | 367 |
| वर्जयेत्पूर्वतो० | 2106 |
| वर्जयेदिन्द्रियजये | 1519 |
| वर्णनदयितः | 4053 |
| वर्णैः षोडशभिः | 1985 |
| वर्णैश्च सप्त० | 1986 |
| वर्धितैः सेवितैः किं | 1033 |
| वर्षति मेघे नितरां | 525 |
| वर्षन्ति रत्नवर्षाण्यत्नवतो | 3490 |
| वर्षानिमित्त० चेष्टाः प्रशस्ताः | 2373 |
| वर्षानिमित्त० चेष्टाविशिष्टा० | 2372 |
| वर्षानिलरजो० | 1412 |
| वर्षासु च शर० | 2154 |
| वल्गत्कुचं व्याकुल० | 3698 |
| वल्मीकमूर्धनि | 2217 |
| वल्मीकसंवृतो | 2195 |
| वल्मीकोपमितायां | 2180 |
| वल्लीनां कति न | 1061 |
| वल्लीवल्कलकच० | 2483 |
| वश्यं कर्तुं यथेच्छातो | 4440 |
| वसन्ति सुरलोके | 686 |
| वसन्त्यरण्येषु | 945 |
| वसुंधरायाः कमपि | 2412 |
| वस्तु विक्रयकर्तव्ये | 2763 |
| वस्त्रं गां च बहु | 5417 |

| | | | |
|---|---|---|---|
| वस्त्रे ग्रन्थि | 2942 | वामो विभागो निज० | 2690 |
| वह्निं खरतरं | 3054 | वायुः परिचितो | 4389 |
| वह्निमारुत० | 1944 | वायुर्दक्षिणनाड्या | 2722 |
| वह्नेः शक्तिर्जल० | 3936 | वायुवच्चञ्चलं | 4474 |
| वाग्दण्डः कर्मदण्डश्च | 4547 | वारिणा यावता | 2155 |
| वाङ्मात्रमुच्यते | 1952 | वारुण्यां ध्वनित० | 2514 |
| वाङ्माधुर्यान्नान्य० | 1427 | वार्ताकबीजं घृत० | 2299 |
| वाचयति नान्य० | 4042 | वासः खण्ड० | 409 |
| वाचो वाग्मिनि किं | 3579 | वासः शुभ्रमृतु० | 1559 |
| वाच्यानां च | 3175 | वासः शैलशिला० | 997 |
| वाजी चारुगतिः | 1555 | वासना द्विविधा | 4197 |
| वातार्कीर्णविशीर्ण० | 3856 | वासनावागुरा० | 4225 |
| वातान्दोलित० | 802 | वासा ब्राह्मी वचा | 2079 |
| वाता वान्तु कदम्ब० | 3901 | वासुदेवे मनो | 691 |
| वातोद्भूतमुखी प्रनष्ट० | 3611 | विंशत्या च नखै० | 1580 |
| वानरं चपलं | 3220 | विकचकचकलापः | 3288 |
| वान्ति कह्लारसुभगाः | 3916 | विकचकमलगन्धि० | 3729 |
| वान्ति रात्रौ रति० | 3915 | विकसति नय० | 533 |
| वान्त्या मूत्रपुरीषं | 4569 | विकिरति मुहुः | 3498 |
| वापीतोयं तट० | 3600 | विकीर्णहरिचन्दन० | 4078 |
| वामं रोदनमाहुः | 2571 | विकृतिं नैव | 323 |
| वामः पूर्वं दक्षिण० | 2728 | विक्रमा गति० | 1694 |
| वामकरानामिकया | 2868 | विघटितमर्थं घट० | 2777 |
| वामकेन यदि | 2632 | विघाते वचसो | 4512 |
| वामगा दक्षगा | 1849 | विघ्नेशो वः स | 90 |
| वामनाख्यं महा० | 4645 | विचारदर्पणे | 4208 |
| वामविभागे सफलं | 2761 | विजयाख्यो ध्रुवः | 1991 |
| वामविरावा वामे | 2691 | विजिगीषुररि० | 1296 |
| वामस्कन्ध० | 590 | विजितात्मभव० | 518 |
| वामस्याधः स्फुरण० | 2545 | विजृम्भते लेढि च | 2631 |
| वामस्वरा समृद्धिं | 2708 | विजेतव्या लङ्का | 504 |
| वामहस्ते तु सं० | 1815 | विडङ्गसम० | 3038 |
| वामां दिशं दक्षिण० | 2597 | विड्रोमये न्यस्यति | 2487 |
| वामाङ्गीकृतवामाङ्गि | 62 | विण्मांसभक्षादिक० | 2630 |
| वामाङ्गे वामचेष्टाश्च | 2405 | वितरति गुरुः | 414 |
| वामादक्षिणगमना | 2689 | विदेहेषु तथाङ्गेषु | 4673 |
| वामा प्रदीप्ति ककुभः | 2641 | विद्या चण्डांसि० | 2971 |
| वामावर्तैर्वामे | 2835 | विद्युदाहतवृक्षस्य | 2160 |
| वामेन गच्छन्पथिकः | 2610 | विद्यायां दुर्मदो | 497 |
| वामेन गत्वा विनि० | 2659 | विद्यावतः कुलीन० | 396 |
| वामेनैव श्रमं | 1816 | विद्राणे रुद्रवृन्दे | 112 |
| वामेपसव्ये पुरनो० | 2638 | विधूतकर्णे शुनि | 2633 |
| वामे विधाय शब्दं | 2703 | विधे पिधेहि | 499 |
| वामे विहितविचारा | 2704 | विध्वस्ता मृग० | 1159 |

| | | | |
|---|---|---|---|
| विनतः पूर्वकायेन | 1708 | विश्वासहन्ता | 722 |
| विना मद्यं विना | 4045 | विश्वोपजीव्येपि | 866 |
| विना शार्ङ्गधरं | 1715 | विषधरतो० | 349 |
| विनैवाम्भोवाहं | 3520 | विषपाषाण० | 2117 |
| विन्ध्यमन्दर० | 1064 | विषमा मलि० | 353 |
| विन्ध्याद्रिः करिसाधने | 1264 | विषमा हरिणा गौरा | 2746 |
| विपत्प्रशान्त्यै | 4091 | विषयद्वारनि० | 4391 |
| विपदि धैर्यं० | 209 | विषयेष्वपि कष्टो | 4190 |
| विपन्नं पद्मिन्या | 981 | विषहीनो यथा नागो | 1364 |
| विपुलकुचा पृथु० | 3102 | विष्ठावमिश्वास० | 2400 |
| विपुलहृदया० | 149 | विष्णुकान्ता च | 1888 |
| विप्रेभ्यो दक्षिणां | 1880 | विष्णुनाप्यक्षयो | 4277 |
| विभागेन समाना० | 1490 | विसंस्थुलावेश० | 3173 |
| विमर्शकः शाकुन० | 2329 | विस्तीर्णा दीर्घि० | 1034 |
| विमुञ्चन्त्या प्राणा० | 3492 | विस्वरं विरसं | 1961 |
| वियत्पुच्छाच्छोटो० | 82 | विहरन्ति जगत्येके | 4341 |
| विरमत घनाः किं | 3898 | विहाय पौरुषं | 456 |
| विरमत विरमत सख्यो | 3432 | वीणावंश० | 325 |
| विरम तिमिर | 763 | वीरोसौ किमु० | 3991 |
| विरम नाथ विमुञ्च | 3675 | वृकव्याघ्रतरक्षवृ० | 2962 |
| विरलविरलीभूता० | 3718 | वृक्षं क्षीणफलं | 1543 |
| विरहविषमः कामो | 3572 | वृक्षस्याग्रानि० | 2268 |
| विराजतेस्यास्तिलको | 3295 | वृक्षमूर्ध्नि यथा | 4481 |
| विरामान्तं द्रुत० | 2005 | वृक्षांश्छित्त्वा महीं | 639 |
| विलपति तथा | 780 | वृक्षान्दोलनमद्य | 1216 |
| विलम्बिनो यत्र | 2168 | वृक्षायुर्वेदफलं | 2276 |
| विलासमसृणो० | 582 | वृक्षस्यैका शाखा | 2203 |
| विलिप्तं मधुना चित्रं | 2848 | वृत्ताकेसूत्र० | 1767 |
| विलोक्य संगमे | 3586 | वृथा वृष्टिः समुद्रेषु | 1454 |
| विकसदसित० | 1713 | वृद्धकर्पास० | 2948 |
| विवादो धनसं० | 1469 | वृद्धदारूकमूलं | 2080 |
| विवाहार्थे शुभः | 2413 | वृद्धिर्यस्य | 986 |
| विविक्तः शान्त० | 4251 | वृद्धेन्धः पति० | 410 |
| विवेकी सघृणो विप्र० | 1614 | वृश्चिककण्टक० | 2241 |
| विशदः शम्भुरित्येते | 2339 | वृश्चिको वस्तुमध्ये | 2541 |
| विशन्नस्थिमुखो | 2442 | वृषणौ च समौ वृत्तौ | 1630 |
| विशाखस्थानके | 1838 | वेगाङ्खलद्विटप० | 869 |
| विशिष्टकविशंसा | 15 | वेगादुत्सुकमागते | 3539 |
| विशुद्धिः कण्ठे | 4299 | वेगो रोमाञ्च० | 2894 |
| विशोधय महीं० | 1350 | वेणीबन्धकपर्दिनी | 3168 |
| विश्रम्य विश्रम्य वन० | 3399 | वेणी विडम्बयति | 3378 |
| विश्रान्तो दिवस० | 3420 | वेदवेदाङ्ग० | 1333 |
| विश्लेषाकुल० | 3592 | वेदानुद्धरते | 80 |
| विश्वस्य हेतु० | 542 | वेदार्थशास्त्रकाव्यार्था | 4524 |

| | |
|---|---|
| वेदाहमेतं पुरुषं | 4487 |
| वेदने चैव मांसस्य | 1738 |
| वेपथुर्मलिनं | 393 |
| वेपन्ते कपयो | 3921 |
| वैद्यं पानरतं नटं | 1542 |
| वैद्यनाथ नम० | 4038 |
| वैद्यस्य गच्छतो | 2767 |
| वैराग्यभङ्गि० | 4027 |
| वैरेचनफल० | 2915 |
| वैशाखे निरुपद्रवे | 2496 |
| व्यङ्ग्यमानकलङ्कस्य | 754 |
| व्यथयतितरां | 491 |
| व्यन्तरगोनस० | 2928 |
| व्याकुलोपि विपत् | 1527 |
| व्याघ्राभश्च स्तनौ | 1657 |
| व्याघ्राभो व्याघ्रवर्णः | 1661 |
| व्याघ्रीव तिष्ठति | 4093 |
| व्याधिर्वित्तविनाश० | 699 |
| व्याधिवधबन्ध० | 2757 |
| व्यालग्राही यथा | 609 |
| व्यालोलःकेशपाशः | 3704 |
| व्यावृत्तं खलु | 3559 |
| व्यासादीन् | 205 |
| व्योमव्यालोलमुक्ता० | 3852 |
| व्योम्नि मूकमप्र० | 4534 |
| व्योषपिच्छ० | 2926 |
| व्योषाजाजि० | 1710 |
| व्रजति रति० | 3143 |
| व्रजत्यधोधो यात्युच्चै० | 1503 |
| व्रजत्यपरवारिधिं | 3719 |
| व्रजन्ति ते मूढ० | 1403 |
| व्रजेत्पुरस्तान्यादि | 2601 |
| व्रीडायोगान्नत० | 3464 |


## श


| | |
|---|---|
| शकटारोपितभाण्ड० | 2785 |
| शकुनः शकुनं दत्त्वा | 2586 |
| शक्तिरहितोपि | 1532 |
| शकादरक्षि यादि | 1069 |
| शङ्कुः कीलश्च | 2016 |
| शङ्खाः सन्ति सहस्रशो | 1119 |
| शतधौतं नवनीतं | 2878 |
| शतपदी सर्ति... | 1215 |
| शतमेकोपि संधत्ते | 1365 |
| शपथैः संधितस्या० | 1302 |
| शब्दं कृत्वोड्डीयते | 2736 |
| शब्दवद्भिरलंकारैः | 3331 |
| शब्दादिभ्यः प्र० | 4461 |
| शब्दानुशासन० | 1953 |
| शब्दार्थयोः | 179 |
| शब्दार्थानखिलान् | 4525 |
| शमितनिखिल० | 3710 |
| शय्यादीपाधम० | 623 |
| शय्यापुष्पमयी | 3412 |
| शरजालाञ्चित० | 1566 |
| शरणागतरक्षा० | 683 |
| शरतोमरचक्रैश्च | 1597 |
| शरत्स्वभावव्याख्यानं | 48 |
| शरदि न | 245 |
| शरदि समयनिशाकर० | 492 |
| शरणां कथितं | 1820 |
| शराश्च त्रिविधाः | 1774 |
| शरीरं न नयत्येव | 4599 |
| शरीरलघुता दीप्ति० | 4382 |
| शरीरातीतवृत्तिः | 4247 |
| शर्करासैन्धवं | 3235 |
| शर्करातिलगो० | 2274 |
| शलभाः सारसाः | 3018 |
| शलभास्खपतङ्गानां | 2162 |
| शशकुमांसमृङ्मध्ये | 2307 |
| शशभृन्नवपल्लवे | 3398 |
| शशशरटकोल० | 2756 |
| शशाङ्कनाड्यामथ | 2716 |
| शशिनखगिरि० | 3259 |
| शशी दिवसधूसरो | 1530 |
| शस्त्रैर्नभिन्नदेहोपि | 1608 |
| शाखाशतचिन्त० | 973 |
| शाखासंततिसं० | 1051 |
| शाखोट शात्मलि० | 982 |
| शाठ्येन मित्रं कपटेन | 1538 |
| शाणद्वयमितं चूर्णं | 2867 |
| शान्तसंदेह० | 4215 |
| शान्तस्यापगते० | 4236 |
| शान्तामैन्द्रीं ककुभं | 2474 |
| शान्तायां दिशि वृक्षेषु ग्राम० | 2466 |
| शान्तायां दिशि वृक्षेषु शुभेषु | 2468 |
| शान्तासु दिक्षु | 2648 |

| | |
|---|---|
| शान्ते मन्मथसंगरे..... | 3703 |
| शान्तो भीमेपि ..... | 2680 |
| शाम्भलाश्वार्बुला० ..... | 1677 |
| शारीरैः कर्मभि० ..... | 717 |
| शार्ङ्ग पुनर्धनु० ..... | 1757 |
| शालिमण्डेन ..... | 3013 |
| शालेयेषु शिलातलेषु ..... | 771 |
| शाल्मलीतलनि०..... | 2846 |
| शाल्मलीत्वङ्निशा० ..... | 2279 |
| शास्त्रसत्सङ्ग० ..... | 4224 |
| शास्त्राणि तावद० ..... | 2084 |
| शास्त्रार्द्धि सकलं ..... | 4620 |
| शिखास्थाने न्यसे०..... | 1732 |
| शिखिग्रीवानु० ..... | 1786 |
| शिखिपिच्छवचा० ..... | 2923 |
| शिग्रुजटारस० ..... | 3010 |
| शिरः कूर्चं च ..... | 3066 |
| शिरः सुधौतं..... | 659 |
| शिरश्छायां कृष्णः ..... | 79 |
| शिरसा धार्यमाणो ..... | 753 |
| शिरसि निहितो० ..... | 369 |
| शिरीषपुष्पं ..... | 2908 |
| शिरीषबीज० ..... | 2907 |
| शिरीषशाखिनां ..... | 2097 |
| शिलागोरोचना० ..... | 3199 |
| शिलातालक० ..... | 2955 |
| शिला सम्यग्धौत० ..... | 3303 |
| शिवः शवरूपेण ..... | 2870 |
| शिवस्य शक्तिर्ज्वलिस्ति..... | 4503 |
| शिशिरसीकर०..... | 3897 |
| शिष्याय मानुषं ..... | 1735 |
| शीकारातिभय०..... | 1473 |
| शीघ्रं भूमिगृहे ..... | 3411 |
| शीतः सुरभिर्वरजाः..... | 2566 |
| शीतलादेव ..... | 3862 |
| शीतार्तिप्रसर०..... | 3933 |
| शीतास्वप्सु निषिच्य०..... | 619 |
| शीतोष्णादिभि०..... | 4507 |
| शीर्षे नरस्योपविष्ट०..... | 2485 |
| शीलाविज्जामारूला०..... | 163 |
| शुक यत्तव ..... | 86 |
| शुकतुण्डच्छवि०..... | 874 |
| शुकहरितयवानां..... | 3920 |
| शुकान्योक्तिस्तनो,..... | 25 |
| शुकीचञ्चूत्खात०..... | 3338 |
| शुक्रशोणित०..... | 4290 |
| शुक्लेभिके भवेत् ..... | 4291 |
| शुचिः स्नातो बिभ्र०..... | 2136 |
| शुचि भूमिगतं ..... | 611 |
| शुचिरिति परितः ..... | 3593 |
| शुद्धं हेम श्रक्ष्ण०..... | 3050 |
| शुद्धरागसमुत्पन्नं..... | 1963 |
| शुद्धसूडोन०..... | 2034 |
| शुद्धेशुद्धश्च ..... | 3152 |
| शुनकोत्तमास्मिन्..... | 2336 |
| शुना निमित्ताद्वि०..... | 2392 |
| शुभः प्रागशुभः..... | 2592 |
| शुभः स्यात्प्रविशन् ..... | 2799 |
| शुभवासनया चेतो ..... | 4200 |
| शुभस्वरो यः शुभ०..... | 2396 |
| शुभादनन्तरं ..... | 2769 |
| शुभाशुभाभ्यां मार्गाभ्यां..... | 4198 |
| शुभा सदैव कौबेर्यो ..... | 2503 |
| शुभ्रायाः शर०..... | 1895 |
| शुक्लं पार्श्वद्वयं..... | 4631 |
| शुश्रूषस्व गुरू०..... | 3770 |
| शुष्ककटिः ..... | 3107 |
| शूरमारोहकं कुर्यात्..... | 1595 |
| शूद्रश्च ब्राह्मणी ..... | 726 |
| शूद्राश्चान्येषु कृत्येषु ..... | 1616 |
| शून्यं गमनं नि० ..... | 2809 |
| शून्यं वेश्म चिरा०..... | 3774 |
| शून्येषु चावकाशेषु ..... | 4470 |
| शूरोर्थशास्त्र०..... | 1338 |
| शूलेन पाहि ..... | 1898 |
| शृङ्गारवीरकरुणा०..... | 3073 |
| शृङ्गिमत्स्य०..... | 2960 |
| शृणु सखि कौतुकमेकं ..... | 4058 |
| शृणोत्याश्चर्यवत्कोपि ..... | 4484 |
| शेफाली शत०..... | 3207 |
| शेषवासुकि०..... | 2882 |
| शैत्यं नाम गुण०..... | 1165 |
| शोफवान्स्निग्ध०..... | 2890 |
| शोषं गते सरसि..... | 785 |
| श्यामाकपुष्पचित्राङ्गो ..... | 2832 |
| श्यामा कृष्णा शकुनि०..... | 2676 |
| श्यामानगर०..... | 3062 |
| श्यामानिदीर्घजिह्वा०..... | 2829 |

श्यामासुरभि० ..... 2963
श्रमं च कुर्वन्० ..... 1826
श्रमयति शरीरं ..... 3302
श्रमेण चिन्तयोधिस्वं ..... 1813
श्रमेणास्खलितं ..... 1812
श्रवणाञ्जलि० ..... 173
श्रवोमलेन ..... 2903
श्रीफलसमवक्षोजा ..... 3094
श्रीभोज साम्प्रं तव ..... 1253
श्रीमूलमण्डनं यस्य ..... 1605
श्रीविष्णुधर्मो० ..... 4689
श्रुतं दृष्टं स्पृष्टं ..... 3087
श्रुतिस्मृत्युक्तमाचारं ..... 1525
श्रुत्वा कुम्भसमुद्भवेन ..... 1178
श्रुत्वापि वदनभ्यासो ..... 4188
श्रुत्वा बालमृगी०..... 3889
श्रूयतां ज्ञान०..... 4252
श्रूयतां धर्मसर्वस्वं ..... 670
श्रेयो धनार्थिनां ..... 672
श्रोत्रियं सुभगा० ..... 598
श्राध्यं कपीस० ..... 1054
श्राध्या महता० ..... 226
श्लेषे केचन ..... 177
श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि ..... 4420
श्वश्वानभल्लभषणाः..... 2330
श्वा चेद्वरस्याभि० ..... 2369
श्वानावुभावप्यभि० ..... 2383
श्वासः किं त्वरिता ..... 3507
श्वेतं पदं समभि० ..... 4146
श्वेतवर्चा घृत० ..... 2933
श्वेताद्रिकर्णिका०..... 1892
श्वेता द्विजाः क्षत्रियकाश्च..... 2331
श्वेतो विश्वंभरकः..... 2188

## ष

षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रः ..... 1354
षट्त्रिंशद्वर्ष०..... 3027
षडक्षरेण ..... 693
षडङ्गुलो भवेन्मध्यः ..... 1638
षड्जं वदेन्मयूरो..... 2047
षड्जर्षभ० ..... 2042
षड्जादयः स्वराः ..... 2043
षड्भिः प्राणैः पलं..... 4258
षड्भिर्दन्तैः सिताभै० ..... 1699
षण्णां पदानां वा ..... 1974
षण्मासास्सिध्यते ..... 1834
षष्टिधन्वन्तरे..... 1819
षष्ठं तु लालु ..... 4357
षष्ठीषु तैलं ..... 660

## स

सैकल्पतन्त्रावखिला ..... 4214
सैकेतकुञ्जभुवि ..... 3495
संक्षोभं पयसि..... 3844
संख्यातीताः पुरा..... 4337
संख्येया न भवन्ति ..... 1086
संगतिः श्रेयसी राजन् ..... 1396
संगीतरक्तः ..... 3114
संग्रहे तृणकाष्ठानां ..... 2528
संग्रामाङ्गणमा० ..... 1225
संतप्तायसि..... 330
संताड्य कमपि ..... 2561
संतुष्टे तिसृणां पुरा०..... 3992
संतोषामृत०..... 310
संदष्टधूरपक्षवे ..... 3668
संदेहो वैष्णवे ..... 528
संधानं त्रिविधं ..... 1802
संधिविग्रहयानानि ..... 1408
संध्याकाले रुचन्..... 2464
संध्याताण्डव० देवस्य..... 100
संध्याताण्डव० भर्गस्य ..... 109
संध्यानतौ नर०..... 65
सन्यस्तभूषापि ..... 3372
संपक्वेक्षुरस०..... 2281
संपदा सुस्थिते०..... 461
संपदो महतामेव ..... 118
संपश्यन्नासिकाग्रं ..... 4434
संप्रति न कल्प०..... 766
संप्राप्तेवधिवासरे ..... 3491
संभृत्य महतीं सेनां ..... 1937
संभोजनं संकथनं ..... 1395
संमार्जनी च कर्पासं ..... 2411
संमुखे वा समा०..... 1865
संमुखमायान्ती ..... 2711
संमृज्यश्चा रमणीय०..... 2399
संमूर्छितं संयुग०..... 3971

| | |
|---|---|
| संविष्टो ग्राम० | 3947 |
| संसदि तदेव | 139 |
| संसर्गाद्भवति | 328 |
| संसार तव दुष्पार | 4193 |
| संसाररात्रि० | 4118 |
| संहारबीजबहुलः | 2577 |
| स एव कालः | 4609 |
| स एव जीवः | 4324 |
| स एव धन्यो | 482 |
| स कथं न स्पृहणीयो | 3353 |
| सकरीरा चेद्वदरी | 2215 |
| सकलभुवन० | 121 |
| सकृशः सितः | 2189 |
| सकृष्टरेणुक० | 2922 |
| सकृदाकृष्टचापेन | 1831 |
| सखि प्रेयान्नत्वा | 3160 |
| सखीभिक्षां याचे | 3485 |
| सखीवाक्यं नव० | 44 |
| स गुणी स च | 4183 |
| सगुणैः सेवितो० | 1148 |
| सघृतं मरिचं | 2906 |
| सङ्गः सर्वात्मना | 4194 |
| संचारश्चाभिसारीणां | 43 |
| सच्छिद्रो मध्य० | 447 |
| सज्जितः कल्पितः | 1596 |
| सज्जितसकल० | 3526 |
| सततोदारदृत्तासु | 4226 |
| सत्कीर्णे लोलनेत्रं | 4039 |
| सत्पादपान्विपुल० | 1153 |
| सत्यं सत्यं मुने० | 855 |
| सत्यप्रशम० | 432 |
| सत्यं वल्लभ एष | 3578 |
| सत्सांगत्यमवाप्य | 875 |
| सत्त्वरजोभ्यां | 3113 |
| सदातिशययुक्तेन | 4202 |
| सदानुरक्तप्रकृतिः | 1288 |
| सदा सुप्ता भवन्त्येते | 1617 |
| सद्भिरेव सहासीत | 1422 |
| सद्यः पाटितकेतको० | 3638 |
| सद्यः प्रसूता सुरभी | 2569 |
| सद्यः सान्द्रमषी० | 3607 |
| सद्यो ज्वरं सैरिक० | 2668 |
| सद्यो भुजंग० | 2905 |
| सद्विद्या यदि का | 473 |
| सद्वृत्तसद्गुण० | 1173 |
| स धूर्जटिर्जटा० | 101 |
| सन्तश्चेदमृतेन | 1552 |
| सन्ति श्वान इवा० | 157 |
| सन्तु द्रुमाः किसलयो० | 3804 |
| सन्तोऽपि सन्तः | 240 |
| सन्मार्गे तावदास्ते | 3300 |
| सन्त्येके धनलाभ० | 4110 |
| सन्त्येव गिलिता० | 990 |
| सपक्षो लभते | 1449 |
| सप्ततिश्चैव | 1920 |
| सप्तत्रिगुण० | 2900 |
| सप्तषष्टिर्हताः | 3996 |
| सप्तस्वरास्त्रयो० | 2041 |
| सप्ताभिमन्त्रितं | 2935 |
| सप्ताभिमन्त्रिता० | 2938 |
| सप्तैता धारणा | 4540 |
| सप्तैतानि न पूर्यन्ते | 1456 |
| सपृषत्कण्ठ० | 2821 |
| सफला वा बदरी | 2183 |
| सफलो मांस० | 4219 |
| सबाष्पगद्गदालापः | 3171 |
| सबाह्याभ्यन्तरं | 4462 |
| सभयचकितं | 3549 |
| सभा वा न | 1345 |
| समं नपुंसकं | 1775 |
| समं विलासैरुद्गारितः | 3276 |
| समः समासनो | 4432 |
| समकालं सजातीया | 2593 |
| समपादे समौ | 1793 |
| समर्घता विक्रयो | 2524 |
| समश्नतोर्यद्य० | 2386 |
| समाकृष्टं वासः | 3677 |
| समागमिष्यतो० | 863 |
| समाङ्कुलस्थाः | 4684 |
| समा च विपुला | 1682 |
| समाधिः समता० | 4488 |
| समा षष्टिर्द्विघ्ना | 1709 |
| समा समासन्न० | 2119 |
| समाहितो ब्रह्म० | 4563 |
| समीपजातं यत्नेन | 2157 |
| समुद्रिरसि | 839 |
| समुद्रस्यापत्यं | 1167 |
| समुद्रान्योक्तय० | 28 |

| | | | |
|---|---|---|---|
| समूलघात० | 267 | सर्वेषां वृक्षाणामधः | 2191 |
| समूलपत्रमु० | 3036 | सललितमलकानां | 3808 |
| सम्यक्कृष्टे समे | 2131 | सलीलमियमायान्ती | 3364 |
| सरटं वारये० | 1673 | सलीलयानानि न | 3993 |
| सरसिजमरूणं | 3196 | स वेदो निर्वेदः | 4180 |
| सरसि बहुश० | 801 | सव्यं जानुगतं | 1795 |
| सरस्वती च | 4311 | सव्याधेः कुशता | 3522 |
| सरस्वतीपवित्राणां | 190 | सव्यापसव्यसंमुख० | 2324 |
| सरस्वतीव | 184 | सव्याहृतिं सप्रणवां | 4444 |
| सरस्वती स्थिता | 1218 | सव्रीडाभिनिरीक्षणं | 3780 |
| सरोपदष्टाधर० | 4082 | सशुक्रैरामा | 2227 |
| सर्वेस्सारणिवारि० | 3840 | सहकार कुसुम० | 3787 |
| सर्पदष्टप्रवेशे | 2904 | सहग्रामोद्भवाः | 4678 |
| सर्पव्याघ्रादि० | 1889 | सहजान्ध० | 348 |
| सर्पाः पिबन्ति | 318 | सह परि० | 224 |
| सर्पोपसर्प | 2929 | सहस्रदलपद्म० | 4370 |
| सर्पोवासः पश्चा० | 2194 | सहस्रशीर्षा पुरुषः | 494 |
| सर्पिर्गुडक्षीर० | 2237 | सहिष्ये विरहं नाथ | 3394 |
| सर्वंसहा ये | 1451 | सांध्यरागरुधिरा० | 3587 |
| सर्वज्ञोपि शिवः | 4296 | साक्षात्प्रेमावतारः | 4129 |
| सर्वत्र संपद० | 316 | साक्षान्मथवतः | 4007 |
| सर्वत्र हंससारस० | 2755 | सागसि प्रियतमे | 3650 |
| सर्वथा संत्यजेत् | 625 | सा तन्वीति घन० | 3446 |
| सर्वथा स्वहित० | 1434 | सा तीरणान्तिक० | 3405 |
| सर्वदा सर्वदोसीति | 1221 | सा दृष्टा यैर्न वा | 3368 |
| सर्वपातकसंघात० | 731 | साधुरेवा० | 399 |
| सर्वबालग्रहेषु | 2977 | सानन्दं नन्दि० | 91 |
| सर्वमेकत्र | 3057 | सानुस्वारो विसर्गान्तो | 2063 |
| सर्वलोहास्तु ये | 1787 | सान्द्ररोपण० | 2147 |
| सर्वश्वेतो हयो | 1643 | सान्द्रां सुकठिनां | 1681 |
| सर्वसङ्गविहीन० | 4552 | सा बाढं भवते० | 3568 |
| सर्वस्यापि नवो० | 2152 | सा भार्या या प्रियं | 1500 |
| सर्वस्यैव हि रत्नस्य | 3314 | सामदाने भेद० | 1410 |
| सर्वाङ्गकृष्णः परि० | 2334 | सामगायनपूतं | 4062 |
| सर्वाङ्गमोटको | 4316 | सामवेदात्स्वरा | 2039 |
| सर्वा दृष्टीः परि० | 4211 | सा मां द्रक्ष्यति | 3499 |
| सर्वाशापरिपूरि | 1118 | सामैव हि प्रयोक्तव्यं | 1300 |
| सर्वाशास्रुधि | 3854 | सा यावन्ति पदा० | 3580 |
| सर्वासु दिक्षु फेरूणां | 2460 | सारङ्गो न लता० | 944 |
| सर्वास्तुल्यः समः | 1063 | सा रज्जुस्तदनु | 2143 |
| सर्वे मिथुन० | 4286 | सारभूतमुपा० | 4561 |
| सर्वे यत्र विनेतारः | 1467 | सा रसवत्ता | 4001 |
| सर्वेषां तु पदार्थानां | 4185 | सारासारपरि० | 1387 |
| सर्वेषां वृक्षजातीनां | 2108 | सार्धं मनोरथ० | 3563 |

| | | | |
|---|---|---|---|
| सार्धाङ्गुलप्रमाणेन | 1859 | सुरदारुमलय० | 3262 |
| सालकाननयुक्ता० | 1275 | सुरभिजल० | 2242 |
| सालसं मुखरं | 1329 | सुरभिसुमनो० | 2277 |
| साशङ्कस्य समा० | 1232 | सुरसं जलमाद्रौ | 2214 |
| सा सुन्दर तव | 3473 | सुलक्षणा महादेवी० | 1618 |
| सिंहः शिशु० | 283 | सुलभाः पुरुषा राजन् | 1360 |
| सिंहान्योक्तिर्गजान्योक्ति० | 26 | सुवर्णसदृशा० | 4629 |
| सिक्तायां वीरकण्ठ० | 1234 | सुषुप्णान्तः प्रवेष्टयैव | 4369 |
| सिक्ताम्भोभिः | 2236 | सुसंनद्धसमस्त० | 4306 |
| सितदूर्वा सित० | 3203 | सुस्निग्धैः पिशित० | 2262 |
| सितवर्णः पिङ्गाक्ष० | 2837 | सुस्वरं सरसं | 1950 |
| सितवर्षाभू० | 2944 | सूकरासृग्वसासिक्त० | 2301 |
| सितवसन० | 3097 | सूकरिका माष० | 2220 |
| सितशरपुङ्खा | 3222 | सूक्ष्मं रजन० | 4637 |
| सिनशाल्योदनं | 2161 | सूक्ष्म ऋजु: पुच्छ० | 1636 |
| सितैकचरणः पुष्प० | 1660 | सूक्ष्मात्सूक्ष्मतर० | 4544 |
| सिद्धार्थः कदली० | 2246 | सूक्ष्मेभ्योपि | 1341 |
| सिद्धार्थकफली० | 2249 | सूक्ष्मैलाकस्तूरी० | 3251 |
| सिद्धै कैनचिदुक्ते | 2572 | सूचीमुखगति० | 1846 |
| सिद्धै यातुरविघ्नं | 2567 | सूचीमुखा मीन० | 1845 |
| सिन्दूरं सीमन्तात् | 1240 | सूरणाद्विपदानाभ्यां | 3257 |
| सिन्दूरस्पृहया | 136 | सूर्यवारः शुक्र० | 1726 |
| सिन्धुस्तरंगैरूप० | 1113 | सूर्याचन्द्रमसोः | 4289 |
| सीत्कारं संजनयति | 524 | सूर्याचन्द्रमसौ मूर्ध्नि | 1650 |
| सुखदुःखहर्ष० | 2692 | सूर्योदये गृहोर्ध्वं | 2437 |
| सुखशय्या ताम्बूलं | 5781 | सृजति तावदशेष० | 4000 |
| सुखिनश्चाशुभा | 2504 | सेतुं संभेदयन्तो | 1572 |
| सुजनो न याति | 237 | सेनापतिं गजा० | 1903 |
| सुतनु जहिहि | 3577 | सेवया धनमिच्छद्भिः | 1373 |
| सुतभृत्यसुहृत्० | 1419 | सेवनं यौवितां | 3134 |
| सुदीर्घा रागशालिन्यो | 3335 | सेयं स्थली नव० | 948 |
| सुधाकरकरस्पर्श० | 1102 | सैन्योत्तारणतो | 1575 |
| सुधामयोपि क्षय० | 3305 | सैरन्ध्रीकरकृष्ट० | 3591 |
| सुन्दरी सा भवत्येष | 3366 | सैव क्षेत्राद्विनि० | 2523 |
| सुभाषितमयैर्द्रव्यै० | 141 | सैव परं न | 272 |
| सुभाषितरसा० | 156 | सोपि दक्षस्य | 4283 |
| सुभाषितवर० | 56 | सोमः शौचं ददौ | 3083 |
| सुभ्रु त्वं कुपिते० | 3556 | सोमकान्तो मणिः | 1100 |
| सुमन्त्रिते | 1431 | सौख्येषु हसित० | 3163 |
| सुमनोवररत्नानां | 1414 | सौन्दर्यपात्रे वक्त्रेन्दौ | 3306 |
| सुमुखोपि सुवृत्तोपि | 358 | सौन्दर्यमिन्दीवर० | 3877 |
| सुरतविरतौ क्रीडा० | 3707 | सौम्यानि यानि | 1900 |
| सुरताय नमस्तस्मै | 511 | सौभाग्यं विरलस्य | 484 |
| सुरते च समाधौ | 3665 | सौरभ्यं मृगलाञ्छने | 3374 |

| | | | |
|---|---|---|---|
| सौहृदेन परित्यक्तं ..... | 1460 | स्थूलः कृशः कृशः ..... | 4571 |
| स्कन्धतः समन्ततः ..... | 2294 | स्थूलशकुन्मणि० ..... | 2831 |
| स्कन्धार्पितैक० ..... | 3188 | स्थूलश्च क्रोधनो० ..... | 1683 |
| स्खलितबहलः ..... | 3170 | स्थूला वा तन्वी वा ..... | 3101 |
| स्तन इव च गले ..... | 2819 | स्नाताः प्रावृषि मेघ० ..... | 1280 |
| स्तनपरिसरभागे..... | 3730 | स्नातुर्जनस्य दशमी ..... | 661 |
| स्तनयुगलकर्ण० ..... | 3227 | स्नानं नाम मनः० ..... | 1415 |
| स्तनयुगमतीव ..... | 3370 | स्नानाम्भो बहु..... | 3751 |
| स्तनौ मांसग्रन्थी ..... | 4147 | स्नानार्द्रमुक्तेष्वनु ..... | 3289 |
| स्तब्धस्य नश्यति ..... | 1537 | स्निग्धशाखादलः ..... | 2260 |
| स्तम्भे गजानां नियतं ..... | 2661 | स्निग्धा दीर्घाश्च ..... | 1703 |
| स्तोकाम्भः परिवर्तित० ..... | 1130 | स्निग्धां यवागूं..... | 4510 |
| स्तोकेनोन्नति० ..... | 373 | स्निग्धे यत्परूषासि ..... | 3548 |
| स्त्रियस्तु यः कामयते ..... | 1494 | स्नुह्याजदुग्ध० ..... | 3223 |
| स्त्रियः पवित्रं ..... | 3084 | स्नेहेन भूति०..... | 371 |
| स्त्रियोवतारयन्त्येते ..... | 1569 | स्पष्टचेष्टः शुभः ..... | 2591 |
| स्त्रीबालस्वामि० ..... | 709 | स्पृशन्नपि गजो ..... | 1447 |
| स्त्रीमुद्रां कुसुमा० ..... | 3082 | स्फटिकमरकत० ..... | 110 |
| स्त्रीरत्नं मोहनं ..... | 4192 | स्फटिकस्य गुणो ..... | 1101 |
| स्त्रीरत्नध्यानमात्रं..... | 4191 | स्फीतं शीतं..... | 3830 |
| स्त्रीलाभं रति० ..... | 2536 | स्फुरन्तः पिङ्गला० ..... | 3864 |
| स्त्री विनश्यति रूपेण ..... | 1444 | स्फुरिते जठरे ..... ... | 507 |
| स्त्रीसेवाकथनं ..... | 36 | स्फुरसि बाहु० ..... | 3533 |
| स्थलीनां दग्धानां ..... | 942 | स्फुरितं कम्पितं ..... | 2036 |
| स्थानं गतिस्तथा..... | 2584 | स्फुलिङ्गा यस्य ..... | 1671 |
| स्थानस्थस्य प्रयातु ..... | 2518 | स्मयमानमायताक्ष्याः ..... | 3317 |
| स्थानस्थानां चतु० ..... | 2459 | स्मर्तव्या वयमिन्दु० ..... | 3392 |
| स्थानस्थानां शकुनं ..... | 2323 | स्मर्तव्योहं त्वया ..... | 3391 |
| स्थानस्थितस्य यस्य ..... | 2406 | स्मितपुष्पोद्गमो०..... | 3656 |
| स्थानस्थितानां सूर्य० ..... | 2501 | स्यात्कलिः करकर० ..... | 2492 |
| स्थानान्यष्टौ ..... | 1789 | स्याद्वस्मितायां न..... | 2447 |
| स्थानान्तरं बिभ्रत्०..... | 2621 | स्याद्यदि वामा श्यामा ..... | 2718 |
| स्थानान्निर्गत्य दूरं ..... | 3504 | स्रग्दाम मूर्धनि ..... | 1192 |
| स्थानी कृतेषु यदि..... | 2714 | स्वकालपरिमाणेन ..... | 4267 |
| स्थानेष्वपरेषु ..... | 2165 | स्वच्छन्दं हरिणेन ..... | 947 |
| स्थाने स्थाने मलय० ..... | 3792 | स्वजानुनः करावर्तं ..... | 4446 |
| स्थापयित्वा घटे ..... | 3043 | स्वनत्यगारं यदि ..... | 2427 |
| स्थावरं जङ्गमं चेति ..... | 2859 | स्वनित्वोपरि गेहस्य..... | 2430 |
| स्थावरं जङ्गमं चैव ..... | 2866 | स्वपतो ब्रह्मणः ..... | 4266 |
| स्थावरजङ्गम० ..... | 2936 | स्वपुष्पमभि० ..... | 735 |
| स्थित्वा क्षणं ..... | 800 | स्वप्नेऽग्निं प्रविशेत्..... | 4584 |
| स्थित्वा स्थैर्या० ..... | 571 | स्वफलनिचयः ..... | 1544 |
| स्थित्वोन्नते श्वा यदि..... | 2604 | स्वभावकठिन० ..... | 365 |
| स्थिरस्निग्धे विशाले ..... | 1584 | स्वभावैवपरीत्येन ..... | 4587 |

| | |
|---|---|
| स्वयं यो राजते | 2045 |
| स्वयमप्राप्तदुःखो यः | 3425 |
| स्वरेण पदसंयुक्तं | 1951 |
| स्वरोदये शुभे | 2793 |
| स्वर्णैः स्कन्ध० | 988 |
| स्ववशः करोति | 439 |
| स्ववासनावश० | 4338 |
| स्वस्ति क्षत्रिय० | 501 |
| स्वस्त्यस्तु विद्रुम० | 1082 |
| स्वस्वजातेस्तु पृच्छायां | 2332 |
| स्वाकृष्टस्तोजितो | 1856 |
| स्वाधिष्ठानं द्वितीयं | 4353 |
| स्वाध्यायशौच० | 4427 |
| स्वामिन्प्रभो प्रिय० | 3691 |
| स्वामी निःश्वसिते० | 3776 |
| स्वामोदवासित० | 826 |
| स्वाम्यमात्यश्च | 1407 |
| स्वावर्तं च विशालं | 1622 |
| स्विन्नं मण्डलमैन्दवं | 3692 |
| स्वेच्छया त्वरिता | 1695 |
| स्वेदस्ते कथमीदृशः | 104 |
| स्वैरं कैरवकोरका० | 3631 |

## ह

| | |
|---|---|
| हंसः प्रयाति शनकै० | 1182 |
| हंसश्च द्वादश० | 4321 |
| हंसाः पद्मवन० | 1038 |
| हंसाभिधानः पवनो | 2795 |
| हंसैर्लब्धप्रशंसै० | 1126 |
| हंसो यथा राजति | 3625 |
| हंहो दग्धसमीर | 795 |
| हनेभिमन्यौ कुद्धेन | 3982 |
| हदि प्राणो गुदे० | 4315 |
| हन्तुं मेषोपसरति | 1402 |
| हन्यन्ते काकपङ्क्तीभिः | 4574 |
| हयौ मृगमिभौ० | 3128 |
| हरकण्ठग्रहानन्द० | 68 |
| हरमुकुटे सुर० | 751 |
| हरिद्रां दुग्धसहितां | 2871 |
| हरिणीछागयो० | 3125 |
| हरिणी छागी | 3122 |
| हरिणी मृगयो० | 3124 |
| हरिणीहययो० | 3129 |
| हरिरलस० | 904 |
| हरीतक्यास्त्रयो | 3033 |
| हरेच्छिरीष० | 2954 |
| हरौ यद्युपदेष्टा | 4213 |
| हर्तुर्याति न | 203 |
| हविः समुद्धृत्य चरो० | 2342 |
| हस्तः पुनर्वसुः | 1723 |
| हस्तद्वयस्थितैः | 631 |
| हस्तप्रमाणा० | 2140 |
| हस्तादपि न | 485 |
| हस्तार्के लाङ्गली० | 1885 |
| हस्ती वन्यः स्फटिक० | 1250 |
| हस्तो मघा० | 2223 |
| हहश्च नृपनाशाय | 2457 |
| हा तात तातेति | 3970 |
| हारानाहर देव० | 1236 |
| हारीताः सरसं | 871 |
| हारो नारोपितः | 3429 |
| हावहारि हसितं | 3652 |
| हास्यशृङ्गारयोः | 2049 |
| हिङ्गुसैन्धवसंयुक्तं | 3244 |
| हिङ्ग्वग्निशुन० | 2912 |
| हितोपदेशं शृणुयात् | 1523 |
| हिन्दोलस्त्रिगुणा० | 2057 |
| हिमधवलदन्त० | 3919 |
| हिमवत्कन्यका० | 1962 |
| हिमवदुत्तरे | 2952 |
| हिमसमयो | 984 |
| हिमाख्युकिमि० | 2980 |
| हिरण्यधान्य० | 1293 |
| हीनदन्तोधिकश्चैव | 1656 |
| हीने तु संधिते | 1755 |
| हूणीसीमन्तमुद्रां | 3930 |
| हृते कांस्ये तु | 728 |
| हृताधिकारां मलिनां | 656 |
| हृतोङ्करागस्तिलकं | 3849 |
| हृदयं कौस्तुभेद्वासि | 119 |
| हृदयानि सता० | 234 |
| हृदि लग्नेन | 186 |
| हृदि विसलता | 3460 |
| हृष्टास्यं भषणं | 2415 |
| हृष्यत्कृष्टासिपिष्टो० | 1251 |
| हेतुप्रमाण० | 335 |
| हे दारिद्र्य | 402 |
| हे दावानल शैल० | 1156 |

| | | | |
|---|---|---|---|
| हे पक्षिन्नाग० | 808 | हे हेमन्त स्मरिष्यामि | 3923 |
| हे पान्थ प्रिय० | 3931 | होमपूजाशन० | 2765 |
| हे पान्थाः स्वगृहाणि | 3817 | ह्रस्वताकर्णयो० | 1623 |
| हेमन्ते शिशिरे | 2153 | ह्रस्वश्रवणलाङ्गूल० | 1590 |
| हेममञ्जरिमालाभ्यां | 3359 | ह्रेषिते स्कन्धमुद्दिष्टं | 1688 |
| हेलाविच्छित्ति० | 3155 | ह्रेषिते स्खलिते | 1687 |
| हेलोल्लासितकल्लोल० | 1087 | | |


# परिशिष्टम्


| | | | |
|---|---|---|---|
| अध्वन्यैर्मकरन्द० | 3821 | तद्वद्बुद्धिमशेषाणां | 4535 |
| उपरि घनं घनपटलं | 3886 | दृष्टा प्रागुपविष्टा | 2695 |
| एकाकरणदेकी० | 2033 | पक्ष्माग्रग्रथिताश्रु० | 3414 |
| किं गतेन यदि | 3885 | | |


BOMBAY : PRINTED AT THE EDUCATION SOCIETY'S PRESS, BYCULLA.


ROYAL ASIATIC SOCIETY
BOMBAY BRANCH
JACKSON
MEMORIAL
COLLECTION


00042138

# BOMBAY SANSKRIT SERIES.

*Edited under the superintendence of* Dr. P. PETERSON, *and* Dr. R. G. BHANDARKAR.

| | Rs. | a. |
|---|---|---|
| Nos. I., III., and IV., Panchatantra, with Notes, by Dr. Kielhorn and Dr. Bühler. | | |
| Book I., 5th Edition ... ... ... ... | 0 | 10 |
| Books II. & III., 3rd Edition ... ... ... | 0 | 6½ |
| Books IV. & V., 3rd Edition ... ... ... | 0 | 6½ |
| Nos. II., VII., IX., and XII., Nâgojîbhaṭṭa's Paribhâshenduśekhara, with Translation, by Dr. Kielhorn ... ... | 5 | 0 |
| Nos. V., VIII., and XIII., Kâlidâsa's Raghuvanśa, with Mallinâtha's Commentary, and Notes, by S. P. Pandit, M.A. ... ... ... ... ... ... ... | 4 | 0 |
| No. VI., Kâlidâsa's Mâlavikâgnimitra, with Notes, by S. P. Pandit, M.A. (New edition in the Press). | | |
| No. X., Daṇḍin's Daśakumâracharita, with Notes, by Dr. Bühler, Part I. 2nd edition, revised ... ... | 0 | 14 |
| No. XI., Bhartṛihari's Nîti and Vairâgya Śatakas, with Notes, by K. T. Telang, M.A. 2nd edition, revised ... | 1 | 0 |
| No. XIV., Bilhaṇa's Vikramâṅkadevacharita, with Introduction, by Dr. Bühler ... ... ... ... ... | 1 | 0 |
| No. XV., Bhavabhûti's Mâlatîmâdhava, with Notes, by Dr. R. G. Bhandarkar (Under revision for a new edition). | | |
| No. XVI., Kâlidâsa's Vikramorvaśî, with Notes, by S. P. Pandit, M.A. (New edition in the Press). | | |
| No. XVII., Hemachandra's Deśînâmamâlâ, with a Glossary, by Dr. Pischel and Dr. Bühler, Part I. ... ... | 3 | 4 |
| Nos. XVIII., XIX., and XX., Patanjali's Vyâkaraṇamahâbhâshya, by Dr. Kielhorn. Vol. I., Parts I., II., and III., Rs. 2 each Part ... ... ... ... ... | 6 | 0 |
| Nos. XXI., XXII., and XXVI., Do. Do. by Do. Vol. II., Parts I., II., and III., Rs. 2 each Part ... ... | 6 | 0 |
| No. XXIII., The Vâsishṭhadharmaśâstra, by Dr. A. A. Führer. | 0 | 12 |
| No. XXIV., Bâṇa's Kâdambarî, with Introduction and Notes, by Dr. P. Peterson, 2nd edition, revised. Part I. Sanskrit Text ... ... ... ... ... ... | 1 | 8 |
| No. XXV., Someśvaradeva's Kîrtikaumudî, with Introduction and Notes, by A. V. Kâthavaṭe, M.A. 2nd edition, revised. Part I. Sanskrit Text ... ... ... | 1 | 4 |
| No. XXVII., Viśâkhadatta's Mudrârâkshasa, with Commentary and Notes, by K. T. Telang, M.A. ... ... | 1 | 14 |
| Nos. XXVIII., XXIX., and XXX., Patanjali's Vyâkaraṇamahâbhâshya, by Dr. Kielhorn. Vol. III., Parts I., II., and III., Rs. 2 each Part ... ... ... ... | 6 | 0 |
| No. XXXI., Vallabhadeva's Subhâshitâvali, by Dr. P. Peterson and Pandit Durgâ Prasâd ... ... ... ... | 5 | 0 |
| No. XXXII., Laṅgâkshi Bhâskara's Tarkakaumudî, by M. N. Dvivedi, B. A.... ... ... ... ... ... | 0 | 12 |
| No. XXXIII., Nârâyaṇa's Hitopadeśa, by Dr. P. Peterson ... | 1 | 10 |
| No. XXXIV., Vâkpati's Gaudavaho, by Shankar P. Pandit, M. A. ... ... ... ... ... ... ... | 5 | 8 |
| No. XXXV., The Mahânârayaṇa Upanishad, with Dîpikâ, by Col. G. A. Jacob ... ... ... ... ... | 0 | 11 |
| No. XXXVI., Hymns from the Rigveda, with Sâyaṇa's Commentary, Notes, and a Translation, by Dr. P. Peterson... | 4 | 0 |

Digitized with financial assistance from the
Government of Maharashtra
on 05 October, 2018